महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

ज्ञान शांति मैत्री

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एम.ए. राजनीति विज्ञान

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.पी.एस. – 016

द्वितीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : - 12

पाठ्यचर्या का शीर्षक : संयुक्त राष्ट्र

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

दूर शिक्षा निदेशालय महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

एम.ए.राजनीति विज्ञान प्रथम सेमेस्टर-पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन (भाग-1)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि.,वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. अरविंद कुमार झा
पूर्व निदेशक,
दूर शिक्षा निदेशालय
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. पवन कुमार शर्मा
विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय
अटल बिहारी बाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. जे.वी. गवई
विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर, महाराष्ट्र

डॉ. सुशील कुमार त्रिपाठी
पाठ्यक्रम संयोजक : एम.ए.राजनीति विज्ञान पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. आर. आर. झा
पूर्व विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय
बी.एच.यू. वाराणसी

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
गांधी एवं शांति अध्ययन, संस्कृति विद्यापीठ,
म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

डॉ. सुशील कुमार त्रिपाठी
पाठ्यक्रम संयोजक : एम.ए.राजनीति विज्ञान पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1	खंड - 2	खंड - 3	खंड - 4
इकाई 1 – प्रो. राजेश कुमार भट्ट	इकाई 1- डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 1 – डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 1 - प्रो. राजेश कुमार भट्ट
इकाई 2 - प्रो. राजेश कुमार भट्ट	इकाई 2- डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 2 - डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 2 - प्रो. राजेश कुमार भट्ट
इकाई 3 - प्रो. राजेश कुमार भट्ट	इकाई 3- डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 3 - डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 3 - प्रो. राजेश कुमार भट्ट
इकाई 4 - प्रो. राजेश कुमार भट्ट	इकाई 4- डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 4- डॉ. ज्योति भट्ट	इकाई 4 - प्रो. राजेश कुमार भट्ट

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव
दू.शि. निदेशालय म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट
दू.शि. निदेशालय म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक/फार्मेटिंग/एडिटिंग
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

संयुक्त राष्ट्र

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

खंड-1 संयुक्त राष्ट्र की स्थापना, उद्देश्य एवं सिद्धान्त

इकाई-1 संयुक्त राष्ट्र की स्थापना

इकाई-2 संयुक्त राष्ट्र का चार्टर, उद्देश्य एवं सिद्धान्त

इकाई-3 संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन

इकाई-4 संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता

खंड-2 संयुक्त राष्ट्र का संगठन एवं कार्य

इकाई-1 महासभा

इकाई-2 सुरक्षा परिषद

इकाई-3 आर्थिक एवं सामाजिक परिषद

इकाई-4 अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

खंड-3 संयुक्त राष्ट्र का संगठन एवं कार्य

इकाई-1 सचिवालय

इकाई-2 न्यास परिषद

इकाई-3 विशिष्ट अभिकरण

इकाई-4 संयुक्त राष्ट्र और मानवाधिकार

खंड-4 संयुक्त राष्ट्र : उपलब्धियाँ समस्याएं एवं समाधान

इकाई-1 संयुक्त राष्ट्र : वित्तीय प्रबंधन एवं चार्टर में संशोधन की समस्या एवं समाधान

इकाई-2 संयुक्त राष्ट्र : शक्ति संघर्ष एवं राजनीति और विवादों का शांतिपूर्ण समाधान

इकाई-3 संयुक्त राष्ट्र : लोकतन्त्रीकरण और भारत की भूमिका

इकाई-4 संयुक्त राष्ट्र : उपलब्धियाँ एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन

अनुक्रम

क्र.सं.	इकाई के नाम	पृष्ठ क्रमांक
1.	**खंड-1 संयुक्त राष्ट्र की स्थापना, उद्देश्य एवं सिद्धान्त**	
	इकाई-1 संयुक्त राष्ट्र की स्थापना	3-23
	इकाई-2 संयुक्त राष्ट्र का चार्टर, उद्देश्य एवं सिद्धान्त	24-35
	इकाई-3 संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन	36-53
	इकाई-4 संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता	54-69
2.	**खंड-2 संयुक्त राष्ट्र का संगठन एवं कार्य**	
	इकाई-1 महासभा	70-97
	इकाई-2 सुरक्षा परिषद	98-116
	इकाई-3 आर्थिक एवं सामाजिक परिषद	117-134
	इकाई-4 अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय	135-154
3.	**खंड-3 संयुक्त राष्ट्र का संगठन एवं कार्य**	
	इकाई-1 सचिवालय	155-172
	इकाई-2 न्यास परिषद	173-191
	इकाई-3 विशिष्ट अभिकरण	192-209
	इकाई-4 संयुक्त राष्ट्र और मानवाधिकार	210-229
4.	**खंड-4 संयुक्त राष्ट्र : उपलब्धियाँ समस्याएं एवं समाधान**	
	इकाई-1 संयुक्त राष्ट्र : वित्तीय प्रबंधन एवं चार्टर में संशोधन की समस्या एवं समाधान	230-249
	इकाई-2 संयुक्त राष्ट्र : शक्ति संघर्ष एवं राजनीति और विवादों का शांतिपूर्ण समाधान	250-566
	इकाई-3 संयुक्त राष्ट्र : लोकतन्त्रीकरण और भारत की भूमिका	267-284
	इकाई-4 संयुक्त राष्ट्र : उपलब्धियाँ एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन	285-303

खण्ड-1: संयुक्त राष्ट्र की स्थापना, उद्देश्य एवं सिद्धान्त

इकाई-1: संयुक्त राष्ट्र की स्थापना

इकाई की रूपरेखा:

1.1.1. उद्देश्य कथन

1.1.2. प्रस्तावना

1.1.3. संयुक्त राष्ट्रसंघ

1.1.3.1. अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के पक्ष में घोषणाएँ (Offical Declaration on Favouring a Postwar International Organisation)

1.1.3.1.1. लंदन की घोषणा (12 जून 1941)

1.1.3.1.2. एटलांटिक चार्टर (Atlantic Charter)

1.1.3.1.3. संयुक्त राष्ट्र घोषणा 1 जनवरी 1942 (The Declaration of the United Nations 1 January, 1942)

1.1.3.1.4. मास्को घोषणा (Moscow Declaration)

1.1.3.1.5. तेहरान सम्मेलन (Tehran Conference)

1.1.3.1.6. डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन (Dumbarton Oaks Conference)

1.1.3.1.7. सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन (San Francisco Conference)

1.1.3.1.8. पेरिस शांति-सम्मेलन

1.1.4. संयुक्त राष्ट्र का निमार्ण क्यों?

1.1.4.1. राष्ट्र संघ की असफलता:

1.1.4.1.1. राष्ट्रसंघ के विधान को संशोधित करना

1.1.4.1.2. अन्तर्राष्ट्रीय नवीन संगठन की सदस्यता

1.1.4.1.3. राष्ट्रसंघ का पुनर्गठन

1.1.4.1.4. राष्ट्रसंघ का असफल अनुभव

1.1.5. मूल्यांकन

1.1.6. पाठ-सार/सारांश

1.1.7. अभ्यास/बोध प्रश्न

1.1.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप:

- संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के विभिन्न आयामों पर प्रभाव डालेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी रूपरेखा का अध्ययन करोंगे।

- संयुक्त राष्ट्र को लाूग करने में किन सिद्धान्तों की अनिवार्यता को लागू किया गया।
- संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्माण में विभिन्न सम्मेलनों की चर्चा करेंगे।

1.1.2. प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के भीषण नर-संहार के बाद राष्ट्रसंघ की स्थापना की गयी। संघ की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सद्भावना की दिशा में एक महत्वपूर्ण कमद थी। इसके अन्तर्गत अन्र्तराष्ट्रीय संस्था के प्रयत्न से अन्तर्राज्य विवादों का समाधान करने, आक्रामक कारईवाइयों के विरुद्ध सदस्य-राज्यों को सुरक्षा प्रदान करने, युद्ध रोकने तथा विश्व-शांति कायम रखने की विस्तृत व्यवस्था की गयी थी। राष्ट्रसंघ के प्रेरणा स्रोत, अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति वुड्रों विल्सन ने इसके विधान को शांति का विधान और शांति की निश्चित गांरटी माना। दक्षिणी अफ्रीका के तत्कालीन प्रधान मंत्री जनरल स्मट्स ने राष्ट्रसंघ के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों और संस्थाओं के आन्तरिक रूपान्तर की आशा व्यक्त की। लेकिन ये सभी आशाएँ आदर्श-मात्र बनकर रह गई। जैसे-जैसे समय बीतता गया और परीक्षा की घड़ी आयी, राष्ट्रसंघ एक शक्तिहीन संस्था साबित हुई। इसके आदर्शो की अवहेलना कर जापान ने मंचूरिया पर और इटली ने अबीसीनीया पर आक्रमण किये, परन्तु राष्ट्रसंघ उनके विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सका। उसकी निष्क्रियता तथा शक्तिहीनता से तानाशाही शासकों जिन्हें राष्ट्रसंघ के उच्च आदर्शो में विश्वास नहीं था, की महत्वाकांक्षाओं को काफी बल मिला। वे मनमानी करने लगे। उनकी आक्रामक नीतियों का परिणाम यह हुआ कि विश्व एक बार फिर सन् 1939 में द्वितीय महायुद्ध के भँवरजाल में फँस गया। राष्ट्रसंघ जिसका उद्देश्य विश्व का भावी युद्ध से बचाना था, द्वितीय महायुद्ध को रोकने में असफल हो गया और महायुद्ध की लपटो में राष्ट्रसंघ का कल्पतरु झुलस कर हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

इस प्रकार शांति-स्थापना के लिए राष्ट्रसंघ के रूप में मानव का प्रथम प्रयास असफल हो गया। परन्तु इसकी असफलता से अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना के सारे प्रयास बन्द हो जाते। परन्तु जैसा कि गुड्स-पीड ने लिखा है: अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के माध्यम से शांति और सुरक्षा की स्थापना की खोज द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ होते ही समाप्त नही हुई।[1] ‘‘वरन् युद्ध ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के आवश्यकता को और भी व्यापक आधार प्रदान किया।’’[2] लिखित इतिहास में इससे अधिक भंयकर और विध्वंसकारी युद्ध कभी नही लड़ा गया था। इससे जन और धन की जो हानि हुई थी, उसके चलते अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना अनिवार्य समझी जाने लगी। मानवतावादी, शांतिवादी तथा अन्तर्राष्ट्रीयतावादी इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि एक ऐसे संगठन की स्थापना की जाये जो युद्ध की पुनरावृति को रोक सके और मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति को अतीत की गाथा होने से बचा सके। राष्ट्रसंघ का आदर्श उनके सामने था। परन्तु उसकी असफलता सबकी आँखे खोल चुकी थी। पुराने राष्ट्रसंघ को पुनर्सगठित करना ही पर्याप्त नही था। उसमें अनेक

---

[1] "The quest for peace and security through international organization did not die with the coming of the second war.

[2] In fact the failure to prevent world war second strengthened rather than weakened popular demand through out the world for an effective system of collective security. Vandenbosch and Hogan: Towards the New World Order, P. 15

संवैधानिक और रूपरूपगत दोष वर्तमान थे। उसके माथे पर असफलता का धब्बा लग चुका था। विश्व जनमत की नजर में उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी थी। राष्ट्रों का विश्वास उससे उठ चुका था। अतएव पुराने राष्ट्रसंघ को पुनर्व्यवस्थिति करना बुद्धिमतापूर्ण नही था। विश्वशांति को स्थायी आधार देने के लिए एक ऐसी संस्था की स्थापना आवश्यक थी जो राष्ट्रसंघ से अधिक शक्तिशाली हो तथा भावी युद्ध को रोकने की सामर्थ्य रखती हो। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना इसी उद्देश्य का परिणाम है।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ से पूर्णतया भिन्न नही है। वस्तुतः इसकी स्थापना की प्रेरणा पुराने राष्ट्रसंघ से ही मिली थी। उसी के ढाँचे पर नये संगठन का निर्माण किया गया था। इसीलिए यह कहा जाता है कि राष्ट्रसंघ के अनुभव ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माण की प्रेरणा दी। जैसा कि वाल्टर ने कहा है एक कार्यकारी संस्था के रूप में राष्ट्रसंघ नहीं रहा, किन्तु उसके आदर्श तथा उम्मीदें सभ्य संसार में फलती-फुलती रही और अनतकाल तक विस्तार पाती रहेगी।[3] संयुक्त राष्ट्र की स्थापना में इस परीक्षण से बड़ी सहायता मिली। सचमुच उसके उद्देश्यों सिद्धांतो अंगो आदि पत्येक पहलू पर राष्ट्रसंघ की स्पष्ट छाप है। यही कारण है कि बहुत से लेखकों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ को राष्ट्रसंघ का संशोधित संस्करण अथवा नये लबादे में पुरानी संस्था'' ही माना है। पॉटर ने इसे दूसरा राष्ट्रसंघ अथवा ढीला-ढाला संघ माना है।

परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का सच्चा प्रतिरूप है। यह ठीक है कि इसकी स्थापना में राष्ट्रसंघ के अनुभव से लाभ उठाया गया है किन्तु इसके साथ ही यह प्रयास किया गया है कि यह नवीन संगठन ऐसी सभी दुर्बलताओं से मुक्त रहे जिन्होंने पिछले सभी शांति-प्रयत्नों को विफल कर दिया था। डॉलिवे के शब्दों में, संयुक्त राष्ट्रसंघ वास्तव में राष्ट्रसंघ से अधिक शक्तिशाली है और इसकी शक्ति में मानव-जाति की आशा छिपी हुई है।'' इस प्रकार यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना का इतिहास राष्ट्रसंघ के इतिहास से जुड़ा हुआ है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विकास के मार्ग में यह राष्ट्रसंघ के बाद अगला कदम है। इसकी स्थापना विश्व शांति के लिए उठाये ये अब तक के पगों में सर्वाधिक प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण है।

1.1.3. संयुक्त राष्ट्रसंघ

26 जून, 1945 को सानफ्रांसिस्कों में 50 देशों के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर पर हस्ताक्षर किये और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई। परन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना एकाएक हो गयी। वास्तव में यह वर्षो के विचार-विमर्श के बाद संसार के समक्ष आया। जैसा कि चेज ने लिखा है किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का निर्माण उतनी सावधानी के साथ नही किया गया था जितनी संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का। युद्ध के प्रांरभ होते ही इसकी रचना के सम्बन्ध में विचार-विमर्श शुरू हो गया था। अमरीकी विदेश सचिव कर्डल हल के अनुसारः उसी क्षण जबकि पोलैड पर हिटलर के आक्रमण ने शांति काम रखने के तत्कालीन सभी उपायों के दिवालियेपन को प्रदर्शित कर दिया, विदेश विभाग में हम लोगों को स्पष्ट रूप से

---

[3] The League as a working institution is dead but the idelas which it sought to promote, the hopes to which it gave rise the method that it devised, the agencies it created have become an essential part of the political thinking of the civilized world and their influence will survive until mankind enjoys a unity transcending the divisions of state and nations.

दृष्टिगोचर होने लगा कि एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का कार्य प्रारंभ कर देना चाहिए। अभिप्राय यह कि युद्ध के शुरू होते ही भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के सम्बन्ध में विचार-विमर्श शुरू हो गया था और उसके निर्माणार्थ योजनाएं बनने लगी थी।

प्रारंभ में यह कार्य गैर-सरकारी अभिकरणों तथा नागरिकों के द्वारा शुरू किया गया और बाद में धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध लड़नेवाली सरकारों ने उसे अपने हाथों में ले लिया। इसके लिए आयोगों और समितियों सम्मेलनों और घोषणाओं तथा विशेषज्ञों एवं विधि-वेत्ताओं का सहयोग लिया गया। फिर भी यह स्पष्ट है कि राष्ट्रसंघ के निर्माण के लिए राष्ट्रपति विल्सन जितना उत्सुक था, सम्भवत: सयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माण के लिये कोई एक व्यक्ति उतना उत्सुक नही था। लेकिन, अमरीकी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन डिलेनों रूजवेल्ट द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयत्न कम प्रभावशाली प्रभाव पड़ा था। अन्य गैर-सरकारी अभिकरणों ने भी इस कार्य में महत्वपूर्ण योगदान किया था।

इस प्रकार हम देखते है कि नवीन अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माणार्थ तथा उससे सम्बद्ध समस्याओं पर विचार करने एवं योजनाएँ बनाने का कार्य युद्धकाल में ही शुरू हो गया था। यह कार्य दो स्तरों पर निभाया जा रहा था-गैर-सरकारी तथा सरकारी संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के क्रमिक विकास का जानने के लिए इन दोनो स्तरों पर किये गये प्रयासों को जान लेना आवश्यक है।

गैर-सरकारी संगठनों के कार्य (Work of Private Groups): युद्ध के प्रारंभ होने के शीघ्र ही बाद एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के स्वरूप तथा समस्याओं के सम्बन्ध में ब्रिटेन तथा अमेरिका के गैर सरकारी हलकों में विचार-विमर्श शुरू हो गया तथा उसके लिए योजनाएँ बनने लगी। परन्तु व्यापक रूप से यह कार्य अमेरिका में ही शुरू किया गया। वहाँ इसके लिए अनेक आयोगों की स्थापना की गयी जिनका कार्य संगठन की रूपरेखा के सम्बन्ध में सुझाव देना था। इन आयोगों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय था, कमीशन टू स्टडी दी ऑरगाइजेशन ऑफ पीस (Commission to study the organization of peace) सन् 1939 के नवम्बर में जेम्स शॅटवेल की अध्यक्षता में इस आयोग का निर्माण हुआ था। बहुत सी अमरीकी राष्ट्रीय संस्थाओं का समर्थन इसे प्राप्त था।

सन् 1942 में ग्रीष्मकाल में एक "विश्वविद्यालय समिति" (The Universities Committee) की स्थापना की गयी। इस समिति का मुख्य उद्देश्य नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के सम्बन्ध में अमरीकी विश्वविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के विभिन्न विभागों में कार्यरत लोगों के विचार जानना और आम जनता एवं उसकी सरकार को उनके विचारों से अवगत करना था। इस कार्य-सीमित को शिक्षण-संस्थाओं से काफी सहयोग प्राप्त हुआ अपने प्रतिवेदन में समिति ने यह घोषित किया कि बहुमत की राय एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, जिसका सदस्य संयुक्त राज्य अमेरिका को हो की स्थापना के पक्ष में हैं। परन्तु इस तरह का संगठन आक्रमण के विरुद्ध सफल कारवाई करने का समर्थ्य रखनेवाला हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु उसके मातहत में एक अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा बल कायम किया जाए।

इसी प्रकार सन् 1944 में न्यायाधीश मैनली ओ. हड्सन (Manely O Hudson) की अध्यक्षता में अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विशेषज्ञों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के संविधान का प्रारूप तैयार किया गया था। यद्यपि इस समिति द्वारा तैयार किये गये प्रारूप तथा कमीशन

टू स्टडी दी ऑर्गनाइजेशन ऑफ पीस'' के प्रारूप में काफी समय था तथापि हडसन समिति का प्रारूप काफी विस्तृत था। इसमें कहा गया था कि राज्यों के सम्पूर्ण समुदाय के ऐसे संगठन में एक साथ शामिल किया जाए और संगठन का चार्टर उसका आधारभूत कानून हो। संगठन के कल्याण्कारी कार्यो में भाग लेना या न लेना सदस्यों की इच्छा पर निर्भर हो, परन्तु शांति-स्थापित करने में सक्रिय योगदान देना प्रत्येक राज्य का दायित्व हो। प्रारूप में समयानुसार अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु कुछ अभिकरणों एवं पद्धतियों की चर्चा थी।

1.1.3.1. अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के पक्ष में घोषणाएँ (Offical Declaration on Favouring a Postwar International Organisation)

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ होते ही मित्र राष्ट्र की एक नयी विश्व व्यवस्था स्थापित करने की योजना बनाने लगे। समाचार-पत्र, जनता, विधान-मंडल एंव सरकारी विभाग भविष्य की विश्व-संस्था की रूपरेखा तैयार करने में संलग्न हो गये। जैसे-जैसे युद्ध की भीषणता बढ़ती गयी वैसे-वैसे इस कार्य में शीघ्रता आती गयी। भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के ध्येयों को स्पष्ट करने के लिए सरकारों द्वारा अनेक सम्मेलन बुलाये गये जिनमें निम्नलिखित प्रमुख है-

1.1.3.1.1. लंदन की घोषणा (12 जून 1941) 12 जून 1941 ई. को मित्र राष्ट्रों द्वारा एक घोषणा की गयी। चूँकि यह घोषणा लंदन में हुई थी, इसलिए इसे लंदन घोषणा के नाम से जाना जाता है। इस घोषणा मे भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के ध्येयों की ओर संकेत किया गया था। लंदन के सेन्ट जेम्स पैलेस में ब्रिटेन कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजलीलैड, दक्षिण अफ्रीका निर्वासित बेल्जियम, चेकास्लोवाकिया, ग्रीस, लक्षमब्रर्ग, नीदरलैंड, नार्वे, पालैंड, युगोस्लाविया तथा जेनरल दगाल के फ्रांस ने मिलकर इस घोषणा पर हस्ताक्षर किये। यह घोषणा नाजी आक्रमण से त्रस्त होकर की गयी थी। इस घोषणा में निम्नलिखित दो बातों का उल्लेख था-

(क) स्थायी शांति का सही आधार है विश्व के स्वतंत्र जनसमूहों में ऐच्छिक सहयोग एक ऐसे विश्व में जो संघर्षो से रहित हो तथा जहाँ सभी आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा का उपयोग कर सकें।

(ख) यह भी कहा गया कि घोषणा करने वाले राज्य आपस में तथा अन्य स्वतंत्र लोगों के साथ युद्ध या शांति दोनों मिल कर कार्य करें। इस प्रकार चिरस्थायी शांति स्थापित करने का एकमात्र आधार स्वतंत्र राष्ट्रों के साहयोग को माना गया इससे आक्रमण का भय दूर हो जायेगा और सभी राष्ट्र आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा का लाभ उठा सकेंगे।

1.1.3.1.2. एटलांटिक चार्टर (Atlantic Charter) एक नयी विश्व संस्था की स्थापना की दिशा में प्रथम पग 14 अगस्त 1941 को एटलांटिक घोषणा द्वारा उठाया गया। 9 अगस्त 1941 को राष्ट्रपति रूजवेटल ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल को सुझाव दिया कि वे मिलकर एक घोषणा करें जिसमें कुछ व्यापक सिंद्धातों का उल्लेख हो जो उनकी नीतियों को निर्देशित करें। 12 अगस्त 1941 को रूजवेल्ट और चर्चिल एटलांटिक महासागर में एक युद्धपोत पर मिले। आपस में विचार-विमर्श के बाद उन्होंने एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। 14 अगस्त 1941 को उसकी घोषणा की गयी। यही घोषणा-पत्र एटलांटिक चार्टर के नाम से विख्यात हुआ। एटलांटिक चार्टर में एक प्रस्तावना और आठ खंड थे। इसकी

तुलना राष्ट्रपति विल्सन के 14 सूत्रो से की गयी। इस घोषणा की प्रस्तावना में राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा प्रधान मंत्री चर्चिल ने यह घोषित किया कि वे अपने देशों की राष्ट्रीय नीति के कुछ सामान्य सिंद्धातों को बताना अपना कर्तव्य समझते हैं जिन पर विश्व के अच्छे भविष्य की आशा निर्भर है। प्रस्तावना के बाद चार्टर में निम्नलिखित आठ सिंद्धातों की घोषण की गयी थी-

(क) ब्रिटेन और अमेरिका अपना प्रादेशिक या अन्य प्रकार का विस्तार नही चाहतें।

(ख) वे संसार में ऐसे क्षेत्रीय परिवर्तन देखना नही चाहते जो वहाँ की जनता की इच्छा के विरुद्ध हो।

(ग) वे प्रत्येक राष्ट्र को अपनी शासन-प्रणाली चुनने के अधिकार के पक्ष में है। वे यह देखना चाहते है कि जिन राज्यों की स्वतंत्रता छीन ली गयी है, उन्हें पुन वापिस मिल जाए।

(घ) वे यह प्रयत्न करेंगे कि सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों को आर्थिक समृद्धि के लिए आवश्यक व्यापार और कच्चे माल की सुविधाएँ समान रूप से प्राप्त हों।

(च) वे संसार के सब देशों में आर्थिक सहयोग बढ़ाना चाहते है जिसके द्वारा श्रमिक स्तर, आर्थिक विकास और सामाजिक सुरक्षा बनी रहे।

(छ) नाजी आक्रमण तथा अत्याचार के समाप्त होने के उपरांत वे ऐसी शांति-व्यवस्था देखना चाहते है, जिसमें सब राष्ट्रों की जनता अपने क्षेत्रों में भली प्रकार रह सकें। उन्हें किसी प्रकार का भय न रहे तथा उनकी दैनिक आवश्यकताएँ भली प्रकार से पूरी हो सकें।

(ज) वे ऐसी शांति-व्यवस्था स्थापित करना चाहते है जो सभी अन्तर राज्यों को महासागरों और समुद्रो पर निर्बाध विचरण की स्वतंत्रता प्रदान करें।

(झ) वे चाहते है कि संसार के सब राष्ट्रों को शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। एक स्थायी सामान्य सुरक्षा की स्थापना के लिए निरस्त्रीकरण आवश्यक है।

एटलांटिक चार्टर पर हस्ताक्षर करने के कारण कुछ अमरीकी तटस्थवादियों ने राष्ट्रपति रुजवेल्ट की आलोचना की। दी शिकांगो ट्रीब्यून नामक पत्र ने इसके लिए राष्ट्रपति को आडे हाथो लिया। पत्र में घोषणा के आठ सूत्रों को अर्थहीन तथा बेकार बतलाया गया। परन्तु ऐसे कुछ लोगों को छोड़कर आम जनता इसके पक्ष में थी। इस पर टिप्पणी करते हुए न्यूयार्क टाइम्स नामक पत्र न लिखा था कि बहुत दूर तक उन लोगों (अमरीकी जनता) ने इस चार्टर को संत्रस्त राष्ट्रों को नया जीवन और उत्साह देने वाला समझा। यही कारण था कि वे गंग्लो अमरीकी सवहयोग पर आधारित नवीन सामूहिम सुरक्षा-प्रणाली को अपना समर्थन देने के लिए तैयार हो गये।''[4]

जो भी हो, एटलांटिक चार्टर द्वितीय महायुद्ध काल की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणा थी हाटमैन के शब्दों में एटलांटिक चार्टर में ब्रिटिश युद्ध उद्देश्यों की प्रथम आधिकारिक व्याख्या निहित थी। इसने वह सैद्धांतिक आधार प्रदान किया जिसके

[4] " For the most part they saw in the charter a means of giving New heart to the oppressed nations and were quite prepared to support a new system of collective security based on Anglo American Cooperation.

आधार संयुक्त राज्य और ब्रिटेन ने द्वितीय महायुद्ध में भाग लिया।[5] इसमें स्पष्ट रूप से किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का उल्लेख नही था। चार्टर के केवल आठवें तथा अन्तिम सूत्र में सामान्य सुरक्षा के लिए स्थायी पद्धति' की चर्चा थी। इस तरह की सामान्य घोषणा अपने आप में अस्पष्ट थी। फिर भी यह बात स्पष्ट थी कि उक्त दोनों देशों के नेतागण इस तरह के संगठन की स्थापना के लिए चिन्तित थे। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि एटलांटिक घोषणा-पत्र का प्रारूप तैयार होने के कई महीने पहले से ही ब्रिटिश तथा अमरीकी सरकार के विदेश विभाग में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के लिये अनौपचारिक तौर पर योजनाएँ बनने लगी थी। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए वेन्डेनबोश तथा हिोगन ने एटलांटिक चार्टर को संयुक्त राष्ट्रसंघ के सृजन के प्रथम पग[6] कहा है।

1.1.3.1.3. संयुक्त राष्ट्र घोषणा 1 जनवरी 1942 (The Declaration of the United Nations 1 January, 1942)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के स्थापित करने की दिशा में दूसरा महत्वपूर्ण पग संयुक्त राष्ट्र की घोषणा के रूप में उठाया गया।यह घोषणा 1 जनवरी 1942 ई. को की गयी थी। यह युद्धकाल की दूसरी महत्वपूर्ण घोषणा थी। वेन्डेनबोश तथा होगन ने ठीक ही लिखा है कि यदि एटलांटिक घोषणा संयुक्त राष्ट्रसंघ घोषणा दूसरा पग।[7] इस घोषणा पर 26 राष्ट्रो ने हस्ताक्षर किये थे। इस घोषणा में अटलांटिक चार्टर के सिंद्धातों को स्वीकार कर लिया गया था। इसमें यह प्रतिज्ञा की गयी थी कि घोषणा पर हस्ताक्षर करने वाली सरकारे कभी घुरी राष्ट्रों के साथ संघि नही करेगी और उनके विरुद्ध अपनी सारी शक्ति लगा देगी। इस प्रकार धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध लड़ने वाले राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र की संज्ञा दी गयी। गेटेल ने ठीक ही लिखा हे कि जब मित्र राष्ट्रों को यह विश्वास हो गया कि धुरी राष्ट्रों पर विजय पाना स्वतंत्रता के लिए अनिवार्य है तो उन्होंने 1 जनवरी 1942 ई. को संयुक्त राष्ट्रो का एक संघ कायम किया।[8] स्मरणीय है कि संयुक्त राष्ट्र शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने किया था। 3 जनवरी 1942 ई. को लार्ड प्रीवी सील को लिखे गये अपने एक पत्र में प्रधानमंत्री चर्चिल ने कहा था, इस समय युद्ध मे एक साथ मिलकर काम करने वाली सभी शक्तियों को राष्ट्रपति ने संयुक्त राष्ट्र की संज्ञा दी है। यह नाम मैत्री संघ (Alliance) अथवा सन्नद्ध राष्ट्र (Associated Powers)से कहीं अधिक उत्तम है।[9] बाद में अन्य राष्ट्र भी युद्ध में शामिल हुए। ऐसे राष्ट्रों ने भी संयुक्त राष्ट्र की घोषणा, पत्र पर हस्ताक्षर कियें।

1.1.3.1.4. मास्को घोषणा (Moscow Declaration)

---

[5] The Atlantic Charter Contained the first authoritative statement of British war aims it provided the ideological bases upon which the United States and Great Britain fought world war. **Hartman: Basic Documents of International Relations, P. 129**

[6] The first step is the creations of the United Nations organization Vandenbosch& Hogan PP. 48&49

[7] If the Atlantic Charter was the first step in the creation of the United Nations Organisation the U.N.O declaration of January 1 1942 was the second **Vandenbosch & Hogan PP. 48-49**

[8] The Allies being convinced that the complete victory over the axis was essential to their own freedom and independence came together on January 1, 1942 to form an association of the United Nations. Gettel: The Second World War: Grand Allance, P. 531

[9] President has chosen the title United Nations for all powers now working together. This is much better than an alliance which places him in constitutional difficulty or associated power which is flaet.

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की दिशा में तीसरा पग 30 अक्तूबर 1943 को मास्को घोषणा में उठाया गया। मास्को सम्मेलन युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों का सर्वप्रथम सम्मेलन था। इस सम्मेलन में अमरीकी विदेश सचिव कार्डेल हल, ब्रिटिश विदेश मंत्री ईडेन, रूस के विदेश मंत्री मोलोतब तथा चीन की ओर से फू पिंगशूंग ने भाग लिया। इस सम्मेलन का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र के बीच किसी प्रकार की दरार को रोकना था। मास्को-घोषणा में यह कहा गया कि चार महान शक्तियाँ (ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस तथा चीन) अपने देशों तथा दूसरे साथी राज्यों की स्वतंत्रता को आक्रमण के भय से सुरक्षित करने के उतरदायित्व को पहचान कर युद्ध को शीघ्रता से समाप्त करने और शस्त्रों पर कम-से-कम व्यय करके अंतर्राष्ट्रीय शांति-व्यवस्था कायम करने की आवश्यकताओं को पहचान कर घोषित करती है कि उन्होंने शत्रुओं के विरुद्ध जो संयुक्त कार्य किया है वे उसे तब तक करती रहेंगी जब तक कि शांति और सुरक्षा स्थापित न हो जाए। आगे चलकर इसमें यह भी कहा गया है कि वे शीघ्रतिशीघ्र एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की आवश्यकता महसूस करती है।[10] घोषणा में इस तरह के संगठन के आधारभूत सिद्धातों की भी चर्चा हुई। यह कहा गया कि इस तरह के संगठन में शांति-प्रेमी सब छोटे-बड़े राज्य सम्मिलित होंगे। यह संगठन राज्यों की संप्रभुता की समानता के सिद्धांत पर आधारित होगा। युद्ध के बाद शास्त्रों के नियंत्रण के लिए समझौता करने के उद्देश्य हेतु संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों से बात होगी। यह आशा की गयी कि भविष्य में शांति और सुरक्षा स्थापित करने में संयुक्त राष्ट्र सक्रिय भाग लेगें।

इस प्रकार हम देखते है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों का शिलान्यास मास्को-सम्मेलन में हुआ था। इसलिए मास्को-सम्मेलन को संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की दिशा में प्रथम सक्रिय एवं व्यावहारिक प्रयास कहा गया है। वेन्डेनबोश तथा होगन के शब्दों में एक नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के दृष्टिकोण से मास्को-घोषणा बहुत महत्वपूर्ण थी। क्योंकि इसके वक्तव्य एटलांटिक घोषणा की अपेक्षा अधिक स्पष्ट थे और इसके द्वारा रूस ने निश्चित रूप से यह प्रतिज्ञा की कि वह एक सुरक्षा-संगठन को स्थापित करने में सक्रिय सहयोग देगा।[11] इस प्रकार जैसा कि एस.बी. क्रीलोव ने लिखा है कि मास्को संयुक्त राष्ट्रसंघ की जन्मभूमि बन गयी क्योंकि वही पर सुरक्षा की स्थापना के निमित एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माण की घोषणा पर हस्ताक्षर किया गया था।[12]

1.1.3.1.5. तेहरान सम्मेलन (Tehran Conference): मास्को-सम्मेलन के बाद ईरान की राजधानी तेहरान में संयुक्त राष्ट्र के तीन बड़े नेताओ चर्चिल, रूजवेल्ट तथा स्टालिन का एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन 28 नवम्बर 1943 से 1 दिसम्बर 1943 ई. तक हुआ और तेहरान सम्मेलन के नाम से विख्यात हुआ। यह द्वितीय युद्धकाल का प्रथम शिखर

---

[10] That they recognize the necessity of establishing at the earliest practicable date a general international orgaisation based on the principle of sovereign equality of all peace loving states, and open to membership by all such states large and small for the maintanence of international peace and security.

[11] From the point of view of a new international organization this document was very important since its statements were more specific than those of the altlantic character and it also definitely committed Soviet Union to active cooperation in establishing a security organization.

[12] Moscow became the birthplace of the United Nations organization for it was in Moscow that the declaration on establishing an interanational organization for security was signed.

सम्मेलन था जिसमें तीनों राज्यों के अध्यक्ष सम्मिलित हुए। यह सम्मेलन इसलिए भी महत्वपूर्ण था, क्योंकि यह पहला अवसर था जब राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा मार्शल स्टालिन एक दूसरे के सम्पर्क में आये। दिसम्बर 1943 ई. को एक विज्ञप्ति प्रसारित कर निम्नलिखित निश्चय को व्यक्त किया गया हम अपने इस निश्चय को व्यक्त करते है कि हमारे राष्ट्र युद्ध अथवा भावीं शांति में एक-दूसरे के साथ सहयोग से कार्य करेंगे। हम अपने एवं संयुक्त राष्ट्रों के परम दायित्व को भली भाँति पहचानते है कि हमें एक ऐसी शांति की स्थापना करनी है जिसे विश्व के बहुसंख्यक लोगों की सद्भावना प्राप्त हो तथा जो अनेक पीढ़ियों तक युद्ध के कलंक और आतंक को मिटाने में समर्थ हो। अत्याचार, दासता दमन तथा असहिष्णुता का अंत करने के लिए हम छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों का जिनके निवासी हमारी तरह इन बुराईयों का मिटाना चाहते है, का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। हम ऐसे सभी राष्ट्रों का स्वागत करेंगे जो प्रजातांत्रिक राज्यों के विश्व संघ में सम्मिलित होना चाहेगे।[13] वे विश्वास करते है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब संसार के सब मनुष्य सुखमय और स्वतंत्र जीवन व्यतीत करेंगे तथा वे अपना सब कार्य अपने इच्छानुसार और अन्तःकरण के अनुसार करेंगे।

1.1.3.1.6. डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन (Dumbarton Oaks Conference) ऊपर हमने देखा कि सन 1943 के अन्त तक आते-आते सभी बड़ी शक्तियाँ एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना के प्रश्न पर सहमत हो गयी थी। युद्ध की समाप्ति के शीघ्र ही बाद उन्होंने इस तरह के संगठन के निर्माण का संकल्प घोषित कर दिया था। सबसे महत्वूपर्ण बात यह थी कि इस बार संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस इस तरह के संगठन में शामिल होने की घोषणा कर चुके थे। ऐसा करके उन्होंने उन लोगों के भय को निराधार बना दिया था जो यह समझते थे कि राष्ट्रसंघ की भाँति भावी संगठन को भी उक्त दोनों शक्तियों का सहयोग नही प्राप्त होगा। इस प्रकार हम देखते है कि एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्माण के लिए उपर्युक्त वातावरण तैयार हो।

परन्तु भावी संगठन का स्वरूप क्या होगा तथा उसमें कौन-कौन से अंग रहेंगे? इन सब बातों पर विचार नही हो पाया था। इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों द्वारा अलग-अलग योजनाएँ प्रस्तुत की जा रही थी। अमेरिका के राज्य-विभाग (State Department) द्वारा भावी संगठन का एक प्रारूप तैयार किया गया। इस प्रारूप के अन्तर्गत प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में सात अंग थे (क) कार्यकारिणी समिति, (ख) साधारण सम्मेलन (ग) सामान्य सुरक्षा (घ) अस्त्र आयोग (च) परिषद् (छ) सचिवालय एवं (ज) न्यायपालिका। प्रस्तावना में शांति, और मानव अधिकारों पर समान रूप से जोर डाला गया था। सभी अंगों की बनावट तथा कार्यो का विस्तृत वितरण किया गया था।

---

[13] We express our determination that our nations shall work together in war and peace that will follow. We regonise fully that supreme responsibility resting upon us and all the United Nations to make a peace which will command that good will of the over whelming mass of the people of the world and banish the scourage and terror of was for many generations. We shall seek the cooperation and active participation of all nations large and small whose people in heart and mind are dedicated as our ownpeoples to the eliminations of tyranny and slavery oppression and intolearance we will welcome them as they amy choose to come into a world family of Democratic Vatoons.

14 अगस्त 1943 को एक दूसरा प्रारूप तैयार किया गया। इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ का घोषणा-पत्र (The Charter of the U.N.O) कहा गया चार्टर तथा यूनाइटेड नेशन्स शब्द जिसे युद्धकालीन संगठन के लिए रूजवेल्ट ने व्यवहृत किया था, भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के लिए प्रयुक्त किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस प्रारूप की बहुत सी बातों को डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन में प्रस्तावित किया।

अमरीकी राज्य विभाग द्वारा एक तीसरी योजना भी प्रस्तुत की गयी थी। इस योजना का नाम अन्तर्राष्ट्रीय शांति सुरक्षा के निमित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की योजना (Plan for the Establishment of an International Organisation for the Maintenance of Peace and Security) था। अमरीकी कांग्रेस द्वारा इस योजना पर काफी विचार हुआ। विभिन्न सिनेटरों द्वारा भी इस दिशा में प्रस्ताव उपस्थित किये गये।

अमेरिका की भाँति अन्य देशों द्वारा भी अनेक योजनाएँ पेश की गयी। एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव दक्षिणी अफ्रीका के जेनरल स्मट्म द्वारा प्रस्तावित किया गया। जेनरल स्मट्स का विचार था कि शांति और सुव्यवस्था को बनाये रखने में चार बड़ी शक्तियों का विशिष्ट हाथ है। अत: प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में विशेष स्थान मिलना चाहिए। बेल्जियम के विदेश मंत्री पाल हेनरी स्पॉक (Paul Hanri Spaak) इस तरह के विचार के पक्ष में नही थे। उनका कहना था कि छोटे एवं मध्यम राज्यों के ऊपर उनकी इच्छा के विपरीत आरोपित शांति बिल्कुल व्यर्थ होगी।[14]इसके अतिरिक्त चीन के राजदूत डॉ. हुशी शांति को कायम रखने वाला संघ (League to enforce peace)स्थापित करने के पक्ष में थे।

इस प्रकार नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना के लिए वातावरण तैयार था। अब आवश्यकता इस बात की थी कि इसकी रूपरेखा तैयार करने के लिए कोई सम्मेलन बुलाया जाए। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वा इस दिशा में पहल की गयी। उसकी पहल पर वाशिगटन के डम्बार्टन ओक्स भवन में 21 अगस्त से लेकर 7 अक्तुबर 1944 ई. तक एक सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, चीन के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। यह सम्मेलन दो भागों में हुआ। पहले अमेरिका, रूस और ब्रिटेन के प्रतिनिधियों के प्रस्तावित संगठन की रूपरेखा पर विचार किया। दूसरी बार रूस के स्थान पर चीन का प्रतिनिधि सम्मिलित हुआ।

सम्मेलन में प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विधान पर विचार-विमर्श किया गया। कुछ विषयों के सम्बन्ध में कई प्रस्ताव पेश किए गये। सोवियत रूस आर्थिक और सामाजिक विषयों के लिए प्रस्तावित संगठन से एक पृथक अंग की स्थापना के पक्ष में था। सामान्य संगठन का कार्य वह अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा तक ही सीमित रखना चाहता था। संयुक्त राज्य अमेरिका ब्राजील को सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बनाना चाहता था। रूस और ब्रिटेन इसका विरोध कर रहे थे। सोवियत रूस भी अपने 16 गणराज्यों को स्वतंत्र रूप से प्रस्तावित संगठन की सदस्यता दिलाना चाहता था। ब्रिटेन और अमेरिका इसका विरोध कर रहे थे। इस प्रश्न पर आगे चलकर विचार करना निश्चित किया गया। इसके अतिरिक्त सेवियत रूस का विचार था कि प्रस्तावित संगठन के केवल

[14] A Peace imposed on the small and the medium sized states against their will or without their full share in the discussion of all its terms would be a most absurd and fragile peace.

वे ही राष्ट्र सदस्य बनाये जायें जिन्होंने धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्रों की ओर से युद्ध की घोषणा की थी। संयुक्त राज्य अमेरिका अन्य राज्यों को भी सदस्य बनाने के पक्ष में था। घरेलू मामलों (Domestic Matters) के प्रश्न पर भी सहमति नही हो रही थी। परन्तु सम्मेलन में सबसे अधिक मतभेद सुरक्षा परिषद की मतदान प्रणाली के प्रश्न पर रहा। संयुक्त राज्य अमेरिका का विचार था कि सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार (Veto) प्राप्त हो परन्तु जिन मामलों में वे स्वयं संलग्न हों, उन्हें इस तरह के अधिकार से वंचित रखा जाय। ब्रिटेन भी इस तरह के विचार से सहमत था। परन्तु सेवियत रूस इसका विरोध कर रहा था। अमेरिका तथा ब्रिटेन शांतिपूर्ण समझौते के मामले में सर्वसम्मत मत की आवश्यकता नहीं समझते थे, पर सेवियत रूस सर्वसम्मत निर्णय पर किसी प्रकार की शर्त नही लगाना चाहता था। पुनः सुरक्षा समस्या महासभा के अधिकार एवं निरस्त्रीकरण पर भी मतभेद बना रहा। ट्रस्टीशिप तथा ननसेल्फ गवर्निंग टेरीटोरी से सम्बद्ध निर्णय को निलम्बित रखा गया।

सम्मेलन के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को स्थापित करने के लिए जो सुझाव रखे गये वे 9 अक्तूबर 1944 को प्रकाशित किये गये। डम्बार्टन ओक्स सुझावों (Dumbarton Oaks Proposals) में 12 अध्याय निहित थे। पहले अध्याय में संगठन के ध्येय दूसरे में सिद्धात तथा तीसरे में सदस्यता का वर्णन था। चौथा अध्याय अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के मुख्य अंगों से सम्बन्धित था। इसमें प्रस्तावित संगठन के निम्नलिखित चार अंगों का उल्लेख था- महासभा, सुरक्षा, परिषद, सचिवालय तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय। पाँचवा और छठा अध्याय महासभा तथा सुरक्षा परिषद् के संगठन और कार्यो की विवेचना करते थे। महासभा में सभी राष्ट्र सदस्य होने वाले थे। सुरक्षा परिषद् में पाँच स्थायी तथा छः अस्थायी सदस्यों का विधान था। अस्थायी सदस्यों का निर्वाचन महासभा के द्वारा दो वर्षो के लिए होने वाला था। सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार दिया गया था कि वह सदस्य-राष्ट्रों के विवाद को शांतिपूर्ण ढंग से निपटा सके। यदि किसी विवाद का निपटारा शांतिपूर्ण ढंग से नही हो रहा हो तो उसे सशस्त्र कारवाई करने का अधिकार दिया गया था। यह किसी आक्रमण के सम्बन्ध में निर्णय ले सकती थी। सातवें अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का वर्णन था। आठवें अध्याय में झगड़े के शांतिपूर्ण निपटारे के तरीकों, आक्रमण का सामना करने की पद्धति तथा क्षेत्रीय संगठनों का उल्लेख था। नौवें अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग की विवेचना थी। इसमें आर्थिक ओर सामाजिक परिषद् के संगठन एवं शक्तियों का भी उल्लेख किया गया था। दसवाँ अध्याय अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय से सम्बन्धित था। ग्यारहवें अध्याय में संगठन के संविधान के संशोधन की विधि बतलायी गयी थी। बारहवाँ अध्याय संक्रमणकालीन व्यवस्था से सम्बन्धि था।

डम्बार्टन ओक्स-प्रस्ताव में महासभा और सुरक्षा परिषद् के अधिकार-क्षेत्रों का विभाजन कर दिया गया था। राष्ट्रसंघ की संविदा के अन्तर्गत सभा तथा परिषद् को समवर्ती अधिकार दिया गया था। इसके चलते कई मामलों में संभ्रम (Confusion) उत्पन्न हो जाता था। डम्बार्टन प्रस्ताव में इस त्रृटि को दूर करने के लिए महासभा और सुरक्षा परिषद के कार्यो का विभाजन कर दिया गया। मार्टिन और बेंटविच के अनुसार ''यह राष्ट्रसंघ की व्यवस्था से भिन्न एक क्रांतिकारी परिवर्तन का सूचक था। चर्चिल के शब्दों में प्रस्तावित संगठन राष्ट्रसंघ से बिल्कुल भिन्न था। इसके अन्तर्गत महासभा का

काम केवल विचार-विमर्श करने तथा सिफारिश करने तक सीमित था तथा निर्णय लेने और कारवाई करने का अधिकार सुरक्षा परिषद् को था।[15] इसके अलावा राष्ट्रसंघ की व्यवस्था मे अन्य परिवर्तन आने का भी सुझाव था। राष्ट्रसंघ ओक्स प्रस्ताव के अनुसार महासभा में निर्णय लेने के लिए एकमत सिंद्धात की आवश्यकता नहीं थी।

सुरक्षा परिषद की मतदान-प्रणाली के विषय में सम्मेलन में कोई निर्णय नही लिया जा सका। सेवियत रूस द्वारा निषेधाधिकार की माँग इसका मूल कारण था। चर्चिल ने लिखा है कि सोवियत रूस किसी ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में शामिल होना नही चाहता था जहाँ छोटे-छोटे राज्य अपने बहुमत के बल पर बड़े राष्ट्रों की अवहेलना कर दें।''[16] सोवियत प्रतिनिधि ने निषेधाधिकार की माँग को न्यायोचित बतलाते हुए सम्मेलन की प्रतिनिधियों को याद दिलाया था कि मास्को में हमारे दोस्त सन् 1939 में रूस फिनलैंड युद्ध के अवसर पर रूस के विरूद्ध जो कुछ किया गया था उसे नही भूल सकते। उस समय फ्रांस और ब्रिटेन द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र संघ का प्रयोग रूस के विरुद्ध किया गया था और उसे सदस्यता से वंचित कर दिया गया था। सोवियत रूस भविष्य में इस तरह की घटना के विरुद्ध गांरटी चाहता है।'' सेवियत रूस के विरोध के कारण इस प्रश्न पर निर्णय नही लिया जा सकता। शासनादिष्ट पद्धति तथा प्रारंभिक सदस्यता के प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं हो सका।

1.1.3.1.7. सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन (San Francisco Conference): याल्टा सम्मेलन के निर्णय के अनुसार 25 अप्रैल 1945 को अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को शहर में संयुक्त राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र को तैयार करना तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ को पूर्णतया स्थापित करना था। इस सम्मेलन में 46 राज्यों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। बाद में चार अन्य राज्यों के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। सम्मेलन में भाग लेने आये हुए प्रतिनिधयों की संख्या 282 थी। विभिन्न प्रतिनिधिमंडलो के साथ अनेक सलाहाकार भी आये थे। सलाहकारों की कुछ संख्या 1500 से भी अधिक थी। विश्व प्रेस तथा रेडियों सेवाओं की ओर से 2636 प्रतिनिधियों को भेजा गया था। इस प्रकार यह इतिहास का सबसे बड़ा सम्मेलन था। ऐसा महान् सम्मेलन न तो अभी तक हुआ था और न भविष्य में होन की संभावना थी। ई.पी. चेज ने इस सम्मेलन को सबसे महान् अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन कहा है।[17] राष्ट्रपति टूमेन के अनुसार यह विश्व-इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण सम्मेलन था।

इस सम्मेलन की तुलना सन् 1919 में होने वाले पेरिस शांति सम्मेलन से की जाती है। जिस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध के बाद शांति-संधियों तथा राष्ट्रसंघ के विधान का निर्माण करने के लिए सन् 1919 में शांति सम्मेलन का आयोजन किया गया था उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र का निर्माण करने क लिए सन् 1945 में सेन

---

[15] This was very different from the league of Nations under the new scheme the Assembly could discuss and recommend the council alone could act.

[16] The Kremlin had no intention of joining an international body in which they would be outvoted by a host of small powes who though they could not influence the course of war would certainly claim equal status in the victory.

[17] It was greatest in international conference ever held and it was hoped that no conference so large need ever be held again.

फ्रांसिस्को सम्मेलन का आयोजन किया गया। परन्तु दोनों सम्मेलनों के उद्देश्य तथा कार्य-प्रक्रिया एक-दूसरे से भिन्न थे। निकोलास, वेन्डेनबोश तथा होगन आदि लेखकों ने स्वीकार किया है कि उक्त दोनों सम्मेलनों में काफी अन्तर था। निम्नलिखित विवरण से दोनों सम्मेलनों में पायी जाने वाली भिन्नताएँ स्पष्ट हो जायेगी।

1.1.3.1.8. प्रथम: पेरिस शांति-सम्मेलन

पेरिस शांति-सम्मेलन का आयोजन युद्ध की समाप्ति के बाद किया गया था। परन्तु सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन का आयोजन उस समय हुआ था जब द्वितीय महायुद्ध अपने अन्तिम चरण से गुजर रहा था। यूरोप तथा प्रशांत महासागर के क्षेत्र में अभी युद्ध चल ही रहा था। अत: सम्मेलन में प्रतिनिधिगण शांत वातावरण में शांति के प्रश्न पर विचार करने में समर्थ नहीं थे। गुड्सपीड ने ठीक ही लिखा है कि सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन का वातावरण तनावपूर्ण था। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से इस तनाव का कारण यह था कि यूरोप तथा विशेषकर प्रशांत महासागर के क्षेत्रों में अभी युद्ध चल ही रहा था।

द्वितीय

पेरिस शांति सम्मेलन में राष्ट्रपति विल्सन ने राष्ट्रसंघ के विधान को शांति संधियों की संभावित त्रुटियों को राष्ट्रसंघ दूर किया करेगा। परिणामस्वरूप राष्ट्रसंघ दूर किया करेगा। परिणामस्वरूप राष्ट्रसंघ के विधान को शांति समझौतों का एक अंग बना दिया गया। परन्तु राष्ट्रसंघ के लिए यह बात काफी दुर्भाग्यपूर्ण साबित हुई युद्धोतर विश्व के अतृप्त राज्य उक्त संधियों को घृणा की नजर से देखते थे। शांति संधियों का अंग होने के कारण राष्ट्रसंघ को भी उनकी घृणा का शिकार होना पड़ा इससे राष्ट्रसंघ की प्रतिष्ठा को गहरी ठेस लगी। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में एकत्र प्रतिनिधिगण पेरिस शांति-सम्मेलन की उक्त गलती को दुहराना नही चाहते थे। इसीलिए उन्होंने सम्मेलन का कार्य सिर्फ संयुक्त राष्ट्रसंघ के विधान निर्माण तक ही सीमित रखा। युद्धोतर शांति संधियों के निर्माण से इसका कोई सम्बन्ध नही था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट का विचार था कि शांति संधियों का अंग बना देने से संयुक्त राष्ट्रसंघ की भी वही स्थिति होगी जो राष्ट्रसंघ की हुई थी।

सम्मेलन के सम्मुख समस्याएँ

डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन के प्रस्तावों को इस सम्मेलन की कार्य सूची मान लिया गया। अनेक राज्यों द्वारा कार्य-सूची के विषय में संशोधन उपस्थित किये गये। संशोधनों को सूचीबद्ध करके एक निर्देशिका (Guide to Amendments, Comments and Proposals) निकाली गयी। सम्मेलन में चार आयोगों की स्थापना की गयी जिससे चार्टर का निर्माण सुविधापूर्वक हो सके। प्रत्येक राज्य को इन आयोगों में अपना प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। सम्मेलन का कार्य अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, चीनी तथा स्पेनिश भाषा में होता था। परन्तु कार्यकारी भाषाएँ अंग्रेजी तथा फ्रैंच थी। सम्मेलन में निम्नलिखित समस्याओं पर विचार हुआ और उनका समाधान निकाला गया।

(i) **निषेधाधिकार का प्रश्न:** इस सम्मेलन के समक्ष सबसे महत्वपूर्ण समस्या निषेधाधिकार की समस्या थी। राष्ट्रपति टूमेन ने इसे सम्मेलन का सबसे महत्वपूर्ण तथा विवादास्पद विषय बतलाया था। ''याल्टा फार्मूला'' के अनुसार सिर्फ प्रक्रिया सम्बन्धी मामलों को छोड़कर सभी बातों में पाँच बड़े राज्यों को निषेधाधिकार

प्रदान किया गया था। इस शक्ति के बल पर बड़े राष्ट्र सुरक्षा परिषद को अपनी इच्छा से विपरीत किसी निर्णय को लेने से रोक सकते थे। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में एकत्रित छोटे राज्यों ने निषेधाधिकार का बहुत विरोध किया। वे यह नही चाहते थे कि झगड़ों को शांतिपूर्वक सुलझाते समय और चार्टर में संशोधन करते समय निषेधाधिकार का प्रयोग किया जाए। लैटिन अमरीकी देशों, न्यूजीलैड तथा आस्ट्रेलिया ने सुझाव रखा कि निषेधाधिकार की व्यवस्था में संशोधन होना चाहिए। परन्तु रूस याल्टा मतदान फार्मूला में तनिक भी परिवर्तन नही चाहता था। वह चार्टर के कठोर निर्वाचन में विश्वास करता था। उसने घोषित किया कि वह सिर्फ निषेधाधिकार युक्त चार्टर को ही स्वीकार करेगा। निषेधाधिकार व्यवस्था से रहित चार्टर को वह किसी भी हालत में स्वीकार नही करेगा। छोटे राज्यों के समक्ष केवल दो ही विकल्प थे या तो निषेधाधिकार को छोटी शक्तियों पर लाद दिया। वेन्डेनबोश तथा होगन के शब्दों में छोटे राज्यों द्वारा डम्बार्टन ओक्स प्रस्ताव में अनेक प्रगतिशील सुधार लाये गये परन्तु वे प्रस्तावित संगठन में बड़ी शक्तियों को उनके विशिष्ट स्थान से नहीं हटा सके।''[18] फिर भी निषेधाधिकार के सम्बन्ध में उन्हें स्पष्टीकरण देना पड़ा।

(ii) **सुरक्षा परिषद् के अधिकारों में वृद्धि:** सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में सुरक्षा परिषद् के कार्यो में वृद्धि की गयी। विश्व शांति और सुव्यवस्था बनाये रखने की पूरी जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद के पाँच बड़े और स्थायी सदस्यों पर रखी गयी। सदस्यों ने यह संकल्प किया कि वे सुरक्षा परिषद् के आधार पर कार्य करेंगे और उसके फैसलों को मानेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय शांति को भंग करने वाले विवादों को तय करने का भार सुरक्षा परिषद् को प्रदान किया गया। अपने समक्ष लाये गये विवादों को स्वेच्छापूर्वक निपटाने का अधिकार भी उसे प्राप्त हुआ। आक्रमणकारी कार्यो को रोकने के लिए कौंसिल को पर्याप्त शक्ति मिली। इस प्रकार सुरक्षा परिषद् को नये संगठन का कार्यकारी अंग बना दिया गया।

(iii) **साधारण सभा की शक्ति:** सम्मेलन मे साधारण सभा की शक्तियों के विषय में भी काफी वाद-विवाद हुआ। छोटे-छोटे राज्यों ने साधारण सभा की शक्तियों में वृद्धि करने की माँग की। आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि डॉ. ईवाट ने इसके पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत किये। दूसरी तरफ रूस साधारण सभा की शक्तियों में वृद्धि नहीं चाहता था। वह नहीं चाहता था कि साधारण सभा को विश्व के सुरक्षा सम्बन्धी विषयों पर विचार करने का अधिकार मिलें। यह अधिकार वह केवल सुरक्षा परिषद् को ही दिलाना चाहता था। अमरीकी विदेश मंत्री स्टेटिनियस ने रूस के विदश मंत्री मोलोतोव से बातचीत की। राष्ट्रपति ट्रूमेन ने भी इस प्रश्न के सम्बन्ध में स्वयं स्टालिन से बातचीत करने की इच्छा व्यक्त की। अन्तत: मोलोतोव अमेरिका के विचारों से समहमत हो गये और साधारण सभा को सुरक्षा सम्बन्धी विषयों पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो गया। इस प्रकार संयुक्त

---

[18] They were able to effect many changes, most of them improvements in the Dumbarton Oaks Proposals but they were unable to dislodge the Great powers from the predominant position, the latter had created for themselves in that document. **Vandenbosch and Hogan.**

राष्ट्रसंघ के चार्टर के मार्ग में जो रोडा था उसे हटा दिया गया। इस संदर्भ में यह स्मरणीय है कि सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में साधारण सभा एक केन्द्रीय संस्था के रूप में उदित हुई जो सामान्य निरीक्षण का कार्य सम्पादित कर सकती थी।''[19]

(iv) **क्षेत्रीय व्यवस्था का प्रश्न:** क्षेत्रीय या प्रादेशिक संगठन की व्यवस्था सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन के समक्ष एक संगीन प्रश्न के रूप में उपस्थित हुई। डम्बार्टन ओक्स प्रस्ताव में यह कहा गया था कि चार्टर में ऐसा कोई भी उपबन्ध नहीं होगा जो क्षेत्रीय संगठनों अथवा प्रादेशिक अभिकरणों के अस्तित्व को प्रतिबंधित करेगा। अत: सुरक्षा परिषद् को स्थानीय विवादों को सुलझाने के लिए क्षेत्रीय संगठनों और अभिकरणों को प्रोत्साहित करना चाहिए। डम्बार्टन ओक्स में उक्त विषय से सम्बद्ध कई संशोधन भी आये थे। दक्षिणी अमरीकी राज्य क्षेत्रीय संगठनों अथवा प्रादेशिक अभिकरणों के अस्तित्व को प्रतिबंधित करेगा। अत: सुरक्षा परिषद् को स्थानीय विवादों को सुलझाने के लिए क्षेत्रीय संगठनों और अभिकरणों को प्रोत्साहित करना चाहिए। डम्बार्टन ओक्स में उक्त विषय से सम्बद्ध कई संशोधन भी आये थे। दक्षिणी अमरीकी राज्य क्षेत्रीय संगठनों की स्वतंत्रता के पक्ष में थे और इसके लिए प्रयत्न भी कर रहे थे। मिस्र भी लैटिन अमेरिका का साथ दे रहा था। आस्ट्रेलिया क्षेत्रीय संगठनों के अधिकारों की स्पष्टता चाहता था। अमेरिका इसे सोवियत निषेधाधिकार से मुक्त रखना चाहता था। इन सब विचारों को ध्यान में रखते हुए सेन फ्रांसिस्को में क्षेत्रीय व्यवस्था के क्षेत्र को व्यापक बनाया गया और चार्टर की धारा 51 का निर्माण किया गया। इस धारा के अन्तर्गत सदस्य राज्यों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से आत्मरक्षा का अधिकार मिल गया। संघ द्वारा प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय संगठन बनाने की अनुमति दी गयी। यह कहा गया कि चार्टर इन व्यवस्थाओं द्वारा शांतिपूर्ण समझौते की भावना का प्रोत्साहित करेगा।

(v) **आत्म रक्षा का अधिकार:** सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में सशस्त्र आक्रमण की दशा में व्यक्तिगत राज्य अथवा राज्यों के समूह को आत्म रक्षा की कारवाई के अधिकार को मान्यता प्रदान की गयी। यह कहा गया कि यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ के किसी सदस्य अथवा सदस्य राज्यों के विरुद्ध कोई आक्रमण होता है तो वे उसके विरुद्ध आत्म रक्षा के लिए तब तक स्वतंत्र होंगे जब तक सुरक्षा परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाये रखने के लिए आवश्यक कदम न उठा लिया हो। डम्बार्टन ओक्स प्रस्ताव में सदस्यों की आत्म-रक्षा के अधिकार की कोइ चर्चा नही की गयी थी।

(vi) **आर्थिक और सामाजिक परिषद्:** डम्बार्टन ओक्स प्रस्ताव में आर्थिक और सामाजिक कार्यो की चर्चा की गयी थी, परन्तु आर्थिक और सामाजिक परिषद् की व्यवस्थाओं की विस्तृत चर्चा नही थी। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में उससे सम्बन्धित व्यवस्थाओं को काफी विस्तृत बनाया गया। आर्थिक सामाजिक परिषद् को संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख अंग बनाया गया और उसको काफी व्यापक अधिकार प्रदान

---

[19] " The Competence of the General Assembly was much more limited at Dumbarton Oaks than finally at San Francisco. It emerged from San Francisco, as any general assembly of the members of a league or association is bound to be the central body which is expected to exercise general control.

किये गये। अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विषयों पर समझौता करने का उसे अधिकार मिला। ऐसे मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन करने का भी उसे अधिकार दिया गया।

(vii) **न्यास प्रणाली तथा गैर स्वशासित प्रदेशः** सम्मेलन में न्यास प्रणाली तथा उपनिवेशों के भविष्य पर भी काफी वाद-विवाद हुआ। सोवियत रूस, न्यूजीलैड, आस्ट्रेलिया, मध्यपूर्व एवं दक्षिण अफ्रीका के देश साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के उन्मूलन के पक्ष में थे। दूसरी ओर फ्रांस, हालैड, दक्षिण अफ्रीका, तथा संयुक्त राज्य अमेरिका राष्ट्रसंघ की मैडेट प्रणाली (Mandatd System) में किसी प्रकार के परिवर्तन के पक्ष में नही थे। डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन में इस प्रश्न पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सका था। याल्टा सम्मेलन में अमेरिका, सोवियत रूस तथा इंग्लैड में सहमति हुई कि इस प्रश्न पर सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन से पूर्व ही विचार कर लिया जाय, परन्तु ऐसा नहीं हो सका। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में पहली बार इस पर निर्णय लिया जा सका इस निर्णय के अनुसार राष्ट्रसंघ की मैंडट व्यवस्था की जगह संयुक्त राष्ट्रसंघ में न्यास प्रणाली (Trusteeship System) की स्थापना की गयी। गैर स्वशासित प्रदेशों के लिए एक पृथक अध्याय की व्यवस्था की गयी यह तय हुआ कि शासन करने वाली सरकारों का यह कर्तव्य होगा कि वे उपनिवेशों की जनता के हित में कार्य करें। यह भी घोषित किया गया कि अंत में उपनिवेशों की पूर्ण स्वतंत्रता या स्वायत शासन दे दिया जाय।''[20] डम्बार्टन ओक्स प्रस्ताव में इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं थी।

(viii) **अन्तर्राष्ट्रीय न्याय का न्यायालयः** याल्टा सम्मेलन में ब्रिटेन, अमेरिका तथा रूस ने सह निश्चय किया कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के प्रारूप परिनियम को तैयार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के विधिवेताओ की एक समिति की बैठक बुलायी जाए। इस समिति की बैठक अप्रैल 1945 में वाशिंगटन में हुई और इसने अपने निर्णयों को सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन के विचारार्थ रखा। सम्मेलन में छोटे राज्य चाहते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को अनिवार्य क्षेत्राधिकार प्रदान किया जाए। अमेरिका भी इस सुझाव से सहमत था फिर छोटे राज्यों का विचार था कि चार्टर में संशोधन सरलतापूर्वक हो जाय और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को चार्टर के निर्वाचन का अधिकार मिले। परन्तु से अपने प्रयास में सफल नहीं हुए।

सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में कुछ अन्य संशोधन भी स्वीकार किये गये। संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र के लिए एक प्रस्तावना (Preamble)का निर्माण किया गया जिसमें संघ के उद्देश्यों की चर्चा थी। अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय की स्थिति को दृढ बनाने के लिए तथा उसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति को बरकरार रखने के लिए यह व्यवस्था की गयी कि इसके सदस्य अपनी-अपनी सरकारों के प्रभाव से मुक्त होकर कार्य कर सके। अन्तर्राष्ट्रीय संधियों के पंजीकरण के लिए भी व्यवस्था की गयी।

(ix) **चार्टर पर हस्ताक्षरः** सेन फ्रांसिस्को का अधिवेशन लगभग दो महीने तक चलता रहा। 26 जून 1945 को सम्मेलन का कार्य समाप्त हुआ। इस अवधि में चार्टर के

[20] No Comparable Provision had been include in the proposals or for that matter, in the league covenant or any other international arrangement.

समक्ष अनेक कठिनाईयाँ आयी। ऐसे कई अवसर आर्य जब प्रतिनिधियों को अपनी सरकारें से निर्देश प्राप्त करने के लिए अपने देश लौटना पड़ा। परन्तु इन सब कठिनाईयों के बावजूद सेन फ्रांसिस्को, सम्मेलन चार्टर को बनाने में सफल हो गया। कुछ लोगों को संदेह था कि जाति, धर्म, भाषा संस्कृति में विभिन्नता होने के कारण सम्मेलन में एकत्रित 50 राष्ट्र आपस में किसी समझौते पर न पहुँचेगें। कुछ प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन को स्थागित करने का भी प्रस्ताव रखा। परन्तु सम्मेलन में एकत्र अधिकांश प्रतिनिधिगण इस अवसर को खोना नही चाहते थे। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुव्यवस्था को स्थायी आधार प्रदान करने हेतु एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का उनका दृढ़ विचार था। इसलिए उन्होंने आपसी मतभेद को दूर करके सहयोग और लेन-देन की भावना को चार्टर का निर्माण सम्भव हो गया।

26 जून 1945 को 50 राज्यों ने 10,000 शब्दों वाले एक मसविदे पर हस्ताक्षर करके संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना कर दी। उसी दिन राष्ट्रपति टूमेन ने सम्मेलन में आये हुए प्रतिनिधियों को विदाई दी। विदाई-भाषण में प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए राष्ट्रपति ने कहा था संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर जिसपर आपने हस्ताक्षर किये है, ऐसा दृढ़ खम्भ है जिसपर हम एक सुदृढ़ विश्व का निर्माण कर सकते है। इसके लिये इतिहास आपका सम्मान करेगा। यूरोप में विजय और जापान में अन्तिम विजय के बीच विश्व के सबसे अधिक विनाशकारी युद्ध के बीच आपने स्वंय युद्ध युद्ध परम आवश्यक नही है और विश्व में शांति स्थापित हो सकती है। इस चार्टर से विश्व में शांति, सुरक्षा और मानव मात्र की उन्नति हो सकती है।''[21]

चार्टर पर हस्ताक्षर होने के छः दिनों के बाद स्वीकृति लेने के लिए चार्टर को अमरीकी सिनेट के समक्ष रखा गया। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन के समय से ही अमरीकी जानता उत्साह से भरी हुई थी। अमरीकी जनमत संयुक्त राष्ट्र के पक्ष में था। फलतः यह स्पष्ट था कि ट्रूमेन में अमेरिका विल्सन के अमेरिका की भाँति अपने ही मानस शिशु को नही ठुकरायेगा।''[22] अमरीकी सिनेट में चार्टर पर काफी विचार-विमर्श किया गया। वेन्डनबर्ग तथा कोनाली ने अपने सुयक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का डटकर समर्थन किया। एक सप्ताह के वाद-विवाद के बाद 28 जुलाई, 1945 को सिनेट ने लगभग एकमत से घोषणा पत्र पर अपनी स्वीकृति दे दी। वह अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना थी। स्मरणीय है कि सिनेट के विरोध के कारण ही अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य नही बना था और राष्ट्रपति विल्सन का सारा प्रयास विफल हो गया था। अमरीकी स्वीकृति के बाद अन्य राष्ट्रों ने भी अपनी स्वीकति दे दी। 24 अक्तूबर 1945 तक सभी बड़े राष्ट्रों ने घोषणा पत्र को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार यह नयी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण हुआ जिसे संयुक्त राष्ट्रसंघ कहते है।

1.1.4. संयुक्त राष्ट्र का निमार्ण क्यों?

संयुक्त राष्ट्रसंघ की कहानी जान लेने के बाद स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि पुराने राष्ट्रसंघ की जगह एक नवीन संगठन का निर्माण क्यों किया गया? क्यों नहीं

[21] President Truman's speech (26 June, 1945) at San Francisco Conference.

[22] Truman's America will not like Wilson's abandon its won brain child. It would accept obligation proportionate to its powers and place in the World.

पुराने राष्ट्रसंघ को ही पुनर्गठित किया गया? माना कि पुराने राष्ट्रसंघ में अनेक त्रुटियाँ थी जिनके चलते राष्ट्रसंघ असफल हुआ परन्तु उन त्रुटियों को दूर कर पुराने राष्ट्रसंघ को संगठित किया जा सकता था। ऐसा करने से नये संगठन के निर्माण की कठिनाइयों से लोग बच जाते। इस तरह की अनेक जिज्ञासाएँ उठ सकती है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। परन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण अकारण नहीं हुआ। अनेक ऐसे कारण थे जिनके चलते पुराने राष्ट्रसंघ की जगह नये राष्ट्रसंघ का निर्माण करना ही श्रेयस्कर समझा गया। इन कारणों में निम्नलिखित प्रमुख थे-

1.1.4.1. राष्ट्र संघ की असफलता:

पहला, पुराने राष्ट्रसंघ पर असफलता का कलंक लग चुका था। वह द्वितीय महायुद्ध को रोकने में सफल नहीं हो सका था। अतः उसकी कार्य-क्षमता में लोगों का विश्वास नहीं रह गया था। यदि राष्ट्रसंघ को ही पुनर्गठित किया जाता तो सम्भव था कि बहुत से राज्य अपना सहयोग वापस ले लेते। फिर पुराने राष्ट्रसंघ को नये आवरण में रखने से लोगों की जनर में उसकी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती। वह लोगों के आकर्षण का केन्द्रबिन्दु नही बन सकता था। परिणामस्वरूप नये संगठन के निर्माण का निर्णय लिया गया। वेन्डेनबोश तथा होगन ने पुराने राष्ट्रसंघ की जगह नये संगठन के निर्माण के कारणों की चर्चा करते हुए लिखा है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसी संस्था को जिसके माथे पर कलंक का टीका लग चुका था, पुर्नगठित करने की बजाय एक नये संगठन की स्थापना श्रेयस्कर समझा गया।''[23] गुड्सपीड के मतानुसानर विश्व जनमत की नजर में राष्ट्रसंघ के प्रयोग की असफलता ने नये राष्ट्रसंघ के निर्माण की प्रेरणा दी।''[24]

1.1.4.1.1. राष्ट्रसंघ के विधान को संशोधित करना

नये संगठन के विधान को निर्मित करना पुराने राष्ट्रसंघ के विधान को संशोधित करने से अधिक सुलभ था। पुराने राष्ट्रसंघ को संशोधित करने का अर्थ था अनेक कठिन तथा विवादास्पद समस्याओं को आंमत्रित करना जिनका समाधान सम्भव नही था।

1.1.4.1.2. अन्तर्राष्ट्रीय नवीन संगठन की सदस्यता

राष्ट्रपति रूजवेल्ट को यह विश्वास था कि अमरीकी जनता नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता अवश्य स्वीकार कर लेगी। पुराने राष्ट्रसंघ की सदस्यता को स्वीकार के निर्णय का काफी विरोध होगा। उनका यह विश्वास जायज भी था। राष्ट्रसंघ के विरोध में एक बार अमेरिका में काफी प्रचार हुआ था।अमरीकी सिनेट ने उस पर अपनी सहमति देने से इनकार कर दिया था। अतः राष्ट्रसंघ को फिर से गठित किया जाता तो भय था कि अमरीकी जनमत उसकी सदस्यता का विरोध करेगा। अतः राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने पुराने राष्ट्रसंघ की जगह नये संगठन का निर्माण को ही उचित समझा निकोलस ने लिखा है, संयुक्त राज्य अमेरिका में सामान्य विचारधारा यह थी कि नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के लिए

[23] First of all, there was the important psychological reason that it would be better found a new ogranisation than to try to revive one to which was attached the stigma of failure.

[24] It soon became evident that it would be psychologically unwise to attempt to rebuild the league. The experiment at Generva was too genrally held to be a failure in the opinion of the world.

सार्वजनिक सहयोग प्राप्त करना पुराने संगठन में शामिल होने के प्रश्न से अधिक आसान है।''[25]

1.1.4.1.3. राष्ट्रसंघ का पुनर्गठन

पुराने राष्ट्रसंघ को पुनर्गठित करने का अर्थ था सोवियत रूस को संघ की सदस्यता से अलग रखना। राष्ट्रसंघ की स्थापनास के समय सोवियत रूस को उसका सदस्य नही बनाया गया था। अतः रूस में राष्ट्रसंघ की काफी आलोचना हुई थी। इसे विजयी राष्ट्रों का संघ कहा गया था। सन् 1934 में उसे राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया गया। परन्तु शीघ्र ही रूसी फिनलैड विवाद के समय उसे राष्ट्रसंघ से निष्कासित कर दिया गया। इससे उसके स्वाभिमान को गहरी ठेस लगी।''[26] निष्कासन का अपमान रूस भूल नही सका था। अतः पुराने राष्ट्रसंघ में फिर से शामिल होना उसके लिए सम्भव नही था।

1.1.4.1.4. राष्ट्रसंघ का असफल अनुभव

पुराने राष्ट्रसंघ का अनुभव इस बात का प्रमाण था कि कोई भी सुरक्षा संगठन तब तक प्रभावकारी रूप से काई नहीं कर सकता जब तक सभी महान् शक्तियों का सहयोग उसे नहीं प्राप्त हो। द्वितीय महायुद्ध के दौरान ही यह महसूस कर लिया गया था कि भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस दोनों का रहना अनिवार्य है। इन दोनो महान् शक्तियों के सहयोग के बिना शांति और सुरक्षा का कार्य सफल नही हो सकता। पुराने राष्ट्रसंघ में शमिल होना इन दोनों शक्तियों के लिए संभव नही था। इसलिए नये संगठन का निर्माण कराना ही श्रेयस्कर समझा गया।

थोड़े में पुराने राष्ट्रसंघ की जगह में एक नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का निर्माण काफी सोच-विचार करने के उपरांत लिया गया था। इस निर्णय के लिए अनेक कारण उतरदायी थे।

1.1.5. मूल्यांकन

24 अक्तूबर 1945 को सदस्य राज्यों की स्वीकृति प्राप्त हो जाने के उपरांत संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर लागू हो गया। परन्तु अभी राष्ट्रसंघ विधिवत समाप्त नहीं हुआ था। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के भवन तथा पुस्तकालय अभी भी जेनेवा और हेंग मे विद्यमान थे। उसके न्यायाधीश अभी भी अपने पद पर बने हुए थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, जिसकी स्थापना राष्ट्रसंघ के गातगत हुई थी, आज भी अपना कार्य कर रहा था। ऐसी स्थिति मे समस्या यह थी कि राष्ट्रसंघ को किस प्रकार समाप्त किया जाए तथा उसके भवनों, सम्पति, पुस्तकालयों का उतराधिकारी कौन हो? इस समस्या के समाधान हेतु दोनों संस्थाओं के अधिकारियों के बीच बातचीत हुई। अन्त में यह निर्णय हुआ कि राष्ट्रसंघ के भवनों, सम्पति आदि पर संयुक्त राष्ट्रसंघ का अधिकार होगा।

10 फरवरी 1946 को लंदन के वेस्ट मिनस्टर हॉल में संयुक्त राष्ट्रसंघ की आम सभा की प्रथम बैठक हुई। यह तिथि राष्ट्रसंघ के जन्म की 26 वीं वषगाँठ थी। सर्वनाम विभिन्न पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। आम सभा के विभिन्न समितियों का गठन हुआ।

---

[25] In the United States it was generally felt that it would he much better to try to enlist public support for a new organization than to risk reviving the state and better controversy over American entry into the League.

[26] Russian pride has been mortally offended by the League's condemnation and subsequent explusion of her at the time of the Russian Finnis War.

परन्तु अभी तक राष्ट्रसंघ की समाप्ति की विधिवत घोषणा नहीं हुई थी। इसके लिए 8 अप्रैल 1946 को राष्ट्रसंघ की सभा की अन्तिम बैठक बुलायी गयी। 19 अप्रैल 1946 को प्रतिनिधयों ने एक प्रस्ताव पारित कर यह घोषित कर दिया कि उक्त अधिवेशन के बाद राष्ट्रसंघ का अतिस्तत्व समाप्त हो गया। इस प्रकार उसे संस्था का अन्त हो गया जिसकी स्थापना प्रथम विश्वयुद्ध के बाद शांति और सुवरूवस्था स्थापित करने के लिए की गयी थी। उसकी जगह एक नयी संस्था का उदय हुआ जिसे संयुक्त राष्ट्रसंघ के नाम से जाना जाता है। शीवर तथा हैवीलैंड ने लिखा है कि राष्ट्रसंघ की स्थापना के 26 वर्षो के बाद सन् 1946 में राष्ट्रसंघ को समाहित कर लेने वाली लपटों से एक नयी परन्तु उसी के सदृश संगठन वाली संयुक्त राष्ट्रसंघ नामक संस्था का उदय हुआ।''[27]

1.1.6. पाठ-सार/सारांश

राष्ट्रसंघ की भांति संयुक्त राष्ट्रसंघ भी महायुद्ध की उपज है।[28] द्वितीय महायुद्ध के दौरान घटनेवाली घटनाओं ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना को सम्भव बनाया। निकोलस ने ठीक ही लिखा है, जिस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध ने राष्ट्रसंघ की स्थापना की प्रेरणा दी थी। उसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध की उपज मानना ठीक नही है। अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को समाप्त करनके उसकी जगह एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना का स्वप्न सदियों से मानव जाति देखती आ रही है। दांते की डिवाइन कामेडी से लेकर विश्व के अनेक दार्शनिकों ने एक ऐसी संस्था की कल्पना की थी जो विश्व मे चिर शांति की स्थापना कर सके। अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना उन्हीं दार्शनिकों की योजनाओं का कार्यरत रूप है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ शताब्दियों से मनुष्य की शांति-कामना का परिणाम है। यह विश्व समाज का प्रतीक है।

1.1.7. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

क) संयुक्त राष्ट्र से क्या अभिप्राय है?

ख) एटलांटिक चार्टर जो कि सरकारी घोषणा थी, क्या है?

ग) तेहरान सम्मेलन पर टिप्पणी दीजिए?

घ) संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के सम्मुख क्या समस्याएं थी?

ड़) डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन पर टिप्पणी दीजिए?

लघुउत्तरीय प्रश्न

क) संयुक्त राष्ट्र संघ की योजनाओं के बारे में वर्णन कीजिए?

ख) गैर सरकारी संगठनों के कार्य का वर्णन करें?

ग) मास्को घोषणा से आपका क्या अभिप्राय है?

घ) नया संगठन का निर्माण क्यों हुआ?

ड़) संयुक्त राष्ट्र के जन्म का विवरण दीजिए?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना कब हुई?

---

[27] In 1946 26 years after the founding of the League a new but strikingly similar organization the U.N.O rose out of the flames that had consumed the old.

[28] Paradoxically as with the league before it, war provide before, it war provided the impulse for creating a new organization for peace."

(a) 1942 (b) 1943 (c) 1945 (d) 1941

2. संयुक्त राष्ट संघ का मुख्यालय कहां है?

(a) जेनेवा (b) अफ्रीका (c) न्यूयॉर्क (d) इग्लैण्ड

3. तेहरान सम्मेलन कब हुआ?

(a) 1943 (b) 1942 (c) 1949 (d) 1945

4. फरवरी 1945 में कौन सा सम्मेलन हुआ?

(a) मास्को सम्मेलन (b)

(c) याल्टा सम्मेलन (d) तेहरान सम्मेलन

5. संयुक्त राष्ट्र में कितने देश आते हैं?

(a) 194 (b) 191 (c) 195 (d) 193

1.1.8. संदर्भ सूची

1. अल्कार एच. आर एण्ड रस्सअट, एम. बी. वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्म्बली न्यू हैवन, येल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965
2. असहर : रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन 1957
3. अल्कर. एच. आर. एण्ड रस्सअट, एम. बी., वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू. हैवन, मेल यूनीवर्सिटी प्रैस. 1965
4. असंहर रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1957
5. अकिन बेन्पेमीन न्यू स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओर्गेनाइजेशन पेरिस यूनेस्को, 1955
6. बैअली सयूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र, 1961
7. असहर : रोबर्ट दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर वाशिंगटन दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1951
8. अकिन वेन्मीन- न्यू-स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओंर्गेनाइजेशन पेरिस 1955
9. बैऊली सपूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र 1961
10. अल्कर एच. आर. एण्ड रस्सअर एम. बी. बलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू हैवन थेल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965

इकाई-2, संयुक्त राष्ट्र की चार्टर, उद्देश्य एवं सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

1.2.1. उद्देश्य कथन
1.2.2. प्रस्तावना
1.2.3. संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य
1.2.3.1.अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम रखना (Maintenance of International Peace and Security)
1.2.3.2. मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो का विकास (Development of Friendly Relations)
1.2.3.3. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Co-operation)
1.2.3.4. समन्वय (Co-ordination)
1.2.4. संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्त (Principles of United Nations)
1.2.4.1. प्रभुसत्ता-सम्बन्धी समानता (Sovereign Equality)
1.2.4.2. सद्भावना (Good Faith)
1.2.4.3. विवादों का शांतिपूर्ण समाधान (Pacific Settlement of Disputes)
1.2.4.4.धमकी अथवा बल-प्रयोग की मनाही (No Threat or Use of Force)
1.2.4.5. सहायता (Assitance)
1.2.4.6. गैर-सदस्य-राज्यों से सम्बद्ध सिंद्धात (Principle regarding Non-Member States)
1.2.4.7. घरेलू क्षेत्राधिकार (Domestic Jurisdiction)
1.2.5. मूल्यांकन
1.2.6. पाठ सार/ सारांश
1.2.7. अभ्यास/बोद्ध प्रश्न
1.2.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.2.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप:

- संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त रोग।
- संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों का चार्टर के द्वारा लागू किया जाने की विस्तृत जानकारी प्राप्त करोंगे।
- संयुक्त राष्ट्र को अपने चार्टर के लागू करने के सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों को चार्टर में आस्था रखने के तरीकों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2.2. प्रस्तावना

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना के लिए राष्ट्र संघ अस्तित्व में आया, किन्तु वह अनेक कारणों से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में

सफल नहीं हो पाया। 1939 से लेकर 1945 तक दूसरा विश्व-युद्ध चला, जिसके दौरान संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के लिए अनेक सम्मेलन आयोजित किए गए। दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्र (Alled Powers) एक नवीन प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन स्थापित करने की योजना बनाने लगे। इतना ही नही इसके दौरान ही अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की दिशा में अनेक कमद उठाए गए। चीन, फ्रांस, सेवियत संघ, ब्रिटेन, व अमेरिका सहित 51 देशों द्वारा जून, 1945 को सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में तैरूार किए गए चार्टर को स्वीकृत करने के साथ संयुक्त राष्ट्र अस्तित्व में आया। 24 अक्तूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र का चार्टर लागू होने के कारण रह वर्ष 24 अक्तूबर संयुक्त राष्ट्र दिवस' के रूप में मनाया जाता है। 8 अप्रैल, 1946 को राष्ट्र संघ ने एक प्रस्ताव पारित कर अपनी समाप्ति की घोषण कर दी। उसके समस्त उतरदायित्व, कार्यक्रम सम्पत्ति भवन आदि को संयुक्त राष्ट्र ने संभाल लिया।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर की प्रस्तावना- संयुक्त राष्ट्र के संविधान को 'चार्टर' के नाम से जाना जाता है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना बहुत महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि इसमें उन लोगों के आदर्शो और उद्देश्यों की अभिव्यक्ति निहित है, जिनके कारण विभिन्न राज्य-सरकारों ने संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के लिए निरन्तर प्रयास किए थे। संयुक्त राष्ट्र की प्रस्तावना इस प्रकार से है-

संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजन तथा सिद्धान्तों का उल्लेख इसके चार्टर की प्रस्तावना में किया गया है। चार्टर के प्रथम अनुच्छेद में संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों व दूसरे अनुच्छेद के इसके सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। संयुक्त राष्ट्र के प्रथम अनुच्छेद में उल्लेखित उद्देश्यों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षको के माध्यम से किया जा सकता है-

1. **विभिन्न देशों के मध्य प्रगाढ़ व मैत्रीपूर्ण स्थापित करना**- संयुक्त राष्ट्र का एक प्रमुख उद्देश्य समस्त देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बधों को विकसित करना है, क्योंकि अगर विभिन्न देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बध रहेंगे तो अन्तर्राष्ट्रीय विवाद उत्पन्न नहीं होगे। इसलिए राष्ट्र संघ के चार्टर का प्रथम उद्देश्य विश्व के राज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है।
2. **अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करना**-राष्ट्र संघ व संयुक्त राष्ट्र दोनों संस्थाओं की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने के लिए हुई थी। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सामूहिक तथा प्रभावशाली

1.2.3. संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों का उल्लेख इसके घोषणा-पत्र (Charter) की प्रस्तावना में किया गया है, किन्तु प्रस्तावना में इसके उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या नही बल्कि संक्षिप्त व्याख्या की गयी है। वस्तुत: संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या इसके घोषणा-पत्र के क्रमश: प्रथम व द्वितीय अनुच्छेद में की गयी है-

संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य (Aims/ Purposes of United Nations) संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के प्रथम अनुच्छेद में इसके उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के निम्नलिखित उद्देश्य तय किए गए हैं-

1. अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा की रक्षा करना और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शांति-विरोधी तत्वों के निवारण तथा आक्रमण-सूचक कार्यो एवं शांति के अन्य अतिक्रमणों के दमन के लिए प्रभावशाली सामूहिक उपाय करना, और शांतिपूर्ण उपायों से ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णय अथवा समझौता कराना, जिनसे शांति भंग होने की आशंका हो।
2. राष्ट्रों, के बीच, लोगों के समान अधिकार और स्वाधीनता के सिद्धांत पर आधारित मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना और विश्व शांति को सुदृढ़ बनाने के लिए उचित उपाय करना।
3. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवतावादी समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना तथा जाति, भाषा, लिंग, धर्म का भेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के सम्मान को बढ़ाना और उसे प्रोत्साहन देना।
4. इस सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न राष्ट्रों के कार्यो में सामंजस्य उत्पन्न करने के लिए एक केन्द्र का कार्य करना।

संयुक्त राष्ट्र के प्रथम अनुच्छेद में संयुक्त राष्ट्र के जिन उद्देश्यों की चर्चा की गयी है, उनकी हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत व्याख्या कर सकते हैं-

1.2.3.1. अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम रखना (Maintenance of International Peace and Security)

संयुक्त राष्ट्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य शांति और सुरक्षा बनाए रखना है। स्टीफन गुडसपीड के मतानुसार **''यह संयुक्त राष्ट्र का प्राथमिक उद्देश्य है।''** वस्तुत: कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन तब तक अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नही कर सकता, जब तक विश्व में शांति और सुरक्षा का वातावरण न हो। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के वातावरण में ही अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अपने कार्यो का सफलतापूर्वक सम्पादन कर सकता है, इसलिए संयुक्त राष्ट्र के निर्माताओं ने इसके उद्देश्यों की सूची में प्रथम स्थान अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को प्रदान किया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र शांति को भंग करने वाले भय को दूर करने का प्रयास करेगा और आक्रमणकारियों कार्यो को दबाने तथा शांति को भंग करने वाले कार्यों को रोकने का प्रयत्न करेगा। वह आक्रमण सूचक कार्यो एवं शांति के अन्य अतिक्रमणों के दमन के लिए प्रभावकारी सामूहिक कारवाई करेगा। चार्टर के ९वं अध्याय में शांति को खतरा, शांति को भंग अथवा आक्रमण की विभीषिका को रोनक के उपायों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र का यह उद्देश्य है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण तरीकों से समाधान करने का प्रयास करें। इसमें यह भी कहा गया है कि शांति भंग होने की वास्तविक स्थिति तथा आक्रमण से पूर्व संयुक्त राष्ट्र विभिन्न शांतिपूर्ण तरीकों द्वारा विवादों का निपटारा करने का प्रयास करेगा। चार्टर का छठा अध्याय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की व्यवस्था पर प्रकाश डालता है। शांति और सुरक्षा कायम रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए चार्टर का द्वितीय अनुच्छेद अनुदेशित करता है कि ''सदस्य राज्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने का इस प्रकार प्रयत्न करेंगे, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा तथा न्याय को किसी प्रकार का खतरा न हो।''

1.2.3.2.मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो का विकास (Development of Friendly Relations)

संयुक्त राष्ट्र का दूसरा उद्देश्य आत्म-निर्णय और समान अधिकारों के सिद्धांत के आधार पर सदस्य-राज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करना है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कामय रखने के लिए राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि भय, अनिश्चितता, संदेह तथा ईर्ष्या के वातावरण में किसी प्रकार की शांति संभव नहीं हो सकती है। वस्तुत: शांति और सुरक्षा तभी कायम रह सकती है, जब राष्ट्रो के बीच भय, आशंका तथा ईर्ष्या का अभाव हो। चार्टर के निर्माता इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे, इसलिए उन्होंने शांति और सुरक्षा कायम रखने के साथ-साथ राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख उद्देश्य घोषित किया। किन्तु चार्टर में इस बात का निश्चित रूप से कोई उल्लेख नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र इसके लिए कौन-सा तरीका अपनाएगा। चार्टर में सिर्फ इतना ही कहा गया है कि मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के विकास का आधार समान अधिकारों तथा सभी लोगों के आत्म-निर्णय का सिंद्धात होगा, किन्तु सभी लोगों के समान अधिकार तथा आत्म-निर्णय के प्रसंग का अभिप्राय यह नही है कि संयुक्त राष्ट्र यथास्थिति में इन सिद्धांतो के अनुरूप परिवर्तन लाने की गारंटी देता है। इसका अभिप्राय सिर्फ यह है कि इन सिंद्धातों के प्रति सम्मान प्रस्तावित मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध के विकास का आधार होगा।

1.2.3.3.अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Co-operation)

अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम रखना संयुक्त राष्ट्र का राजनीतिक उद्देश्य कहा जा सकता है, क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रभाव राष्ट्रों के पारस्परिक शक्ति-संघर्ष पर पड़ता है। कहने की आवश्यकता नही है कि इस राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति सामाजिक अशांति एवं आर्थिक तथा सांस्कृतिक पिछड़ेपन के वातावरण से संभव नही है। बेन्डेनवोश तथा होगन लिखते हैं, **''आर्थिक दुर्दशा तथा समाजिक अशांति उन तनावों एवं असंतोष को जन्म देती है, जो व्यवस्था, स्थायित्व और सुरक्षा को समाप्त कर देते हैं। ऐसी परिस्थितियों में केवल अत्यधिक शक्ति के प्रयोग के द्वारा ही शांति को कायम रखा जा सकता है। इन तरह की शांति अस्थायी और विस्फोटक होती है।''** अन्य शब्दों में, आर्थिक स्थायित्व और सामाजिक प्रगति, शांति और व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। संयुक्त राष्ट्र के निर्माता इस तथ्य से परिचित और सामाजिक प्रगति और शांति और व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। संयुक्त राष्ट्र के निर्माता इस तथ्य से परिचित थे, अत: उन्होंने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय क्षेत्रों में सहयोग स्थापित करना संयुक्त राष्ट्र का एक प्रमुख उद्देश्य घोषित किया। चार्टर के प्रथम अनुच्छेद की धारा 3 में कहा गया है, **''संयुक्त राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय क्षेत्रों से सम्बन्द्ध अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में और मानव अधिकारों तथा मौलिक, स्वाधीनता के प्रति सम्मान की भावना का विकास करने में संयुक्त राष्ट्र सहयोग करेगा।''** इन क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापित करने के उद्देश्य हेतु संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंग के रूप में आर्थिक और सामाजिक परिषद की स्थापना की गयी है। इसके साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक आदि अनेक विशिष्ट अभिकरणों की स्थापना भी की गयी है। राष्ट्र संघ की संविदा में आर्थिक और सामाजिक सहयोग पर इतना अधिक जोर नहीं दिया

गया था, क्योंकि इन कार्यो का सम्पादन समितियों और आयोगों को सौंपा गया था। इन सभी के अलावा, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में मानव अधिकारों का उल्लेख एक नयी बात है।

उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र का चार्टर मानव अधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रता के स्वच्छन्द उपयोग की कोई गारंटी नही देता है। यह इन अधिकारों को लागू करने के लिए किसी साधन की व्यवस्था नही करता और न ही यह सदस्य राज्यों पर इन अधिकारों और स्वतंत्रता का सम्मान करने के लिए कोई उत्तरायित्व आरोपित करता है। इस दृष्टि से इनका कोई वैधानिक महत्व नहीं है।

1.2.3.4. समन्वय (Co-ordination)

संयुक्त राष्ट्र का एक अन्य उद्देश्य उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सदस्य राज्यों के कार्यो में समन्वय स्थापित करने के लिए एक केन्द्र क रूप में कार्य करना है। यह संभव नही है कि आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों से सम्बद्ध अनेक अभिकरण इन क्षेत्रों में कार्य करते हैं। इनके सभी के कार्यो में समन्वय स्थापित करना संयुक्त राष्ट्र का दायित्व है। संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के लिए यह कार्य काफी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके अभाव में इसका कार्य सुचारू रूप से नहीं चल सकता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र महान आदर्शो पर आधारित है। इसके आदर्श काफी आकर्षक तथा लुभावने हैं। किन्तु इसके विभिन्न अंगों को कोई बाध्यकारी शक्ति प्राप्त नहीं है। महा सभा, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद न्यास परिषद आदि अंगों को सिर्फ सिफारिशें करने का अधिकार प्राप्त है। केवल सुरक्षा परिषद ही एक ऐसा अंग है, जिसके निर्णयो को बाध्यकारी शक्ति प्राप्त है। यदि सुरक्षा परिषद कोई निर्णय लेती है, तो उसको मानना सदस्य राज्यों के लिए अनिवार्य है। किन्तु शीत-युद्ध और शक्ति राजनीति के चलते होने से सुरक्षा परिषद द्वारा निर्णय लेने की संभावना बढ़ी है, जैसा कि खाड़ी युद्ध (1990-91) में देखने को मिला। पुन: संयुक्त राष्ट्र अपने सदस्य राज्यों के ऐच्छिक सहयोग पर आधारित है। यह एक सर्वोपरि राज्य नही है इसलिए यह सदस्य राज्यों को कोई आदेश नहीं दे सकता है। सदस्य-राज्यों के सहयोग के अभाव में यह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो पाता है। किन्तु इसका यह अर्थ नही है कि संयुक्त राष्ट्र का चार्टर उच्च आदर्शो का घोषणा-पत्र है। व्यवहार में संयुक्त राष्ट्र ने अपने आदर्शो की प्राप्ति में बहुत हद तक सफलता हासिल की है। यह ठीक है कि संयुक्त राष्ट्र पूर्णतया दोषमुक्त नहीं है, किन्तु इन दोषों के रहते हुए भी यह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल हो सकता है, यदि सदस्य-राज्य राष्ट्रवाद की संकुचित भावना से ऊपर उठकर विचार करना शुरू करें।

1.2.4. संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्त (Principles of United Nations)

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना तथा प्रथम अनुच्छेद में इसके उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है, किन्तु इन उद्देश्यों की चर्चा कर देना ही पर्याप्त नहीं है। इनकी पूर्ति के लिए सदस्य-राज्यों के मार्ग-दर्शन हेतु कुछ सिद्धांतो का प्रतिपादन भी अनिवार्य है, अत: चार्टर के द्वितीय अनुच्छेद में उन सिद्धांतों की चर्चा की गयी है, जिन पर संयुक्त राष्ट्र की नींव रखी गयी है। ये सिंद्धात अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के उन नियमों के समान है,

जो संयुक्त राष्ट्र और उसके सदस्य-राज्यों का मार्ग-दर्शन करते हैं। चार्टर के द्वितीय अनुच्छेद में कहा गया है प्रथम अनुच्छेद में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र तथा इसके सदस्य निम्नलिखित सिद्धातों के अनुरूप कार्य करेंगे-

1. यह संगठन सदस्य राज्यों की सम्प्रभुता तथा समानता के सिद्धान्त पर आधारित है।
2. सभी सदस्य-राज्य अपने उन समस्त दायित्वों को ईमानदारी के साथ निभाएगें, जिन्हें उन्होंने वर्तमान चार्टर के अनुसार अपने ऊपर लिया है, ताकि सभी को इस बात का विश्वास हो जाए कि सदस्य होने के जो भी अधिकार और लाभ हैं, वे उनको मिलेंगे।
3. सभी सदस्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शांतिपूर्ण तरीकों से इस प्रकार तय करेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा और न्याय खतरे में न पड़े।
4. सभी सदस्य-राज्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी राज्य की प्रादेशिक अखंडता या राजनीतिक स्वाधीनता के विरूद्ध न तो धमकी देंगे और न बल का प्रयोग करेंगे और कोई न ही ऐसा काम करेंगे, जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों से मेल खाता हो।
5. सभी सदस्य-राज्य संयुक्त राष्ट्र को ऐसी हर कारवाई में हर प्रकार की मदद देंगे, जो वर्तमान चार्टर के अनुसार हो और ऐसे किसी भी राज्य की मदद नहीं करेगें, जिसके विरूद्ध संयुक्त राष्ट्र अमल कराने या रोकथाम की कोई कारवाई कर रहा हो।
6. यह संगठन इस बात का विश्वास दिलाएगा कि जो राज्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नही है वे भी अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए जहाँ तक आवश्यक हो, इन्ही सिद्धान्त का पालन करेंगे।
7. वर्तमान चार्टर में जो कुछ कहा गया है, वह संयुक्त राष्ट्र को किसी राज्य के उन मामलों में दखल देने के लिए अधिकृत करेगा, जो निश्चित रूप से उस राज्य के घरेलू क्षेत्राधिकार में आते हों। न किसी सदस्य के लिए यह आवश्यक होगा कि ऐसे मामलों को वर्तमान चार्टर के अधीन निबटाने के लिए रखे, लेकिन सातवें अध्याय में इसे अमल मे लाने के लिए जो कारवाईयाँ बतायी गयी है, उनके लागू किए जाने से इस सिंद्धात का कोई असर न पड़ेगा।

   संयुक्त राष्ट्र चार्टर के दूसरे अनुच्छेद में जिन मौलिक सिद्धातों की चर्चा की गयी है, उनकी निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत व्याख्या की जा सकती है-

1.2.4.1. प्रभुसत्ता-सम्बन्धी समानता (Sovereign Equality)

संयुक्त राष्ट्र का प्रथम सिंद्धात यह है कि इसके सभी सदस्य-राज्य सम्प्रभुता-सम्पन्न, शक्ति-सम्पन्न और समान हैं। इस सिंद्धात में दो बातें शामिल है-पहली सम्प्रभुता-सम्पन्नता और दूसरी समानता। सामान्यतया सम्प्रभुता सम्पन्न होने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक राज्य अपनी भौगोलिक सीमाओं के अन्दर सर्वोच्च है और उसकी आज्ञा सर्वोपरि है। उसके यहाँ रहने वाले किसी भी व्यक्ति अथवा व्यक्ति समुदाय को उसकी आज्ञा का उल्लघंन करने का अधिकार नहीं है। यह संप्रभुता का आंतरिक पक्ष हुआ। इसका बाह्म पक्ष भी है, जिसका अर्थ यह है कि आन्तरिक मामलों के साथ-साथ राज्य ब्राह्मा मामलों में भी स्वतंत्र होता है अर्थात् वह किसी भी व्यक्ति अथवा व्यक्ति समुदाय

को उसकी आज्ञा का उल्लघंन करने का अधिकार नहीं है। यह संप्रभुता का आंतरिक पक्ष हुआ। इसका बाह्य पक्ष भी है, जिसका अर्थ यह है कि आन्तरिक मामलों के साथ-साथ राज्य बाह्य मामलों में भी स्वतंत्र होता है अर्थात् वह किसी भी बाह्य शक्ति के नियंत्रण से मुक्त होता है। समानता से तात्पर्य यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के सदस्य के रूप में सभी राज्य समान हैं अर्थात् संयुक्त राष्ट्र की नजर मे छोटे-बड़े राज्यों में कोई अन्तर नहीं है।

किन्तु संयुक्त राष्ट्र का कोई भी सदस्य-राज्य उक्त अर्थ में संप्रभुता-सम्पन्न नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के विभिन्न उपबंधों के द्वारा उसकी निर्बाध संप्रभुता सीमित हो जाती है। शांति भंग होने पर सुरक्षा परिषद को अपने किसी भी सदस्य राज्य से सैनिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार है। इसे सदस्य-राज्यों को आदेश देने का अधिकार है और सदस्य राज्य इसके आदेशों को मानने के लिए बाध्य हैं। मार्टिन और बेंटविच के शब्दों में, **''संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्यों की संप्रभुता सीमित है। चार्टर पर हस्ताक्षर करके उन्होंने अपने कुछ ऐसे अधिकार, जिन्हें वे इससे पहले अपनी स्वेच्छा से प्रयुक्त कर सकते थे, संयुक्त राष्ट्र का हस्तान्तरित कर दिए हैं।''**

जहाँ तक राज्यों की समानता का प्रश्न है, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अन्तर्गत इसका कुछ सीमा तक ही पालन किया गया है। संयुक्त राष्ट्र की महा सभा में सभी सदस्य-राज्यों को समानता का दर्जा प्राप्त है। प्रत्येक सदस्य-राज्य को चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा इसमें बराबर प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। साथ ही सभी सदस्य राज्यों को समान मत प्राप्त है। लेकिन सुरक्षा-परिषद के संगठन और कार्य-प्रणाली में इस सिद्धांत की अवहेलना की गयी है। इसमें सिर्फ पाँच बड़ी शक्तियों (ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, चीन तथा रूस) को स्थायी सदस्यता प्रदान की गयी है। जब कि अन्य राज्यों को इस सुविधा से वंचित रखा गया है। इसके अलावा, सुरक्षा परिषद में केवल स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार (Veto Power) प्राप्त है। इनकी इच्छा के विरूद्ध सुरक्षा परिषद कोई भी निर्णय नहीं ले सकती है। स्पष्ट है कि सुरक्षा-परिषद में पाँचों बड़ी शक्तियों को अन्य राज्यों की अपेक्षा काफी उच्च स्थिति प्रदान की गयी है। निश्चित ही यह राज्यों की समानता के सिद्धांत के प्रतिकूल है। एच.जी.निकोलस के शब्दों में, **''निषेधाधिकार आज भी सुरक्षा परिषद में बड़ी शक्तियों की रक्षा करता है, किन्तु यह उनमें और अन्य सदस्य राज्यों के बीच विभेद की खाई को बढ़ावा देता है।''**

1.2.4.2.सद्भावना (Good Faith)

संयुक्त राष्ट्र का दूसरा सिंद्धात यह है कि सभी सदस्य-राज्य चार्टर के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए वचनबद्ध है। यह कोई नवीन विचार नही है। अन्तर्राष्ट्रीय विधि का यह एक प्रमुख सिद्धांत है कि संधि-जनित दायित्वों का पालन अवश्य किया जाना चाहिए। किन्तु चार्टर में सिद्धांत को रखने का आश्य यह है कि संयुक्त राष्ट्र अपने आदर्शो के पालन में तभी तक सफल हो सकता है जब तक सभी सदस्य-राज्य अपने दायित्वों का निष्ठापूर्वक पालन करें। यदि संयुक्त राष्ट्र के विगत कार्य-प्रणाली को देखा जाए, तो स्पष्ट हो जाएगा कि संयुक्त राष्ट्र की सदस्य-राज्य अपने

दायित्वों का पालन करने में असफल रहे हैं, क्योंकि ये अपने संकुचित स्वार्थो से ऊपर उठ नही पाए। उनका मुख्य उद्देश्य अपनी शक्ति और क्षेत्र का विस्तार करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के शीघ्र बाद यह स्पष्ट हो गया था कि शक्ति-युद्ध के दौर से संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों पर पानी फेर दिया गया था और संयुक्त राष्ट्र राज्यों का संघ न रहकर विभाजित राज्यों का संघ बन गया था। **मार्टिन तथा बेंटविच के शब्दों में, ''जिस चीज की रचना विश्व-शांति के एक यंत्र के रूप में की गयी थी, वह विश्व-संघर्ष एक मंच बन गयी।''** हाल के वर्षो में दोनो महा शक्तियों के मध्य बढ़ते समझोतावादी रूझान के कारण संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय शांति के साधन के रूप में काम करने की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

1.2.4.3. विवादों का शांतिपूर्ण समाधान (Pacific Settlement of Disputes)

संयुक्त राष्ट्र का तीसरा सिंद्धात यह है कि सभी सदस्य-राज्य इस बात के लिए वचनबद्ध हैं कि वे अपने विवादों को शांतिपूर्ण तरीके से हल करेंगे। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 2 (3) में कहा गया है कि सभी सदस्य-राज्य अपने विवादों को शान्तिपूर्ण साधनों से इस प्रकार तय करेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा और न्याय खतरे में न पड़े। चार्टर के छठे अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के तरीकों का उल्लेख किया गया है; जैसे-वार्ता, जाँच, मध्यस्थता, संराघन, पंच-निर्णय, न्यायिक समझौते, प्रादेशिक व्यवस्थाएँ आदि। यदि सुरक्षा परिषद् उचित समझे तो इन विवादों के निपटारे की उचित प्रक्रिया या फैसले की शर्ते तय कर सकती है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के मौलिक सिंद्धातों में इस सिंद्धात को शामिल करके यह स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है कि शांतिपूर्ण ढंग से अपने विवादों का निबटारा सदस्य राज्यों का प्रमुख दायित्व है। किन्तु इस उपबंध पर अनेक सीमाएँ आरोपित की गयी हैं-प्रथम, इसका सम्बन्ध केवल अन्तर्राष्ट्रीय विवादों से है; घरेलू विवादों से नहीं। द्वितीय, संयुक्त राष्ट्र का सम्बन्ध केवल वैसे विवादों से है, जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा भंग होने की संभावना हो; अन्य विवादों से नही। तृतीय, 'शांतिपूर्ण उपाय' शब्दावली का कोई निश्चित अर्थ नही है। अनुच्छेद 33 में कुछ उपायो की सूची अवश्य दी गयी है, किन्तु यह अधूरी है।

1.2.4.4. धमकी अथवा बल-प्रयोग की मनाही (No Threat or Use of Force)

संयुक्त राष्ट्र का चौथा सिंद्धात यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में कोई भी सदस्य-राज्य किसी देश की राजनीतिक स्वतंत्रता के विरूद्ध न तो शक्ति का प्रयोग करेगा और न इसके प्रयोग की धमकी देगा और न ही कोई ऐसा आचरण करेगा जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यो के प्रतिकूल हो। नि:सन्देह राज्यों द्वारा बल प्रयोग अथवा धमकी की चार्टर में मनाही की गयी है, किन्तु कुछ अवस्थाओं में बल-प्रयोग को वैधानिक बताया गया है; जैसे-यदि संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् किसी आक्रामक के विरूद्ध कोई सशस्त्र कारवाई करती है, तो सदस्य राज्यों के लिए उस कारवाई में शामिल होना आवश्यक है। चार्टर के अनुच्छेद 43 (1) के अनुसार, '' अन्तर्राष्ट्रीय शांति सुरक्षा को बनाए रखने में योगदान करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य सुरक्षा परिषद की माँग पर और विशेष समझौते या समझौतों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने के प्रयोजन के लिए आवश्यक अपनी सशस्त्र सेनाएँ, सहायता एवं सुविधाओं, जिनमें पारगमन के अधिकार भी सम्मिलित हैं, उपलब्ध कराने का दायित्व लेते हैं।'' अनुच्छेद 51 के अन्तर्गत सभी

सदस्य-राज्यों को आत्म-रक्षा का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 51 में कहा गया है कि यदि संयुक्त राष्ट्र के किसी सदस्य के विरूद्ध सशस्त्र आक्रमण होता है, तो वर्तमान चार्टर के तहत उसे व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सुरक्षा के अन्तर्निहित अधिकार से उस समय तक वंचित नहीं किया जाएगा, जब तक कि सुरक्षा परिषद के अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए आवश्यक उपाय नहीं कर लिए हों।

1.2.4.5. सहायता (Assitance)

संयुक्त राष्ट्र का पाँचवा सिंद्धात यह है कि जब चार्टर के अनुसार आक्रमणकारी राज्य के विरूद्ध संयुक्त राष्ट्र कोई कारवाई करेगा, तो सभी सदस्य-राज्य उसे सभी प्रकार की सहायता देने के लिए वचनबद्ध होंगे और वे किसी ऐसे राज्य की सहातय नही करेंगे, जिसके विरूद्ध संयुक्त राष्ट्र द्वारा शांति और सुरक्षा के निमित कोई कारवाई की जा रही हो। इस प्रकार यह सिंद्धात सदस्य-राज्यों का संयुक्त राष्ट्र की समस्त कारवाईयों में सहायता करने का दायित्व तय करता है। यदि संयुक्त राष्ट्र द्वारा अनुशासित कारवाई की जा रही हो और इस हेतु सदस्य- राज्यों में सहायता माँगी जा रही हो, तो ऐसी स्थिति में उनका दायित्व बनता है कि वे सभी प्रकार की सुविधा तथा सहायता संयुक्त राष्ट्र का उपलब्ध करें। कानूनी दृष्टि से कोई भी सदस्य-राज्य तटस्थता की नीति को अपनाने का बहाना बनाकर अपने को उक्त दायित्व से अलग नहीं कर सकता। वह उस राज्य को किसी प्रकार की सहायता भी नही दे सकता, जिसके विरूद्ध कारवाई की गयी हो। केवल अनुशासित कारवाई में ही नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय क्षेत्र में भी सदस्य-राज्यों को संयुक्त राष्ट्र की सहायता करनी होगी। यदि किसी राज्य द्वारा की गयी संधि के दायित्वों और संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में निहित दायित्वों में कोई विरोध हो, तो संधि के दायित्वों की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र के दायित्वों को प्राथमिकता दी जाएगी।

1.2.4.6. गैर-सदस्य-राज्यों से सम्बद्ध सिंद्धात (Principle regarding Non-Member States)

संयुक्त राष्ट्र का छठा सिंद्धात गैर-सदस्य-राज्यों से सम्बन्धित है। चार्टर के अनुच्छेद 2 (6) में कहा गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए जहाँ तक आवश्यक होगा, यह संगठन यह व्यवस्था करेगा कि जो देश संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं है वे चार्टर के सिंद्धातों के अनुसार आचरण करेंगे। यह सिद्धात संयुक्त राष्ट्र के क्षेत्र को विश्वव्यापी बनाने का प्रयास करता है, किन्तु इसके कार्यान्वियन में व्यावहारिक कठिनाईयाँ है। यह कहना बड़ा कठिन है कि किस प्रकार संयुक्त राष्ट्र द्वारा गैर-सदस्य राज्यों की संयुक्त राष्ट्र के आदर्शो के अनुरूप कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। क्या संयुक्त राष्ट्र को ऐसे राज्यों से अपने सिद्धातो के पालन कराने का कोई नैतिक अधिकार है? कभी भी नहीं।

1.2.4.7. घरेलू क्षेत्राधिकार (Domestic Jurisdiction)

संयुक्त राष्ट्र का सांतवा सिद्धांत सदस्य राज्यों के आन्तरिक मामलों से सम्बन्धित है। चार्टर के अनुच्छेद 2 (7) में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र किसी भी देश के उस मामले में हस्तक्षेप नही करेगा, जिसका सम्बन्ध उसके आन्तरिक क्षेत्राधिकार से है। इस प्रकार यह अनुच्छेद स्पष्ट रूप से संयुक्त राष्ट्र को किसी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं देता है। यह उपबंध संयुक्त राष्ट्र के मार्ग में एक बाधा

है। चूँ कइस उपबन्ध की भाषा काफी अस्पष्ट है। अत: प्रत्येक अवसर पर इसके भिन्न-भिन्न अर्थ लगाए जा सकते है। इसके परिणामस्वरूप विवादग्रस्त राज्यों को मनमानी व्याख्या करने का अवसर मिल जाता है। जब कभी कोई अन्तर्राष्ट्रीय मामला संयुक्त राष्ट्र के समक्ष लाया जाता है, सम्बद्ध राज्य उस विषय को अपना घरेलू मामला बताकर संयुक्त राष्ट्र को कोई कारवाई नहीं करने दिया। उदाहरण के लिए रंगभेद की नीति किसी राज्य का घरेलू मामला न होकर सम्पूर्ण मानवता के प्रति अपराध है, किन्तु दक्षिण अफ्रीका ने इसे अपना घरेलू मामला बताकर संयुक्त राष्ट्र में रंग-भेद विरोधी भारतीय प्रस्ताव का विरोध करने में सफलता हासिल की थी। जब कभी संयुक्त राष्ट्र ने फ्रांस के उपनिवेशों में हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया, तो उसने भी इसी अनुच्छेद का सहारा लिया। पुर्तगाल भी इसी अनुच्छेद की आड़ लेकर अपने उपनिवेशों में संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप का विरोध करता रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस खंड की भाषा इतनी लचीली है कि इसके नाम पर सदस्य-राज्यों द्वारा संयुक्त राष्ट्र के कार्यो पर अंकुश लगाया जा सकता है। एच.जी. निकोलस के शब्दों में ''यह व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र के कार्यो पर रोक लगाने का काम करती है।'' गुडरीच तथा हैम्ब्रो के मतानुसार, ''समस्त चार्टर में यदि कहीं संयुक्त राष्ट्र के कार्यो पर कोई प्रतिबंध लगाया गया है, तो अनुच्छेद 2 का सातवाँ खंड सबसे कठोर प्रतिबंध है।''

1.2.5. मूल्यांकन

संयुक्त राष्ट्र के आधारभूत सिद्धांतो पर संयुक्त राष्ट्र की नींव रखी गयी है। ये सिंद्धात सदस्य-राज्यों के लिए मार्ग-निर्देशक का कार्य है। इन सिद्धातों के अलावा भी एक अन्य सिंद्धात है, जिस पर संयुक्त राष्ट्र की सफलता पर निर्भर करती है। वह सिंद्धात है-महान शक्तियों की एकता का सिंद्धात। इसके अभाव में कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता, किन्तु चार्टर के किसी भी अध्याय में इस सिंद्धात की चर्चा नहीं की गयी है। इसके बिना संयुक्त राष्ट्र की सामूहिक कार्रवाई की व्यवस्था व्यर्थ है। स्टीफन गुड्सपीड का विचार है कि यह उतना ही मौलिक सिंद्धात है, जितना कि चार्टर में वर्णित अन्य सिंद्धात। नि:सन्देह सिंद्धात संयुक्त राष्ट्र के सफल कार्यकरण के लिए आवश्यक सिंद्धात है।

1.2.6. पाठ सार/सारांश

''संयुक्त राष्ट्र के हम लोगों ने यह पक्का निश्चय किया है कि हम आने वाली पीढ़ियों को उस युद्ध की विभीषिकाओं से बचाएगें, जिसने हमारे जीवन काल में दो बार मनुष्य मात्र पर अकथनीय दु:ख ढाए हैं और हम मानवता के मूल अधिकारों में मानव की गरिमा और महत्व और छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों के नर-नारियों के समान अधिकार में फिर आस्था पैदा करेंगे, और हम ऐसी स्थिति पैदा करेंगे, जिससे न्याय और उन दायित्वों का सम्मान कायम रहे, जो सन्धियों और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के दूसरे स्रोतों से हम पर पड़ते हैं और हम अधिक व्यापक स्वतन्त्रता द्वारा अपने जीवन का स्तर ऊँचा उठाएगें और समाज को प्रगतिशील बनाएगें। इन उद्देश्यों के लिए हम सहनशील बनेगें और अच्छे पड़ोसियों की तरह साथ मिलकर शान्ति से रहेंगे और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के लिए अपनी शक्तियों का संगठन करेंगे और इन नियमों का पालन करेगें तथा ऐसे साधनों

से काम लेगें, जिससे इस बात का विश्वास हो जाए कि अपने सामान्य हितों की रक्षा के अलावा हथियार बंद सेनाओं का प्रयोग नहीं किया जाएगा और सभी लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान को बढ़ावा देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय साधनों का प्रयोग करेंगे।''

''इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हमने मिलकर प्रत्यन करने का निश्चय किया। इसलिए हमारी सरकारें अपने प्रतिनिधियों के रूप में सैन फ्रांसिस्को नगर में एकत्र हुई हैं। उन प्रतिनिधियों ने अपने अधिकार पत्र दिखाएं, जिनको ठीक और उचित रूप में पाया गया है और उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के इस चार्टर को स्वीकार कर लिया है और इसके आधार पर वे अब एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना करते हैं, जिसका नाम संयुक्त राष्ट्र होगा।''

1.2.7. अभ्यास/बोद्ध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

क) संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने क्या-क्या समस्याएँ आई?

ख) संयुक्त राष्ट्र संघ में मैत्री पूर्ण संबंधों पर प्रकाश डाले?

ग) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से क्या अभिप्राय है?

घ) संयुक्त राष्ट्र संघ की क्या प्रस्तावना थी?

ड़) संयुक्त राष्ट्र की स्थापना क्या है?

लघुउत्तरीय प्रश्न

क) संयुक्त राष्ट्र संघ के उदेश्य बताओ?

ख) संयुक्त राष्ट्र चाटर का मुख्य उद्देश्य क्या है?

ग) UNDP क्या है और इसका Role क्या है?

घ) संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धांत बताओ?

ड़) उन सात ऐजेसी के नाम बताओ जिनके "Specialized Agencies" से जाना जाता है और Un Charter में use किया गया है।

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. दी लॉ ऑफ दी यूनाइटेड नेशंस पुस्तक किसने लिखी?

(a) हैन्स केल्सन (b) केल्सन

(c) आइकल बर्गर (d) मार्टिन

2. संयुक्त राष्ट्र संघ में 1945 में कितने देशों की सदस्यता थी?

(a) 50 (b) 52 (c) 51 (d) 53

3. कौन सा देश संयुक्त राष्ट्र का सदस्य नहीं है?

(a) फ्रांस (b) चीन (c) रूस (d) जर्मनी

4. द्ववितीय विश्व युद्ध के समय US का राष्ट्रपति कौन था?

(a) Grover Cleveland (b) Franklin Deleno

(c) Theodore Roosevelt (d) Woodrow Wilson

1.2.8. संदर्भ सूची

1. अल्कार एच. आर एण्ड रस्सअट, एम. बी. वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्म्बली न्यू हैवन, येल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965
2. असहर : रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन 1957
3. अल्कर. एच. आर. एण्ड रस्सअट, एम. बी., वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू. हैवन, मेल यूनीवर्सिटी प्रैस. 1965
4. असंहर रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1957
5. अकिन बेन्पेमीन न्यू स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओर्गेनाइजेशन पेरिस यूनेस्को, 1955
6. बैअली सयूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र, 1961
7. असहर : रोबर्ट दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर वाशिंगटन दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1951
8. अकिन वेन्मीन- न्यू-स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओंगेनाइजेशन पेरिस 1955
9. बैऊली सपूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र 1961
10. अल्कर एच. आर. एण्ड रस्सअर एम. बी. बलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू हैवन थेल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965

इकाई–3: संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन

इकाई की रूपरेखा:

1.3.1. उद्देश्य कथन

1.3.2. प्रस्तावना

1.3.3. समानताएँ (Similarities)

- 1.3.1.1.उद्देश्य की दृष्टि से
- 1.3.3.2. आधारभूत विशेषता की दृष्टि से
- 1.3.3.3. संगठन की दृष्टि से
- 1.3.3.4. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान की व्यवस्था की दृष्टि से
- 1.3.3.5. विरोधात्मक कार्यवाही की दृष्टि से
- 1.3.3.6. राज्य–संप्रभुता की दृष्टि से
- 1.3.3.7. गैर–राज्य प्रदेशों की सदस्यता की दृष्टि से
- 1.3.3.8. निष्क्रियता की दृष्टि से

1.3.4. असमानताएँ (Disimilarities)

- 1.3.4.1. निर्माणकालीन परिस्थितियों में अन्तर
- 1.3.4.2. प्रसंविदा की तुलना में चार्टर एक व्यापक प्रलेख
- 1.3.4.3. प्रसंविदा और चार्टर की प्रस्तावना में अन्तर

1.3.5. संगठन में अन्तर

- 1.3.5.1. सदस्यता–सम्बन्धी अन्तर
- 1.3.5.2. अधिकार–क्षेत्रों का विभाजन
- 1.3.5.3. अधिवेशन तथा मतदान–प्रणाली में अन्तर
- 1.3.5.4. दोनों संस्थाओं में संशोधन को लागू करने में भिन्नता
- 1.3.5.5. संरक्षण पद्धति के सम्बन्ध में अन्तर
- 1.3.5.6. प्रादेशिक संगठनों की व्यवस्था
- 1.3.5.7. निरस्त्रीकरण के सम्बद्ध व्यवस्था में अन्तर
- 1.3.5.8. घरेलू क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में व्यवस्था
- 1.3.5.9. सचिवालय–सम्बन्धी अंतर
- 1.3.5.10. आक्रमण तथा शांति–भंग को रोकने से सम्बन्धित उपबंध

1.3.6. निष्कर्ष (Conclusion)

1.3.7. पाठ सार/सारांश

1.3.8. अभ्यास/बोध प्रश्न

1.3.9. सदंर्भ ग्रन्थ सूची

1.3.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप:

- संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करोगें
- संयुक्त राष्ट्र चार्टर में सदस्यता प्राप्त करने सम्बन्धी प्रावधानों की व्याख्या करोगे।
- संयुक्त राष्ट्र चार्टर की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भूमिका की विवेचना करोगे।

1.3.2. प्रस्तावना

दुनिया के इतिहास में अन्य बातों के अतिरिक्त बीसवीं सदी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना के दो प्रयोगों को लेकर स्मरणीय रहेगी। वे दो प्रयोग थे- राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ। राष्ट्रसंघ की स्थापना प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद विश्व में शांति एवं सुरक्षा की स्थापना के उद्देश्य हेतु की गयी थी। उसकी पृष्ठभूमि में युद्ध के क्लांत दुनिया की शांति कामना थी। तथा विश्व-समुदाय को रूपायित करने की भावना थी। उसके पीछे एक राजनीति दर्शन था, अनेक विचारकों तथा कुछ राज-नेताओं का अदम्य आशावाद था। पररन्तु अपने उद्दीप्त आदर्शो के बावजूद राष्ट्रसंघ अपने प्राथमिक और बुनियादी आदर्शो की प्राप्ति में विफल रहा। उसके होते हुए द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। जिसके आतप में राष्ट्रसंघ की कल्पतरु झुलस कर समाप्त हो गया। परन्तु असफल होकर भी इसने राष्ट्रों के बीच सहयोग करने की आदत डाल दी। जैसा कि लैंगमस ने लिखा है: ‘‘राष्ट्रसंघ की सबसे बड़ी देन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विचार को उन्नत करना था। जैसा कि लैंगसम ने लिखा है: ‘राष्ट्रसंघ की सबसे बड़ी देन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विचार को उन्नत करना था। इसने विश्व को वह बहुमूल्य अनुभव प्रदान किया जिससे द्वितीय महायुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना में काफी सहायता मिली। दूसरे शब्दों में राष्ट्रसंघ ने एक ऐसा आधार प्रदान किया जिस पर आगे चलकर संयुक्त राष्ट्रसंघ का भव्य भवन खड़ा किया गया। इस दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्रसंघ का उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माता भी इसे राष्ट्रसंघ का उत्तराधिकारी ही मानते थे। अमरीका के राज्य-सचिव कर्डेल हल, जिन्हें रूजवेल्ट संयुक्त राष्ट्र का जनम कहा करते थे, ने अपने स्मरण-पत्र में इसे राष्ट्रसंघ कहकर ही संबोधित किया था। 19 अप्रैल, 1946 को राष्ट्रसंघ की महासभा ने राष्ट्रसंघ की समाप्ति करने की घोषणा करते हुए उसकी सम्पत्ति आदि संयुक्त राष्ट्रसंघ को हस्तान्तरित कर दी और इस तरह विधिवत् राष्ट्रसंघ की जगह संयुक्त राष्ट्रसंघ ने ले ली।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या संयुक्त राष्ट्रसंघ राष्ट्रसंघ की अनुकृति है या उससे अधिक उत्कृष्ट संस्था है? इस प्रश्न के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ हैं। पहली विचारधारा के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ में कोई अन्तर नहीं है। दोनों के उद्देश्य, प्रकृति और संविधान एक जैसा है। इस विचारधारा के प्रमुख प्रवर्त्तक गुडरीच, शुमाँ, निकोलास तथा पामर एवं परकिन्स है। शुमाँ तो चार्टर को प्रसंविदा का प्रतिरूप मानते हैं।[29] पामर एवं परकिन्स के भी यह विचार है। उनके अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा संयुक्त राष्ट्रसंघ को बहुत-सी बातें राष्ट्रसंघ को बहुत-सी बातें राष्ट्रसंघ से

---

[29] "The U.N. is the League in a new guise, despite the several, respects in which it differ from its predecessor".
-F.L. Schuman : op. cit., p. 207

विरासत के रूप में मिली है अर्थात् वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की प्रकृति बहुत-कुछ अपने पूर्वगामी संगठन से मिलती-झुलती है।[30] इसके विपरीत दूसरी विचारधारा के प्रतिपादक क्लाइड ईगल्टन[31] तथा डॅलिवे- जैसे लवे- जैसे लेखक हैं। वे दोनों संगठनों को एकदम भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर निश्चयात्मक रूप से अधिक उत्कृष्ट है। जैसा कि डॉलिवे ने लिखा है: ''संयुक्त राष्ट्रसंघ वास्तव में राष्ट्रसंघ से अधिक शक्तिशाली है और इसकी शक्ति में मानव जाति की आशा छिपी हुई है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा राष्ट्रसंघ के पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कारण यह कि जहाँ दोनों संस्थाओं में अनेक बातों में समानता है तो अनेक बातों में असमानता भी। अत: संयुक्त राष्ट्रसंघ राष्ट्रसंघ से कहाँ तक श्रेष्ठ हैं, इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि दोनों में कौन-कौन सी समानताएँ और विषमताएँ हैं।

1.3.3. समानताएँ (Similarities)

उद्देश्य, भावना और प्रकृति की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्रसंघ की अनुकृति ही लगता है। यह एक विचित्र संयोग की बात है कि दोनों संस्थाओं के मुख्य प्रणेता अमरीकी राष्ट्रपति ही थे, दोनों का जन्म महायुद्धों से हुआ और दोनों को विरासत में युद्ध-ध्वस्त विश्व की जटिल आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याएँ ही मिली है। गौर से देखने पर दोनों संस्थाओं में कई समानताएँ परिलक्षित होती हैं:

1.3.1.1.उद्देश्य की दृष्टि से

उद्देश्य की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ में मूलभूत समानता है। राष्ट्रसंघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ का भी मूल उद्देश्य शांति, सुरक्षा एवं मानव-कल्याण है। दोनों की स्थापना की प्रेरणा युद्ध की विभीषिकाओं से प्राप्त हुई अन्तर केवल यह है कि राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा के अपेक्षा संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के इन उद्देश्यों की विस्तारपूर्वक चर्चा मिलती है।

1.3.3.2. आधारभूत विशेषता की दृष्टि से

आधारभूत विशेषता की दृष्टि से संगठनों में पर्याप्त समानता है। राष्ट्रसंघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ भी सर्वोच्य राज्य (Super State) अथवा विश्व सरकार नहीं है। राष्ट्रसंघ की भाँति यह भी संप्रभु राज्यों का एक संघ है। सदस्य राज्यों के सहयोग के बिना दोनों सफलतापूर्वक अपने लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकते। शक्ति-प्रयोग के अधिकार पर कुछ प्रतिबंधों को छोड़कर दोनों संस्थाओं में सभी सदस्य-राजयों को वैधानिक रूप से स्वतंत्र रखा गया है। इस प्रकार वर्तमान विश्व-संस्था की स्थापना भी, पूर्वगामी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की भाँति प्रभुता-सम्पन्न राष्टों के सीमित अधिकार सम्पन्न संगठन के रूप में भी हुई है। इसने भी राष्ट्रसंघ की भाँति सदस्य-राज्यों की संप्रभुता का आदर करना स्वीकार किया है और प्रत्येक देश की बराबरी का दर्जा दिया है। इसके किसी भी अंग को सदस्य-राजयों की सहमति के बिना बाध्यकारी निर्णय लेने का अधिकार नहीं है।

---

[30]Parmer & Parkins: op.cit., p. 203

[31] See "Covenant of the League of Nations and the Charter of the U.N."
- Points of difference in the U.N. (ed.) Falk & Mendlowitz), pp. 10-16.

शुमाँ ने लिखा है: ''राष्ट्रसंघ के समान संयुक्त राष्ट्रसंघ केवल सत्ताधारी राज्यों द्वारा तथा केवल उनके सम्बन्ध में कार्रवाई कर सकता है। उसके किसी भी अंग को न तो व्यक्तियों के सम्बन्ध में कोई कानून बनाने का अधिकार है, न ही किसी प्रकार के कर लगाने, व्यापार की व्यवस्था करने अथवा स्वतंत्र सेनाएँ रखने का।'' पामर और परकिन्स के मतानुसार ''अपने मुल ढाँचे में संयुक्त राष्ट्रसंघ की तरह स्वतंत्र राष्ट्रों का एक संगठन है। यह संघ शासन की तरह की संस्था नहीं है।''[32]

1.3.3.3. संगठन की दृष्टि से

संगठन के दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ में काफी समानता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रधान और सहायक अंगों के निर्माण में राष्ट्रसंघ के संगठन से प्रेरणा मिली है। यह कहा जाता है कि राष्ट्रसंघ की असेम्बली, कौंसिल, सचिवालय तथा स्थायी, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में आश्चर्यजनक समानता देखने को मिलती है। महासभा असेम्बली का, सुरक्षा परिषद, कौंसिल का तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का ही प्रतिरूप है। जैसा कि वेन्डेनबोश तथा होगन ने कहा है: ''संगठन की दृष्टि से राष्ट्रसंघ की कौंसिल और सुरक्षा परिषद् में कोई अन्तर नहीं है और न असेम्बली का संगठन ही महासभा से भिन्न है। जहाँ तक सचिवालय का सवाल है चार्टर और प्रसंविदा के उपबंधों में कोई फर्क नहीं है। यह ठीक है कि स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय राष्ट्रसंघ का अभिन्न अंग नहीं था जबकि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्रसंघ का अभिन्न अंग है किन्तु इस वैधानिक असमानता के अलावे बनावट, क्षेत्राधिकार तथा प्रक्रिया के दृष्टिकोण से दोनों न्यायालय एक-दूसरे से मिलते-झुलते हैं।''[33] संयुक्त राष्ट्रसंघ की सरंक्षण-प्रणाली को देखकर राष्ट्रसंघ की न्याय प्रणाली की याद आती है। 19वीं सदी के उपनिवेदशवाद की तुलना में राष्ट्रसंघ की न्याय प्रणाली एक श्रेष्ठ कदम थी, क्योंकि इसके अन्तर्गत राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए प्रदेशों पर अन्तर्राष्ट्रीय देखभाल एवं नियंत्रण की बात सिद्धांतत: स्वीकार कर ली गई थी। द्वितीय महायुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ में पुन: इसी सिद्धांत के आधार पर संरक्षण व्यवस्था की आधारशिला स्थापित की गई। जहाँ तक गैर-राजनीतिक कार्यो का सम्बन्ध है। राष्ट्र संघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न सहायक अंग भी अन्तर्राष्ट्रीय जगत को गरीबी, बीमारी, भुखमरी, अशिक्षा, अज्ञान आदि से मुक्ति दिलाकर वहां सामाजिक सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक विकास करना चाहते हैं।

1.3.3.4. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान की व्यवस्था की दृष्टि से

दोनों विश्व-संस्थाओं की स्थापना मूलत: युद्ध के उन्मूलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाये रखने के उद्देश्य से की गई थी। फलत: दोनों के संविधानों में अन्तर राज्य विवादों के शांतिपूर्ण समाधान की व्यवस्थाओं को प्रमुखता दी गई है। प्रसंविदा एवं चार्टर के मूल उद्देश्य तथा संकल्प में भी सर्वप्रथम इन्हीं का उल्लेख है। अन्तर्राज्य विवाद के संदर्भ में दोनों विश्व-संस्थाएँ सर्वप्रथम उनके शांति पूर्ण समाधान पर बल देती हैं। विवादी पक्ष एवं विवाद सुलझाने का शांतिपूर्ण तरीका अपनावें, अपने इच्छनुकूल पंच-फैसला, संधिवार्ता, मध्यस्थता या वैधानिक झगड़ा होने पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का आश्रय ले सकते हैं। इन तरीकों से विवाद नहीं सुलझें अथवा एक या दोनों पक्ष इसके

[32] Palmer & Perkins : op. cit., p. 1073
[33] Vadenbosch & Hogan: op. cit., p. 61

लिए तैयार नहीं हों तब विश्व-संस्थाएँ हस्तक्षेप कर सकती है। किन्तु पहले उन्हें सुलह-समझौता कराने की कोशिश करनी होगी। आवश्यकता पड़ने पर वे स्वंय विवाद के कारणों की जांच कर सकती हैं या मध्यस्थता करा सकती है। दोनों विश्व-संस्थाओं में इस संदर्भ में समानता है।

1.3.3.5. विरोधात्मक कार्यवाही की दृष्टि से

राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा के भाँति संयुक्त के चार्टर में निरोधात्मक कार्रवाइयों का थोड़ा विस्तार के साथ विधान किया गया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के निरोधात्मक कार्यवाही का विधान राष्ट्रसंघ से भिन्न है, यद्यपि यह भिन्नता बहुत-कुछ कार्यविधि सम्बन्धी तथा ऊपरी ही अधिक है। राष्ट्रसंघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी किसी महान शक्ति के विरुद्ध कोई निरोधात्मक कार्यवाही कर सकना सम्भव नहीं है। राष्ट्रसंघ के जीवन-काल में निरोधात्मक कार्यवाही की व्यवस्था की जर्मनी, इटली और जापान के द्वारा खुलकर अवेहलना की गयी और वह कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं हो सकता। अपने सम्पूर्ण जीवन-काल में कौंसिल ने कभी भी सैनिक व्यवस्था लागू करनेक की सिफारिश नहीं की। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में निरोधात्मक कार्यवाही करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय संकट से निबटने का पूर्ण दायित्व सुरक्षा परिषद को सौंपा गया है। अनुच्छेद 2 में यह व्यवस्था है कि परिषद् द्वारा लिए गए निर्णय सदस्य-राज्यों के लिए बाध्यकारी होंगे। सैनिक कार्यवाही को अधिक कारगर बनाने के लिए तथा परिषद् द्वारा लिए गए निर्णय सदस्य-राज्यों के लिए बाध्यकारी होंगे। सैनिक कार्यवाई को अधिक कारगर बनाने के लिए तथा परिषद् को सहायता प्रदान करने के लिए सैनिक स्टाफ समिति की व्यवस्था की गयी है। परन्तु ये सारी व्यवस्थाएँ तभी प्रभावी होंगी जब सुरक्षा परिषद् की महान शक्तियाँ एकमत हों। स्थायी तथा महान् शक्तियों के मतैक्य की व्यवस्था के चलते चार्टर के सुरक्षा-सम्बन्धी विधान तात्विक दृष्टि से राष्ट्रसंघ के विधान से अधिक कारगर नहीं हैं। गुडरीच के अनुसार, ''जहाँ तक निरोधात्मक कार्यवाही का सवाल है, राष्ट्रसंघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ भी केवल छोटे राज्यों के बीच शांति कायम रखने वाला संगठन है।''

1.3.3.6. राज्य-संप्रभुता की दृष्टि से

राष्ट्रसंघ का संगठन राज्य-संप्रभुता की ठोस शिला पर आधारित था। अत: कानून की दृष्टि से वह सदस्य-राष्ट्रों के सहयोग पर आश्रित था। सदस्यों के ऐच्छिक सहयोग के अंत के साथ ही राष्ट्रसंघ का भी अन्त हो गया। राष्ट्रसंघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ भी राज्य संप्रभुता की ठोस शिला पर आधारित है। अत: सदस्यों के सहयोग के बिना संयुक्त राष्ट्रसंघ भी सफलतापूर्वक अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकता।

1.3.3.7. गैर-राज्य प्रदेशों की सदस्यता की दृष्टि से

यद्यपि सिद्धांत संयुक्त संप्रभु राज्यों का संघ है किन्तु राष्ट्रसंघ की यह परम्परा कायम रही है कि वैसे प्रदेश जो तकनीकी दृष्टि से राज्य नहीं थे, उनको भी संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य स्वीकार किया गया।

1.3.3.8. निष्क्रियता की दृष्टि से

राष्ट्रसंघ की निष्क्रियता का कारण कोई सांविधानिक गतिरोध नहीं था। अपने सदस्य-राष्ट्रों के पारस्परिक द्वेष तथा वैमनस्य के कारण ही वह असफल हुआ। संयुक्त राष्ट्रसंघ के दो सदस्यों में इतनी ताकत थी कि वे दुनियों के किसी प्रश्न का न्यायपूर्ण

समाधान लागू करा सकते थे किन्तु उनकी आपसी प्रतिस्पर्द्धा ईर्ष्या तथा शंका के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ के समक्ष प्रस्तुत छोटी-सी-छोटी समस्या भी शीतयुद्ध का अंग बन जाती थी। बड़ी शक्तियों में मतभेद के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ पंगु बना रह जाता है।

उपर्युक्त समानताओं के आधार पर अनेक विद्वान संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ में कोई अन्तर नहीं मानते । गुडरीच का कहना है कि ''यह तथ्य कि सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ राष्ट्रसंघ का ही एक रूप है, कोई आश्चर्य और शंका का विषय नहीं।''[34] शुमाँ के अनुसार ''राष्ट्रसंघ को नया बाना पहनाकर ही संयुक्त राष्ट्रसंघ बना दिया गया है।''[35] वाल्टर भी इस मत का समर्थन करते हुए कहता है कि ''कुछ आंशिक अपवादों को छोड़कर राष्ट्रसंघ के प्रत्येक विशिष्ट कार्य एवं अभिकरण को सुयक्त राष्ट्रसंघ में पुनजीवित किया गया है।''[36]

इस प्रकार के विचारक यह मानते हैं कि मतभेदों के होते हुए भी यह कहना उचित है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ वास्तव में राष्ट्रसंघ से मिलती-झुलती संस्था है। सम्भवतः इन लेखकों का यह विश्वास है कि यदि राष्ट्रसंघ को फिर से पुनर्जीवित कर दिया जाता तो बहुत अधिक परिश्रम बच जाता और बहुत-से कानूनी प्रश्न ढल जाते। उनके विचार में संयुक्त राष्ट्रसंघ को इसलिए स्थापित किया गया क्योंकि राष्ट्रसंघ के ऊपर विफलता का कलंक लगा हुआ था। दूसरे, रूस को इससे निकाल दिया गया था, इसलिए रूस वालों को उससे निकलने से जो धक्का लगा था उसकी उन्हें स्मृति थी। तीसरे, राष्ट्रसंघ संयुक्त राज्य अमेरिका में एक राजनीतिक विवाद का विषय बन गया था इसलिए कि अमेरिका उसका सदस्य नहीं बना था। अतः राष्ट्रसंघ को पुनर्जीवित करने का अर्थ था अनेक सशक्त राज्यों के विरोधों को आमंत्रित करना। यह आशा की गयी कि राष्ट्रसंघ की जगह संयुक्त राष्ट्रसंघ को स्थापित करने में किसी को आपत्ति नहीं होगी।

---

[34] Goodrich : op. cit., p. 20.
[35] Schuman: op.cit., p. 207.
[36] F.W. Walter: A History of the League of Natlons, p. 813.

1.3.4. असमानताएँ (Disimilarities)

राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ के आपसी संबंध के विषय में जिन तर्कों का ऊपर उल्लेख किया गया है उनका सारांश यह है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ के बीच कोई तात्विक अन्तर नहीं है। दोनों एक ही नाटक के दो अंक अथवा एक ही सिक्के के दो पहलू है। परन्तू वास्तविक स्थिति इससे पूर्णतया भिन्न है। यह ठीक है कि राष्ट्रसंघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ एक सर्वोपरि राज्य नहीं है और न यह विश्व सरकार का ही रूप है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि यह राष्ट्रसंघ की ही सच्ची प्रतिलिपि है। वास्तव में दोनों संस्थाएँ अपनी प्रकृति, भावना और बनावट में एक-दूसरे से काफी भिन्न है। राष्ट्रीय संप्रभुता का सिद्धांत विश्व-राजनीति की एक कठोर सच्चाई है। यह तब तक विश्व-राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों, चाहे वह राष्ट्रसंघ हो अथवा संयुक्त राष्ट्रसंघ का आधार बना रहेगा जब तक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की जगह विश्व-सरकार नहीं ले लेती। फिर यह कहना भी उचित नहीं मालूम पड़ता कि नए संगठन की विकासशील प्रकृति को बिल्कुल भूल जाते हैं। जैसे-जैसे अन्तर्राष्ट्रीय समाज का विकास होता जा रहा है, वैसे-वैसे अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ बनती जा रही है। उदाहरणार्थ, 19वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाए रखने के लिए ब्यूरो बनाए गए और बहुत-से सम्मेलन किए गए। बीसवीं शताब्दी में विश्व-शांति के लिए राष्टसंघ की स्थापना करके एक नियमित संगठन स्थापित किया गया। इस प्रकार राष्ट्रसंघ अपने क्षेत्र का पहला संगठित तथा व्यापक प्रयोग था। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद उक्त उद्देश्य के हेतु एक नयी संस्था की स्थापना की गयी जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के नाम से विख्यात है। उसके निर्माण में राष्ट्रसंघ के अनुभवों से लाभ उठाकर उसे अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की परम्परा की अगली कड़ी है। अत: दोनों संगठनों में भिन्नता स्वाभाविक है। जैसा कि गुडरीच तथा हैम्ब्रो ने लिखा है: ''अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की समस्या को हल करने की दिशा में यह नया पगं न भी हो परन्तु इतना तो निश्चयात्मक रूप से कहा ही जा सकता है कि यह विकास की प्रक्रिया की ऐसी अवस्था है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय संगठन परिवर्तनशील विश्व-समस्याओं एवं आवश्यकताओं के अनुसार अपने को ढालने के लिए विकसित हुआ है।''[37] ऐस परिस्थिति में संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ में भिन्नता अवश्यम्भावी है। ईगल्टन ने ठीक ही लिखा है: ''यद्यपि दोनों संस्थाओं की बनावट तथा ढाँचे में एकरूपता है फिर भी इन दोनों में मौलिक भेद हैं जिनको जोड़कर यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ विचार और प्रकृति में राष्ट्सां के बिल्कुल मित्र है।'' यहाँ हम इस भिन्नता की ब्योरेवार चर्चा करेंगे।

1.3.4.1. निर्माणकालीन परिस्थितियों में अन्तर

संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ की जन्म-कालीन परिस्थितियों में भिन्नता पायी जाती है। राष्ट्रसंघ की स्थापना प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद हुई थी किन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना युद्ध की समाप्ति के पूर्व ही हो गयी थी। राष्ट्रसंघ के विधान को पेरसि शांति-सम्मेलन में एक आयोग द्वारा तैयार किया गया था जिसमें फ्रांस, इटली, जापान, ब्रिटेन और अमरीका के दो-दो प्रतिनिधि और अन्य मित्र राष्ट्रों के पाँच प्रतिनिधि थे। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का निर्माण जिन सम्मेलनों में हुआ था उनका

[37] Goodrich & Hambro: The Charter of the Uniuted Nations, p. 82.

आयोजन युद्ध के दौरान ही हो गया था। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन, जहाँ संयुक्त राष्ट्रसंघ के विधान को अन्तिम रूप दिया गया था, 25 अप्रैल से 26 जून, 1945 तक अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को नगर में हुआ था। अभी जापान से युद्ध चल ही रहा था।

निर्माणकालीन परिस्थितियों में अन्तर होने के कारण दोनों संगठनों में भी अन्तर पाए जाते हैं। शांति-सम्मेलन में निर्मित होने के कारण राष्ट्रसंघ का भाग्य शांति-संघियों के साथ जोड़ दिया गया। वर्साय-संधि के साथ जुड़े रहने के कारण राष्ट्रसंघ के साथ भी उसकी त्रुटियाँ चिपकी हुई थी। शांति-संधियों के साथ इसका राजनीति साहचर्य होने के कारण राष्टसंघ सदैव आलोचना का विषय बना रहा ।वह विजेतरा राष्ट्रों की संस्था के रूप में विख्यात रहा। इसके चलते राष्ट्रसंघ बदनाम हो गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ का द्वितीय महायुद्ध के बाद हुई या होने वाली शांति-संधियों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक स्वतंत्र अभिकरण है। इसका उद्देश्य विजयी राष्ट्रों के शोषण या दमन को बनाए रखना नहीं वरन् उसे यथासम्भव कम अथवा समाप्त कर देना है। चार्टर की धारा 107 द्वितीय महायुद्ध के शत्रु राजयों के विरुद्ध उठाए जाने वाले कदमों से संयुक्त राष्ट्रसंघ को मुक्त रखती है। यह विजेता और विजित, छोटे और बड़े- सभी देखों को समानता का दर्जा देता है। इस दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा से अधिक श्रेष्ठ और उदार है।

1.3.4.2. प्रसंविदा की तुलना में चार्टर एक व्यापक प्रलेख

संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर एक लम्बा प्रलेंख है जो विश्व-शांति की सभी समस्याओं से सम्बन्धित है। इसमें एक प्रस्तावना 111धाराएँ हैं। इसके विपरीत राष्ट्रसंघ का प्रसंविदा एक छोटा प्रलेख था। इसमें केवल 26 धाराएँ थी और उसका क्षेत्र अविकसित था। इसमें विश्व-राजनीति के प्रति व्यापक दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया था।

1.3.4.3. प्रसंविदा और चार्टर की प्रस्तावना में अन्तर

अन्य संगठनों के विधानों की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ का विधान भी एक प्रस्तावना से शुरू होता है। परन्तु दोनों की प्रस्तावना में काफी अन्तर है। राष्ट्रसंघ की प्रस्तावना निम्न शब्दों में शुरू होती है: ''समझौता करने वाले महान् पक्ष, ...राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा को स्वीकार करते हैं।'' इसकी व्याख्या अल्फ्रेड जिम्मर्न ने निम्न प्रकार से की है: ''राष्ट्रसंघ का संगठन संप्रभु राज्यों में हुआ जिन्हेंने स्वेच्दा से एक नैतिक अथवा यों कहें कि एक धार्मिक इकरारनामें पर हस्ताक्षर किया।''[38] इस प्रकार राष्ट्रसंघ जनता की धरोहर न होकर सराकारों का यंत्र था। वह जनता की इच्छा का प्रतीक नहीं था। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रस्तावना निम्न शब्दों में शुरू होती है: ''संयुक्त राष्ट्रसंघ के हम लोग ... संयुक्त राष्ट्रसंघ के नाम से अभिहित एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करते हैं।'' संयुक्त राष्ट्रसंघ के हम लोग शब्द काफी प्रगतिशील प्रतीत होते हैं। इससे यह प्रगट होता है कि नया संगठन राज्यों के अध्यक्षों से ही सम्बन्ध नहीं रखता बल्कि संयुक्त राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक से सम्बन्धित है। यह उन्हीं के नाम पर और उन्हीं की भलाई के लिए स्थापित किया गया है। जैसा कि आइकल बर्जन ने लिखा है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर जो हम संविदा करने वाले महान दल की अपेक्षा 'हम संयुक्त राष्ट्रों

[38] Alfred Zlmmern" The League of Natlons and the Rule of Law, P. 283

के लोग' से शुरू होता है, वह सिर्फ आकस्मिक नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि अन्ततः संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता राजनीतिज्ञों एवं जनता, जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है, पर निर्भर करती है।''

प्रसविदा की प्रस्तावना चार्टर की प्रस्तावना की तुलना में काफी संक्षिप्त है। इसमें केवल अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का उल्लेख है। चार्टर की प्रस्तावना में शांति और सुरक्षा के अलावा सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक बातों का उल्लेख है। इस प्रकार चार्टर की प्रस्तावना अधिक स्पष्ट है तथा इसमें सम्पूर्णता (Comprehensiveness) का समावेश है। इसके अलावा दोनों संगठनों की नामावली में भिन्नता उसके स्वरूप की विभिन्नता को स्पष्ट करती है। 'लीग' में संयुक्त निकाय पर नहीं वरन् उसकी इकाइयों पर जोर है जबकि संयुक्त राष्ट्रसंघ अधिक संयुक्त एवं सावयिक संगठन की स्थिति को अभिव्यक्त करता है।

1.3.5. संगठन में अन्तर

संयुक्त राष्ट्रसंघ का संगठन राष्ट्रसंघ की तुलना में अधिक व्यापक और विस्तृत है। राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंग केवल तीन थे- असेम्बली, कौंसिल, और सचिवालय। संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रधान अंगों की संख्या में छह है- आम सभा, सुरक्षा परिषद, आर्थिक-सामाजिक परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, संरक्षण परिषद् तथा सचिवालय। इन अंगों में आर्थिक-सामाजिक परिषद पूर्णतया नवीन है क्योंकि इसकी रचना इस बात को ध्यान में रखकर दी गयी है कि आर्थिक एवं सामाजिक न्याय के बिना विश्व-शांति की स्थापना नहीं हो सकती। राष्ट्रसंघ का विधान मूलतः एक राजनीतिक व्यवस्था का विधान था। उसमें राजनीतिक विवादों के शांतिपूर्ण समाधान, सामूहिक सुरक्षा, प्रसंविदा का उल्लंघन करने वाले राज्य के विरुद्ध प्रतिबन्धात्मक कार्यवाही करने आदि सम्बन्धी विधानों को प्रमुखता दी गयी थी। अन्य बातें सर्वथा गौण थी। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा पर समुचित ध्यान देते हुए अन्य समस्याओं पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। इसमें आर्थिक, समाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय कार्य तथा ऐसे ही अन्य विषयों पर विशेष जोर दिया गया है। चार्टर में मानव अधिकारों का उल्लेख एक नयी बात है। राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा में इस तरह की कोई बात नहीं थी। इन क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्रसंघ के अनेक विशिष्ट अभिकरण जैसे अन्तर्राष्ट्रय मुद्रा कोष, विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनेस्को आदि कार्यरत है। थोड़े में, राष्ट्रसां की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्रसंघ का क्षेत्र काफही व्यापक है। यह प्रतिबन्धात्मक होने के साथ रचनात्मक भी है।

1.3.5.1. सदस्यता-सम्बन्धी अन्तर

जहाँ तक सदस्यता का प्रश्न है, राष्ट्रसंघ की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्रसंघ अधिक प्रतिनिध्यात्मक है। राष्ट्रसंघ मूलतः एक यूरोपीय संगठन था। यूरोप के बाहर के बहुत-से राज्य इसके सदस्य नहीं थे। विशेषकर एशिया और अफ्रीका का प्रतिनिधित्व उनके क्षेत्रों को देखते हुए नहीं बराबर था। जैसा कि गुडरीच तथा हैम्ब्रो ने लिखा है: ''वास्तव में राष्ट्रसंघ यूरोप की समस्याओं से अधिक सम्बन्धित था और 19वीं शताब्दी के विचारों से अधिक प्रभावित था। यूरोपवासियों का विचार था कि पिछड़ी हुई जातियों के विकास का भार उनके सिर पर है।'' इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्रसंघ में सभी क्षेत्रों के प्रतिनिधि हैं। वर्तमान संस्था कवेल यूरोपीय देशों का अखड़ा-मात्र नहीं है। इसमें एशिया और अफ्रीका

के राज्यों को प्रभावशाली प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इसके अलावा राष्ट्रसंघ के समग्र जीवन में कभी भी ऐसा अवसर नहीं आया जब इसमें सभी महान् शक्तियाँ शामिल रही हों। परन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ के साथ इस तरह की बात नहीं है। आज विश्व की सभी महान शक्तियाँ संयुक्त राष्ट्रसंघ में शामिल हैं। इस तरह विश्व के राष्ट्रों का जैसा जमघट संयुक्त राष्ट्रसंघ में देखने को मिलता है, वैसा राष्ट्रसंघ में कभी भी नहीं देखने को मिला। ए. पेल्ट के मतानुसार ''इन दोनों संस्थाओं के संगठन में महत्वपूर्ण अन्तर है।''[39]

नए सदस्यों के प्रवेश के सम्बन्ध में भी दोनों संगठनों के विधान में अन्तर है। नये सदस्यों के प्रवेश का अधिकार प्रसंविदा में केवल असेम्बली को दिया गया था। असेम्बली दो-तिहाई बहुमत से किसी भी स्वशासित राष्ट्र, उपनिवेश या क्षेत्र को राष्ट्रसंघ का सदस्य बना सकती थी। चार्टर में इसके लिए सुरक्षा-परिषद् की अनुशंसा पर महासभा के द्वारा प्रवेश का विधान किया गया है। परन्तु महाशक्तियों के मतैक्य के अभाव में सुरक्षा परिषद् की अनुशंसा सम्भव नहीं है। इसी के कारण अनेक देशों में वर्षों तक संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी है। राष्ट्रसंघ में सदस्यता-त्याग की बहुत ही सरल व्यवस्था थी। कोई भी सदस्य-राज्य दो वर्षों की सूचना देकर राष्ट्रसंघ से अलग हो सकता था। चार्टर में इस तरह की कोई व्यवस्था नहीं है।

1.3.5.2. अधिकार-क्षेत्रों का विभाजन

संयुक्त राष्ट्रसंघ में राष्ट्रसंघ की अपेक्षा विभिन्न अंगों के बीच अधिकार-विभाजन अधिक स्पष्ट तथा निश्चित है। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत असेम्बली को कौंसिल के समान ही अधिकार प्राप्त थे। शांति और सुरक्षा-विषयक मामलों में दोनों को प्रभावी निर्णय लेने होते थे। कार्य और अधिकार का विधान करते हुए संघ-प्रसंविदा ने महासभा तथा परिषद् की एक-सी व्यवस्था थी। ''ये दोनों राष्ट्र संघ के कार्य-क्षेत्र में आनेवाले अथवा दुनिया की शांति और सुव्यवस्था को प्रभावित करने वाले किसी भी मामले को अपनी बैठकों में निबटा सकती है।'' (धारा-3, अनुच्छेद-3, तथा धारा-4, अनुच्छेद-4)। इस प्रकार संघ के इन दो प्रमुख अंगों को समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त थे। इसके चलते इन दोनों के कार्यों के बारे में अनिश्चिय और संदेह विद्यमान था अत: संघ की स्थिति अन्त तक दुर्बल रही। पर वर्तमान चार्टर में इस प्रकार की दुर्बलता के प्रति सावधानी बरती गई है। शांति और सुरक्षा-विषयक मामलों निर्णय लेने का समग्र अधिकार सुरक्षा परिषद् को सौंप दिया गया है। एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा का सारा दायित्व उसी के ऊपर रख दिया गया। महासभा को विचारात्मक एवं प्रस्ताव पास करने वाला कार्य सौंपा गया। परन्तु कार्यों का यह विभाजन परिस्थितियों के बदलने के चलते व्यवहार में टुट गया।[40] 1950 में पारित 'शांति के लिए एकता का प्रस्ताव' द्वारा महासभा को शांतिरक्षा का कार्य मिल गया है, परन्तु वह इसे तभी कर सकती है जब सुरक्षा परिषद निषेधाधिकार के कारण विफल हो जाये और इस प्रकार विश्व-शांति भंग होने का खतरा पैदा हो जाये। फिर भी, इस

---

[39] Lecture delivered by Mr. A. Pelt, Asst. Secrertary General at Lakesucess, April 4, 1949

[40] In actual operation of the U.N.O., the breaking down of this concept of specialisation has assumed the proportion of a major constitutional revolution. Gradually and increasingly the General Assembly has intruded into the Security Council's peculiar sphere."

-InIs L. Claude.

अवस्था में भी महासभा सम्बन्धित प्रश्न पर विचार, विवाद और सिफारिश ही कर सकता है क्योंकि कार्यवाही करने का अधिकार केवल सुरक्षा परिषद् को ही है।

1.3.5.3. अधिवेशन तथा मतदान-प्रणाली में अन्तर

संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ में एक अन्य महत्वपूर्ण अन्तर उनके अंगों के अधिवेशनों तथा मतदान-प्रणाली से सम्बद्ध हैं। राष्ट्रसंघ की असेम्बली और कौंसिल के अधिवेशन बहुत थोड़े दिनों के लिए होते थे। कौंसिल की बैठक वर्ष में तीन-चार बार होती थी और एक सप्ताह या दस दिनों तक चलती थी। उसी तरह प्राविधिक समितियाँ वर्ष में केवल एक बार अपना अधिवेशन करती थी और उनका अधिवेशन लगभग दस से पन्द्रह दिनों तक चलता था। परिणामस्वरूप कौंसिल तथा समितियाँ अपने अधिवेशनों में कार्य-भार में दबी रहती थी। परन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत यह स्थिति बदल गयी है।[41] वर्तमान संगठन में महासभा के अधिवेशन महीनों तक चलते हैं। बहुत बार कार्याधिक्य होने से महासभा को अपना अधिवेशन दो भागों में करना पड़ता है। आवश्यकता पड़ने पर इसके विशेष अधिवेशन भी आमंत्रित किये जा सकते हैं। जहाँ तक सुरक्षा परिषद का सवाल है, यह बराबर क्रियाशील रहती है। इसकी बैठक 14 दिन में एक बार अवश्य होती है। इसके सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि संघ के मुख्यालय में हमेशा उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार यह विश्व-संस्था की निरंतर बनी रहने वाली कार्यकारिणी है। संकट-काल में इसकी बैठकें अविलम्ब बुलायी जा सकती है। संघ के अन्य अंगों की बैठकें भी वर्ष में दो या तीन बार होती रहती हैं जो करीब-करीब पाँच-छह सप्ताह तक चलती हैं। फलस्वरूप जैसा कि एक लेखक ने कहा है कि ''सयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत कार्य की गति राष्ट्रसंघ की तुलना में अधिक तेज हैं तथा कार्यो का आयतन भी राष्ट्रसंघ की अपेक्षा काफी बड़ा है।''

मतदान-प्रणाली के सम्बन्ध में भी संयुक्त राष्ट्रसंघ का विधान राष्ट्रसंघ से अधिक प्रगतिशील है। राष्ट्रसंघ की असेम्बली और कौसिंल में कुछ अपवाद को छोड़कर सभी विषयों पर निर्णय लेने के लिए उपस्थित सदस्यों का मतैक्य आवश्यक था। इसका तात्पर्य यह था कि प्रत्येक सदस्य-राज्य को, चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, निषेध का अधिकार प्राप्त था। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में समस्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय दो-तिहाई बहुमत से और अन्य विषयों पर केवल साधारण बहुमत से लिए जाते हैं। सुरक्षा परिषद् में भी प्रक्रिया-सम्बन्धी निर्णय 15 सदस्यों में से 9 सदस्यों की स्वीकृति से हो जाता है। परन्तु अन्य महत्वपूर्ण मामलों में 9 मतों में पांचों स्थायी सदस्यों का एकमत पक्ष में होना आवश्यक है। इस प्रकार सुरक्षा परिषद में निषेद का अधिकार सिर्फ 5 स्थायी सदस्यों को प्राप्त है, राष्ट्रसंघ की भांति सभी छोटे-बड़े राज्यों को नहीं। नए संगठन-में कोई भी छोटा राज्य, जो सुरक्षा परिषद का सदस्य है, अपने निषेधाधिकार द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यवाही में बाधा नहीं उपस्थित कर सकता। थोड़े में, निषेधाधिकार को केवल पाँच बड़ी शक्तियों तक सीमित करके संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने को राष्ट्रसंघ ने अपने को राष्ट्रसंघ से अधिक प्रगतिशील संगठन साबित कर दिया है। बेन्डेनबसोश तथा

[41] "The temo of work is much more rapid than it was at Geneva and the volume of work too is much greater."

होगन ने ठीक ही लिखा है: ''चार्टर के अन्तर्गत महासभा और सुरक्षा परिषद् में मतदान की व्यवस्था राष्ट्रसंघ की अपेक्षा अधिक उदार है।''[42]

1.3.5.4. दोनों संस्थाओं में संशोधन को लागू करने में भिन्नता

संशोधन के मामले में दोनों संगठनों में कुछ भिन्नताएं है। राष्ट्रसंघ के विधान में संशोधन लोने के लिए असेम्बली द्वारा प्रस्ताव का एकमत से पारित होना आवश्यक था। साथ ही, राष्ट्रसंघ के दो-तिहाई सदस्यों तथा कौंसिल के सभी सदस्यों द्वारा उसकी अभिपुष्टि आवश्यक थी। चार्टर में संशोधन का प्रस्ताव महासभा के दो-तिहाई बहुमत से पारित होता है और सुरक्षा परिषद के पांचों स्थायी सदस्यों के मत सहित संयुक्त राष्ट्रसंघ के दो-तिहाई सदस्यों द्वारा अभिपुष्ट होकर लागू होता है। इस तरह राष्ट्रसंघ में जहाँ संशोधन पर सभी सदस्यों को 'वीटो' प्राप्त था, अब वह सिर्फ महान राष्ट्रों तक सीमित है। संविदा में यह व्यवस्था थी कि यदि कोई सदस्य-राज्य संशोधन का विरोध करे तो उसका यह अर्थ होता था कि वह राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं रहा। इस तरह की व्यवस्था चार्टर में नहीं है।

1.3.5.5. संरक्षण पद्धति के सम्बन्ध में अन्तर

संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरक्षण-व्यवस्था राष्ट्रसंघ की मैन्टेड प्रणाली से बेहतर है। सर्वप्रथम, मैन्डेट प्रणाली केवल शत्रु राज्यों में छीने गये प्रदेशों पर लागू होती थी। परन्तु संरक्षण प्रणाली का क्षेत्र अधिक व्यापक है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तीन क्षेत्रों को रखने को विधान है: (क) मैडेट प्रणाली के अन्तर्गत बचे हुए प्रदेश, (ख) द्वितीय महायुद्ध के कारण शत्रु के छीने गये प्रदेश, तथा (ग) ऐसे प्रदेश जो स्वेच्छा से इसके अन्दर रखे जाएँ। चार्टर का 11 वाँ अध्याय सभी पराधीन देशों पर लागू (ग) ऐसे प्रदेश जो स्वेच्छा से इसके अन्दर रखे जाएँ। चार्टर का 11वाँ अध्याय सभी पराधीन देशों पर लागू होता है। द्वितीयत: दोनों प्रणालियों के उद्देश्यों में अन्तर है। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत संरक्षक राज्यों का मात्र कर्त्तव्य संरक्षित प्रदेशों के निवासियों के प्रति न्यायोचित व्यवहार करना था। चार्टर के अन्तर्गत उनके कर्त्तव्य तथा दायित्व प्रदेशों की जनता की आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक विकास करना, स्वशासन का विकास तथा विकास के लिए रचनात्मक उपायों का सहारा लेना है। तृतीयत: दोनों पद्धतियों के मुख्य अंगों के स्वरूपों तथा अधिकारों में पर्याप्त अंतर है। मैंडेट कमीशन में देशों के प्रतिनिधि नहीं वरन् विशेषज्ञ होते थे जबकि संरक्षण परिषद में संरक्षक देशों के प्रतिनिधि होते हैं संरक्षण परिषद् को संरक्षित प्रदेशों के प्रतिनिधियों की शिकायतों तथा आवेदनों को सुनने का अधिकार है तथा वह इन प्रदेशों अपना निरीक्षण-मंडल भी भेजने का अधिकार रखती है। मैंडेट कमीशन को वे अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरक्षण-प्रणाली राष्ट्रसंघ की मैंडट-प्रणाली से बहुत भिन्न है।

1.3.5.6.प्रादेशिक संगठनों की व्यवस्था

संयुक्त राष्ट्र का चार्टर शांति की स्थापना तथा उसकी रक्षा के लिए प्रादेशिक संगठनों की अनुमति देता है। वह अपने सदस्य-राज्यों को आत्म-रक्षा का अधिकार प्रदान करता है तथा यह भी व्यवस्था करता है कि जब तक सुरक्षा परषिद् कार्य नहीं करती है। तब तक वे आत्म-रक्षा के लिए उचित कार्यवाही कर सकते हैं। इसके लिए वे

[42] The United Nations, p. 91

प्रादेशिक संगठनों का उपयोग कर सकते हैं। यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य ऐसे संस्थाओं के सदस्य हों या उन्होंने ऐसे प्रबन्ध किये हों तो वे स्थानीय झगड़ों को सुरक्षा परिषद् के सामने आने से पहले ही इन्हीं क्षेत्रीय संस्थाओं या प्रबंधों के जरिये शांतिपूर्ण ढंग से समाधान करने का प्रयास करेंगे। सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार होगा कि वह चार्टर के प्रादेशिक संगठनों को अपने अन्तर्गत कार्यवाही करने का आदेश दे सकती है। इस प्रकार चार्टर में सदस्य-राज्यों को प्रादेशिक संगठनों को अपने अन्तर्गत कार्यवाही करने का आदेश दे सकती है। इस प्रकार चार्टर में सदस्य-राज्यों को प्रादेशिक व्यवस्थाओं अथवा अधिकरणों का प्रयोग करने के लिए उत्साहित किया गया है। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत प्रादेशिक व्यवस्थाओं के माध्यम से विवादों के समाधान का प्रावधान नहीं था। कारण यह है कि राष्ट्रसंघ के जनक राष्ट्रपति विल्सन की यह धारण थी कि समस्त राष्ट्रों का एक संगठन होना चाहिये और प्रादेशिक संगठनों को कोई स्थान प्रदान नहीं किया जाना चाहिएं क्योंकि इनके कारण शांति और सुरक्षा की स्थापना नहीं होती वरन् ये युद्ध की प्रवृति को प्रोत्साहित करते हैं। फिर भी, राष्ट्रसंघ के जीवन-काल में अनेक ऐसे प्रादेशिक संगठनों की स्थापना की गयी जिनके चलते राष्ट्रसंघ सामूहिक सुरक्षा की स्थापना में असफल हुआ।

1.3.5.7. निरस्त्रीकरण के सम्बद्ध व्यवस्था में अन्तर

राष्ट्रसंघ के विधान में निरस्त्रीकरण की विशेष व्यवस्था थी। राष्ट्रसंघ के निर्माताओं का यह विश्वास था कि शस्त्रों को कम करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि हथियारबंदी की होड़ अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को जन्म देती है। अतः धारा 8 में यह कहा गया था कि शांति बनाये रखने के लिए राष्ट्रीय शास्त्रों को राष्ट्रीय सुरक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों को सामाूहि कार्यवाईयों के द्वारा सम्पन्न करने की आवश्यकता के उपयुक्त सीमा के अन्तर्गत न्यूनतम स्तर पर रखने की आवश्यकता है। परन्तु राष्ट्रसंघ को इस क्षेत्र में कोई सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। यही कारण है कि चार्टर में संविदा की अपेक्षा निरस्त्रीकरण की व्यवस्था बहुत कमजोर है। जहाँ संविदा में शस्त्रों में कमी करने की व्यवस्था थी, चार्टर में शस्त्रों के नियमन की व्यवस्था है। इस उद्देश्य हेतु महासभा को यह अधिकार है कि वह अपने सिफारिशें सुरक्षा परिषद् के पास भेजे और सुरक्षा परिषद् को यह अधिकार है कि इस सम्बन्ध में अपनी योजनाएँ प्रस्तुत करें। इस प्रकार हम देखते है कि चार्टर में निरस्त्रीकरण के प्रश्न को उतनी प्रमुखता नहीं दी गयी है जितनी राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा ने दी गयी थी। मार्टिन और बेंटविच के मतानुसार इस दिशा में चार्टर राष्ट्रसंघ के विधान से एक पग भी आगे बढ़ने सफल नहीं हुआ है।

1.3.5.8.घरेलू क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में व्यवस्था

दोनों संस्थाओं में घरेलू क्षेत्राधिकार-सम्बन्धी व्यवस्था में अन्तर है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में 'घरेलू क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत बताकर संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप का विरोध करते हैं। राष्ट्रसंघ भी अपने-आपकों ऐसी ही असहाय व्यवस्था में पाता था, लेकिन उसकी परिषद् को यह शक्ति प्राप्त थी कि वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून के आधार पर इस बात का निर्णय करे कि अमुक विषय घरेलू क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आता है या नहीं। इस प्रकार राष्ट्रसंघ में इस विषय की अच्छी व्यवस्था थी क्योंकि इसमें घरेलू क्षेत्र का निर्धारण सदस्यों पर नहीं छोड़ा गया था। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत यह छूट प्राप्त है।

1.3.5.9. सचिवालय-सम्बन्धी अंतर

राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर दोनों में सचिवालय का विधान किया गया है जिसके प्रधान को महासचिव कहा जाता है। दोनों संगठनों में महासचिव की नियुक्ति एक ही तरीके से होती है। किन्तु चार्टर के अन्तर्गत उसके अधिकार अधिक व्यापक है। वह संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी प्रमुखों अंगों का महासचिव है। वह संगठन के कार्यो के सम्बन्ध में महासभा में वार्षिक प्रतिवेदन भेजता है। राष्ट्रसंघ के महासचिव की भाँति वह मात्र केवल प्रशासकीय अधिकारी ही नहीं हैं। चार्टर की धारा 99 के अन्तर्गत उसे राजनीतिक दायित्व भी प्रदान किये गये। वह सुरक्षा परिषद् का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकता है कि अमुक कार्य से अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शांति के भंग हो जाने की संभावना है। फलस्वरूप महासचिव संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख वक्ता बन गया है। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में महासचिव अपने कूटनीतिक साधनों का इस्तेमाल कर सकता है, अथवा सम्बन्धित पक्ष उससे लाभ उठा सकता है। प्रसंविदा के के अन्तर्गत महासचिव को इस प्रकार के राजनीतिक निश्चय करने का अधिकर नहीं था। विशेष अभिकरणों को संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्बद्ध करने के कारण महासचिव के पद का महत्व और बढ़ गया है। सचिवालय के कर्मियों की नियुक्ति महासचिव को करनी होती है। किन्तु, प्रसंविदा में परिषद् की स्वीकृति आवश्यक थी, जबकि चार्टर महासभा द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार यह दायित्व पूर्णतः महासचिव का है। प्रसंविदा में सचिवालय की नियुक्तियों में भौगोलिक प्रतिनिधित्व की कोई चर्चा नहीं, किन्तु चार्टर यथासम्भव भौगोलिक प्रतिनिधित्व पर बल देता है। निष्कर्ष यह कि प्रसंविदा के अन्तर्गत महासचिव राष्ट्रसंघ का सर्वोच्च पदाधिकारी मात्र था, घोषणा-पत्र के अन्तर्गत महासचिव संयुक्त राष्ट्रसंघ का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशासनधिकारी है तथा उसे कुछ राजनीतिक अधिकार भी दिये गये हैं।

1.3.5.10. आक्रमण तथा शांति-भंग को रोकने से सम्बन्धित उपबंध

शांति भंग तथा आक्रमण को रोकने संयुक्त राष्ट्रसंघ की व्यवस्था राष्ट्रसंघ से अधिक प्रभावशाली तथा समर्थ है। राष्ट्रसंघ की स्थिति एक दंतहीन की तरह थी, यह भूँक सकता था लेकिन काटने का सामर्थ्य उसके पास नहीं था। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थिति विधानतः उससे विपरीत है। जैसा कि नार्मन बेंटविच को विचार है कि ''संयुक्त राष्ट्रसंघ के पास अब दाँत है। यदि वे प्राकृतिक दाँत नहीं है तो कम-से-कम वे बने हुए दाँत अवश्य है। यदि वे हमेशा अच्छी तरह प्रयोग नहीं किये जा सकते तो कम-से-कम उनमें काटने की शक्ति तो है ही।''[43] संयुक्त राष्ट्रसंघ की निर्माता राष्ट्रसंघ की दुर्बलताओं से परिचित थे। वे नये संगठन को उन सब दोषों से मुक्त करना चाते थे जो आक्रमण एवं शांति-भंग को रोकनेवाली संस्था के रूप में राष्ट्रसंघ के पतन के लिए उत्तरदायी थे। यह बात निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाएगी-

(क) राष्ट्रसंघ के विधान में केवल आक्रमण होने पर ही संघ को उसे रोकने के लिए कार्यवाही करने का अधिकार था। परन्तु चार्टर में संयुक्त राष्ट्रसंघ को न केवल वास्तविक आक्रमण की स्थिति में वरन् शांति का खतरा या शांति भंग होने की आशंका में भी कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त है।

---

[43] Norman Bentwich: From Geneva to San Francisco, p. 45

(ख) आक्रामक एवं शांति भंग करने वाले राज्यों के विरूद्ध राष्ट्रसंघ की दंड-व्यवस्था के तुलना में संयुक्त राष्ट्रसंघ की दंड-व्यवस्था अधिक सुधरी हुई, प्रोन्नत एवं प्रभावकारी है। राष्ट्रसंघ में शांति भंग करने वाले राज्यों के विरूद्ध मुख्य रूप से आर्थिक प्रतिबंधों की व्यवस्था थी। धारा 16 में यह कहा गया था। कि प्रसंदिवा के उल्लंघनकारी राज्य के विरूद्ध अविलम्ब आर्थिक दंड व्यवस्था की कार्यवाही की जाएगी। धारा 16(2) में सैनिक दंड की संक्षिप्त व्यवस्था थी। परन्तु सैनिक दंड ऐच्छिक था क्योंकि उसके सम्बन्ध में परिषद् की सिफारिश की अवहेलना की जा सकती थी। इसके विपरीत चार्टर में सैनिक दंड-व्यवस्थाओं में विभेद नहीं किया गया है। सुरक्षा परिषद बिना आर्थिक दंड लगाए सैनिक दंड-व्यवस्था की कार्यवाही कर सकती है। या वह दोनों एक साथ लग सकती है। दंड-व्यवस्था के सम्बन्ध में उसके निर्णयों को मानने के लिए सभी सदस्य-राज्य चार्टर के बन्धों के अन्तर्गत बाधित हैं। चार्टर में सैनिक दंड-व्यवस्था के सम्बन्ध में विस्तृत व्यवस्था है। जैसे सैनिक स्टाफसमिति, सैनिकों की राष्ट्रीय टुकड़ियों के लिए समझौते, इत्यादि। राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा, में इनका पूर्ण अभाव था। कोरिया व कांगों में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा जो प्रभावशाली सैनिक कार्यवाही की गयी, उसका उदाहरण राष्ट्रसंघ के समूचे इतिहास में देखने को नहीं मिलता।

(ग) प्रसंविदा तथा चार्टर में आक्रमण रोकने के लिए जो व्यवस्थाएँ हैं उनमें एक अन्तर बतलाते हुए एन्ड्रयू मार्टिन[44] ने काह है कि चार्टर के अन्तर्गत अनुशासित और सहायता सुरक्षा परिषद् में केन्द्रभूत की गयी है। राष्ट्रसंघ पद्धति में प्रत्येक राज्य की आक्रमणकारी के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से कार्य करना पड़ता था। अनुशस्ति का प्रयोग करने से पहले प्रत्येक राज्य को यह स्वयं निश्चय करना पड़ता था कि आक्रमण हुआ या नहीं, और यदि आक्रमण हआ तो कौर राज्य आक्रमणकारी है। प्रत्येक राज्य यह निश्चय करता था कि अनुशस्ति में भाग लिया जाय या न लिया जाय। जब कोई सदस्य-राज्य आक्रमण-ग्रस्त राज्य की सहायता करे तो वह सहायता अमुक राज्य को ही दी जाती थी, राष्ट्रसंघ को नहीं। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में शांति-भग की दशा को निश्चित करना और सैनिक कार्यवाही का निर्णय करना सदस्यों पर नहीं अपितु सुरक्षा परिषद पर छोड दिया गया है। साथ उसके निर्णयों का पालन सदस्य-राज्यों की इच्छा पर नहीं छोड़ा गया है वरन् उसे आवश्यक बना दिया गया है। यदि सुरक्षा परषिद् कोई सैनिक या असैनिक अनुशस्ति कार्य करना चाहे तो संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रत्येक सदस्य को यह निर्णय मानना पड़ेगा। एन्ड्रयू मार्टिन ने दोनों व्यवस्थाओं का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है: ''राष्ट्रसंघ के विषय में ठीक ही कहा गया है कि राष्ट्रसंघ की शक्ति इसके सदस्यों पर निर्भर थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ के विषय में यह वक्तव्य ठीक नहीं है। इसकी कार्य-शक्ति कहीं अधिक है।... सुरक्षा परिषद् को निश्चय और कार्य करने की इतनी विस्तृत शक्तियाँ मिली हुई है। जिसके कारण संगठन को महान् अव्यक्त शक्ति प्राप्त हो जाती है।''[45]

(घ) शांति और सुरक्षा के मामले में राष्ट्रसंघ को स्वयं अपनी ओर से पहले करने का अधिकार नहीं था। सदस्य राज्यों द्वारा ध्यान आकर्षित किये जाने पर ही किसी विषय पर उसके द्वारा विचार संभव था। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्रसंघ में सुरक्षा परिषद् तथा

[44] Andrw Martin: Collective Security, p. 135
[45] Andrew Martin: Collective Security, p. 135

महासभा दोनों को इस क्षेत्र में पहल करने का अधिकार प्राप्त है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव को भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण दायित्व प्रदान किया गया है।

(ड़) राष्ट्रसंघ के पास अपनी सेना नहीं थी। आक्रमण के समय यह सदस्य-राज्यों की इच्छा पर निर्भर था कि वे सहायता करें न या न करें। परन्तु राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत सैनिक शक्ति की उपलब्धि की व्यवस्था की गयी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य वचनबद्ध हैं कि समय आने पर वे सुरक्षा परिषद् की प्रार्थना पर सैनिक सहायता देंगे। इस कार्य में सहायता देने के लिए एक सैनिक स्टॉफ समिति की भी व्यवस्था की गयी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रसंघ की तुलना में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सामूहिक व्यवस्था अधिक सशक्त है। राष्ट्रसंघ की कौंसिल आक्रमण की अवस्था में असाहय मालूम पड़ती थी, परन्तु सुरक्षा परिषद यदि चाहे तो शीघ्र कारगर कार्यवाही कर सकती है। उसे निवारक कार्य (Preventive action) और प्रवर्त्तन कार्य (Enforcement action) के सम्बन्ध में अपने पूर्ववर्ती संगठन से अधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी है। नार्मन बेंटविच कहते हैं कि कम-से-कम योजना में ही सही राष्ट्रसंघ की पद्धति की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्रसंघ की व्यवस्था अधिक अच्छी है।

1.3.6. निष्कर्ष (Conclusion)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन, कार्यो, उद्देश्य तथा उसकी सामूहिक व्यवस्था के अध्ययन करने तथा उनकी तुलना राष्ट्रसंघ की व्यवस्थाओं के साथ करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ अपने पूर्ववर्ती संगठन राष्ट्रसंघ को पुराने राष्ट्रसा का प्रतिरूप कहना उचित नहीं है। डॉलिये का कहान है कि 'संयुक्त राष्ट्रसंघ वास्तव में राष्ट्रसंघ से कहीं अधिक शक्तिशाली है तथा उसकी शक्ति में मानव जाति की आशा छिपी हुई है।'' दूसरे शब्दों में, राष्ट्रसंघ की तुलना में संयुक्त राष्ट्रसंघ कहीं अधिक प्रोन्नत तथा उत्कृष्ट है। परन्तु स्वर्जन वर्जर उक्त विचार को अवास्तविक मानते हैं उन्होंने वर्तमान संवगठन की अनेक त्रुटियों की ओर संकेत करते हुए यह साबित करने का प्रयास किया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ और राष्ट्रसंघ में मूलभूत समानता है । इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि संयुक्त राष्ट्रसंघ पूर्णरूपेण एक निर्दोष संस्था नहीं है। उसमें अनेक त्रुटियाँ अभी भी विद्यमान हैं और राष्ट्रसंघ के दु:खान्त अनुभवों के चार्टर के निर्माताओं ने पूर्ण शिक्षा नहीं ग्रहण की है।

1.3.7. पाठ सार/सारांश

अब भी यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून को यथेष्ट नैतिक और भौतिक समर्थन प्रदान करने में असमर्थ है। परन्तु विश्व-संस्था की ये सब त्रुटियाँ वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय समाज की उपज हैं। आज का अन्तर्राष्ट्रीय समाज उस स्तर पर नहीं पहुँच पाया है जहाँ अन्तर्राष्टीय संगठन विभिन्न त्रुटियों से मुक्त होकर राज्यों से ऊपर की संस्था के रूप में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सकें। अत: संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्व की समस्त समस्याओं का निदान नहीं कहा जा सकता। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गठन एवं स्वरूप में अथवा क्षमता एवं उपलब्धियों में संयुक्त राष्ट्रसंघ की परम्परा का अगला या दूसरा चरण है। शांति और सुरक्षा कायम रखने के लिए विश्व-समाज द्वारा उठाये गये कदमों में नई विश्व-संस्था पुरानी विश्व-संस्था से अधिक प्रगतिशील तथा विकसित कदम है। गुडरीच तथा हैम्ब्रो ने ठीक ही लिखा है: 'संयुक्त राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की विकास प्रक्रिया की ऐसी

अवस्था है जिसमें अन्तर्राष्टीय संगठन परिवर्तित समस्याओं तथा आवश्यकताओं के अनुसार अपने को ढालने के लिए विकसित हुआ है।'' अत: संयुक्त राष्ट्रसंघ को सर्वथा अनूठा, अभिनव, अभूतपूर्व आदि कहना युक्तिसंगत नहीं है।

1.3.8. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

क) संयुक्त राष्ट्र संसोधन औषचारिक प्रक्रिया क्या है?

ख) अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य बल की स्थापना क्यों की गई?

ग) 'घरेलू क्षेत्राधिकार' की व्यवस्था पर टिप्पणी दीजिए?

घ) चार्टर संसोधन में अस्वशासित देशों की समस्याओं पर क्या ध्यान दिया गया था?

ड़) संयुक्त राष्ट्र संघ को पुनर्गठित करने से क्या अभिप्राय है?

लघुउत्तरीय प्रश्न

क) संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संसोधन के सुझाव बताओ?

ख) सुरक्षा परिषद की मतदान-प्रणाली में क्या-क्या सुधार किए गए थे?

ग) न्यूर्याक शिखर बैठक से आपका क्या अभिप्राय है?

घ) संयुक्त राष्ट्र की संरचना और कार्य का वर्णन करें?

ड़) वित्तीय साधन की स्वतंत्र व्यवस्था पर लेख लिखे?

बहु विकल्पित प्रश्न

1. सुरक्षा परिषद में कितने तरह के सदस्य होते है?

(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5

2. 1971 में प्रस्ताव के अनुसार संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् की सदस्य संख्या क्या थी?

(a) 53 (b) 55 (c) 54 (d) 56

3. सुरक्षा परिषद् की प्रथम शिखर बैठक कब आयोजित की गई?

(a) जनवरी 1992 (b) अप्रैल 1991

(c) जनवरी 1994 (d) दिसम्बर 1992

4. संयुक्त राष्ट्र दिवस कब मनाया जाता है?

(a) 24th September (b) 28th September

(a) 24th October (a) 28th October

5. इनमें से कौन सी भाषा UN की Official भाषा नहीं है?

(a) Arabic (b) Portuguese (c) French (d) Spanish

1.3.9. सदंर्भ ग्रन्थ सूची

1. अल्कार एच. आर एण्ड रस्सअट, एम. बी. वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्म्बली न्यू हैवन, येल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965
2. असहर : रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन 1957
3. अल्कर. एच. आर. एण्ड रस्सअट, एम. बी., वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू. हैवन, मेल यूनीवर्सिटी प्रैस. 1965
4. असंहर रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1957
5. अकिन बेन्पेमीन न्यू स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओर्गेनाइजेशन पेरिस यूनेस्को, 1955
6. बैअली सयूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र, 1961
7. असहर : रोबर्ट दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर वाशिंगटन दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1951
8. अकिन वेन्मीन- न्यू-स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओर्गेनाइजेशन पेरिस 1955
9. बैऊली सपूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र 1961
10. अल्कर एच. आर. एण्ड रस्सअर एम. बी. बलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू हैवन थेल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965

इकाई-4: संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता

इकाई की रूपरेखा:

1.4.1. उद्देश्य कथन
1.4.2. प्रस्तावना
1.4.3. सदस्यता-प्राप्ति करने की शर्ते (Conditions for Membership)
1.4.3.1. आवेदनकर्ता को संप्रभु राज्य होना चाहिए
1.4.3.2. आवेदनकर्ता को केवल राज्य ही नहीं होना चाहिए
1.4.3.4. राज्य चार्टर की योग्यता पूरी करता है
1.4.4. सदस्यता प्रदान करने की विधि
1.4.5. सदस्यता की समस्या (Problem of Membership)
1.4.6. बढ़ती हुई सदस्यता का परिणाम (Consequences of increasing Membership)
1.4.7. जनवादी चीन की सदस्यता का प्रश्न (Questions of Membership of Peoples Republic of China)
1.4.8. साम्यवादी चीन के प्रतिनिधित्व की माँग
1.4.9. विभाजित राज्यों की सदस्यता की समस्या
1.4.10. सदस्यता के निलंबन तथा परित्याग की व्यवस्था (Provisions Regarding Supension and Terminations of Membership)
1.4.11. मूल्यांकन
1.4.12. पाठ/सार सांराश
1.4.13. अभ्यास/बोध प्रश्न
1.4.14. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.4.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप:

- संयुक्त राष्ट्र में सदस्यता प्राप्त करने की क्या विशेषताएं है। इसकी जानकारी प्राप्त करोगे।
- संयुक्त राष्ट्र में कोई भी देश उसकी सदस्यता के लिए शर्तो को पूरा करते है।
- सदस्यता प्राप्त करने में क्या शर्ते एवं बाधाएं है इसकी जानकारी प्राप्त करोगें।
- बढ़ती हुई सदस्यता का परिणाम हो इसकी जानकारी प्राप्त करना।

1.4.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के दूसरे अध्याय में सदस्यता से सम्बन्धित उपलबंध है। इसमें दो प्रकार की सदस्यता का प्रावधान है: प्रारंभिक सदस्यता (Original Membership) तथा निर्वाचित अथवा बाद में अर्जित सदस्यता (Elected or Subsequent Membership)। प्रारंभिक तथा बाद में सदस्यता अर्जित करने वाले राज्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों का समान अधिकार तथा दायित्व प्रदान किये गये है।

अन्तर केवल यह है कि जहाँ प्रारंभिक सदस्यों को अपने अधिकार के रूप में संघ में शामिल होने के पूर्व उन्हें कुछ शर्तों को पूरा करना होता है और तब कहीं उन्हें संघ की सदस्यता प्राप्त होती है। राष्ट्रसंघ के प्रसंविदा में भी दो प्रकार की सदस्यता की व्यवस्था थी। चार्टर की तीसरी धारा के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ्ज्ञ के प्रारंभिक सदस्य वे थे जिन्होंने सेन फ्रांसस्कों सम्मेलन में भाग लिया था अथवा 1 जनवरी, 1942 के संयुक्त राष्ट्र-घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किया था अथवा संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर करके धारा 110 के अनुसार उसकी संपुष्टि की थी। ऐसे राज्यों की संख्या इक्यावन थी। उनमें से 50 राज्यों ने सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन में भाग लिया था और संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर पर अपना हस्ताक्षर किया था। केवल पोलैंड के लिए एक विशेष व्यवस्था की गयी थी। पोलैंड सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन में शामिल नहीं हुआ था क्योंकि सम्मेलन में उसे आमंत्रित नहीं किया गया था। फिर भी उसे संध का प्रारंभिक सदस्य बनाया गया क्योंकि 1 जनवरी, 1942 के संयुक्त राष्ट्र-घोषणा-पत्र पर उसने हस्ताक्षर किया था। इस प्रकार प्रारंभिक सदस्यों की संख्या इक्यावन हो गयी। इन सदस्यों के अलावा दूसरे देशों को भी संघ की सदस्याता प्रदान की गयी है लेकिन उन्हें प्रारंभिक सदस्य नहीं वरन् बाद में प्रविष्ट सदस्य कहा जाता है। प्रविष्ट सदस्य उन राज्यों को कहा जाता है जिन्होंने न तो सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन में भाग लिया था और न संघ के चार्टर पर हस्ताक्षकर करके उसकी संपुष्टि की थी: किन्तु शांतिप्रय होने तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में विश्वास रखने के कारण बाद में सदस्यता प्राप्त की है। आजकल ऐसे सदस्यों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्य-संख्या लगभग विश्वव्यापी हो गयी।[46]

1.4.3. सदस्यता-प्राप्ति करने की शर्तें (Conditions for Membership)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा 4 में सदस्यता-ग्रहण की शर्तों का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता उन सभी शांतिप्रय राष्ट्रों के लिए खुली होगी जो संघ की जिम्मेदारियों को स्वीकार करें और जो 'संघ के निर्णयानुसार इन जिम्मेदारियों को पूरा करने के योग्य और इसके लिए तैयार हों। सदस्यता सम्बन्धी निर्णयों के लिए सुरक्षा, परिषद् के पाँचों स्थायी सदस्यता को सहमति और आम सभा में दो-तिहाई बहुमत का समर्थन आवश्यक रखा गया। दूसरे शब्दों में सदस्यता को उन मामलों में रखा गया जिनके लिए बड़ी शक्तियों का एकमत होना आवश्यक था। इस प्रकार चार्टर की व्यवस्था के अनुसार सदस्यता-सम्बन्धी निर्णय लेने का अधिकार आम सभा और सुरक्षा परिषद् को प्राप्त है। यदि वे सद्भावनापूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सदस्यता के लिए अभ्यर्थी राज्य शांतिप्रिय है और चार्टर के अनुबंधों के आभारी को मानने की इच्छा अथवा सामार्थ्य रखता है तो उसे नया सदस्य बनाया जा सकता है। इस प्रकार जैसा कि केल्सन ने कहा है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में नया सदस्य बनाने का अधिकार सुरक्षा परिषद् तथा आम सभा की स्वेच्छा पर छोड़ दिया गय है। फिर भी चार्टर में अभ्यर्थी राज्य के लिए निम्नलिखित शर्तों का उल्लेख किया गया है।

[46] See Leo Gross: "Progress Towards Unierslity of Membership in the United Nations".
-A.J.L.L., Vol. 50 (October, 1956), pp. 791-827.

1.4.3.1. आवेदनकर्ता को संप्रभु राज्य होना चाहिए

स्पष्ट रूप से इसका अभिप्राय यह है कि कोई डोमिनियन अथवा उपनिवेश संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं हो सकता। चार्टर की यह व्यवस्था पुराने राष्ट्रसंघ की व्यवस्था से भिन्न है। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत यह विधान था कि कोई भी संप्रभु राज्य, डोमिनियन अथवा उपनिवेश राष्ट्रसंघ का सदस्य हो सकता था। इस प्रकार राष्ट्रसंघ की व्यवस्था चार्टर का व्यवस्था से उदार थी। फिर भी, चार्टर की इस व्यवस्था का कि 'केवल संप्रभु राज्य ही संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य हो सकते हैं', समान रूप से पालन नहीं हुआ है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के बहुत से प्रारंभिक सदस्य चार्टर पर हस्ताक्षर करते समय संप्रभु राज्य नहीं थे। उदाहरणार्थ, भारत, फिलीपाइन तथा सोवियत संघ के दो संघीभूत इकाई राज्य यूक्रेन और बायलोरूस, जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रारंभिक सदस्य हैं, चार्टर पर हस्ताक्षर करके समय संप्रभु राज्य नहीं थे। भारत तथा फिलीपाइन ने तो बाद में स्वतंत्रता हासिल कर ली लेकिन युक्रेन और बायलोरूस तो हाल तक सोवियत गणराज्य के इकाई राज्य थे। अत: उनकी सदस्यता संयुक्त राष्ट्रसंघ के इस सिद्धांत से मेल नहीं खाती कि केवल संप्रभु राज्य ही संघ के सदस्य हो सकते हैं। जैसा कि गुड्सपीड ने लिखा है: ''संयुक्त राष्ट्रसंघ में इन दो राज्यों की उपस्थित कानून के आधार पर न्यायोचित नहीं ठहरायी जा सकती।''[47] उसके आगे कहा है कि सोवियत प्राविधिक रूप में स्वतंत्र थे, फिर भी उनकी स्वतंत्रता-क्षमता उसी प्रकार सीमित थी जिस प्रकार उक्त दो सोवियत गणराज्यों की। अत: स्वतंत्र और संप्रभु राज्य के रूप में उनकी सदस्यता संदेहास्पद थी।[48] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कुछ ऐसे प्रदेशों की संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रारंभिक सदस्य बनाया गया जो परम्परागत कानूनी अर्थ में राज्य नहीं थे। फिर भी यह सुझाव दिया गया कि 'राज्य' शब्द का कानूनी अर्थ में प्रयोग नहीं होना चाहिए।[49] जहाँ तक भारत के सदस्यता प्रदार करने का प्रश्न है, यह महसूस किया गया कि उसे सदस्यता वे वंचित रखना किसी भी दृष्टिकोण से वांछनीय नहीं है। भारत बहुत दिनों से विश्व-राजनीति में भाग लेता आ रहा था और वह पुराने राष्ट्रसंघ का भी सदस्य रह चुका था। अत: भारत को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता से वंचित रखना उचित नहीं समझा गया।

1.4.3.2. आवेदनकर्ता को केवल राज्य ही नहीं होना चाहिए

वरन् शांतिप्रिय भी होना चाहिए। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता केवल शांतिप्रिय राज्यों के लिए ही खुली है। परन्तु 'शांतिप्रिय राज्य' किसे कहेंगे, चार्टर में इसका उल्लेख नहीं किया गया है। केल्सन के अनुसार यह शब्दावली अस्पष्ट है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के पास कोई ऐसा मापदंड नहीं है। जिससे मापा जा सके कि कौन-सा देश शांतिप्रिय है एवं कौन-नहीं। भला कौन-सा राज्य अपनी नीति में स्पष्ट कर सकता है कि वह शांतिप्रिय नहीं है। परिणामस्वरूप आम सभा और सुरक्षा परिषद् को इसकी ऐच्छिक व्याख्या करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। इसे चार्टर की बहुत बड़ी त्रुटि माना जा सकता है। वेन्डेनवोश तथा होगन ने ठीक ही लिखा है कि चार्टर में प्रयुक्त शांतिप्रिय

---

[47] "The presence of the latter (Ukrainian and Byelorussia) cannot be justified on any legal groudns." -Goodspeed: op.cit., p. 137

[48] Ibid., p. 137

[49] Goodrich & Hambro: Charter of the United Nations, p. 124

शब्द काफी लचीला है। यह कानूनी यथार्थता का शब्द न होकर अलंकार-शास्त्र का शब्द है।[50]

1.4.3.3. आवेदनकर्ता राज्य को चार्टर को स्वीकार करना होगा

यह एक आसान शर्त है क्योंकि आवेदनकर्ता आसानी से घोषण कर सकता है कि यह चार्टर द्वारा निर्धारित आभारों का पालन करने के लिए तैयार है।

1.4.3.4. राज्य चार्टर की योग्यता पूरी करता है

राज्य को चार्टर के अभारों को पूरा करने के योग्य और इसके लिए इच्छूक होना चाहिए। यह शर्त भी अस्पष्ट है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के पास कोई ऐसा मापदंड नहीं है जिसके द्वारा वह निश्चित कर सके कि कोई राज्य चार्टर की जिम्मेवारियों का निर्वहन करने में समर्थ है अथवा नहीं। किसी राज्य की आंतरिक इच्छा जानना बड़ा ही कठिन है। कोई भी राज्य यह नहीं कह सकता कि वह जिम्मेवारियों के निर्वहन की इच्छा नहीं रखता। इसके विपरीत दूसरे राज्य, जो किसी राज्य की सदस्यता के विरोधी हों यह आसानी से कह सकते हैं कि अमुक राज्य चार्टर की जिम्मेवारियों के निर्वहन की न तो योग्यता रखता है और न इच्छा। अत: यह शर्त भी अस्पष्ट है।

ऊपर जिन शर्तो की चर्चा की गयी है उनको पूरा करने वाले राज्य को संयुक्तराष्ट्रसंघ का सदस्य बनाया जा सकता है। परन्तु कठिनाई यह है कि इन शर्तों में प्रथम और तृतीय को छोड़कर सभी के मापदंड वैयक्तिक हैं और उनकी आड़ में किसी भी राज्य को संघ की सदस्यता से संचित करने का सफल प्रयास किया जा सकता है। वास्तव में संघ की सदस्यता की समस्या एक राजनीतिक समस्या बन गयी है जिसका प्रयोग सदस्य राज्य परिस्थितियों अथवा वातावरण के प्रवाह को अपने पक्ष में नियमन करने अथवा स्थिति को अपने विपक्ष में जाने से रोकने के लिए प्रयुक्त करते हैं। जैसा कि गुड्सपीड ने लिखा है कि कोई भी राज्य शांतिप्रिय एचं चार्टर की जिम्मेवारियों के निर्वहन के योग्य है अथवा नहीं यह एक राजनीतिक प्रश्न है जिसके निर्धारण पूर्ण रूप से सुरक्षा परिषद् और आम सभा की स्वेच्छा पर छोड़ दिया गया है।'' इन शर्तो के चलते संयुक्त राष्ट्रसंघ का विश्व-व्यापी स्वरूप सीमित हो जाता है। फिर भी इन शर्तो के पक्ष में यह कहा जाता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय आचरण के कुछ ऊँचे सिद्धांतों से प्रतिबद्ध है, अत: वे ही राज्य उसकी सदस्यता के योग्य हैं जो स्पष्टत: चार्टर की जिम्मेवारियों को स्वीकार करने और उनका आदर करने तो तैयार हो। इस दृष्टिकोण के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ को एक क्लब के समान होना चाहिए। कोई उसमें शामिल होने को बाध्य नहीं हो, और प्रवेश की शर्ते कड़ी हों।

सिद्धांत में यह बात बड़ी अच्छी है। पर व्यवहार से संयुक्त राष्ट्रसंघ उस समय तक प्रभावकारी रीति से काम नहीं कर सकता, जब तक दुनिया के सभी राज्य, या लगभग सभी राज्य उसमें भाग न लें। यह तभी संभव है जब संघ की सदस्यता को विभिन्न प्रकार की उलझनों से मुक्त रखा जाय और उसे ऐसी अनावश्यक शर्तो से अलग रखा जाय जिनका निर्धारण वैयक्तिक ढंग से होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि

[50] "...it is a terms of thetoric rather than of leal precision, and its meaning is not subject to objective determination."
-Vandebosch and Hogan: op. cit., p. 96.

किसी आवेदनकर्ता की उपयुक्तता की केवल एक ही कसौटी होनी चाहिए, कि वह राज्य है या नहीं।

1.4.4. सदस्यता प्रदान करने की विधि

सर्वप्रथम, सदस्यता के लिए इच्छुक राज्य के आवेदन-पत्र पर सुरक्षा परिषद् विचार करती है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय के अनुसार प्रत्येक आवेदन पर अलग से विचार करना चाहिए। आवेदन पर विचार करने के बाद सुरक्षा परिषद् अपनी सिफारिश पेश करती है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश के लिए पंद्रह सदस्यों में से 9 सदस्यों का एकमत होना आवश्यक है जिनमें पाँच स्थायी सदस्यों का मतैक्य अनिवार्य है। इस प्रकार सदस्यता के प्रश्न पर सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार प्राप्त है। यदि स्थायी सदस्यों में से कोई भी सदस्य किसी राज्य को नहीं चाहता है तो वह सदस्य पर आम सभा ने अपने दो-तिहाई बहुमत से निर्णय ले लिया तो आवेदनकर्ता राज्य उसी दिन से संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बन जाता है जिस दिन आम सभा ने निर्णय लिया हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सदस्यता प्रदान करने के प्रश्न पर आरंभन तथा निर्णय का अधिकार सुरक्षा परिषद् को एवं अनुसमर्थन का अधिकार आम सभा को प्राप्त है। किसी राज्य को सदस्य बनाने के सम्बन्ध में आम सभा उस समय तक निर्णय नहीं कर सकती। जब तक सुरक्षा परिषद् की संस्तुति नहीं हो, जिसके लिए उसके पाँच स्थायी सदस्यों का मतैक्य अनिवार्य है।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि किसी भी राज्य को संघ की सदस्यता प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है। यदि किसी राज्य के आवेदन को सुरक्षा परिषद् तथा आम सभा विचार करके अस्वीकृत कर देती है तो उसके समक्ष कोई रास्ता नहीं बच जाता। यदि आम सभा किसी राज्य के आवेदन पर, जिसे सुरक्षा परिषद् में आवश्यक सहमति नहीं प्राप्त हो सकती है, सहानुभूति ढंग से विचार करना चाहती है तो वह उसके आवेदन को फिर से विचार करने के लिए सुरक्षा परिषद् के पास लौटा सकती है। परन्तु सुरक्षा परिषद् अपने पूर्व निर्णय में संशोधन करने अथवा नहीं करने के लिए पूर्णतया स्वतंत्र है। दूसरे शब्दों में, सदस्यता के सम्बन्ध में निर्णय की वास्तविक शक्ति सुरक्षा परिषद् में निहित है।

1.4.5. सदस्यता की समस्या (Problem of Membership)

नये सदस्यों के प्रवेश की समस्या संयुक्त राष्ट्रसंघ की सबसे जटिल और गंभीर समस्या है। सिद्धांत और उद्देश्य की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्रसंघ एक विश्वव्यापी संगठन है। इसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि दुनिया के सभी राज्यों को इसका सदस्य बनाया जाये। परन्तु दुर्भाग्यवश नये सदस्यों के प्रवेश की समस्या राजनीतिक दाँव-पेच का कारण बन गयी है। जैसा कि क्लॉड ने लिखा है: ''सदस्यता की समस्या सोवियत रूस तथा अमरीकी टीमों की बीच एवं बड़ी और छोटी शक्तियों के बीच राजनीतिक फुटबॉल बन गयी है।''[51] **वेन्डेनवोश तथा होगन** के अनुसार ''संयुक्त राष्ट्रसंघ में नये सदस्यों के प्रवेश का प्रश्न शीतयुद्ध का अंग बन गया।'' वास्तव में संघ के अब तक के

---

[51] In Shor the problem of the membership issue has consisted ihn its being made the football in the contest between Amercian and Soviet teams and between Greate Powers and Small state groupings.
-Inis Claude: op.cit., p. 85

जीवन-काल में नये सदस्यों के प्रवेश के प्रश्न पर अमरीकी और सोवियत गुट की टकराहट होती रही है। संघ मच पर राजनीतिक पलड़ा अपने पक्ष में बनाये रखने की दृष्टि से अथवा राजनीतिक विजय प्राप्त करने अथवा राजनीतिक पराजय टालने की दृष्टि से रूस और अमरीका जैसे महाशक्तियाँ संघ की सदस्यता के प्रश्न पर उलझती रही हैं। इनिस क्लॉड ने लिखा है कि 'संघ की सदस्यता के इच्छुक राष्ट्र दो समूहों के विभाजित रहे हैं- एक समूह सोवियत गुट के समर्थक राष्ट्रों का तथा दूसरा परिश्चम गुट के राज्यों का।' सुरक्षा परिषद् में संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत रूस अपनी स्थिति को मजबूत बनाये रखने के लिए अपने-अपने विरोधी गुट के सदस्य-राज्यों के प्रवेश का विरोध करते रहे और इस प्रश्न पर दोनों पक्षों की ओर से कई बार वीटों का प्रयोग किया गया। संयुक्त राज्य अमरीका का उद्देश्य यही रहा है कि अमरीकी नेतृत्व में विश्वास रखने वाले राज्यों को ही सदस्यता के लिए समर्थन देकर विश्व-संस्था में अपनी राजनीतिक प्रमुखता को बनाये रखा गया।

ऐसा संभव नहीं होने पर अमरीकी ग्रुप के राज्यों को संघ से बाहर रखकर अपनी सुरक्षा बनाये रखना चाहता था। उसकी नीति अधिकांशत: यह रही कि अमरीकी समर्थक प्रत्याशियों को संघ में तभी प्रवेश लेने दिया जाय जब उसके (रूस के) स्वयं के समर्थकों को भी संघ में स्थान मिले। इस प्रकार जहाँ संयुक्त राज्य अमरीका का लक्ष्य एक ग्रुप अथवा कोई नहीं (One group of nothing) का रहा है। वहाँ सोवियत रूस का लक्ष्य दोनों ग्रुप अथवा कोई नहीं (One group or nothing) रहा। अमरीकी राजनीतिक विजय के लिए लड़ा है जबकि रूस अपनी राजनीतिक पराजय को टालने के लिए। इस प्रकार संघ की सदस्यता का प्रश्न महाशक्तियों की प्रतिष्ठा का प्रश्न रहा है। जैसा क्लॉड ने लिखा है: 'संघ की सदस्यता का संघर्ष' 'आत्मविश्वासी बहुमत' और एक प्रतिरक्षात्मक अल्पमत की राजनीतिक चालों का अनोखा प्रदर्शन या खेल रहा है।''[52] और संघ में कतिपय राज्यों के प्रवेश-प्रश्न पर कूटनीतिक दाँव-पेचों का यह तमाशा आज भी जारी है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता-सम्बन्धी तीन अवधियाँ रही है। पहली अवधि (1946-50) में सिर्फ 9 नये सदस्य शामिल किये गये- अफगानिस्तान, आइसलैंड, स्वीडन और थार देश सन् 1946 में पाकिस्तान और यमन 1947 में ब्रह्मा 1948 में, इजरायल 1949 में और इंडोनेशिया 1950 में। इस अवधि में 12 अन्य राज्यों के आवेदन-पत्र शीतयुद्ध का प्रश्न बनता जा रहा था जिसमें पश्चिमी देशों द्वारा समर्पित आवेदन-पत्रों के विरुद्ध रूस निषेधाधिकार का प्रयोग करता था और पश्चिमी देश साम्यवादी शासनों वाले राज्यों के प्रवेश का समर्थन करने से इन्कार करते थे।

सन् 1955 तक सदस्यता के सम्बन्ध में ऐसा ही गतिरोध बना रहा। दिसम्बर, 1955 में एक व्यापक समझौते से यह गतिरोध समाप्त हुआ। उसी वर्ष निम्नलिखित राज्यों को संघ की सदस्यता में एक व्यापक समझौते से यह गतिरोध समाप्त हुआ। उसी वर्ष निम्नलिखित राज्यों के संघ की सदस्यता प्रदान की गयी-साम्यवादी शासन वाले चार राज्य, पश्चिम, यूरोप के छह राज्य, और अफ्रीकी-ऐशियाई देशों में छह राज्य। इस प्रकार संघ की सदस्यता 76 हो गयी। सन् 1955 के बाद स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले अधिकांश देशों

[52] Inis L. Claude: op.cit, p. 100

को बिना किसी दिक्कत के प्रविष्ट कर लिया जाता रहा है। इसके बाद संघ की सदस्यता निरंतर बढ़ती रही है। सदस्यता के सम्बन्ध में 26 अक्तूबर, 1971 का वर्ष काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ ने सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर एक प्रस्ताव पास करके जनवादी चीन को संघ का सदस्य बना दिया और तैवान को संस्था से निष्काषित कर दिया। ध्यातव्य है कि बहुत अर्से तक संयुक्त राज्य अमरीका ने चीन की अमरीका के सम्बन्धों में सुधार हुआ तो चीन के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश का रास्ता खुला। संयुक्त राष्ट्रसंघ को एक व्यापक संस्था बनाने की दिशा में यह संघ की एक महान् उपलब्धि कहीं जायेगी। इस सम्बन्ध में एक दूसरी महत्वपूर्ण बात सन् 1973 में हुई जब महासभा के अटठाईसवें अधिवेशन में पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी जर्मनी तथा ब्रह्मा को शामिल किया गया। सितम्बर, 1975 में महासभा के तीसवें अधिवेशन में तृतीय विश्व के छह नये राज्यों को संघ का सदस्य बनाया गया। इस प्रकार संघ की सदस्य-संख्या 158 तक पहुँच गयी। इसके पूर्व अगस्त 1975 में उत्तर वियतनाम, दक्षिण वियतनाम की सदस्यता का प्रश्न भी संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठा।

परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर संघ में उनके प्रवेश को रोक दिया। अमरीकी प्रतिनिधि का कहना था कि यदि सुरक्षा परिषद् दक्षिण कोरिया को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने के लिए सहमत होती है तभी अमरीका दोनों वियतमानों की सदस्यता का समर्थन करेगा। जून, 1976 में अंगोला की सदस्यता का प्रश्न सुरक्षा परिषद् के समक्ष प्रस्तुत हुआ। परिषद् ने तीन घंटे तक इस प्रश्न पर विचार किया जिसने भारत सहित बीस से भी अधिक गैर, सदस्य राज्यों में भाग लिया। अन्त में कौंसिल, के छह सदस्यों- ब्रिटेन, गुयाना, लिबिया, रूमानिया, सोवियत संघ तथा टान्जानिया- ने एक प्रस्ताव पारित कर अंगोला की सदस्यता का समर्थन किया। परन्तु संयुक्त राज्य अमरीका के अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर अंगोला के संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश को रोक दिया। 23 अप्रैल 1990 को जामीबिया को संयुक्त राष्ट्र के 160वें सदस्य के रूप में स्थान दिया गया, किन्तु दोनों जर्मनी तथा दो संख्या 159 ही रह गयी। वर्तमान समय में इसकी सदस्य, संख्या 184 हो गयी है। जब केवल ऐसे राज्य ही संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नहीं है जो या तो स्वशासित नहीं है, अथवा कोरिया की तरह विभाजित है, अथवा स्विट्जरलैंड की तरह तटस्ध हैं। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ धीरे-धीरे एक विश्वव्यापी संगठन का स्वरूप ले चुका है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता का प्रश्न मुख्य रूप से एक राजनीतिक प्रश्न रहा है। महाशक्तियों ने वैधानिक दृष्टिकोण से नहीं, अपने राजनीतिक हिताहित को ध्यान में रखकर इस प्रश्न पर विचार किया है। परिणामस्वरूप सदस्याता के प्रश्न पर बड़ी टकराहट होती रही है। किसी राज्य का संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश इसलिए नहीं रोका जाता है कि उसमें चार्टर द्वारा निर्धारित शर्तो का अभाव है, वरन् इसलिए कि उस प्रश्न पर महाशक्तियों में परस्पर समझौता नहीं हो पाता है। इनिस एल. क्लॉड ने लिखा है ''नये राष्ट्रों की सदस्यता प्रदान करने के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र के समक्ष ऐसा कोई भी प्रश्न नहीं आया जिसे शीतयुद्ध ने इतना अधिक प्रभावित किया हो।'' छोटे सदस्य राज्यों की भूमिका इस सम्बन्ध में सराहनीय नहीं है। उनक प्रवृति भी सदस्यता-सम्बन्धी समस्या को संगठन के स्वस्थ सांविधानिक विकास की

दृष्टि से न देखकर अपने राजनीतिक लाभ के लिए एक शस्त्र के रूप में प्रयोग करने की रही हैं। उन्होंने सदस्यता-सम्बन्धी प्रश्न को एक ऐसे युद्ध-स्थल के रूप में लिया है जहाँ वे संघ में अपनी श्रेष्ठतर स्थिति के लिए संघर्ष कर सकें। उन्होंने महाशक्तियों के निषेधाधिकार को असमानता का प्रतीका माना है और इस बात पर आपत्ति की है कि सुरक्षा परिषद् की सदस्यता के प्रश्न पर विचार करने का अधिकार हो। वे यह आन्दोलन भी चला था कि केवल महासभा को ही सदस्यता के प्रश्न पर विचार करने का अधिकार हो। वे इस प्रश्न पर शक्ति-केन्द्र को सुरक्षा परिषद् से हटाकर महासभा में लाना चाहते हैं अर्जेटाइना के नेतृत्व में यह आन्दोलन भी चला था कि केवल महासभा को ही सदस्यता के आवेदन-पत्रों पर विचार करने का अधिकार हो, सुरक्षा परिषद् को नहीं। दूसरे शब्दों में, नये सदस्य सुरक्षा परिषद् की सिफारिश के बिना ही महासभा के दो-तिहाई मतों से शामिल किये जायें। यद्यपि सन् 1950 में ही अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने उपर्युक्त बात से असहमति प्रकट की थी, तथापि कई लघु राष्ट्र आज भी इस सुझाव को जीवित रखे हुए हैं, सदस्यता की समस्या को अधिक उदार बनाने के लिए कुछ लोगों का यह भी सुझाव है कि संसार के प्रत्येक नये राज्य अथवा किसी राज्य की नयी सरकार को एक निश्चित अवधि तक सत्तरूढ़ रहने के बाद अपने आप विश्व-संघ की सदस्यता प्राप्त हो जानी चाहिए। इस प्रश्न पर किसी तरह के मतदान की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। यह सुझाव बहुत उचित ही मालूम पड़ता है क्योंकि संयुक्त राष्ट्रसंघ को विश्व-व्यापी बनाने के लिए ऐसा आवश्यक है। संघ का स्वरूप विश्व-व्यापी तभी हो सकता है जब विश्व के सभी राज्य इसके सदस्य रहें और केवल वे ही राज्य इसकी सदस्यता से वंचित रहें जो संघ को नष्ट करने के इच्छुक अथवा उसके घोषित उद्देश्यों के निर्वहन के विरोधी हो। शांति के लिए स्थापित आयोग ने ठीक ही सुझाव दिया था: ''संयुक्त राष्ट्रसंघ को विश्व-व्यापी होना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए सभी राज्यों को, जो सदस्यता के दायित्व के निर्वहन करने योग्य है, प्रवेश की उनुमति दी जानी चाहिए अगर वे इसके लिए आवेदन करते हो।'' परन्तु यह तब तक संभव नही हो सकता जब तक सुरक्षा परिषद् को सदस्यता सम्बन्धी अधिकार से वंचित नहीं किया जाये और महासभा की स्थिति को इस सम्बन्ध में मजबूत न बनाया जाय। इसके लिए चार्टर में संशोधन की आवश्यकता होगी।

1.4.6. बढ़ती हुई सदस्यता का परिणाम (Consequences of increasing Membership)

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के बाद के वर्षो में धीरे-धीरे महासभा के निर्णयों का महत्व बढ़ने लगा है, फलस्वरूप बड़ी शक्तियों ने भी अपने समर्थक राष्ट्रों को अधिक से अधिक संख्या में सदस्यता दिलाने का कार्य आरंभ कर दिया। सदस्य राष्ट्रों का यह विश्वास बढ़ने लगा कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की विश्व व्यापकता से महासभा का प्रभाव बढ़ जायेगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ की बढ़ती हुई सदस्य-संख्या ने विश्व में अनेक महत्वपूर्ण परिणाम प्रस्तुत किये हैं। क्षेत्रीय संतुलन एवं राजनीतिक प्रभाव में बहुत अन्तर आ गया है। यद्यपि पश्चिमी यूरोपीय राज्यों की संख्या बड़ी है। परन्तु उसके साथ ही साम्यवादी शक्तियों का प्रभाव क्षेत्र ही विस्तृत हुआ हैं। एशिया एवं अफ्रीका के राष्ट्रों की सदस्य-संख्या भी बढ़ गयी है। पश्चिमी शक्तियों के लिए अब महासभा में दो-तिहाई मतों को संगृहीत करना इतना सरल कार्य नहीं रह गया है। सोवियत रूस का विरोध करने के

लिए अब अमेरिका महासभा का अपनी इच्छानुसार उपयोग नहीं कर सकता। महासभा की सदस्य-संख्या इतनी बढ़ गयी है कि उसमें अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु शांति एवं समझोता का मार्ग अधिक उपयोगी समझा जाने लगा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता का बढ़ना इस बात का प्रमाण है कि एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमरीका के अधिक से अधिक राज्य विश्व के विकसित राष्ट्रों के सम्पर्क में आकर राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के साथ विश्व में समानता का अनुभव करते हैं। महासभा में छोटे और अविकसित राष्ट्रों का ही बहुमत होता है जिसके फलस्वरूप वे अपने हितों की ओर विश्व संस्था का ध्यान आसानी से राष्ट्रों का ही बहुमत होता है जिसके फलस्वरूप वे अपने हितों की ओर विश्व संस्था का ध्यान आसानी से आकर्षित कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ में छोटे राष्ट्रों की संख्या बढ़ने के कारण उन्हें प्रत्येक संगठन में अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकेगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्य संख्या जिस गति से बढ़ रही है, उससे यह अनुभव होता है कि यह संख्या शीघ्र ही विश्व व्यापी हो सकेगी। प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र संयुक्तराष्ट्र की सदस्यता प्राप्त करना अपना लक्ष्य समझता है। संभवतः संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त हो जाने के बाद ही किसी राष्ट्र को सार्वभौमिकता का अनुभव होता है।

1.4.7. जनवादी चीन की सदस्यता का प्रश्न (Questions of Membership of Peoples Republic of China)

यद्यपि 26 अक्टूबर, 1971 को सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा ने प्रस्ताव पारित करके जनवादी चीन को संघ का सदस्य बना दिया, तथापि इससे पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ में उसका प्रतिनिधत्व का प्रश्न सर्वाधिक विवादास्पद तथा उलझा हुआ प्रश्न रहा था। यह प्रश्न सन् 1950 से ही संघ के सामने था परन्तु इतने लम्बे अर्से तक (सन् 1971 से पूर्व) इस प्रश्न का समाधान नहीं निकल पाया था। इसके चलते शीतयुद्ध में उग्रता आयी थी और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में वृद्धि आयी थी। अतः ऐसे विवादस्पद प्रश्न की जानकारी रोचक तथा उपयोगी है।

चीन गणराज्य संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक संस्थापक सदस्य और सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य है। जिस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण हुआ था, उस समय चीन में राष्ट्रवादी दल कुआमिन्तांग की सरकार थी जिसका अध्यक्ष च्यांग-काई-शेक था। 1949 में इस दल की पराजय हो गयी और उसकी जगह साम्यवादी दल की विजय हुई। राष्ट्रवादी सरकार की चीन की मुख्य भूमि से भागकर तैनाव में शरण लेनी पड़ी और पीकिंग में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई। अब यह प्रश्न उठाना अनिवार्य था कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों में चीन का प्रतिनिधित्व भविष्य में पीकिंग की नई साम्यवादी करे, या तैवान की राष्ट्रवादी सरकार।

1.4.8. साम्यवादी चीन के प्रतिनिधित्व की माँग

जब से चीन की मुख्य भूमि पर साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई तभी से संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों में इसके प्रतिनिधित्व की माँग की जाने लगी। साम्यवादी सरकार की स्थापना के तुरन्त बाद सोवियत संघ ने महासभा में यह प्रस्ताव रखा कि राष्ट्रवादी प्रतिनिधि का निष्कासित करके चीन की नयी सरकार के प्रतिनिधि को संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान दिया जाय, लेकिन सभा ने इस प्रस्ताव को नहीं माना। इस पर जनवरी, 1950 में

सोवियत संघ ने सुरक्षा परिषद् तथा संघ के उन सभी अंगों के बहिष्कार की घोषणा की जिसमें चीनी ''राष्ट्रवादियों को स्थान दिया गया था। परन्तु अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी शक्तियों ने इसका जोरदार विरोध किया। इस विरोध के मूल में मुख्यत: यह भय निहित था कि यदि सुरक्षा परिषद् में राष्ट्रवादी चीन की जगह साम्यवादी चीन को स्थान दिया गया तो सोवियत रूस का पक्ष भारी हो जायेगा और सुरक्षा परिषद् की बागडोर अमेरिका के हाथ में खिसक जायेगी। उनके विरोध के कारण सोवियत प्रस्ताव असफल हो गया और सोवियत प्रतिनिधि के रंज होकर सुरक्षा परिषद् का बहिष्कार कर दिया। यह एक गम्भीर समस्या थी और महासचिव ट्रिग्वेली के लिए चिन्ता का विषय। वास्तव में ली महोदय का यह विचार था कि किसी स्थान पर सरकार के रहते हुए कोई दूसरी क्रांतिकारी सरकार स्थापित हो जाती है तो देखना यह चाहिए कि उनमें से कौन अपने प्रदेश पर प्रभावी अधिकार रखती है तथा किस प्रकार की आज्ञा बहुसंख्यक जनता को स्वीकार है। चूँकि इस कसौटी पर साम्यवादी सरकार ही खरी उतरती है, अत: चीनी गणराज्य का प्रतिनिधित्व उसे ही प्राप्त होना चाहिए । इस प्रकार ली महोदय साम्यवादी चीनी सरकार को संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश दिलाने के पक्ष में थे। परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ, परिणामस्वरूप सोवियत गुट के देशों ने कहना शुरू किया कि अमरीका ने चीन जनक्रांति की विजय को कभी मन में स्वीकार नहीं किया, संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन को उसके उचित स्थान से वंचित करके चीनी जनता के संकल्प को झुठलाने की चेष्टा की। उसका कहना था कि संघ में चीन के स्थान पर ऐसे लोग बैठे है जो किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं करते। संयुक्त राष्ट्रसंघ को चीन की आन्तरिक घटनाओं से कोई मतलब नहीं होना चाहिए।

कई गैर-साम्यवादी सरकारों ने, जिनमें इंगलिस्तान, भारत और स्कैन्डिनेविया के देश (नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क) शामिल थे, यह मत व्यक्त किया कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन के स्थान पर चीनी जनवादी गणराज्य के प्रतिनिधियों को बैठना चाहिये, क्योंकि राष्ट्र के भू-क्षेत्र पर उस शासन का प्रभावी नियंत्रण है। उनका कहना था कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रतिनिधित्व के प्रश्न का सरकार के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। अन्य सरकारों ने घोषण-पत्र की जिम्मेदारियों की उपेक्षा की है, लेकिन इससे उसकी सदस्यता में कोई बाधा नहीं पड़ी। अगर चीनी जनवादी गणराज्य से विश्व-शांति को खतरा है तो उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ से बाहर रखने के बजाय उसका वहाँ मौजूद रहना ज्यादा अच्छा होगा।

सन् 1950 से लेकर 1961 तक प्रत्येक वर्ष संयुक्त राष्ट्रसंघ में चीन को प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए प्रयास होता रहा। महासभा के पाँचवें अधिवेशन में भारत के प्रतिनिधि ने साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रतिनिधित्व देने का प्रस्ताव रखा, किन्तु यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हो सका। प्रस्ताव पर हुए मतदान के फल की व्याख्या करते हुए भारतीय प्रतिनिधि बी.एन. राव ने कहा था: ''प्रस्तावित मसविदा बहुमत से पराजित होने के बाद भी जनसंख्या के आधार तथा गैर-साम्यवादी राष्ट्रों को ध्यान में रखते हुए महासभा बहुमत से पराजित होने के बाद भी जनसंख्या के आधार तथा गैर-साम्यवादी राष्ट्रों को ध्यान में रखते हुए महासभा द्वारा पारित हुआ ही समझा जा सकता है।'' महासभा के ग्यारहवें अधिवेशन में भी भारतीय प्रतिनिधि द्वारा इसी तरह के विचार व्यक्त किये गये। वी.क.के. कुष्णमेनन ने कहा था:- ''जिन सदस्यों ने साम्यवादी

चीन के प्रतिनिधत्व के प्रश्न को कार्यक्रम में जोड़ने के पक्ष में मत दिया, वे एक अरब छत्तीस करोड़ लोगों को प्रतिनिधित्व करते है। तथा जिन्होंने इसका विरोध किया है, वे केवल 58 करोढ़ 50 लाख व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।'' परन्तु अमरीकी विरोध के कारण कुछ भी नहीं किया जा सका। सन् 1961 में औपचारिक रूप से महासभा की कार्य-सूची में जनवादी चीन के प्रतिनिधित्व के प्रश्न को शामिल किया गया। महासभा ने यह निर्णय किया कि वह इस प्रश्न पर विचार करेगी, और यह भी निर्णय किया कि चीन के प्रतिनिधत्व में परिवर्तन करने का कोई प्रस्ताव एक महत्वपूर्ण मामला है और इस कारण उसके लिए दो-तिहाई बहुमत आवश्यक है। इसके बाद प्रत्येक बाद प्रत्येक वर्ष आवश्यक बहुमत के अभाव में इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया जाता रहा कि तैवान की राष्ट्रवादी सरकार के प्रतिनिधियों के स्थान पर पीकिंग की साम्यवादी सरकार के प्रतिनिधियों को बिठाया जाए। अमरीका तथा उसके समर्थक राज्यों के विरोध के कारण चीनी सदस्यता का प्रश्न टाला जा रहा था

संयुक्त राज्य अमरीका का यह दृष्टिकोण था, जिसका समर्थन उसके कई मित्र राज्यों ने किया, कि पीकिंग मी जनवारी सरकारी चीनी जनता की सही इच्छा का प्रतिनिधत्व नहीं करती। उसने क्रूरता और नैतिकता के अभाव का प्रदर्शन किया है। उसने कोरिया में आक्रमण किया, तिब्बत के स्वशासन को खत्म किया, भारत पर आक्रमण किया, दक्षिणी-पूर्वी एशिया में तथा अन्यत्र तोड़-फोड़ के कार्य कराए, और तैवान पर हमला करने की धमकी दी। अतः साम्यवादी चीन शांतिप्रिय नहीं है। उसके नेताओं का विश्वास है कि बड़े पैमाने पर युद्ध का होना अनिवार्य है। प्रतिनिधियों की संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश देने से संगठन टूटेगा, भविष्य में आक्रमण के विरुद्ध कार्यवाही करन सकने की क्षमता घटेगी और इससे हर जगह स्वतंत्र यही समझेंगे कि उनके लक्ष्यों का बलिदान किया जा रहा है। तैवान स्थित राष्ट्रवादी शासन के प्रतिनिधियों ने निष्ठापूर्वक संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेवा की है, अतः उसे संघ से निकालना नहीं चाहिए। संक्षेप में, अमरीकी गुट ने यही मत प्रकट किया कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून और अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार के नियमों की अवहेलना करने वाले और युद्ध की अनिवार्यता की खुले तौर पर घोषणा करने वाले साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थान नहीं मिलना चाहिए। यह स्थिति सन् 1971 के प्रथम भाग तक बनी रही और जनवादी चीन को संघ से अलग रखा जाता रहा।

परन्तु सन् 1970 में पिंगपाँग के माध्यम से अमेरिका-चीन सम्बन्धों में सुधार आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हो गया कि अमरीका अब संघ में जनवादी चीन के प्रवेश का विरोध नहीं करेगा। बाईस वर्ष की कशमकश के बाद चीन की मुराद अन्ततः 26 अक्तुबर, 1971 को पूरी हुई जब संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा के एक प्रस्ताव पारित करके साम्यवादी चीन को संघ का सदस्य बना लिया और तैवान को संघ से निष्कासित कर दिया। चीन को सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्य का पद मिल गया। संघ की सदस्यता मिलने के कुछ ही दिनों बाद उप विदेश मंत्री चिआओ-कुआन-हुआ के नेतृत्व में चीनी प्रतिनिधि दल न्यूयार्क पहुँच गया और उसने संयुक्त राष्ट्रसंघ में अपना स्थान विधिवत् ग्रहण कर लिया। इस प्रकार इस दुःखद नाटक का अन्त हुआ। साम्यवादी चीन के

सदस्यता-सम्बन्धी विवाद से स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता की समस्या राजनीतिकरण के तत्तवों में कितनी प्रभावित और उलझी हुई हैं।

1.4.9. विभाजित राज्यों की सदस्यता की समस्या

साम्यवादी चीन की सदस्यता के प्रश्न से किसी भी दृष्टि से कम जटिल प्रश्न जर्मनी, वियतमान तथा कोरिया जैसे विभाजित राज्यों का नहीं है। हम जानते है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के समक्ष कुछ अन्य अर्से से पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी, उत्तरकोरिया और दक्षिण कोरिया, उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम के परस्पर विरोधी राज्यों की सदस्यता का प्रश्न रखा गया था परन्तु उनमें से किसी को भी सदस्यता नहीं प्राप्त हो रही थी क्योंकि इस प्रश्न पर सोवियत रूस और अमरीका के बीच समझौता नहीं हो पा रहा था। दोनों एक-एक विरोध गुट का समर्थन कर रहे थे। उनकी सदस्यता के सम्बन्ध में सन् 1973 में एक महत्वपूर्ण बात हुई। 19 सितम्बर, 1973 को महासभा के अठाईसवें अधिवेशन में पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी को संघ का सदस्य बनाया गया। दोनों जर्मल राष्ट्रों को एक साथ संघ का सदस्य बनाया जाना संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक महान उपलब्धि मानी जाएगी क्योंकि अधिकारिक रूप से इसे द्वितीय महायुद्ध का अन्त माना जा सकता है। परन्तु उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया, उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम को सदस्यता नहीं प्रदान की गयी जबकि अगस्त 1965 में इनकी सदस्यता का प्रश्न भी संयुक्त राष्ट्रसंघ में उठा। संघ की सदस्यता समिति की सिफारिश पर सुरक्षा परिषद् के नौ सदस्यों ने दोनों वियतनामों को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने से सम्बन्धित प्रस्ताव परिषद् में पेश किया। परिषद् के तेरह सदस्यों, जिनमें फ्रांस, सोवियत रूस, ब्रिटेन और चीन, चार स्थायी सदस्य शामिल थे, ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम का संघ में प्रवेश रोक दिया। अमरीकी प्रतिनिधि का कहना था कि यदि सुरक्षा परिषद् दक्षिण कोरियों को संयुक्तत राष्ट्र का सदस्य बनाने के लिए सहमत होती है तभी अमेरिका दोनों वियतनामों की सदस्यता का समर्थन करेंगा।

इस प्रकार हम देखते है कि संयुक्त राष्ट्रसयंघ में सदस्यता की समस्या राजनीतिकरण के तत्त्व से प्रभावित रही है। यद्यपि आज विश्व के लगभग सभी स्वतंत्र राज्य इसके सदस्य बन चुके है तथा कुछ इने-गिने राष्ट्रों का संघ में प्रवेश इसलिए अटका हुआ है कि महाशक्तियों में परस्पर समीक्षा नहीं हो पाया है। संक्षेप में, जैसा कि क्लॉड ने कहा है कि सदस्यता-सम्बन्धी प्रश्न का राजनीतिकरण संयुक्त राष्ट्रसंघ में अमरीका और सोवियत टीमों तथा महाशक्तियों और लघु राज्यों के समूहों के बीच फुटबॉल का मैच बन गया है।

1.4.10. सदस्यता के निलंबन तथा परित्याग की व्यवस्था (Provisions Regarding Supension and Terminations of Membership)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में किसी सदस्य की सदस्यता के निलंबन तथा निष्कासन की व्यवस्था की गयी है। धारा 1 यह उपबंधित करती है कि सुरक्षा परिषद द्वारा जिन सदस्यों के विरुद्ध निरोधात्मक दंडात्मक कार्रवाई की गयी है उन्हें महासभा सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर दो-तिहाई बहुमत से निलम्बित कर सकती है। बाद में उपर्युक्त समझे जाने पर सदस्यता पुनः लौटाई जा सकती है। दोनों के लिए सुरक्षा परिषद् की अनुशंसा

आवश्यक होगी। चार्टर की धारा 6 में यह कहा गया है कि चार्टर के सिद्धांतों का लगातार उल्लंघन करने वाले सदस्य-राज्य को विश्व-संस्था से निष्कासित भी किया जा सकता है। परन्तु यह सुरक्षा परिषद की अनुशंसा पर महासभा के निर्णय से होगा। इस प्रकार चार्टर में सदस्य-राज्यों के निलंबन तथा निष्कासन दोनों की व्यवस्था थी। फिनलैंड पर आक्रमण करने के आरोप में सोवियत रूस को राष्ट्रसंघ में निष्कासित कर दिया गया था। निलंबित सदस्य-राज्य को संघ के किसी भी अंग की बैठक में शामिल होने नहीं दिया जा सकता। वह किसी न्यास प्रदेश का शासन भी नहीं कर सकता। परन्तु सचिवालय में काम करने वाले उस राज्य के नागरिक पूर्ववत काम करते रहेंगे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में सदस्यों द्वारा सदस्यता-परित्याग करने की कोई व्यवस्था नहीं है। इसके विपरीत राष्ट्रसंघ के संविदा में यह व्यवस्था थी कि संघ का कोई भी सदस्य दो वर्षों की सूचना देकर राष्ट्रसंघ से हट सकता था। परन्तु सदस्यता-परित्याग के समय उस सदस्रू राज्य के अन्तर्राष्ट्रीय आभार तथा संविदा-सम्बन्धी सारे दायित्व पूरे हो जाने चाहिए। संविदा में यह भी कहा गया था कि यदि कोई सदस्य संविदा में किये गये किसी संशोधन से असहमत हो तो उसे अपनी सदस्यता वापस लेने का अधिकार था। राष्ट्रसंघ के संविदा के उक्त उपबंधों का बहुमत बुरा प्रभाव पड़ा। इन्हीं उपबंधों की आड़ में जर्मनी, जापान तथा इटली के राष्ट्रसंघ की सदस्यता का त्याग कर उसके सिद्धांतों की अवलेहना की थी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का निर्माण करने वालो सदस्यों के समक्ष राष्ट्रसंघ का अनुभव था। अतः डम्बार्टन ओक्स में संघ के निर्माण के लिए एकत्र प्रतिनिधियों ने सदस्यता-परित्याग की कोई व्यवस्था नहीं की। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर को अंतिम रूप देने के लिए सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन का आयोजन हुआ। यहाँ कुछ राज्यों के प्रतिनिधियों ने सदस्यता-परित्याग की व्यवस्था का पूर्ण विरोध किया तो कुछ के सदस्यता-परित्याग के अधिकार को केवल वैसे ही राज्यों के लिए सीमित करने का सुझाव दिया। जिनको चार्टर में किया गया कोई संशोधन मान्य नहीं है। सोवियत प्रतिनिधि का विचार था कि किसी राज्य की सम्प्रभुता में सदस्यता-परित्याग का अधिकार भी सन्निहित है, अतः सदस्यराज्यों को इस अधिकार से संचित रखना प्रजातंत्र तथा सम्प्रभुता के सिद्धांत के विपरीत है। अन्त में, निर्णय यह हुआ कि चार्टर में सदस्यता-परित्याग के प्रश्न के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार चार्टर में सदस्यता-परित्याग की कोई व्यवस्था नहीं की गयी। परन्तु इस प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त समिति ने एक औपचारिक घोषणा प्रसारित कर इस बात की पुष्टि की कि यदि कोई सदस्य राज्य अपवादजनक परिस्थिति में सदस्यता परित्याग की विवशता का अनुभव करता है और अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए बाध्य नहीं करेंगा। साथ-साथ यह भी कहा गया तो संघ उस राज्य को अपना सहयोग बनाये रखने के लिए बाध्य नहीं करेगा। साथ-साथ यह भी कहा गया कि यदि किसी सदस्य-राज्य की जिम्मेवारी और अधिकार परिवर्तित कर दिया हो जिसे वह राज्य स्वीकार नहीं करता हो तो उसे संघ में रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। सारांश यह कि यद्यपि चार्टर में सदस्यता-परित्याग की कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं है परन्तु प्रकारान्तर से उपर्युक्त व्याख्या के माध्यम से सदस्यता-परित्याग के अधिकार को मान्यता देने का प्रयास किया गया है परन्तु प्रकारान्तर से उपर्युक्त व्याख्या के माध्यम से

सदस्यता-परित्याग के अधिकार को मान्यता देने का प्रयास किया गया है। परन्तु आलोचकों ने इस व्याख्या की आलोचना की है जैसा कि केल्सन ने लिखा है कि उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार किसी भी सदस्य राज्य को अपवादजनक परिस्थिति में संगठन से पृथक् होने का अधिकार होगा। परन्तु इसका निर्णय कौन करेगा कि इस तरह की अपवादजनक स्थिति उत्पन्न हुई अथवा नहीं? चूँकि चार्टर के अन्तर्गत यह निर्णय करने का अधिकार किसी उपांग को नहीं दिया गया अतः स्पष्ट है कि इस तरह का निर्णय लेने का अधिकार सदस्य-राज्य को ही दिया गया है। वास्तव में संयुक्त राष्ट्रसंघ एक सर्वोपरि राज्य नहीं है। इसके सदस्य-राज्यसार्वभौम होते हैं और सार्वभौमिकता में संघ की सदस्यता छोड़ना अन्तर्निहित है।

1.4.11. मूल्यांकन

इसी अधिकार का प्रयोग करते हुए इंडोनेशिया संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता का परित्याग करके संघ से अलग हो गया था। 21 जनवरी, 1965 को उसने संघ के महासचिव को अपने संघ से अलग होने की विधिवत् सूचना दे दी। उसी दिन संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्थिति इण्डोनेशिया के राजदूत ने संघ के महासचिव को एक पत्र देकर यह सूचित किया है कि उसका देश अब संघ की किसी सम्बद्ध संस्था से सम्बन्ध नहीं रखेगा। इण्डोनेशिया के इस निर्णय का कारण सुरक्षा परिषद् के अस्थायी पदों पर मलेशिया का चुनाव था। इण्डोनेशिया की नीति सदा के मलेशिया विरोधी रही है। अतः जब सुरक्षा परिषद् में यह अस्थायी पदों पर मलेशिया का चुनाव था। इण्डोनेशिया की नीति सदा के मलेशिया विरोधी रही है। अतः जब सुरक्षा परिषद् मे यह अस्थायी सदस्य चुन लिया गया तो राष्ट्रपति सुकर्ण के लिए यह बात असह्य हो गयी थी। उन्होंने संघ से अलग होने के लिए घोषणा कर दी। जकर्ता में स्थित सोवियत राजदूत तथा अन्य सोवियत प्रतिनिधियों ने उसने ऐसा न करने की अपील की। अफ्रीका, एशिया तथा मध्य-पूर्व के बहुत से राज्यों ने सुकर्ण के इस निर्णय की आलोचनाा की परन्तुवह टस-से-मस नहीं हुए। मार्च, 1995 के समाप्त होने तक इंदडोनेशिया का संघ से सारा सम्बन्ध समाप्त हो गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के इतिहास में यह एक अद्वितीय घटना थी। अब ऐसा लगने लगा कि संयुक्त राष्ट्रसंघ भी वही रास्ता अपना रहा है जिसके चलते पुराने राष्ट्रसंघ का पतन हुआ था। राष्ट्रसंघ से अलग होने वाला पहला राष्ट्र जापान था। परन्तु उसके बाद संघ की सदस्यता छोड़ने का ताँता लग गया । इंडोनेशिया की सदस्यता-त्याग की घटना से संयुक्त राष्ट्रसंघ के शुभचिन्तकों को इसी तरह की आशंका होने लगी थी। यह आशंका और अधिक बढ़ गयी जब राष्ट्रपति सुकर्ण ने कुछ राज्यों को मिलाकर समानान्तर संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माण की घोषण की गयी जब राष्ट्रपति सुकर्ण ने कुछ राज्यों को मिलाकर समानान्तर संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माण की घोषणा की निश्चत ही यह संयुक्त राष्ट्रसंघ के शुभचिन्तकों को इसी तरह की आशंका होने लगी थी। यह आशंका और अधिक बढ़ गयी जब राष्ट्रपति सुकर्ण ने कुछ राज्यों को मिलाकर समानान्तर संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माण की घोषण की निश्चय ही यह संयुक्त राष्ट्रसंघ के लिए एक संकट की घड़ी थी परन्तु सौभाग्यवश शीघ्र ही इंडोनेशिया की राजनीति में उथल-पुथल हुई और वहाँ एक नयी सरकार बनी। इस सरकार ने पुनः संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की।

1.4.12. पाठ/सार सांराश

परिणामस्वरूप 28 दिसम्बर, 1966 को इंडोनेशिया पुनः संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बन गया। सन् 1966 में ही पाकिस्तान ने भी संघ की सदस्यता छोड़ने की धमकी दी थी, लेकिन उसको संघ छोड़ने की हिम्मत नहीं हुई। केवल एक दो दृष्टांतों को छोड़कर संयुक्त राष्ट्र के किसी भी सदस्य को अभी तक सदस्यता से वंचित नहीं किया गया है। 26 अक्टूबर, 1971 को महासभा ने सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर एक प्रस्ताव पारित करके जनवादी चीन को संघ का सदस्य बना दिया। इसके साथ ही पहले चीन का प्रतिनिधित्व करने वाले फारमोसा के राष्ट्रवादी चीन को इसकी सदस्यता से वंचित कर दिया गया। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र से निकाला जाने वाला पहला देश राष्ट्रवादी चीन है। दूसरा उदाहरण युगोस्लाबिया (मॉटनिग्रो और सर्विया) है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर कार्रवाई करते हुए महासभा ने 22 सितम्बर, 1992 को युगोस्वालिया को विश्व-संस्था के काम काज में भाग लेने से रोक दिया। महासभा के प्रस्ताव में कहा गया कि युगोस्वालिया के संघीय गणराज्य (मॉटेनिग्रो और सर्बिया) को भूतपूर्व समाजवादी संघीय गणराज्य युगोस्वालिया के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र का सदस्य स्वतः नहीं माना जा सकता। महासभा ने कहा कि युगोस्लाव गणराज्य नए देश के रूप में संघ की सदस्यता के लिए फिर से आवेदन कर सकता है। विगत लगभग पांच दशकों में सिर्फ इंडोनेशिया को छोड़कर किसी भी देश ने संघ की सदस्यता का परित्याग नहीं किया था। इंडोनेशिया भी एक वर्ष के भीतर ही इसमें पुनः शामिल हो गया। किन्तु ऐसे उदाहरण हैं जब कुछ सदस्यों ने संघ के अंगों तथा उनकी बैठकों को बहिष्कार या प्रत्याहार किया है। परन्तु उनमें वे पुनः लौट आए। उदाहरण के लिए अमरीका ने 1 नवम्बर 1977 को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सदस्यता का परित्याग किया था। फिर 1 जनवरी 1985 को उसने यूनेस्कों की सदस्यता का परित्याग किया था।

1.4.13. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता से क्या अभिप्राय है?
2. संयुक्त राष्ट्र में सदस्यता प्राप्त करने की क्या विशेषताएं है। इसकी जानकारी प्राप्त करोगे।
3. संयुक्त राष्ट्र में कोई भी देश उसकी सदस्यता के लिए शर्तो को पूरा करते है।
4. सदस्यता प्राप्त करने में क्या शर्ते एवं बाधाएं है इसकी जानकारी प्राप्त करोगें।
5. बढ़ती हुई सदस्यता का परिणाम हो इसकी जानकारी प्राप्त करना।

लघुउत्तरीय प्रश्न

क) संयुक्त राष्ट्र संघ की योजनाओं के बारे में वर्णन कीजिए?
ख) गैर सरकारी संगठनों के कार्य का वर्णन करें?
ग) मास्को घोषणा से आपका क्या अभिप्राय है?
घ) नया संगठन का निर्माण क्यों हुआ?
ड़) संयुक्त राष्ट्र के जन्म का विवरण दीजिए?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना कब हुई?

(a) 1942 (b) 1943 (c) 1945 (d) 1941

2. संयुक्त राष्ट संघ का मुख्यालय कहां है?

(a) जेनेवा (b) अफ्रीका (c) न्यूयॉर्क (d) इग्लैण्ड

3. तेहरान सम्मेलन कब हुआ?

(a) 1943 (b) 1942 (c) 1949 (d) 1945

4. फरवरी 1945 में कौन सा सम्मेलन हुआ?

(a) मास्को सम्मेलन (b)

(c) याल्टा सम्मेलन (d) तेहरान सम्मेलन

5. संयुक्त राष्ट्र में कितने देश आते हैं?

(a) 194 (b) 191 (c) 195 (d) 193

1.4.14. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. असंहर रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1957
2. अकिन बेन्पेमीन न्यू स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओर्गेनाइजेशन पेरिस यूनेस्को, 1955
3. बैअली सयूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र, 1961
4. असहर : रोबर्ट दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर वाशिंगटन दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1951
5. अकिन वेन्मीन- न्यू-स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओंगेनाइजेशन पेरिस 1955
6. बैऊली सपूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र 1961
7. अल्कर एच. आर. एण्ड रस्सअर एम. बी. बलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू हैवन थेल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965

खण्ड–2: संयुक्त राष्ट्र की स्थापना, उद्देश्य एवं सिद्धान्त
इकाई–1: महासभा

इकाई की रूपरेखा:

2.1.1. उद्देश्य कथन
2.1.2. प्रस्तावना
2.1.3. महासभा का परिचय
2.1.4. महासभा का संगठन
2.1.5. महासभा का अधिवेशन
2.1.6. महासभा के सभापति
2.1.7. समितियाँ
2.1.8. अन्तरिम समिति अथवा छोटी सभा
2.1.9. कार्य–सूची
2.1.10. मतदान–प्रणाली एवं समूह
2.1.11. महासभा के अधिकार और कार्य
2.1.11.1. विचारात्मक कार्य विचारत्मक कार्य (Deliberative Functions):
2.1.11.2. निरिक्षणात्मक कार्य (Supervisory Functions)
2.1.11.3. वित्तीय कार्य (Financial Functions)
2.1.12. संगठनात्मक कार्य (Organisational Functions)
2.1.12.1. संशोधन सम्बन्धी कार्य (Constituent Functions):
2.1.12.2. विविध कार्य (Miscellaneous Function):
2.1.13. शांति के लिए एकता प्रस्ताव
2.1.14. महासभा के कार्यों का मूल्यांकन तथा उसका बढ़ता हुआ महत्त्व (Evaluation of the General Assembly and Growing Importance of the General Assembly)
2.1.15.मूल्यांकन
2.1.16. पाठ सार/ सारांश
2.1.17. अभ्यास/बोध प्रश्न
2.1.17.1.महासभा की नियुक्ति एवं कार्यों की व्याख्या कीजिए
2.1.17.2.महासभा में संयुक्त राष्ट्र संघ की बढ़ती हुई महत्वता का मूल्यांकन कीजिए।
2.1.17.3.महासभा शक्तियों एवं कार्यों का विवरण दीजिए
2.1.18. संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.1.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आपः

- द जनरल असैम्बली इन द सैन्टर ऑफ यूनाइटिड नेशन्स
- एन.डी. पलमर एण्ड एम.सी. पटकिंस
- हंस कैल्सन द लॉ ऑफ द यूनाइटिड नेशन्स

2.1.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्र संघ के छह प्रधान अंग है। (1) महासभा (General Assembly) (2) सुरक्षा परिषद् (Security Council) (3) आर्थिक और सामाजिक परिषद् (Economic and Social Council) (4) न्यास परिषद् (Trusteeship Council) (5) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justic) एवं (6) सचिवालय (Secreatariat) आवश्यकतानुसार सहायक अंगों की स्थापना की जा सकती है। अपने कर्तव्यों के सम्यक् निर्वहन के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अनेक विशिष्ट समितियों की स्थापना की है, जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, यूनेस्को आदि।

2.1.3. महासभा का परिचय

संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंगों में सबसे बड़ा तथा सबसे अधिक लोकप्रिय अंग महासभा है। यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का केन्द्रीय निकाय है। जैसा कि ई.पी. चेज ने लिखा है। महासभा संयुक्त राष्ट्रसंघ का केन्द्रबिन्दु है। यह न तो अपना स्थान त्याग सकती है और न अपनी महत्वपूर्ण स्थिति के लिए किसी दूसरे अंग को भागीदार बना सकती है।[53] वह महासभा अथवा संसद से की है। अन्तर केवल इतना है कि इसके निर्णय बाध्यकारी नही होते। सिनेटर बेन्डेबर्ग ने इसे संसार की नगर सभा (The town meeting of the world) कहा है। कारण यह कि महासभा ऐसा स्थल है जहाँ विश्व के विभिन्न राज्य विश्व शांति और सुव्यवस्था से सम्बद्ध प्रश्न पर तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुव्यवस्था कायम रखने के लिए सुझाव देने का अवसर प्राप्त होता है। गुड्सपीडने ठीक ही लिखा है इसके समक्ष प्रस्तुत हाने वाली समस्याओं का रूप चाहे जो भी हो महासभा एक वह स्थान है जहाँ छोटे-बड़े सभी सदस्य अपनी आलोचना तथा विचार व्यक्त कर सकते है तथा किसी विषय पर वाद-विवाद कर सकते है। इसलिए महासभा को मानव का खुला अन्तःकरण कहा गया है।

2.1.4. महासभा का संगठन

महासभा संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रतिनिध्यात्मक अंग है। संघ के सभी सदस्य-राज्य इसके सदस्य होते हैं। इस प्रकार यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का अकेला अंग है। जिसमें संघ के सभी सदस्य-राज्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त है। प्रत्येक सदस्य-राज्य 5 प्रतिनिधि और 5 वैकल्पिक प्रतिनिधि भेज सकता है परन्तु मत एक ही दे सकता है। इस प्रकार महासभा का संगठन राज्यों की समानता के आधार पर किया गया है। प्रत्येक देश के प्रतिनिधि 1 मंडल में 5 प्रतिनिधि और 5 वैकल्पिक प्रतिनिधि के अलावा सलाहकारों एवं विशेषज्ञों को आवश्यकता के अनुसार नियुक्त किया जाता है। इस सम्बन्ध में चार्टर में यह व्यवस्था है

[53] The General Assembly is the centre of the united Nations. It can ni either abdicate nor share its position

कि किसी सदस्य राज्य का प्रतिनिधि मंडल 5 प्रतिनिधियों, 5 वैकल्पिक प्रतिनिधियों तथा उतने ही सलाहकार एवं विशेषज्ञों को मिलाकर गठित होगा जितना प्रतिनिधि मंडल के लिए आवश्यक हो। जब संघ के चार्टर पर सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में विचार हो रहा था, उस समय कुछ लोगों ने यह सुझाव दिया था कि महासभा में प्रत्येक सदस्य राज्य के सिर्फ एक-एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो क्योंकि इससे दो फायदे होंगे। एक ओर तो इससे महासभा का आकार असंतुलित होने से बच जायेगा और दूसरी और उन छोटे-छोटे राज्यों को भी भाग मिल जायेगा जो बड़ा प्रतिनिधिमंडल भेजने में असमर्थ है। परन्तु यह सुझाव स्वीकार नहीं किया गया और प्रत्येक सदस्य के लिए 5 प्रतिनिधि 5 वैकल्पिक प्रतिनिधि, तथा आवश्यकतानुसार सलाहकारों एवं विशेषज्ञों पर सहमति हुई।

प्रतिनिधियों की नियुक्ति उनकी सरकार द्वारा होती है। उनकी योग्यताओं तथा आवश्यक शर्तो का निर्धारण उनकी सरकार ही किया जाता है। प्रतिनिधिगण अपने राज्य के प्रधान तथा विदेश मंत्री से प्रमाण-पत्र ग्रहण करते हैं। प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों की सूची तथा उनका प्रमाण पत्र महासभा के अधिवेशन प्रारंभ होने से पहले ही महासचिव के पास जमा करना पड़ता है। महासभा की प्रमाण-पत्र समिति प्रतिनिधियों के प्रमाण-पत्रों की जाँच करती है।

2.1.5. महासभा का अधिवेशन

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में यह विधान है कि महासभा की बैठक वर्ष में कम-से-कम बार अवश्य होगी। आम तौर से यह अधिवेशन सितम्बर के महीने में न्यूयार्क में होता है। अधिवेशन किसी अन्य स्थान पर भी हो सकता है यदि इस तरह की प्रार्थना अधिवेशन प्रारंभ होने के एक सौ बीस दिन पहले की गयी हो तथा उस पर बहुमत सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो। इसके अधिवेशन पेरिस में भी हो चुके है। प्राय यह अधिवेशन सितम्बर महीने के तीसरे मंगलवार को प्रांरभ होता है और करीब दो महीने तक चलता है। अगर जैसा अब आम तौर पर होता है। महासभा के अधिवेशन की अवधि पर चार्टर में किसी प्रकार का प्रतिबंध नही है। केल्सन के अनुसार यदि कार्य सूची के लिए आवश्यक हो तो महासभा अपना वार्षिक अधिवेशन तक चालु रख सकती है। परन्तु व्यवहार में यह अधिवेशन लगभग दो महीने तक चलता है।

आवश्यकता पड़ने पर महासभा के विशेष अधिवेशन भी बुलाए जा सकते हैं। विशेष अधिवेशन सुरक्षा परिषद अथवा संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के बहुमत या अधिकतर सदस्यों की सहमति से एक सदस्य की प्रार्थना पर बुलाया जा सकता है। असाधारण परिस्थितियों में सुरक्षा परिषद् अथवा बहुमत सदस्यों के बहुमत या अधिकतर सदस्यों की सहमति से एक सदस्य की प्रार्थना पर बुलाया जा सकता है। असाधारण परिस्थितियों में सुरक्षा परिषद अथवा बहुमत सदस्यों के अनुरोध पर 24 घंटे के भीतर महासचिव के द्वारा सभा का संकटकालीन अधिवेशन बुलाने की माँग की गयी हो। अभी तक कई विशेष अधिवेशन हो चुके है। दो विशेष अधिवेशन फिलिस्तीन की समस्या को हल करने के लिए हुए थे। एक विशेष अधिवेशन टयूनिशिया की स्थिति पर विचार करने के लिए 21 अगस्त 1961 में हुआ था। जून 1967 में भी अब इजराइल पर विचार करने के लिए एक विशेष अधिवेशन हुआ था। महासभा का सातवाँ विशेष अधिवेशन 1 से 16 सितम्बर, 1975 तक न्यूयार्क में हुआ। नामीबिया की समस्या पर विचार करने हेतु 26 अप्रैल से 3

मई 1978 तक और निशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार करने के लिए सन् 1978, 1982 औरा 1988 में तीन विशेष अधिवेशन हुए। अफगानिस्तान में सोवियत संघ की सैनिक कारवाई से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने हेतु 10 जनवरी 1980 को और फिलिस्तीन के प्रश्न पर विचार करने के लिए 23 जुलाई 1980 को महासभा के विशेष अधिवेशन हुए। महासभा के पूर्ण अधिवेशन की बैठक पदाधिकारियों का चुनाव करने कार्य, पद्धति सम्बन्धी मामले तय करने के लिए और लगभग पाँच सप्ताह की सामान्य बहस के लिए होती है।

2.1.6. महासभा के सभापति

अपने कार्यो को सुचारू रूप से चलाने के लिए महासभा का एक अध्यक्ष का चुनाव करती है। उसका चुनाव महासभा के प्रत्येक अधिवेशन के लिए किया जाता है जो अधिवेशन के अन्त तक सभा की कारवाई का संचालन करता है। इस प्रकार कार्य-काल उस अधिवेशन तक ही सीमित रहता है जिसमें उसका निर्वाचन है। राष्ट्र संघ की सभा की भांति महासभा का अध्यक्ष भी छोटे राष्ट्रो में से चुना जाता है। यह परम्परा स्थापित हो चुकी है कि महासभा का अध्यक्ष किसी बड़ी शक्ति का प्रतिनिधि नहीं होगा। परन्तु इससे पद की गरिमा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। इस पद को कुछ ऐसे लोगों ने सुशोभित किया है जो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के ख्याति-प्राप्त व्यक्ति रहे है। जैसा कि निकोलास ने लिखा है। महासभा के प्रथम सभापति बेल्जियम के हेनरी एम. स्पॉक से लेकर आज तक इस पद पर बैठने वालो ने इसके कार्य-भार को योग्यतापूर्वक संभाला है। सभा के आठवें अधिवेशन का अध्यक्ष भारतीय प्रतिनिधि श्रीमति विजयलक्ष्मी पंडित को निर्वाचित किया गया है। साधारणतया अधिवेशन प्रारंभ के पूर्व हर सम्भव प्रयास किया जाता है कि ऐसे व्यक्ति को ही अध्यक्ष पद प्रत्याक्षी बनाया जाय जिस पर प्रभावशाली बहुमत का समर्थन प्राप्त हो सके।

अध्यक्ष के अतिरिक्त आठ उपाध्यायों की भी नियुक्ति की जाती थी। इनमें से पाँच आवश्यक रूप से पाँच स्थायी सदस्यों के प्रतिनिधि होते थे। सन् 1953 में उपाध्यक्षों की संख्या अठारह कर दी गयी। इन उपाध्यायों का विभाजन इस प्रकार किया गया है। (क) सात एशियाई अफ्रीकी राज्यों से (ख) एक पूर्व यूरोप के राज्यों से (ग) तीन लैटिन अमरीकी राज्यों से (घ) दो पश्चिमी यूरोप एवं अन्य देशों से (ड) पाँच सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यो से सभी उपाध्यक्षों का चुनाव भी प्रत्येक अधिवेशन के लिए ही किया जाता है।

राष्ट्रसंघ की सभा की तरह महासभा का अध्यक्ष सर्वाधिक पदाधिकारी समझा जाता है। वह सभा की खुली बैठकों का सभापतित्व करता है, वाद-विवादों का निर्देशन करता है। नियमों का पालन करवाता है तथा प्रतिनिधियों को बोलने का अवसर प्रदान करता है। वह किसी प्रश्न पर मत लेता है और उसके निर्णयों की घोषणा करता है। वह प्रक्रियाओं पर नियंत्रण रखता है, समय-सीमा का निर्धारण करता है एवं सभा अथवा बहस के स्थान या समाप्ति की घोषणा करता है। कुछ विचारक उसके अधिकारों की तुलना कॉमन सभा के अध्यक्ष के साथ करते हैं। परन्तु दोनों पदाधिकारियों की स्थिति में काफी अन्तर है। यह ठीक है कि महासभा के अध्यक्ष को कॉमन सभा के अध्यक्ष के कुछ अधिकार अवश्य प्राप्त है लेकिन उनके आधार पर हम यह नही कह सकते कि महासभा का अध्यक्ष कॉमन सभा के अध्यक्ष की भाँति ही सशक्त है। यह बात महासभा के प्रथम

अध्यक्ष हेनरी स्पॉक के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट हो जाती है। सभापति के रूप में मैं उस दिन का स्वपन देखता हूँ जब मुझे वे सारे अधिकार प्राप्त होंगे जो कॉमन सभा के अध्यक्ष को प्राप्त है। परन्तु अभी हम उस स्थिति में नहीं पहुँच पाये है। वास्तव में महासभा के अध्यक्ष को वह गरिमा प्राप्त नहीं है जो कॉमन सभा के अध्यक्ष को प्राप्त है। कॉमन सभा का अध्यक्ष अपने हस्तक्षेप से किसी भी सदस्य को शांत कर सकता है और यदि वह बोलने के लिए खड़ा हो तो अन्य सदस्यों को बैठ जाना पड़ता है। महासभा के अध्यक्ष के सम्बन्ध में इस तरह की परम्परा स्थापित नहीं हो पायी है। फिर भी जैसा कि निकोलास ने लिखा है कि एक योग्य व्यक्ति न केवल सभा के अधिवेशन की कार्रवाईयों को सुचारू रूप से चला सकता है, वरन अपने व्यक्तिगत प्रभाव से वह बहुत कुछ कर सकता है। यह उसकी योग्यता और क्षमता पर निर्भर करता है।

2.1.7. समितियाँ

महासभा एक बड़ी संस्था है। इसके लिए उन सभी विषयों पर विस्तार से विचार-विमर्श कर सकना मुश्किल है जो इसके समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। अतः राष्ट्रीय विधायिका सभाओं की भाँति महासभा भी अपने कार्यो के सम्पादन के लिए समितियों का प्रयोग करती है। कार्य-सूची के अधिकांश सारभूत प्रश्नों पर जिन पर बहस और निर्णय की आवश्यकता होती है, पहले किसी-न-किसी समिति में सार्वजनिक रूप से विचार होता है, और इस समितियों में संघ के सभी सदस्य होते हैं। इन समितियों की कार्य-पद्धति पूर्ण अधिवेशन की अपेक्षा कम औपचारिक होती है। प्रतिनिधि सामने किसी मंच पर खड़े होकर बोलने की बजाय अपने स्थानों पर बैठे हुए ही बोलते है, और मतदान मे निर्णय सामान्य बहुमत ही होता है। समतियों द्वारा स्वीकृत सभी सिफारिशों पर बाद में पूर्ण अधिवेशन में विचार होता है जहाँ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय करने के लिए दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है।

महासभा को अपने कार्य-संचालन के लिए आवश्यकतानुसार समितियों तथा सहायक अंगों का गठन करने का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत महासभा ने चार प्रकार की समितियों की स्थापना की है। पहली श्रेणी में सभा की मुख्य समितियाँ आती है जिनका कार्य महत्वपूर्ण मामलों पर विचार करना होता है। दूसरे और तीसरे वर्ग में क्रमशः प्रक्रिया- समितियाँ तथा स्टैडिंग समितियाँ आती है। इनके अलावा तदर्थ समितियाँ होती है जिनकी नियुक्ति समय-समय पर कुछ विशिष्ट विषयों पर करने के लिए होती है।

महासभा अपना कार्य छह मुख्य समितियों द्वारा चलाती है। ये समितियाँ है। (i) राजनीति एवं सुरक्षा समिति (Political and Security Committee) (ii) आर्थिक और वितीय समिति (Economic and Financial Committee) (iii) सामाजिक, मानवीय और सांस्कृतिक समिति (Social Humanitrian and Cultural Committee) (iv) न्यास समिति (Trusteeship Committee) (v)प्रशासकीय एवं बजट समिति (Administrative and Badgetary Committee) तथा (vi) विधि समिति राजनीतिक और सुरक्षा समिति राजनीति और सुरक्षा-सम्बन्धी मामलो पर विचार करती है, जैसे संघ के सदस्यों का प्रवेश निलंबन और निष्कासन, शस्त्रों का नियमन, विवादों का शांतिपूर्ण समाधान आदि। आर्थिक और वितीय समिति संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले आर्थिक और वितीय विषयों पर विचार करती है। यह आर्थिक ओर वितीय सहयोग

के प्रश्न पर भी विचार करती है। सामाजिक, मानवीय और सांस्कृतिक समिति सामाजिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार करती है। न्यास समिति न्यास व्यवस्था से सम्बद्ध प्रश्नों पर विचार करती है। प्रशासकीय और बजट समिति का गठन प्रशासकीय और बजट सम्बन्धी मामलों पर विचार करने के लिए किया गया है। विधि समिति को वैधानिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए निर्मित किया गया है।

महासभा के कार्य संचालन में सहायता देने हेतु दो प्रक्रिया समितियाँ नियुक्ति की जाती है। ये हैं साधारण समिति और परिचय पत्र समिति। साधारण समिति में महासभा का अध्यक्ष सातों उपाध्यक्ष तथा छह मुख्य समितियों के अध्यक्ष रहते है। इस समिति का कार्य देखता है कि महासभा के अधिवेशन काल में उनका कार्य सुचारू ये से चल रहा है अथवा नहीं प्रक्रिया सम्बन्धी दूसरी समिति है। प्रमाण पत्र समिति। प्रत्येक अधिवेशन में अध्यक्ष एक प्रमाण-पत्र समिति नियुक्त करता है जो प्रतिनिधियों के प्रमाण-पत्र की पुष्टि करती है।

महासभा के सहायता के लिए दो स्थायी समितियाँ भी है एक प्रबन्ध और बजट सम्बन्धी प्रश्नों के लिए परामर्शदात्री समिति और दूसरी अनुदान समति। प्रबन्ध और बजट समिति में 9 और अनुदान समति में 10 सदस्य होते है। इन समितियों के सदस्य महासभा द्वारा तीन पाल के लिए व्यक्तिगत योग्यताओं और भौगोलिक स्थिति के आधार पर चुने जाते है। महासभा अपने सहायता के लिए आवश्यकतानुसार तदर्थ समितियों का भी गठन करती है।। इसकी संख्या आवश्यकतानुसार घटती बढ़ती रहती है। महासभा के कुछ अधिवेशनो में राजनीतिक और सुरक्षा सम्बन्धी समिति का कार्य भार अधिक हो गया था, इसलिए एक तदर्थ राजनीतिक समिति स्थापित की गयी जो प्रथम समिति के काम में हाथ बँटाती है। इस समिति को विशेष राजनीतिक समिति या 7वीं समिति कहते है।

सभी समितियाँ अपना सुझाव या सिफारिशें महासभा के खुले अधिवेशन मे भेजती है। साधारणतः महासभा समितियों की सिफारिशों को स्वीकार कर लेती है। परन्तु ऐसा करना अनिवार्य नही है। दिसम्बर 1948 में स्पेनिश भाषा को महासभा ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की तीसरी कार्य करने वाली भाषा बना दिया। समिति ने इस निश्चय के विरुद्ध सिफारिश की थी परन्तु यह स्वीकार नही की गयी। 1 नवम्बर 1949 में महासभा ने न्यासिता से उनके अधीन क्षेत्रों के सम्बन्ध में स्वतंत्रता के विकास के लिए विस्तृत योजनाएँ तैयार करने को कहा था। महासभा ने अपनी सहायता के लिए 4 और स्थायी अंग की स्थापना की है-ऑडिटर बोर्ड, पूँजी, लागत से सम्बन्ध रखने वाली समिति संयुक्त राष्ट्र कर्मचारी पेन्शन समिति, अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग।

2.1.8. अन्तरिम समिति अथवा छोटी सभा

नवम्बर 1949 में महासभा ने एक सर्वथा नीवन एवं महत्वपूर्ण समिति की स्थापना की जो अन्तरिम समिति अथवा छोटी सभी के नाम से विख्यात हुई। इस समिति की स्थापना का अपना अलग इतिहास है। द्वितीय महायुद्ध के बाद महाशक्तियों के बीच जो शीतयुद्ध प्रांरभ हुआ उसका प्रभाव संयुक्त राष्ट्रसंघ पर पड़े बिना नहीं रह सका। शीर्घ ही यह स्पष्ट होने लगा कि महाशक्तियाँ किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर एकमत नहीं हो सकती। अब यह आंशका की जाने लगी लगी कि निषेधाधिकार के प्रयोग और महाशक्तियों की आपसी खींचातानी के फलस्वरूप सुरक्षा परिषद् आक्रमण को रोकने अथवा

शांति के शत्रुओं के विरूद्ध कोई कार्रवाई करने में समर्थ नहीं हो सकती। अतः उसकी जगह किसी नयी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गयी। अन्तरिम समिति की स्थापना इसी अनुभूति का परिणाम थी। इस समिति की स्थापना 13 नवम्बर 1947 को महासभा के द्वारा की गयी। गुड्सपीड ने लिखा है कि इस समिति की स्थापना का प्रमुख कारण संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा ऐसे उपाय की खोज की इच्छा थी जिससे आम सभा सदा अधिवेशन मेब नी रहे और सुरक्षा परिषद् की असफलता की स्थिति में आवश्यक कारवाई कर सके।

यह समिति सदा अधिवेशन में रहने वाली संस्था थी। इसका यह उतरदायित्व था कि महासभा के अधिवेशन न होने के समय वह शांति और सुरक्षा के प्रश्न पर अपना सुझाव प्रस्तुत करेगी। अपने कार्यो के समुचित निर्वहन के लिए इसे जाँच पड़ताल आयोग नियुक्त करने, आवश्यक खोज बीन करने तथा महासचिव को महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाने की सिफारिश करने का अधिकार था। इस प्रकार इसकी स्थिति महासभा की स्थायी समीति के समान थी। यह सभा के अधिवेशनों के अन्तराल में भी कार्य करती थी और शांति और सुरक्षा सम्बन्धी विषयों पर अपनी दृष्टि रखती थी। यह सर्वप्रथम शांति एवं सुरक्षा से सम्बन्द्ध समस्याओं को स्वयं सुलझाने का प्रयास कर सकती थी लेकिन यदि हम इस कार्य में सफलता नहीं मिली तो वह महासभा की शीघ्र बैठक बुलाने की सिफारिश कर सकती थी। इस प्रकार इस समिति को प्रभावी रूप से वे ही अधिकार प्राप्त थे जो चार्टर के द्वारा सुरक्षा परिषद् को प्रदान किये गये थे।

महासभा की भाँति इस समिति में भी सभी सदस्य-राज्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त था। प्रत्येक सदस्य-राज्य को एक-एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। इस दृष्टि से यह समिति महासभा का लघु संस्कारण थी। निर्माण के समय इससे यह आशा की गयी थी कि यह स्थायी संस्था महासभा के कार्यो और दायित्वों को अधिक गतिशील और प्रभाव बना सकती थी। प्रांरभ में इसका निर्माण एक वर्ष के लिए किया गया। बाद में इसका कार्यकाल एक वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया। सन् 1949 में अपने चौथे अधिवेशन में महासभा ने इस समिति का कार्य काल अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दिया। सन् 1949 में अपने चौथे अधिवेशन में महासभा ने इस समिति का कार्य, काल अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दिया। प्रारंभ में इस समिति ने कुछ समय तक कार्य किया। परन्तु बाद में यह विफल रही क्योंकि रूस के गुट ने इसके कार्यो में सहयोग नहीं दिया। साम्यवादी राज्य इस समिति को चार्टर के सिद्धातों के विरुद्ध बतलाते थे। उनके अनुसार इस समिति का ध्येय सुरक्षा परिषद् की अवहेलना करना था। साम्यवादी राज्यों के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में यह समिति शांति और सुरक्षा की समस्याओं पर वास्तविक रूप से विचार नही कर सकी। फलतः यह लघु सभा व्यावहारिक रूप में बेकार साबित हुई। जैसा कि पामर ओर परकिन्स ने लिखा है। सन् 1948 के बाद छोटी सभा ने कभी-कभी काम किया है। परन्तु सन् 1950-51 के बाद से यह निर्जीव (Dead Duck) हो गयी।[54] आगे चलकर इसका कार्य विभिन्न नियमित एवं विशेष समितियों तथा आयोगों द्वारा सम्भाल लिया गया।

2.1.9. कार्य-सूची

[54] N.D. Palmer & HC Perkins Op. Cit. P. 1077

अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की बैठकों में भाग लेने के लिए जब प्रतिनिधिगण एकत्रित होते है तो उनके लिए प्रारंभ में यह निर्णय करना आवश्यक हो जाता है कि वे किन-किन विषयों पर विचार करेंगे। ऐसे विषयों के योग को कार्य-सूची कहा जाता है। महासभा के समक्ष आने वाले विषय से सम्बन्धित कागज, सूचनाएँ और आँकड़े संघ कार्य सचिवालय तैयार करता है। महासभा के अधिवेशन के लिए कार्य-सूची तैयार कना अपने आप में जटिल एवं कठिन काम है। इसके लिए एक अतिरिम कार्य-सूची (Provisional Agenda) महासचिव तैयार करता है। इसमें साधारणतः निम्नलिखित क्रम में विषय रखे जाते हैं-

(क) संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यो के सम्बन्ध में महासचिव की वार्षिक रिपोर्ट
(ख) संघ के अन्य अंगों तथा विशिष्ट अभिकरणों की रिपोर्ट,
(ग) महासभा द्वारा पिछले सत्र में आदिष्ट विषय,
(घ) अन्य प्रमुख अंगों द्वारा प्रस्तावित विषय
(ड) सदस्यों द्वारा प्रस्तावित विषय,
(च) आगामी वितवर्ष का बजट तथा पिछले वित्तवर्ष की लेखा रिपोर्ट एवं
(छ) महासचिव द्वारा प्रस्तुत विविध आवश्यक विषय।

बैठक प्रारंभ होने के कम-से-कम साठ दिन पूर्व अंतरिम सूची सभी सदस्यों में वितरित कर दी जाती है। सदस्यों की ओर से कार्य-सूची में कोई नया विषय जोड़ने की सूचना बैठक के कम-से-कम 25 दिन पूर्व तक दी जा सकती है। बैठक आहूत हो जाने के बाद भी कार्य सूची में नये विषयों को जोड़ा जा सकता है यदि बहुमत सदस्य उन पर अपनी सहमति प्रदान कर देते हैं। महासभा के परिनियमों के अनुसार कार्य सूची में शामिल किये जाने के बाद किसी भी नये विषय पर सात दिनों तक वाद-विवाद नहीं हो सकता जब तक दो-तिहाई सदस्य इस तरह का निर्णय नही लेते। महासभा की कार्य-सूची का आकार प्रत्येक वर्ष बढ़ता चला जाता है। सिडनी डी. बेली के मतानुसार सदस्य संख्या में वृद्धि तथा नये सदस्यों के विविध हितों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की संख्या तथा जटिलता में वृद्धि हुई है और महासभा को उन पर विचार-विमर्श करना होता है।''

2.1.10. मतदान-प्रणाली एवं समूह

महासभा की मतदान-प्रणाली चार्टर की धारा 18 से विनियमित होती है। इस धारा के अनुसार महासभा में प्रत्येक सदस्य-राज्य को एक ही मत प्राप्त है। इसमें छोटे-छोटे या प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों की संख्या से कोई फर्क नही होता। अमरीका हो या क्यूबा, चीन हो या हाइटी, सभी को एक ही मत देना है। महासभा की बैठकों में प्रत्येक विषय पर मतदान करने का तरीका एक ही नहीं है। कुछ विषयों पर दो तिहाई और कुछ अन्य पर सामान्य बहुमत से प्रस्ताव पारित होने की व्यवस्था है। महत्वपूर्ण विषयों पर दो तिहाई और कुछ अन्य पर सामान्य बहुमत से प्रस्ताव पारित होने की व्यवस्था है। महत्वपूर्ण विषयों पर दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। महत्वपूर्ण विषय कौन से है, इसका उल्लेख कर दिया गया है। ये विषय है विश्व-शांति एवं सुरक्षा-सम्बन्धी अनुशसाएँ सुरक्षा परिषद, आर्थिक-सामाजिक परिषद् तथा संरक्षण परिषद् के लिए सदस्यों का निर्वाचन, किसी

राज्य को संयुक्त राष्ट्रसंघ का न्यास सदस्य बनाने के लिए मतदान किसी सदस्य के अधिकारों एवं सुविधाओं को निलंबित करना, न्यास व्यवस्था सम्बन्धी समस्याएँ और बजट सम्बन्धी विषय। अन्य विषयें पर बैठक में उपस्थित बहुमत से प्रस्ताव पारित होते हैं। परन्तु महासभा सामान्य बहुमत से किसी विषय को महत्वपूर्ण घोषित करके उसके पारित होने के लिए दो-तिहाई बहुमत आवश्यक कर दे सकती है। चूँकि महाशक्तियों की ओर से अवसर किसी विषय को महत्वपूर्ण घोषित कराने के प्रयास होते हैं उदारणार्थ सन् 1961 से पूर्व जनवादी चीन के संघ में प्रवेश के प्रश्न को हमेशा महत्वपूर्ण घोषित कराया जाता रहा ऐसा करके अमरीका चाहता था कि इस प्रश्न पर महासभा में दो-तिहाई बहुमत नहीं प्राप्त हो।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि महासभा में मतदान के लिए धारा 18 महत्वपूर्ण और गैर महत्त्वपूर्ण विषयों में विभेद करती है। आलोचकों के अनुसार इस तरह का विभेद उचित नही है। जैसा कि केल्तन ने लिखा है कि धारा 18 की शब्दावली दुर्भाग्यापूर्ण है। किसी भी विषय को जिस पर महासभा में विचार किया जा रहा हो, उसे गैर महत्वपूर्ण कैसे कहा जा सकता है? महासभा की पूर्ण बैठक में जब दक्षिणी अफ्रीकी गणतंत्र द्वारा भारतीयों के साथ किये जाने वाले व्यवहार पर विचार हो रहा था तो इस तरह का प्रश्न उठाया गया था। सभा के अध्यक्ष में यह प्रश्न उठाया था कि क्या उक्त प्रश्न महत्त्वपूर्ण विषयों की कोटि में आता है?'' भारतीय प्रतिनिधि ने इस पर जवाब देते हुए कहा था कि महासभा में विचार किया जाने वाला प्रत्येक विषय अपने-आप में महत्वपूर्ण है। हम अपना समय गैर महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने में नही बरबाद कर सकते।''

धारा 19 में यह व्यवस्था है कि उस सदस्य को जिसने संयुक्त राष्ट्रसंघ को अपना वित्तीय अनुदान नहीं अदा किया हो, महासभा में मतदान का अधिकार नहीं रह जाता। किन्तु महासभा किसी ऐसे सदस्य को मत देने की अनुमति प्रदान कर सकती है। जिसकी तरफ से उसको संतोष हो गया हो कि चन्दे का भुगतान करना सदस्य-राष्ट्र के नियंत्रण से बाहर है।

महासभा की मतनदान प्रणाली पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह राष्ट्रसंघ की सभा की मतदान-प्रणाली से अधिक उदार है। वेन्डेनबोश तथा होगन इसे राष्ट्रसंघ की पद्धति से अधिक सुधरी हुई तथा प्रगतिशील बतलाते है। राष्ट्रसंघ की सभा में निर्णय के लिए सर्वसम्मत आवश्यक था पानी उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों का एकमत होना। इसका अर्थ यह था कि सभा का कोई भी सदस्य अपने निषेधाधिकार के बल पर उसके निर्णय को रोक सकता था। संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में निर्णय लेने के लिए सर्वसम्मत प्रणाली उठा दी गयी है। उसकी जगह कुछ विषय पर दो-तिहाई तथा कुछ पर सामान्य बहुमत से निर्णय लेने की व्यवस्था है।[55]

जिस प्रकार राष्ट्र के अन्दर अधिक व्यापक लक्ष्यों के लिए इक्ट्ठे होकर काम करने के लिए जब व्यक्तियों ने छोटे-छोटे मतभेद भुला दिए तो उससे राजनीतिक दलों का जन्म हुआ, उसी प्रकार राष्ट्र भी अपने सामान्य हितों की प्राप्ति के लिए इकटठा होकर अलग-अलग ग्रुप अथवा समूह बना लेते है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में इस

55

तरह के समूहों का अस्तित्व देखने को मिलता है। महासभा की बैठक के पूर्व जब सभी प्रतिनिधि मंडल संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्यालय में पहुँच जाते है, तो विभिन्न प्रकार की कूटनीतिक वार्ताएं विभिन्न प्रतिनिधि मंडलों में ही शुरू हो जाती है। वार्ताएँ विभिन्न गुटों में तथा गोपनीय ढंग से होती है। इन वार्ताओं में ही महासभा की बैठक के विभिन्न प्रश्नों पर मतदान किस प्रकार होगा यह बहुत कुछ निर्णीत होता है। विभिन्न स्थानों तथा पदो के लिए किन सदस्य राज्यों के प्रत्याशी निर्वाचित होंगे, यह भी अधिकतर इन्ही वार्ताओं और सम्पर्को में तय किया जाता है। महासभा के प्रस्तावों में राज्यों की चार श्रेणियों का उल्लेख होता रहता है। (क) लेटिन अमरीकी राज्य (ख) अफ्रीकी एवं एशियाई राज्य (ग) पूर्वी यूरोपीय राज्य तथा (घ) पश्चिमी यूरोपीय एवं दूसरे राज्य राज्यों की इन श्रेणियों के अलग-अलग अथवा एक दूसरे से मिलकर समय-समय पर विभिन्न सदस्यों की दृष्टि से विभिन्न समूह (Groups) पनपते रहते है। चुनाव तथा बहालियों के विषय में इन राज्य समूहों ने बहुधा साथ-साथ मतदान किया है। उदाहरणार्थ लेटिन अमरीकी गुट तथा एशियाई अफ्रीकी गुट ऐसा करते पाये गये है। आलोचको के अनुसार इस संयोगो तथा समूहों की गतिविधियों के फलस्वरूप महासभा द्वारा किसी निष्पक्ष निर्णय पर पहुँचने की सम्भावना घट जाती है। यह आरोप यद्यपि एक हद तक सही है लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महासभा कोई दार्शनिककों या वैज्ञानिकों का निकाय नही है और न न्याय की खोज करने वाले कोई न्यायिक संस्थान ही है। यह तो एक राजनीतिक निकाय है जो विभिन्न समस्याओं का सम्भावित हल खोजने का प्रयास करता है और यह देखता है कि किसी प्रकार समस्या के समाधान में सदस्यों का बहुमत प्राप्त किया जाये।

2.1.11. महासभा के अधिकार और कार्य

महासभा संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक प्रमुख अंग है। संघ के चार्टर में संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंगों में इसको प्रथम स्थान प्रदान किया गया है। इसके अधिकार तथा कार्य काफी व्यापक तथा विस्तृत है। चार्टर की धारा 10 से लेकर 17 तक इसके अधिकारों तथा कार्यो का उल्लेख है। धारा 10 उसके सामान्य अधिकारों से सम्बद्ध है। इसके अनुसार महासभा को चार्टर के अन्तर्गत आने वाले सब विषयों पर विचार विमर्श करने का अधिकार है। चार्टर में दिये गये अन्य अंगो से सम्बन्धित विषयों पर भी यह सभा वाद-विवाद कर सकती है। विश्व शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के तत्कालिक प्रयोग एवं परम्परा बनाने के हेतु हर सम्भव प्रयत्न करना इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं सर्वप्रथम दायित्व है। इसके अन्तर्गत शस्त्रास्त्रों पर नियंत्रण एवं निरस्त्रीकरण की समस्याएँ विशेष रूप से सम्बद्ध है। परन्तु सभा के कार्यो की प्रकृति मुख्य रूप से निरीक्षणात्मक एवं अन्वेषणात्मक है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य अंग अपना प्रतिवेदन महासभा के पास ही प्रस्तुत करते है। आर्थिक और सामाजिक परिषद् महासभा की देख-रेख में ही अपने कार्यो की प्रकृति का सम्पादन करती है। महासभा का निर्वाचन बजट तथा प्रशासन सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त है। इस प्रकार उसके अधिकारों और कार्यो की लम्बी सूची है। वस्तुतः संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता उनके सफल कार्यान्वियन पर निर्भर करती है जैसा गुड्सपीड ने लिखा है महासभा के विभिन्न कार्य संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता के आधार है।''[56]

56

i. विचारत्मक कार्य (Deliberative Functions)
ii. निरीक्षणात्मक कार्य (Supervisory Functions)
iii. वित्तीय कार्य (Financial Functions)
iv. संगठनात्मक कार्य (Organisational Functions)
v. संशोधन सम्बन्धी कार्य (Constitutent Function)
vi. विविध कार्य (Miscellaneous Functions)

2.1.11.1. विचारात्मक कार्य विचारत्मक कार्य (Deliberative Functions):

संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माताओं का उद्देश्य महासभा के रूप में एक ऐसी संस्था का निर्माण करना था जहाँ विश्व-शांति से सम्बद्ध किसी भी विषय पर विचार किया जा सके। जैसा कि केल्सन ने लिखा है। उनकी मंशा महासभा को विश्व की नगर सभा' या मानव का उन्मुक्त अन्तःकरण बनाने की थी अर्थात् वे उसे आलोचना एवं विचार-विमर्श करने वाला अंग बनाना चाहते थे।''[57] इसलिए चार्टर के अन्तर्गत उसे विश्व शांति से सम्बद्ध किसी भी विषय पर विचार विमर्श करने के विस्तृत अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 10 में कहा गया है कि महासभा घोषणा पत्र के अधिकार क्षेत्र में आनेवाले तथा उसके द्वारा स्थापित विभिन्न निकायों के अधिकारों एवं कृत्यों से सम्बद्ध सभी प्रश्नो पर विचार कर सकती है तथा उसके सम्बद्ध में अपनी सिफारिश पेश कर सकती है। इस प्रकार अनुच्छेद 10 महासभा को किसी विषय पर विचार विमर्श करने का सामान्य अधिकार प्रदान करता है। इसके द्वारा उसे चार्टर के अन्तर्गत आने वाले सभी विषयों तथा संघ के अन्य अंगों से सम्बन्धित विषयों पर वाद विवाद का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वस्तुत इस अनुच्छेद की भाषा इतनी लचीली है कि उसकी आड में महासभा किसी भी प्रश्न पर वाद-विवाद कर सकती है। इस अनुच्छेद की व्यापकता पर प्रकश डालते हुए डॉ. इवाट ने से फ्रांसिस्को सम्मेलन में कहा था, इस अनुच्छेद के अन्तर्गत चार्टर के सभी पहलू तथा उसमें अन्तर्निहित सब कुछ आ जाते है जैसे चार्टर की प्रस्तावना उसमें निहित संघ के महान् उद्देश्य तथा सिंद्धात एवं संघ के विभिन्न अंगों के कार्य शामिल है केल्सन के अनुसार सम्भवतः कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय विषय ऐसा नही है जिस पर यह सभा विचार या सिफारिश नही कर सकती हो।[58]

शांति और सुव्यवस्था के मामले मे आम सभा को व्यापक विचारात्मक अधिकार प्राप्त है। यद्यपि इस क्षेत्र में प्राथमिक जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् को प्रदान की गयी है लेकिन महासभा को यह अधिकार है कि वह शांति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए सहयोग के सामान्य सिंद्धात पर विचार कर सकती है तथा निर्णय लेकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों अथवा सुरक्षा परिषद् के सदस्यों अथवा दोनों के पास ही सिफारिश कर सकती है अनुच्छेद 11 में महासभा के इस अधिकार की चर्चा की गयी है। इस अनुच्छेद के अनुसार महासभा विश्व शांति और सुरक्षा को स्थापित करने के सिंद्धात पर विचार कर सकती है। तथा निर्णय लेकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों अथवा सुरक्षा परिषद के सदस्यों अथवा दोनों के पास ही सिफारिश कर सकती है। अनुच्छेद 11 में महासभा के इस अधिकार की चर्चा की गयी है। इस अनुच्छेद के अनुसार महासभा विश्व शांति और

[57] All of its functions are fundamental to the working of the United Nations Organisation
[58] Hans Kelson The Law of the United Nations page. 119

सुरक्षा को स्थापित करने के सिंद्धातों पर विचार कर सकती है। यह निरस्त्रीकरण और शस्त्रों के नियंत्रण पर भी विचार कर सकती है। इन सिंद्धातों के विषय में वह संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों या सुरक्षा परिषद या दोनो से सिफारिश कर सकती है। यहाँ पर यह भी कहा गया है कि विश्व शांति और सुरक्षा सम्बन्धी कोई भी प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ के किसी सदस्य सुरक्षा परिषद या अन्य किसी राज्य के द्वारा जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नही है। महासभा के समक्ष विचारार्थ रखा जा सकता है ऐसे प्रश्न के सम्बन्ध में महासभा सिफारिश भी कर सकती है। सुरक्षा सम्बन्धी विषय जिन पर कार्रवाई करना आवश्यक है उन्हें महासभा वाद-विवाद के पहले अथवा बाद में सुरक्षा परिषद के समक्ष भेज सकती है। वह सुरक्षा परिषद् का ध्यान ऐसी परिस्थितियों की और भी आकर्षित कर सकती है जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शांति को खतरे की सम्भावना हो। स्पष्ट है कि विश्व शांति एवं सुव्यवस्था बनाये रखने से सम्बन्धित कोई भी समस्या महासभा के समक्ष पेश की जा सकती है केवल दो अपवादों को छोड़कर (1) समस्या सुरक्षा परिषद के विचारधीन हो तथा (2) समस्या का सम्बन्ध किसी देश के घरेलू मामले से नहीं हो। अनुच्छेद 2 (1) मे स्पष्ट कहा गया है कि यदि कोई परिस्थिति या झगड़ा सुरक्षा परिषद् के विचारधीन है तो महासभा उस झगडे़ और परिस्थिति के सम्बन्ध में तब तक सिफारिश नहीं करेगी जब तक सुरक्षा परिषद् उससे ऐसा करने के लिए न कहे। सुरक्षा परिषद् के विचारधीन मामलों के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की गयी है कि महासचिव महासभा को ऐसे मामलों की सूचना दे दिया करेगा। वैसा होने पर महासभा में उस पर तब तक विचार नहीं किया जायेगा जब तक कि सुरक्षा परिषद् की कार्य सूची से वह हटा नहीं दिया गया हो अथवा परिषद् स्वयं ही महासभा से उस पर विचार करने का अनुरोध नहीं करे। इस प्रकार अनुच्छेद 12 महासभा की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाता है। दूसरा प्रतिबंध यह है कि महासभा उस समस्या पर विचार नही कर सकती जिसका सम्बन्ध किसी देश के घरेलू मामले से हो। 'घरेलू मामला' एक ऐसी आज आड़ है जिसमें दुनिया की अनेक सारी समस्याएँ खींच ली जाती है जिन्हे संयुक्त राष्ट्रसंघ में व्यवस्था का प्रश्न बनाया जा सकता था।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि चार्टर के अन्तर्गत महासभा को निरोधात्मक या दंडात्मक कार्रवाई करने का अधिकार नहीं प्राप्त है। उसका काम है विचार-विमर्श करना और उससे सम्बन्धित सिफारिश करना अधिक से अधिक वह किसी समस्या की ओर सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकृष्ट कर सकती है, यदि उससे शांति भंग हुई हो अथवा होने का भय हो परन्तु यही आकर उसका काम समाप्त हो जाता है। अब यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि शांति और सुव्यवस्था के मामले में महासभा की शक्तियों को इतना सीमित क्यों रखा गया है? इसका उतर आधुनिक विश्व की राजनीतिक यथार्थता में निहित है। जिन कारणों के चलते पाँच महान् राष्ट्रो को सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता तथा निषेधाधिकार प्रदान करना पड़ा लगभग उन्हीं कारणों के चलते महासभा की शक्तियों को सिर्फ विचार-विमर्श एवं अनुशंसा करने तक सीमित रखना पड़ा।

महासभा ने सन् 1950 में एक प्रस्ताव द्वारा अपने अधिकारों को बढ़ाने की चेष्टा की। यह प्रस्ताव शांति के लिए एकता (Uniting for Peace) के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रस्ताव के अनुसार शांति को खतरा शांति भंग अथवा आक्रमण की विभीषिका के

सम्बन्ध में स्थायी सदस्यों के एकमत न होने के कारण यदि सुरक्षा परिषद् कार्य-संचालय में असफल रहे तो महासभा तुरंत ही उस पर विवाद करा सकती है और सामूहिक कदम उठाने के लिए उचित सिफारिशें कर सकती है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम रहे। प्रस्ताव के अनुसार यदि महासभा का अधिवेशन न हो रहा हो तो सुरक्षा परिषद् के किन्हीं 9 सदस्यो के साधारण बहुमत से अथवा संघ के सदस्यों के बहुमत से 24 घंटे के अन्दर महासभा का संकटकालीन अधिवेशन बुलाया जा सकता है। इस तरह के अधिवेशन सन् 1967 में पश्चिमी एशियाई संकट तथा सन् 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय में हुए थे। अफगानिस्तान में सोवियत सैनिक कारवाई से उत्पन्न परिस्थिति पर विचार करने के लिए 1980 में तथा फिलिस्तीन के प्रश्न पर विचार करने के लिए जुलाई 1980 में महासभा के विशेष अधिवेशन हुए है।

इस प्रकार शांति के लिए एकता प्रस्ताव से महासभा की स्थिति अधिक महत्वपूर्ण हो गयी। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि यदि सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार के कारण गतिरोध पैदा हो जाता है तो इस रिक्तता को महासभा अवश्य पूरी करे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि महासभा जैसे आवश्यक समझे तो सैनिक अथवा सशस्त्र कारवाई करने के लिए भी सिफारिश कर सकती है। स्पष्ट है ि कइस प्रस्ताव से संघ के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। हॉफमैन के अनुसार ''यह प्रस्ताव चार्टर में क्रांतिकारी तथ्यत: परिवर्तन का सूचक है और सामूहिक कारवाई के रास्ते को फिर से खोलने का प्रयास करता है। व्यवहार मे भी ऐसा देखा गया है कि शांति और सुरक्षा के क्षेत्र के विचार विमर्श और अनुशंसा करने वाली संस्था के रूप में महासभा को जो अधिकार प्रदान किए गए है, उसने उनका व्यापक प्रयोग किया है। जैसा कि गुड्सपीड ने लिखा है अन्तर्राज्य सम्बन्धों के आचरण को निर्देशित करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के सिंद्धातों की सिफारिश करने में महासभा ने अपनी शक्ति का व्यापक प्रयोग किया है।'' इसने एक ऐसे संघ का काम किया है जहाँ पर अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को खतरा उत्पन्न करने वाले विवादों पर विचार किया गया है और उनके समाधान की सिफारिशें[59] की गयी है। अभी तक सभा ने जिन महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर विचार किया है उनमें निम्नलिखित प्रमुख है फिलिस्तीन, ग्रीस, कोरिया, हंगरी, अल्जीरिया, स्वेजनहर तथा साईप्रस के मामले भारत-पाकिस्तान का प्रश्न, क्यूबा, कांगो, बर्लिन आदि के प्रश्न। सन् 1967 में अरब-इजरायज संघर्ष तथा सन् 1971 में भारत-पाकिस्तान युद्ध से उत्पन्न परिस्थिति पर भी महासभा ने विचार किया है। वेन्डेनबोश तथा होगन ने ठीक ही लिखा है महासभा के अधिवेशनों की कार्य-सूची (Agenda) में वर्णित विषयों की सूची उन सभी कठिनाइयों और संघर्षो की परिगणना है जो द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व में उत्पन्न हुए है।''

यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि विश्व संसद नहीं होने के कारण महासभा के निर्णय तथा प्रस्ताव आदेशात्मक नहीं होते। फिर भी इसके निर्णय कभी-कभी सदस्य राज्यों पर काफी प्रभावकारी रहे हैं। सन् 1956 के स्वेज नहर संकट के समय महासभा की भूमिका से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। 7 नवम्बर 1956 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने एशियाई अफ्रीकी देशों द्वारा प्रस्तुत यह प्रस्ताव पारित

[59] There is hardly any international matter which the General Assembly is not competent to discuss and on which it is not competent to make recommendations.

किया कि व्यवस्था की जाए। जब आक्रमणकारियों ने अपनी सेनाएँ मिस्र से हटा ली जाएँ और स्वेज नहर-क्षेत्र के अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस की व्यवस्था की जाए। जब आक्रमणकारियों को यह आदेश दिया कि वे यथाशीघ्र अपनी सेनाएँ वापस बुला लें। ब्रिटेन और फ्रांस ने शीघ्र ही सभा के आदेश का पालन किया पर इजरायल हटने का नाम नहीं लेता था। इस पर सभा ने एक और प्रस्ताव पास कर सदस्य राज्यों को आदेश दिया कि वे इजरायल को किसी प्रकार की आर्थिक और सैनिक सहायता न दें। इस पर इजरायल को ही हटना पड़ा। इसी प्रकार कोरिया युद्ध के समय में महासभा के प्रस्तावों ने अमेरिका की कोरिया सम्बन्धी नीति पर अवरोधक प्रभाव डाला था। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि महासभा के निर्णयों को कोई कानूनी बाध्यता नहीं प्राप्त है।[60]इसलिए इसकी सिफारिशों की अनेक अवसरों पर अवहेलना भी की गयी है। इस दृष्टिकोण से महासभा और सुरक्षा परिषद् की स्थिति में पर्याप्त अन्तर है। यदि सुरक्षा परिषद् कोई निर्णय ले ले तो सदस्य राज्यों पर उसका बंधनकारी प्रभाव होगा। परन्तु इसका कदापि यह अर्थ नही है कि महासभा के सुझाव व्यर्थ है। महासभा को दुनिया की 'नगर सभा' कहा गया है फलतः इसके निर्णय विश्व जनमत की अभिव्यक्ति माने जाते है।[61] आदेशनात्मक नही होते हुए भी उनका भारी नैतिक प्रभाव होता है। प्लानो तथा रिग्स के मतानुसार कभी-कभी Manifestoes Against sin' कहे जाने वाले प्रस्तावों के माध्यम से महासभा ऐसी भूमिका अदा करती है जिसे उसके समर्थक चार्टर के सिंद्धातों और मानव-समाज की चेतना की सुरक्षा के रूप मैं स्वीकार करते है और विरोधी केवल सनक के रूप में ठुकरा देते है।''[62]

2.1.11.2. निरिक्षणात्मक कार्य (Supervisory Functions)

महासभा संयुक्त राष्ट्रसंघ की केद्रीय संस्था है, अतः चार्टर के द्वारा इसके कुछ नीरीक्षणात्मक कार्य प्रदान किये गये है। इस कार्य के अन्तर्गत महासभा को सुरक्षा परिषद् तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य विभागों से रिपोर्ट प्राप्त करने एवं उसपर विचार कर अपनर का मत प्रकट करने का अधिकार प्राप्त है। चार्टर के 15वं अनुच्छेद में महासभा को संघ के दूसरे अंगों से प्रतिवेदन प्राप्त करेगी और उस पर विचार करेगी।'' इस प्रकार यह अनुच्छेद महासभा को संघ के दूसरे अंगों से प्रतिवेदन प्राप्त करने तथा उस पर विचार करने के लिए अधिकृत करता है। लेखकों ने महासभा के इस कार्य को काफी महत्व प्रदान किया है। उदाहरण के लिए गुडसपीड ने लिखा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सफल कार्यान्वियन के लिए यह आवश्यक है कि उसके विभिन्न विभागों के कार्यकरण से संघ के सभी सदस्यों को अवगत रखा जाय और उन्हें उसपर विचार करने का अवसर प्रदान किया जाए। यह कार्य केवल महासभा में ही सम्भव हो सकता है क्योंकि संघ के इसी अंग में सभी सदस्य राष्ट्रों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता।''[63] इसी उद्देश्य हेतु यह व्यवस्था की गयी है कि संघ क सभी अंग अपना-अपना प्रतिवेदन महासभा के समक्ष प्रस्तुत करे।

[60] Statnely Hoffman International Organisation and international System International Organisation Vol. 24 (1970), P. 391

[61] Krzyszt of Skubiszewski , " The General Assembly of the United Nations and its powers to influence National Action, Proceedings of the Armercian society of International Law (1964) P.P. 153-154

[62]Sanakoyev At the 23rd Session of the General Assembly.

[63] Plano and Riggs: Op cit., PP. 85-88

महासभा के समक्ष आने वाले प्रतिवेदनों में महत्व की दृष्टि से महासचिव का वार्षिक प्रतिवेदन उल्लेखनीय है। इसमें संपूर्ण संघ की कारवाईयों एवं सामान्य हित के विषयों का वितरण रहता है। इसके अलावा अनुच्छेद 15 और 24 के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् को महासभा के समक्ष अपना वार्षिक प्रतिवेदन पेश करना होता है। इसमें सुरक्षा परिषद् की साल भी तो कारवाई का विवरण होता है। चार्टर में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास नही किया गया है कि सुरक्षा परिषद् कब अपना प्रतिवेदन पेश करेगी। ऐसा लगता है कि चार्टर के निर्माताओं ने इस सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् को काफी स्वतंत्रता देनी चाही थी। संघ के दूसरे अंगों के भी महासभा को प्रतिवेदन प्राप्त करने का अधिकार है। इन प्रतिवेदनों पर महासभा में खुलकर वाद-विवाद तथा आलोचना अथवा अभिस्तवन किया जाता है। महासभा सुरक्षा परिषद् या सम्बद्ध सदस्य देशों को अपने विचार एवं अनुशंसा से अवगत करा सकती है।

चार्टर के अनुच्छेद 13 के अनुसार राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देने के लिए महासभा प्रारंभिक अध्ययन द्वारा जाँच पड़ताल की व्यवस्था कर सकती है। तथा इस विषय में अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कर सकती है। अनुच्छेद 57 के अन्तर्गत अन्त सरकारी समझौते द्वारा विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों से सम्पन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी क्षेत्रों में विशेष माध्यम खोले जाने के लिए महासभा को आदेश देने का अधिकार दिया गया है। आर्थिक और सामाजिक परिषद् इनमें से किसी भी माध्यम के साथ समझौता करके उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ से सम्बन्धित बना सकती है। ऐसे समझौते के प्रति महासभा का अनुमोदन आवश्यक है। उसे इन माध्यमों की नीतियाँ और कृत्यों मं समन्वय लाने के लि सिफारिशें करने का अधिकार है। इस प्रकार आर्थिक और सामाजिक परिषद् महासभा के अधीक्षण सम्बन्धी अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 85 में यह कहा गया है कि सामरिक महत्त्व के लिए नामोदिष्ट न किये गये सभी क्षेत्रों के लिए न्यास समझौते से सम्बद्ध संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यो, जिनमें न्यास समझौतों की शर्तो का अनुमोदन उनमें परिवर्तन अथवा संशोधन भी सम्मिलित है का प्रयोग महासभा द्वारा किया जायेगा। अर्थात् न्यास समझौते से सम्बन्धित जो काम संयुक्त राष्ट्रसंघ के जिम्मे है उनको महासभा पूरा करती है। न्यास-परिषद् जो महासभा की सत्ता के अन्तर्गत कार्य करती हैं महासभा इन कार्यो को पूर्ण करने में सहायता प्रदान करती है। इस प्रकार हम देखते है कि संघ के दो प्रमुख अंग आर्थिक और सामाजिक परिषद् तथा न्यास परिषद् को महासभा के अधीक्षण में ही कार्य करना पड़ता है। जैसा कि लियोनार्ड ने लिखा है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के ये दोनों अंग महासभा के निर्देशन में ही काम करते हैं। संघ लियोनार्ड ने लिखा है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के ये दोनों अंग महासभा के निर्देशन में ही काम करते है। संघ के विभिन्न अंगों के कार्यो पर निरीक्षण रखने के कारण महासभा की स्थिति काफी महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

2.1.11.3. वित्तीय कार्य (Financial Functions)

महासभा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य संयुक्त राष्ट्रसंघ की वित्तीय व्यवस्था से सम्बद्ध है। यह कार्य राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के परम्परागत धन-संबधी कार्यो से मिलता-जुलता है। साधारण तथा सरकार में वित्त पर नियंत्रण रखने का अधिकार प्रतिनिधि सभा को प्रदान किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में भी लगभग ऐसी ही व्यवस्था पायी जाती है। उदाहरणार्थ राष्ट्रसंघ में यह कार्य असेम्बली के द्वारा सम्पादित किया जाता था। प्रारंभ में जिस समिति को बजट पर नियंत्रण रखने का अधिकार दिया गया था, उसकी संरचना राष्ट्रसंघ की कौंसिल करती थी। परन्तु बाद में सन् 1928 में यह अधिकार सभा ने अपने हाथों में ले लिया। तब से राष्ट्रसंघ के बजट पर असेम्बली का अधिकार हो गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में भी यह अधिकार महासभा को प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 17यह उपबंधित करता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के बजट पर विचार करना तथा उसे स्वीकार करना महासभा का ही दायित्व है। इस प्रकार संघ की आर्थिक व्यवस्था का संचालन महासभा के हाथों में चला जाता है। यह संघ के बजट को स्वीकार करती है और सदस्य राज्यों में व्यय बँटवारा करती है। संघ का प्रत्येक अंग अपने अनुमानित खर्च के लिए कितना मिलना चाहिए। संघ के बजट की तैयारी तथा स्वीकृति की प्रक्रिया लगभग वही है जैसी किसी भी आधुनिक विकसित देश में होती है। संघ को बजट पहले सचिवालय में तैयार होता है और इसके बाद उसे महासचिव की स्वीकृति मिलने पर महासभा के प्रशासन तथा बजट सलाहकार समिति के विचारर्थ भेज दिया जाता है। यहाँ उसके प्रत्येक कार्यक्रम पर विस्तार के साथ विचार-विमर्श किया जाता है। इसके बाद अनुशासाएँ स्वीकृत करके प्रारूप बजट को महासभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है अब महासभा की पाँचवीं समिति उस पर विचार करती है। इस प्रकार अन्तिम रूप से तैयार होने पर बजट को महासभा की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। महासभा में उसके एक-एक मद पर घंटो बहस होती है। अपेक्षाकृत इतने छोटे बजट पर शायद ही कही इतने महत्वपूर्ण लोग इतना समय लगाते है।''[64] सरांश यह कि संघ के बजट को स्वीकार करना महासभा का एक महत्वपूर्ण कार्य हैं। संघ के खर्च के लिए प्रत्येक सदस्य राज्य को कितना अनुदान देना है, यह निर्णय महासभा करती है। अन्य शाखा संस्थाओं, एजेंसियों के वित्तीय तथा बजट व्यवस्था की स्वीकृति महासभा को ही देनी होती है।

तात्पर्य यह है कि विश्व संस्था की वितीय व्यवस्था पर निर्णायक अधिकार होने से महासभा का महत्व सर्वाधिक होना स्वाभाविक है। गुड्सपीड के अनुसार ये उपबन्ध, जो संघ के बजट तथा वित पर नियंत्रण का अधिकार महासभा को प्रदान करते है, सम्पूर्ण संगठन पर उसके नियंत्रण को और भी दृढ बना देते है।'' वेन्डेनबोश तथा होगन के शब्दों में, ''अपने इस अधिकार के चलते सम्पूर्ण संगठन के प्रशासन में महासभा की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाती है।'' वास्तव में इन कथनों में बहुत कुछ सच्चाई है। कहा भी जाता है कि जिसके पास वित्तीय शक्ति होती है, वास्तविक शक्ति उसी के पास होती है।

[64] Goodspeed, op. cit,. P.122

2.1.12. संगठनात्मक कार्य (Organisational Functions)

महासभा को कुछ संगठनात्मक कार्य भी सम्पादित करने होते है। इस कार्य के अन्तर्गत वह दोहरे निर्वाचन सम्बन्धी अधिकार कमो प्रयोग करती है। सर्वप्रथम, महासभा सुरक्षा परिषद् की सलाह पर संघ के नये सदस्यों को सदस्यता प्रदान करती है। परन्तु संघ में महासभा की अनुमति पर तब तक प्रवेश सम्भव नहीं है जब तक सुरक्षा परिषद का समर्थन नहीं प्राप्त हो जाता। इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो महासभा की शक्ति राष्ट्रसंघ की असेम्बली से भी कम है। असेम्बली को दो तिहाई बहुमत से बिना परिषद् की सिफारिश के ही नये सदस्यों के प्रवेश की पुष्टि कर देने का अधिकार था। चार्टर के सिद्धांतो की अवहेलना करने पर सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा किसी भी सदस्य को निष्कासित भी कर सकती है। अनुच्छेद 5 में यह कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के वैसे किसी भी सदस्य, जिनके विरुद्ध बाध्यकारी कदम उठाये जा चुके हैं सदस्यता की सुविधा एवं अपने अधिकारों के उपयोग करने में महासभा अथवा सुरक्षा परिषद द्वारा वंचित किये जा सकते है।

महासवभा का दूसरा संगठनात्मक कार्य-संघ के अंगों के निर्वाचित सदस्यों के चयन से सम्बन्धित है। महासभा सुरक्षा परिषद् के दस अस्थायी सदस्यों का चुनाव करती है। निर्वाचन महासभा के दो-तिहाई मतों से होता है। कुछ विद्वानों की दृष्टि से सुरक्षा परिषद् के अस्थायी सदस्यों के निर्वाचन करने का अधिकार महासभा को शांति एवं सुरक्षा के कार्यो में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है। इससे महासभा को परिषद् पर किंचित अप्रत्यक्ष रूप से ही सही नियंत्रण सूत्र मिल जाता है। महासभा आर्थिक और सामाजिक परिषद् के गठन में महासभा का पूरा हाथ होता है। न्यास परिषद् के कुछ सदस्यों का चुनाव भी महासभा के द्वारा होता है। इसके अलावा सुरक्षा परिषद् की अनुशंसा अथवा उससे मिलकर वह कुछ सर्वोच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति या निर्वाचन भी करती है। उदाहरणार्थ महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की अनुशंसा पर महासभा ही करती है अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति महासभा और सुरक्षा परिषद मिलकर करती है। इतना ही नहीं सचिवालय द्वारा की जानेवाली बहालियों के लिए निर्देश भी महासभा ही देती है।

2.1.12.1. संशोधन सम्बन्धी कार्य (Constituent Functions):

अनुच्छेद 108 के अनुसार महासभा को चार्टर में संशोधन लाने की शक्ति प्रदान की गयी है। इसके अनुसार महासभा को सुरक्षा परिषद् के साथ मिलकर चार्टर पर विचार करने के लिए सामान्य सम्मेलन बुलाने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस सम्मेलन द्वारा लाया गया कोई भी संशोधन दो तिहाई सदस्यों द्वारा सांविधानिक प्रक्रिया से पारित होने पारित होने पर लागू हो जाता है। चार्टर में यह भी व्यवस्था गयी है कि यदि महासभा के दसवें वार्षिक अधिवेशन के पहले ऐसा सम्मेलन नहीं होता तो सम्मेलन करने का प्रस्ताव महासभा के उसी अधिवेशन की कार्यावली पर रखा जायेगा और यदि महासभा के बहुमत से और सुरक्षा परिषद् में किन्हीं 9 सदस्यों क मत से यह स्वीकार कर लिया जाता है तो ऐसा सम्मेलन होगा। परन्तु अभी तक इस तरह का कोई सम्मेलन नहीं हो पाया है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि चार्टर में कोई दूसरी विधि से संशोधन नहीं हो सकता। महासभा को अपनी दो तिहाई बहुमत से चार्टर में संशोधन लाने की सिफारिश

करने का अधिकार है। परन्तु इस तरह का संशोधन तब तक लागू नही होगा जब तक उस पर संयुक्त राष्ट्रसंघ क दो-तिहाई सदस्यों जिनमें सुरक्षा परिषद् की पाँच महाशक्तियों का एम मत शामिल हो, का समर्थन प्राप्त नहीं हो जाता। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अभी तक तीन धाराओं धारा 23, 27, 61 में संशोधन हो चुके है। 17 दिसम्बर 1963 को इन संशोधनों पर महासभा का अनुमोदन प्राप्त हुआ और 31 अगस्त 1965 से ये लागू हुए जब सदस्य राज्यों की आवश्यक संख्या द्वारा इन पर अनुमति प्राप्त हो गयी। चार्टर में संशोधन के सम्बन्ध में एक बात याद रखने योग्य है कि कोई संशोधन तब तक नहीं हो सकता जब तक उस पर सुरक्षा परिषद् की पाँच बड़ी शक्तियों की स्वीकृति प्राप्त नही हो जाती। उनकी स्वीकृति के अभाव में महासभा के अनुमोदन का व्यवहार में कोई महत्व नहीं होता।

2.1.12.2. विविध कार्य (Miscellaneous Function):

उपर्युक्त कार्यो के अतिरिक्त महासभा को कुछ अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सुधार लाने के हेतु अनेक प्रकार की अनुशंसा कर सकती है। इसमें मौजूदा संधियों में उपर्युक्त परिवर्तन करने की अनुशंसा भी शामिल है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जो संधियाँ हुई है, उनमें परिवर्तन करने की अनुशंसा महासभा कर सकती है। अन्य अन्तर्राज्य समझौतों में उपर्युक्त परिवर्तन अथवा उन्हें खत्म करने की सिफारिश कर सकती है। राज्यों के परिवर्तन सीमांतो में भी परिवर्तन करने की अनुशंसा महासभा के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत है। महासभा का एक महत्वपूर्ण कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास तथा संहिताकरण करना तथा मानव अधिकारों और आधारभूत स्वतंत्रताओं की रक्षा करना है। अपनी इस भूमिका के निर्वाह में महासभा अनेक ऐसे प्रस्ताव पारित करती है। जैसे (जातिबद्ध समझौता) जिनके द्वारा राष्ट्रीय जातीय अथवा धार्मिक समूहों की सामूहिक हत्या को अवैध करार दिया जाता है और जो सदस्य राज्यों कानून के क्रमिक विकास और संहिताकरण के क्षेत्र में इसका एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह इस बात का अध्ययन करती रहती है कि ऐसे कौन से कानून हो सकते है जिन्हें सभी राष्ट्रों द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो जायेगी। यह महासभा का अन्वेषणात्मक कार्य कहा जा सकता है। इस कार्य का सर्वोत्तम उदाहरण महासभा का अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग संहिताबद्ध होने योग्य विषय के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें महासभा के सम्मुख प्रस्तुत करता है। उसको यह भी कार्य दिया गया है कि वह औपचारिक अन्तर्राष्ट्रीय कानून का प्रतिपादन करने वाली सामग्री को संकलित और प्रकाशित करे। जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म का भेद-भाव बिना सबको महान् अधिकार और मूल स्वतंत्रता सुलभ कराने में सहायता प्रदान करना महासभा का कर्तव्य है।

2.1.13. शांति के लिए एकता प्रस्ताव

सुरक्षा परिषद् के निषेधाधिकार से उत्पन्न गतिरोध को दूर करने तथा सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का महासभा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सफल प्रयास 3 नवम्बर 1950 का शांति के लिए एकता प्रस्ताव था। यह प्रस्ताव कोरिया-युद्ध की पृष्ठभूमि में पारित किया गया था। जून 1950 में रूस-समर्थक उत्तरी कोरिया समय साम्यवादी चीन की सदस्यता के प्रश्न को लेकर सोवियत रूस सुरक्षा परिषद् का बहिष्कार किये हुए था। उसका प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् के कार्यो में भाग नहीं ले रहा था। सोवियत रूस की

अनुपस्थिति के कारण सुरक्षा परिषद् बड़ी तेजी से कार्य कर रही थी। वह उत्तरी कोरिया के विरुद्ध सशस्त्र कारवाई प्रारंभ करने में सफल हो रही थी। ऐसी परिस्थिति में सोवियत रूस ने बहिष्कार की नीति का त्यागने का निर्णय किया। उसने यह घोषणा की कि वह सुरक्षा परिषद् के सत्रों में भाग लेने के लिए वापस आ रहा है। सोवियत रुस की इस घोषणा से पश्चिमी राष्ट्रों के पाँव के नीचे से धरती खिसक गयी। इससे यह आशंका उत्पन्न हो गयी। कि रूस अपने निषेधाधिकार के प्रयोग द्वारा कोरिया में संयुक्त राष्ट्र की सशस्त्र कारवाई की प्रभावशीलता को नष्ट करने का प्रयत्न करेगा। अतः सोवियत अडगेबाजी के विरूद्ध सुरक्षा के रूप में अमेरिका आदि 7 राष्ट्रो ने 9 अक्तूबर, 1950 को शांति के लिए एकता की 'अकेसन योजना' (Acheson Plan) प्रस्तुत की जिसे महासभा ने 3 नवम्बर 1950 को स्वीकार कर लिया। यही प्रस्ताव शांति के लिए एकता प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है। इस अकेसन योजना इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस प्रस्ताव को अमरीकी सदस्य **डीन अकेसन** के नेतृत्व में प्रस्तुत किया गया था।

शांति के लिए एकता प्रस्ताव की व्यवस्था इस प्रकार थी यदि सुरक्षा परिषद् अपने स्वार्थो सदस्यों की सर्वसम्मति के अभाव के कारण किसी भी मामले में जिसमें शांति के लिए संकट शांति भंग अथवा कोई आक्रामक कार्य दिखाई पड़ता है, अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की व्यवस्था के अपनी प्राथमिक उतरदायित्व को पूरा करने में असफल हो जाती है, तब महासभा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुव्यवस्था को बनाये रखने अथवा पुनः स्थापति करने के लिए सामूहिक कारवाई आवश्यकता पड़ने पर शांति भग या आक्रामक कार्य के मामले में सशस्त्र बल प्रयोग भी सम्मिलित है के सम्बन्ध में सदस्य के उचित सिफारिश करने के उद्देश्य से तुंरत मामले पर विचार करेगी। यदि उस समय महासभा का अधिवेशन नहीं चल रहा हो तो 24 घंटे के भीतर उसका आपातकालीन अधिवेशन बुलाया जा सकता है। ऐसा आपातकालीन विशेष अधिवेशन तभी बुलाया जायेगा यदि किन्ही 7 सदस्यों के मत सुरक्षा परिषद् या संयुक्त राष्ट्रसंघ का बहुमत ऐसा करने की प्रार्थना करे।''

इस प्रस्ताव के अन्तर्राष्ट्रीय तनाव वाले क्षेत्रों की स्थिति का निरिक्षण करने और रिपोर्ट देने के लिए 14 सदस्यीय शांति निरीक्षण आयोग (Peace Observation Commission) की व्यवस्था भी की गयी। प्रस्ताव के तीसरे भाग में संघ द्वारा सदस्य राज्यों से यह प्रार्थना की गयी है कि वह आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर संघ के अधीन कारवाई करने के लिए सुशिक्षित सेना प्रदान करे।

इस प्रस्ताव की मुख्य बातों पर साराक्षं हम निम्नलिखित ढंग से निरूपित कर सकते है।

1. यदि सुरक्षा परिषद् निषेधाधिकार के कारण गतिरोध उत्पन्न हो गया हो तो सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव पर अथवा संघ के बहुमत सदस्यों की माँग पर 24 घंटो के अन्तर्गत महासचिव महासभा का विशेष अधिवेशन आहूत करेगा।
2. महासभा उस प्रश्न पर विचार-विमर्श कर सकती है, पता लगा सकती है कि किसने आक्रमण किया है।
3. यह सामूहिक सुरक्षा के लिए प्रस्ताव पारित कर सकती है तथा यदि आक्रमण हो तो सौनिक कारवाई करने का भी निश्चय कर सकती है।

इस प्रकार यह प्रस्ताव पारित करके पश्चिमी राष्ट्रों ने बड़ी होशियारी से काम लिया। आसानी से उन लोगों ने निषेधाधिकार के रोग से ग्रस्त सुरक्षा परिषद् से छुटकारा पा लिया। उसकी जगह महासभा को शक्तिशाली बना दिया गया। इस प्रस्ताव को पारित होने पर जॉन फॉस्टर डलेस ने कहा था आज हम जो शक्ति महासभा से प्राप्त कर रहे हैं वह सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में ही उसे दी गयी थी।'' इस प्रस्ताव के अध्ययन से कतिपय महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते है। सर्वप्रथम चार्टर के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम रखने का एकमात्र दायित्व सुरक्षा परिषद् को प्रदान किया गया था उसे निर्णय लेने शांति और सुरक्षा के क्षेत्र में भी कार्य करने का अधिकार प्रदान किया। तृतीयत इस प्रस्ताव के द्वारा महासभा को यह भी अधिकार दिया गया है कि यदि कहीं पर आक्रमण हो गया तो वह सैनिक कार्रवाई कर सकती है तथा सदस्य-राज्यों को सैनिक सहायता के लिए अनुरोध कर सकती है। इसी निर्णय के द्वारा एक क्लेक्टिव मेजर कमिटी' (Collective Measure Committee) तथा पीस ऑवजर्वेशन कमीशन (Peace Obserbatin Commission) भी स्थापित किया गया। साथ ही साथ सैनिक विशेषज्ञों का एक पैनल नियुक्त करने का भी निर्णय हुआ।

सोवियत संघ ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। उसके अनुसार यह प्रस्ताव सुरक्षा परिषद् की मुख्य जवाबदेही के क्षेत्र में दखल करता है और चार्टर में उल्लेखित निषेधाधिकार की व्यवस्था का भी खंडन करता है। अनेक लेखकों ने भी शांति के लिए एकता का प्रस्ताव को गैर संवैधानिक माना है। उनके अनुसार यह प्रस्ताव चार्टर की मूल भावना का विरोधी है क्योंकि यह संघ के सुरक्षा सम्बन्धी कार्यो को सुरक्षा परिषद् के हाथों से महासभा को हस्तान्तरित करने का प्रयास करता है जो भी हो सोवियत संघ के विरोधों के बावजूद कई अवसरों पर महासभा ने इस प्रस्ताव के अनुसार सफलतापूर्वक कार्य किया है। परन्तु गौर से देखा जाय तो इस प्रस्ताव की कई बातें मृतप्राय पड़ती है। उदाहरणार्थ क्लेक्टिव मेजर कमिटी ने तीन प्रतिवेदन पेश किये थे परन्तु तीनों मे से किसी पर भी अमल नहीं किया गया। इसकी यह सिफारिश कि सदस्य राष्ट्र अपने राष्ट्रीय सैनिक दल में एक विशेष संयुक्त राष्ट टुकड़ी का निर्माण करें तथा सैनिक विशेषज्ञों का एक पैनेल बनाये भी अब पूर्ण सफल नहीं कहा जा सकता। इसके द्वारा दो प्रयत्न किये गये, जिनमें एक सफल रहा। यूनान के मामले उठाया गया सन् 1951 का कदम इसका सफल प्रयास कहा जा सकता है परन्तु इस प्रस्ताव की यह व्यवस्था है तथा संकटकालीन स्थिति में जब महासभा की बैठक नही हो रही तो चौबीस घंटे में उसका आपातकालीन अधिवेशन बुलाया जा सकता है बहुत ही सजीव साबित हुई है। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत महासभा ने अक्तूबर, 1956 में मिस्र पर इजरायल ब्रिटेन और फ्रांस के आक्रमण को सफलतापूर्वक रोक दिया। सन् 1960 में कांगी विवाद के मामले में सोवियत संघ तथा पौलैड के प्रतिनिधियों ने सुरक्षा परिषद् के आठ और दो के बहुमत से संकट कालीन अधिवेशन बुलाने की वैधता को चुनौती दी। उसके अनुसार सर्वसम्मत निर्णय आवश्यक था। फिर भी कार्यकारी कदम उठाये गये।

इस प्रकार हम देखते है कि शांति के लिए एकता प्रस्ताव ने महासभा की स्थिति को काफी महत्वपूर्ण बना दिया है। इसने यह सम्भव बना दिया है कि यदि सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार के कारण गतिरोध पैदा हो जाता है तो इस रिक्तता को महासभा अवश्य

पूरी करे। परिणामस्वरूप इस बात की सम्भावना भी घट गई है कि महाशक्तियाँ बार-बार निषेधाधिकार के प्रयोग से सुरक्षा परिषद् को एकमदम निष्क्रिय बनाकर अपना उल्लू सीधा करती रहें। महासभा में निषेधाधिकार की व्यवस्था नही है, अतः शांति के लिए एकता प्रस्ताव के अन्तर्गत महासभा अपने आपातकालीन अधिवेशन में समस्या पर विचार कर सकती है। पामर तथा परकिन्स के अनुसार शांति के लिए एकता प्रस्ताव एक प्रभावशाली सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था की दिशा में प्रगति का एक महान् सीमा चिन्ह है।''[65] यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था को विकसित तथा कार्यान्वित करने का एक गंभीर प्रयत्न है। इसने चार्टर के बिना किसी औपचारिक संशोधन के संयुक्त राष्ट्रसंघ के सिद्धांत और व्यवहार के क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। इसने महासभा को सुरक्षा परिषद् से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया और निषेधाधिकार की व्यवस्था में निहित इस मूलभूत धारणा को कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सशस्त्र कार्रवाई तब तक प्रभावशाली नहीं हो सकती जब तक कि सभी स्थायी राज्य उससे सहमत न हों, एक गंभीर चुनौती उचित ठहराया है। क्लॉड का विचार है कि यदि इसमें थोड़ा बहुमत असांविधानिकता का तत्त्व हो भी तो भी, यदि उससे व्यापक हित की सिद्धि होती है तो छोटे-मोटे तकनीकी गुत्थियों में उलझना ठीक नहीं है।[66]

2.1.14. महासभा के कार्यों का मूल्यांकन तथा उसका बढ़ता हुआ महत्त्व (Evaluation of the General Assembly and Growing Importance of the General Assembly)

महासभा के विभिन्न कार्यो तथा अधिकारों का अध्ययन करने के बाद हम पाते हैं कि इससे अधिकार काफी व्यापक है पर चार्टर के द्वारा इन अधिकारों को काफी सीमित कर दिया गया है। वास्तव में संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माताओं का विचार था कि सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र का प्रधान कार्यकारी अंग होगी और महासभा एक वाद विवाद के मंच के रूप में कार्य करेगी। इसीलिए सुरक्षा परिषद् को बाध्यकारी शक्ति प्रदान की गयी जबकि महासभा को केवल सिफारिशें करने का अधिकार दिया गया। अमरीकी सचिव कमेटी स्टेटी निब्स (Stettinivs) ने कहा था महासभा का कार्य केवल विचारात्मक है तथा यह प्रस्ताव पारित करने वाली संस्था है। परन्तु सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम करने के लिए कार्य करती है।'' चार्टर के निर्माण हेतु बुलाये गए डम्बार्टन ओक्स तथा सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में छोटे राज्यों ने महासभा को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया था किन्तु उसका यह प्रयास सफल नहीं हो सका। बड़े देश महासभा को सौतेले की तरह उपेक्षा भरी नजर से देख रहे थे। चूँकि उनका इसमें बहुमत नही था। अतः वे इसे न तो प्रभावकारी अंग बनाना चाहते थे और न ऐसा अंग ही जो सुरक्षा-समस्याओं से सम्बन्धित हो। मध्यम और छोटे राज्यों की उनके समक्ष आखिर विसात ही क्या थी? अतः डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन में शक्ति पृथक्करण के सिंद्धात को अपनाया गया। प्रस्ताव और अनुशंसा करने का अधिकार महासभा को एवं निर्णय लेने का अधिकार सुरक्षा परिषद् को दिया गया। परन्तु सेन फ्रांसिस्को में मध्यम तथा छोटे राज्यों ने महासभा के अधिकार के लिए काफी प्रयास किया। अन्त में एक रास्ता निकाला गया।

[65] Palmer & Perkins: International Relationship, P. 283
[66] Inis claude: op.cit., p.246

सुरक्षा परिषद् को मुख्यत: शांति और सुरक्षा बनाए रखने का कार्य दिया गया परन्तु धारा 10 के अनुसार महासभा को भी इस क्षेत्र में विस्तृत अधिकार दिए गए। इसके अधिकार क्षेत्र को इतना अधिक व्यापक बनाया गया कि वह अणु बम से लेकर आर्थिक सहायता तक के प्रश्न पर विचार कर सकती थी। केवल एक अपवाद को छोड़ कर इसे शांति और सुरक्षा के सम्बन्ध में विचार करने का अधिकार दिया गया। परन्तु इसके बावजूद महासभा सुरक्षा परिषद् के मुकाबले में एक कमजोर संस्था ही बनी रही। इसके प्रतिकूल सुरक्षा परिषद् को अनेक प्रकार के अधिकार दिये गये। यह शांति ढंग से विवादों को सुलझाने का आदेश दे सकती है पाबंदियाँ लगा सकती है। आवश्यकता पड़ने पर सैनिक कार्रवाई भी कर सकती है। इसकी सहायता के लिए सैनिक स्टॉफ समिति भी है। इसके निर्णय को सभी राज्यों को मानना पड़ता है। परन्तु महासभा के प्रस्ताव को मानने क लिए सभी स्वतंत्र है। इस प्रकार आकर्षण का केन्द्र सुरक्षा परिषद् थी न कि महासभा।

लेकिन कालातांर में परिस्थितियों के चलते यह स्थिति बदल गयी और महासभा का महत्त्व निरंतर बढ़ता गया। इसके विपरीत सुरक्षा परिषद् का प्रभाव घटा। विग वर्षो में संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यकरण के अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। शुरू-शुरू में सन् 1946 में सुरक्षा परिषद् ने आठ राजनीतिक प्रश्नों पर विचार किया था वहाँ सभा ने केवल दो प्रश्नों पर। इस प्रकार परिषद् ने राजनीतिक कार्रवाई करने वाले प्रमुख अंग के रूप में अपना जीवन शुरू किया। किन्तु बाद में स्थिति बदल गयी। जून, 1952 से जून, 1953 तक बाहर महीनों में सभा ने 11 मामलों पर विचार किया जबकि सुरक्षा परिषद् ने सिर्फ पाँच पर। सुरक्षा परिषद् के घटते हुए प्रभाव का पता हमें उसकी बैठकों की घटती हुई संख्या से भी लगता है। 16 जुलाई, 1947 से लेकर 15 जुलाई 1949 तक जहाँ सुरक्षा परिषद् की जगह महासभा ने ले ली। यद्यपि यह सत्य है कि महासभा के राजनीतिक प्रश्नों पर वाद-विवाद करने वाली वैकल्पिक संस्था के रूप में अपना जीवन आरंभ किया था, लेकिन कालान्तर में यह सुरक्षा परिषद् के निर्णयों के विरुद्ध एक अपीलीय संस्था के रूप में परिणत हो गयी। जैसा कि क्लॉड ने लिखा है, ‘‘वास्तव में संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत एकमात्र राजनीतिक उतरदायित्व वहन करने वाली संस्था के रूप में महासभा ने सुरक्षा परिषद् की जगह अपने आपको पुन: स्थापित कर दिया है।'' इसने संयुक्त राष्ट्रसंघ के समक्ष आये महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्नों पर सक्रिय और प्रभावशाली निर्णय भी लिये हैं। इन प्रश्नों में कुछ हैं-फिलिस्तीन, ग्रीस, स्पेन, स्वेज नहर, कांगों आदि के प्रश्न।

सारांश यह कि संयुक्त राष्ट्रसंघ क निर्माताओं की इच्छा के विपरीत महासभा की प्रतिष्ठा में निंरतर वृद्धि होती रही है। इसके निम्नलिखित कारण है:-

1. महासभा में विश्व के प्राय: सभी देशों का प्रतिनिधित्व होता है और इस प्रकार लोकतंत्र के युग में यह विश्व लोकमत का प्रतीक बन गयी है। यहाँ पर लिये गये निर्णयों का कोई भी राष्ट्र सामान्यत: उपेक्षा नहीं कर सकता।
2. महासभा की बढ़ती प्रतिष्ठा का एक महत्वपूर्ण कारण यह रहा है कि इसकी सदस्य संख्या में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है। प्रारंभ में जहाँ सन् 1945 से 51 सदस्य थे, आज बढ़कर 184 हो गये है। संसार के इने गिने कुछ राष्ट्र ही इसकी सदस्यता से अब वंचित रह गये है। इनकी तुलना में सुरक्षा परिषद् में केवल 15

सदस्य है। इस दृष्टिकोण से वह सच्च अर्थ में विश्व की प्रतिनिधि संस्था नहीं कही जा सकती। वास्तव में महासभा ने अब मानव-जाति की संसद का रूप धारण कर लिया है जिसमें सदस्य-राज्य शांतिपूर्ण परिवर्तन की अनेक समस्याओं पर विचार करने का साधन ढूँढते हैं और यह भी कानूनत: संसदीय प्रक्रिया के ढाँचे में सितम्बर के तीसरे सप्ताह में जब महासभा का वार्षिक अधिवेशन शुरू होता है तो उसमें भाग लेने के लिए विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञ न्यूयार्क में एकत्र होते है। यहाँ के स्वतंत्र रूप से अपनी शिकायतें, प्रस्ताव और सुझाव आदि प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार एक ऐसे मंच के रूप में काम करती है जहाँ संसार की सभी समस्याओं-राजनीतिक और गैर-राजनीतिक पर विचार किया जाता है। इससे भी महासभा की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।

3. महासभा की प्रतिष्ठा की वृद्धि में अफ्रीकी-एशियाई देशों का भी सक्रिय योगदान है। आज संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों का सबसे बड़ा समूह अफ्रीकी एशियाई समूह है जिसके सदस्यों की संख्या आधी शर्तो से भी अधिक बढ़ गयी है। इसमें से केवल ग्यारह संयुक्त राष्ट्रसंघ के संस्थापक सदस्य है। ये नवोदित तथा विकासशील देश महासभा के सदस्य होने के नाते इसकी और अधिक भरोसे के साथ देखते हैं। उनके लिए महासभा ही संघ का एक ऐसा अंग है जहाँ वे अपनी संख्या के बहुमत कें बल पर अपने पक्ष को बड़ी शक्तियों के विरुद्ध दृढ़ता के साथ प्रस्तुत कर सकते है तथा निर्णय ले सकते हैं। अत: संयुक्त राष्ट्रसंघ में महासभा को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उचित भूमिका दिलाने के लिए वे प्रयत्नशील रह हैं।

4. एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण है-स्थायी सदस्यों में मतभेद और उनके निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् की क्षमता में निंरतर कमी। निषेधाधिकार के अनुचित और अधिक प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् अधिक लाभकारी नहीं रही है। यह कोई भी निर्णय नहीं ले पाती और न किसी झगड़े को सुलझा पाती है। अत: संकटकालीन स्थिति में सदस्य राज्य इस पर पूरा भरोसा नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में उनके लिए यह आवश्यक था ि कवे संघ के किसी अंग को शक्तिशाली बनावें जिससे ि कवह सुरक्षा-परिषद् में निषेधाधिकार के कारण गतिरोध पैदा हो जाने पर उस रिक्तता को पूरा कर सके। इसी स्थिति में 3 नवम्बर 1950 को शांति के लिए एकता प्रस्ताव को जन्म दिया। इस प्रस्ताव ने महासभा की शक्तियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला दिया। इसके अनुसार यदि सुरक्षा परिषद् आपसी मतभेदों के कारण शांति भग की अथवा आक्रमण की आशंका या आक्रमण को रोकने में अपने कर्त्तव्य का पालन नही करती तो सुरक्षा परिषद् के निषेधाधिकार विहीन कोई सदस्य अथवा संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों के बहुमत से 24 घंटे के सूचना पर महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकता है। महासभा ऐसे विषय पर तुरंत विचार कर सामूहिक कार्रवाई का भी निर्देश कर सकती है। प्रस्तुत इस प्रस्ताव ने संयुक्त राष्ट्र के विधान में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। न केवल इसने सुरक्षा गतिरोध को दूर करने का हल निकाल लिया। इसने सभा को सुरक्षा परिषद् की तुलना में महासभा का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ा है। यही कारण है कि

निरस्त्रीकरण, राजनीतिक विवादो का निबटारा और सामूहिक सुरक्षा सम्बन्धी विषयों पर जहाँ सुरक्षा परिषद् को प्रमुख भूमिका निभानी थी, वहाँ महासभा को महत्त्वपूर्ण कार्य करने व निर्णय लेने पड़े हैं। नवम्बर 1956 में मिस्र पर इजरायल, इंगलैंड, और फ्रांस द्वारा आक्रमणात्मक कार्रवाई करने पर महासभा के विशेष अधिवेशन ने इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करते हुए सफलतापूर्वक शांति स्थापित करने पर महासभा के विशेष अधिवेशन ने इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करते हुए सफलतापूर्वक शांति स्थापित की थी। इस प्रकार हम देखते है कि बड़े राष्ट्रों के मतभेद के कारण वहाँ सुरक्षा परिषद् की क्षमता घटती गयी वहाँ महासभा की शक्ति बढ़ती गयी। जैसा कि पामर और परकिन्स ने कहा है अपनी असमर्थता के कारण सुरक्षा परिषद् अपना कार्य सुचारू रूप से करने में सफल नही हो सकती है। इस कारण सभा की शक्ति मतभेद से उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के वातावरण में यह स्वाभाविक ही था कि महासभा एक ऐसे अंग के रूप में कार्य करना शुरू करे जहाँ अधिक से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार किया जा सके।[67] एल एम. गुडरीव ने भी उक्त मत का समर्थन किया है। उसके अनुसार शीतयुद्ध से ग्रस्त सुरक्षा परिषद् की अकर्मण्यता की स्थिति में सभा को एक मनोरम प्लेटफार्म होना स्वाभाविक ही कहा जायेगा।[68]

5. संयुक्त राष्ट्रसंघ में छोटे राज्यों की बहुलता ने भी महासभा को एक शक्तिशाली संस्था बनाने में योगदान किया है। इन राज्यों के पास सैन्य या आर्थिक शक्ति अधिक नहीं है। उनकी अर्थव्यवस्था में अधिकांश का अधिकार मात्र जीवन यापन करने योग्य खेती है। उनका निर्यात व्यापार कभी-कभी एक ही वस्तु तक सीमित होता है। शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाएँ अपर्याप्त है। इन देशों के लिए जो अपनी भौतिक दुर्बलता के प्रति सचेत है, महासभा एक ऐसा मंच है, जहाँ दुर्बलता से कोई विशेष हानि नहीं होती। महासभा ही एक ऐसा अंग है जहाँ वे अपनी बहुमत के आधार पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यान्वयन को प्रभावित कर सकते है और अपने हित में निर्णय कराने में सफल हो सकते है। यही कारण है कि महासभा ऐसे राज्यों में अधिक लोकप्रिय है। उन्होंने सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में ही महासभा को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया था। परन्तु वहाँ सफल नहीं हो सके। बाद की घटनाओं ने उनका साथ दिया। महाशक्तियों के मतभेद तथा निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् बिल्कुल नाकामयाब साबित हुई। छोटे राज्यों ने परिषद् की कमजोरियों से लाभ उठाया और महासभा के प्रभाव में वृद्धि के लिए निंरतर दबाव डालना शुरू किया। यही संस्था उनकी बड़ी उम्मीदों के अवशेष के रूप में है। उनके प्रयास से शक्ति का हस्तान्तरण परिषद् से सभा के हाथों में हुआ। गुड्सपीड का विचार है कि यदि शीतयुद्ध की स्थिति न भी रहती तब भी ये छोटे राज्य महासभा को ऊँचे पद पर लाने का अवश्य ही प्रयास

[67] Palmer and Perkins : op.cit. , p. 1167

[68] With the climate of international relations characterized by tension and COnflict between the major powers, it is perhaps inevitable that the Asembly should become the organ called upon to consider an increasing number of political questions.

करते।[69] वे ऐसे किसी भी उपाय का सहारा लेने से नहीं चूकते जिससे महासभा की रीढ़ मजबूत होती।

उपर्युक्त कारणों के चलते अपने संस्थापकों की इच्छा के विपरीत महासभा एक बड़ा अंग बन गयी, और इसकी कोई संभावना नहीं कि उसकी यह स्थिति कभी बदल भी पायेगी। व्यवहार में भी महासभा ने केवल विश्व मंच के रूप में कार्य नहीं किया है, वरन् महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर रविचार कर निर्णय भी लिया है इसने नकारात्मक और सकारात्मक दोनों दिशाओं में कार्य किया है। नाकारात्मक कार्य के द्वारा इसने राजनीतिक आग बुझाने में मदद की है तथा सकारात्मक कार्यो के द्वारा इससे आग लगने की गुंजाइश कम की है। कुछ इने गिन यूरोपीय राज्यों से शुरू होने वाली यह संस्था आज विश्वजनीन कहलाने का दावा करने लगी है। यहाँ अणुबम से लेकर मानवीय कल्याण भोजन, कपड़ो, आवास तक की सभी समस्याओं पर विचार होता है, अत: इसे विश्व का उन्मुक्त अन्त:करण ठीक ही कहा जाता है।

फिर भी यह याद रखना होगा कि अपनी कुछ अन्तर्निहित कमजोरियों के कारण महासभा की भूमिका काफी उत्साहवर्द्धक नहीं रही है। निकोलास का कथन है कि इसकी मंथर गति एवं प्रक्रिया के निर्वाह एवं उद्देश्यों की एकता का अभाव आदि बातें सचमुच हतात्साहित करने वाली है।[70] आकार और संगठन की दृष्टि में महासभा एक विशाल संस्था है जिसमें विभिन्न स्वरूप एवं स्वभाव वाले राष्ट्र रहते है। वे इ समंच को सार्वजनिक प्रदर्शन के रूप में प्रयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। परिणामस्वरूप महासभा का सम्मिलित एवं समन्वयकारी प्रभाव नहीं पड़ता।[71] प्रक्रिया-सम्बन्धी दुरुहता तथा समय की कमी इसकी अन्य बाधाएँ है जिनके कारण इसके अनेक सत्र केवल अनुत्पादक सत्र (Unproductive Session) बनकर रह जाते है। साथ ही महासभा के कार्य इतने अधिक बढ़ गये है कि अब उन्हें सम्भाल पाना मुश्किल हो गया है। क्लॉड ने महासभा की इस स्थिति की तुलना उस बच्चे से की है जिसने अधिक खना खाकर अपनी पाचन शक्ति खराब कर ली है।[72]

राजनीतिक मामलों में महासभा के अधिकारों का उल्लेख चार्टर की धारा 11 में किया गया है। इसमें कहा गया है कि महासभा शांति और सुरक्षा कायम रखने में सहयोग के आम सिंद्धातो पर विचार कर सकती है। यह निरस्त्रीकरण और शास्त्रों के नियंत्रण पर भी विचार कर सकती है। इन सिंद्धातों के विषय में संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों व सुरक्षा परिषद् या दोनों से सिफारिश कर सकती है यहाँ भी कहा गया है कि विश्व-सुरक्षा और शांत सम्बन्धी कोई भी प्रश्न विचारार्थ महासभा के समक्ष रखा जा सकता है। परन्तु सुरक्षा-सम्बन्धी विषय जिन पर कुछ कार्रवाई करना आवश्यक है उसे विचार-विमर्श के पहले या बाद में सुरक्षा मे भेजना जरूरी है। राष्ट्रसंघ के विधान की धारा 3 से तुलना करने पर दोनों संस्थाओं की स्थित स्पष्ट हो जाती है। धारा 3 में कहा गया है कि असेम्बली अपनी बैठकों में वैसे किसी भी विषय पर विचार कर सकती है जो संघ के

---

[69] It is entirely possible that this preponderant group of states would have worked toward an increasing important role for the General Assembly even it the disunity of the Great powers had not materialized.

[70] H.G. Nlcholas: Op, cit., p.97

[71] S.D Balley: Op cit., p. 18

[72] Inls L. Claude: Op. cit. P. 166

कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत है अथवा जो विश्व शांति को प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में दुनिया की शांति को प्रभावित करने वाले किसी भी विषय को अपने हाथ में ले सकती है। धारा 11 यह उपलब्धित करती है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति से सम्बन्धित किसी भी विवाद या समस्या की ओर असेम्बली अथवा कौसिल का ध्यान आकृष्ट करना प्रत्येक सदस्य राज्य का मैत्रीपूर्ण कर्त्तव्य होगा।'' चार्टर तथा राष्ट्रसंघ के विधान की उपर्युक्त धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि असेम्बली को राजनीतिक क्षेत्र में महासभा की अपेक्षा अधिक प्रभावी अधिकार प्राप्त थे। परन्तु धारा 13, 15 और 16 अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में सम्बद्ध थी, निर्णय लेने का अधिकार केवल कौसिल को प्रदान करती है। फलस्वरूप व्यवहार में असेम्बली की स्थिति महासभा से भिन्न नहीं मालूम पड़ती।

जहाँ तक गैर-राजनीतिक कार्यो का सम्बन्ध है राष्ट्रसंघ की असेम्बली और संयुक्त राष्ट्र की महासभा में पर्याप्त अन्तर मालूम पड़ता है। चार्टर के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्रसंघ को गैर राजनीतिक क्षेत्र यानी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानव-अधिकारों के क्षेत्र में काफी व्यापक कार्य सौंपे गये हैं और इन दायित्वों का संपादन करने का भार महासभा तथा उसके सहायतार्थ आर्थिक और सामाजिक परिषद् पर सौंपा गया है। इस प्रकार इस क्षेत्र में महासभा के अधिकार तथा दायित्व सर्वोपरि है। राष्ट्रसंघ की कौंसिल की जो दायित्व दिये गये थे, वे संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा को प्रदान किये गये है।

2.1.15. मूल्यांकन

राष्ट्रसंघ के विधान के अन्तर्गत निरशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में कार्रवाई करने का अधिकार असेम्बली को नहीं प्रदान किया गया था। धारा 8 के अन्र्तगत कौंसिल को इसके सम्बन्ध में कार्यक्रम तथा व्यावहारिक योजना बनाने का भार दिया गया था। कौंसिल का यह काम पूरा हो जाने के बाद असेम्बली ने इस समस्या में काफी दिलचस्पी दिखलाई। लगभग एक दशक तक असेम्बली की प्रत्येक वार्षिक बैठक में इस प्रश्न पर वाद विवाद किया जाता था तथा कौंसिल के कार्यो की आलोचना भी की जाती। संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में इस समस्या पर इतना अधिक ध्यान नही दिया गया है।

परन्तु संघ के नये सदस्यों के प्रवेश के संबंध में असेम्बली को महासभा की तुलना में अधिक व्यापक अधिकार प्राप्त थे। राष्ट्रसंघ के विधान की धारा 1 (2) में असेम्बली के सदस्य सम्बन्धी अधिकार का उल्लेख है। इसके अनुसार असेम्बली अपने दो तिहाई बहुमत से सदस्यता के लिए प्रार्थी देश को संघ का सदस्य बना सकती थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा को इस सम्बन्ध में बहुत सीमित शक्ति प्राप्त है। चार्टर की धारा 4 (1) में यह व्यवस्था है कि महासभा सुरक्षा परिषद् की अनुशंसा पर ही किसी देश को सदस्य बना सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि नये सदस्यों के प्रवेश के सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति सुरक्षा परिषद् की है न कि महासभा की। इस प्रकार हम देखते है कि इस मामले में असेम्बली के अधिकार कौंसिल से अधिक व्यापक तथा निर्णायक थे।

राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत जो अधिकार असेम्बली को प्रदान किये गये थे, वे कौंसिल के अधिकार से कम थे। वास्तव में संघ के विधान निर्माताओं का विचार था कि वास्तविक कार्य परिषद् मे होने के कारण असेम्बली का विशेष महत्व नही होगा तथापि

धीरे-धीरे इसका महत्त्व और सम्मान परिषद् से अधिक बढ़ता गया।[73] संयुक्त राष्ट्र के विधान के अन्तर्गत भी अधिकार की दृष्टि से महासभा का दूसरा नम्बर है। विधान द्वारा सुरक्षा परिषद् संघ का कार्यकारी अंग हो और महासभा एक वाद-विवाद के मंच के रूप में कार्य करे। इसी कारण चार्टर द्वारा जहाँ सुरक्षा परिषद् को बाध्यकारी शक्ति प्रदान की गयी वहाँ महासभा को केवल सिफारिश करने का अधिकार दिया गया। लेकिन कालान्तर में परिस्थितियों के चलते यह स्थिति बदल गयी और महासभा का महत्त्व निरंतर बढ़ता गया। इस प्रकार यह विश्व की उन्मुक्त अन्तरात्मा'' बन गयी है।

2.1.16. पाठ सार/ सारांश

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रसंघ के संगठन अधिकार और कार्य महासभा के संगठन, अधिकार और कार्य से कई बातों से मिलते जुलते थे। परन्तु कई बातों में वे मूलतः भिन्न थे। दोनों से भिन्नता का मूल कारण वह अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य था जिसमें उनका जन्म हुआ था। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि महासभा राष्ट्रसंघ की असैम्बली का विकसित रूप है।

2.1.17. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1.) संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रमुख विचारणीय विषय कौन-कौन से है। वर्णन कीजिए?

प्रश्नः- 2.) संयुक्त राष्ट्र महासभा की दो प्रक्रियात्मक समितियाँ कौन-सी है। वर्णन कीजिए?

प्रश्नः- 3.) संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रमुख कार्यो का वर्णन कीजिए?

प्रश्नः- 4.) संयुक्त राष्ट्र महासभा में स्थायी सदस्य देशों की क्या भूमिका है?

प्रश्नः- 5.) संयुक्त राष्ट्र महासभा किन-किन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्धो में हस्तक्षेप कर सकती है?

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) संयुक्त राष्ट्र महासभा की प्रशासन एवं बजट समिति के कार्यो का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 2) संयुक्त राष्ट्र महासभा का गठन कब और कैसे हुआ?

प्रश्नः- 3) संयुक्त राष्ट महासभा के सभापति का चुनाव कैसे होता है उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 4) संयुक्त राष्ट्र महासभा के कार्यो का वर्णन संक्षेप में किजिए?

प्रश्नः- 5) संयुक्त राष्ट्र महासभा की शक्तियों एवं प्रभावों का वर्णन कीजिए?

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) संयुक्त राष्ट्र महासभा में सदस्य देशों की संख्या है

1) 195 2) 187 3) 193 4) 183

प्रश्नः- 2) संयुक्त राष्ट्र सभा का अधिवेशन किस महीने में आयोजित होता है?

1) सितम्बर 2) अक्तुबर 3) नवम्बर 4) दिसम्बर

प्रश्नः- 3) संयुक्त राष्ट्र महासभा की कुल कितनी समितियाँ है?

1) पाँच 2) छह 3) सात 4) दो

प्रश्नः- 4) संयुक्त राष्ट्र महासभा की अधिकारिक भाषा नहीं है?

73

1) अरबी 2) जर्मन 3) स्पेनी 4) फ्रांसीसी

प्रश्नः- 5) संयुक्त राष्ट्र महासभा का मुख्यालय स्थित है?

1) जेनेवा 2) न्यूयार्क 3) पेरिस 4) वाशिगठन डी० सी०

2.1.18. संदर्भ ग्रन्थ सूची

- द जनरल असैम्बली इन द सैन्टर ऑफ यूनाइटिड नेशन्स
- एन.डी. पलमर एण्ड एम.सी. पटकिंस
- हंस कैल्सन द लॉ ऑफ द यूनाइटिड नेशन्स
- इन शार्ट द चीफ एडिमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर ऑफ द यू.एन. होल्ड ऑफ यूनिक पोणिस
- द सैक्टरी जनरल ऑफ द यू.एन हैज ए फॉनसिल्यूशनल लाइसंस ऑफ बी ऐज ए बीग मैन ऐज ही कैन क्लाउड
- स्टैपन एम. स्केवल द सैक्टरी जनरल ऑफ द यूनाइटिड नेशनस

इकाई-2: सुरक्षा परिषद्

इकाई की रूपरेखा:

2.2.1. उद्देश्य कथन

2.2.2. प्रस्तावना

2.2.3. सुरक्षा परिषद् का परिचय

2.2.4. बैठक (Session)

2.2.5. सुरक्षा परिषद का अध्यक्ष (President)

2.2.6. मतदान-प्रणाली (Voting)

2.2.7. कार्य और शक्तियाँ (Functions and Powers)

- 2.2.7.1. विवादों का शांतिपूर्ण समझौता (Pracific settlement of disputes)
- 2.2.7.2. आदेशात्मक कार्य (Enforcement Action):
- 2.2.7.3. क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ (Regional Arrangments):
- 2.2.7.4. अन्य कार्य (Other Functions of the Security Council):

2.2.8. निषेधाधिकार की समस्या (Provision of Veto)

2.2.9. निषेधाधिकार का स्वरूप तथा अर्थ:

2.2.10. दोहरे निषेधाधिकार की व्यवस्था:

2.2.11. निषेधाधिकार की व्यवस्था की आलोचनाएँ

- 2.2.11.1. राज्यों की समानता के सिद्धान्त के विपरीत
- 2.2.11.2. सुरक्षा परिषद की असफलता के लिए उत्तरदायी
- 2.2.11.3. स्थानीय तथा महान शक्तियों के प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने में सहायक
- 2.2.11.4. प्रादेशिक संगठनों की स्थापना की प्रेरक शक्ति
- 2.2.11.5. चार्टर की एक महत्वपूर्ण त्रुटि

2.2.12. निषेधाधिकार की अनिवार्यता

- 2.2.12.1. संयुक्त राष्ट्र संघ का कायम रखने के लिए आवश्यकता
- 2.2.12.2. संघ के संतुलन बनाए रखने में सहायक
- 2.2.12.3. विशिष्ट अवस्थाओं में लाभकारी
- 2.2.12.4. निषेधाधिकार संयुक्त राष्ट्र संघ की असफलता का कारण नहीं
- 2.2.12.5. निषेषाधिकार की व्यवस्था में सुधार के सुझाव
- 2.2.12.6. निष्कर्षत:

2.2.13. सुरक्षा परिषद का मूल्यांकन

2.2.14. पाठ का सार/सारांश

2.2.15. अभ्यास/बोध प्रश्न

- 2.2.15.1. सुरक्षा परिषद पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।
- 2.2.15.2. सुरक्षा परिषद की शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

2.2.15.3. सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष की नियुक्ति किस प्रकार से की जाती है वर्णन कीजिए।

2.2.16. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.2.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- सुरक्षा परिषद है क्या के बारे में जानकारी प्राप्त करोगे।
- सुरक्षा परिषद की शक्तियों एवं कार्यो के बारे में जानोगे।
- सुरक्षा परिषद के अदपक्ष की नियुक्ति एवं इसकी बैठक कैसे होती है के बारे में जानकारी प्राप्त करोगें।

2.2.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्रसंघ का सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विश्व शांति को बनाये रखना है। उस महान दायित्व की पूर्ति के साधन के रूप में सुरक्षा परिषद् की स्थापना की गयी है। इसलिए संघ के घोषणा-पत्र के अन्तर्गत विश्व-शांति और सुरक्षा बनाये रखने का मुख्य दायित्व सुरक्षा परिषद् पर ही डाला गया है। इस दृष्टिकोण से यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का मतलब है सुरक्षा परिषद्।[74] वैसे संघ के घोषणा-पत्र में सुरक्षा परिषद् का नाम महासभा के बाद आता है। परन्तु संगठन, कार्य एवं शक्ति की दृष्टि से उसका स्थान पहला है। यदि उसे संयुक्त कुंजी (Key Organ of the U.N.O) कहा है।[75] सिगरिड अर्ने उसे विश्व संगठन का बिजली घर बतलाते हैं। नार्मन बेंटविच की राय में, उस सरकार और कार्यकारिणी के बीच वर्तमान हैं।[76] वास्तव में संयुक्त राष्ट्रसंघ के संस्थापकों ने सुरक्षा परिषद् को विश्व-समुदाय की शांति और सुव्यवस्था बनाये रखने का एक प्रभावी साधन बनाना चाहा था। इसलिए इसे विश्व-समुदाय के सजग प्रहरी तथा विश्व-शांति और सुव्यवस्था की रक्षा हेतु आरक्षी दायित्व से सम्पन्न किया गया था। परन्तु सिंद्धात और व्यवहार में जितना अंतर तथा विरोधाभास सुरक्षा परिषद् में दृष्टिगोचर होता है उतना संघ के किसी अन्य अंग में नहीं। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से सुरक्षा परिषद् की शक्तियाँ अभूतपूर्व है, क्योंकि यह चार्टर के सातवें भाग के अन्तर्गत शांति के खतेर, शांति-भंग एवं आक्रमण के कार्यो के सम्बन्ध में जो निर्णय लेती है उन्हें मानने एवं कार्यान्वित करने के लिए सदस्य-राज्य बाधित है। लेकिन व्यवहार में उसकी शक्ति मुख्यतया औपचारिक महत्त्व की रह गयी है। लगभग सभी राजनीतिक और नेता यह स्वीकार करते हैं कि परिषद् आशाओं के अनुकूल सफल नहीं रही है। महाशक्तियों की आपसी फूट, उनके पारस्परिक शीतयुद्ध तथा विचारधाराओं एवं क्षेत्रीय पर उनकी टकराहट ने उसे पंगु बना दिया है। वह प्रस्ताव पारित कर सकती है। पर उसमें भी आपत्ति है। निषेधाधिकार उसे ज्यादातर गतिरोध की स्थिति में रखता है। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के क्षेत्र में महासभा के दायित्वों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी है। यद्यपि

[74] It probably is still true that to many people it is the united Nations.
[75] Palmer & Perkins: op.cit., p.358
[76] Norman & Bentwich: From Geeva to San Franslsco. p. 52

सुरक्षा परिषद् की वैधानिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, किन्तु शांति एवं सुव्यवस्था के क्षेत्रों में इसने जो प्रयत्न किये हैं उन पर शीतयुद्ध की छाया रही है।

2.2.3. सुरक्षा परिषद् का परिचय

चार्टर की मूल व्यवस्था के अनुसार सुरक्षा परिषद् एक ग्यारह सदस्यीय संस्था थी। उनमें से 5 स्थायी और 6 अस्थायी सदस्य थे। चीन, फ्रांस, सोवियत रुस, ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका इसके स्थायी सदस्य है और छः अस्थायी का चुनाव महासभा करती थी। सन् सोवियत रूस के विद्यटन के बाद सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्य का उसका स्थान रुस को प्रदान कर दिया गया। इस प्रकार अब सोवियत संघ का स्थान रूस ने लिया है। 1965 में चार्टर में संशोधन करके सुरक्षा परिषद् के संगठन में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लगाया गया। जिस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी उस समय संघ के सदस्यो की संखायासिर्फ इक्यावन थी। अतएव सुरक्षा परिषद् में ग्यारह सदस्य रखे गए। परन्तु सन् 1995 के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्य-संख्या निरंतर बढ़ती गयी। एशिया और अफ्रीका के अनेक राज्य स्वतंत्र होकर इसके सदस्य बन गये। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक था कि सुरक्षा परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि की जाए। 17 दिसम्बर 1965 को महासभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार करके चार्टर में संशोधन करने की एक सिफारिश की जिसमें यह कहा गया था कि सुरक्षा परिषद् की सदस्य संख्या ग्यारह से बढ़ाकर पंद्रह कर दी जाए। इस प्रस्ताव के आधार पर सदस्य-राज्यों के अनुमोदन के बाद चार्टर का संशोधन हो गया। इस संशोधन के अनुसार सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यों की संख्या में तो कोई वृद्धि नही हुई, लेकिन अस्थायी सदस्यों की संख्या दस हो गयी ।इन अस्थायी सदस्यों का चुनाव संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्यों में से दो वर्षो के लिए महासभा द्वारा किया जाता है। इसका विधान चार्टर की धारा 23 में किया गया है। इस धारा में यह भी कहा गया है कि अपनी अवधि की समाप्ति पर कोई भी सदस्य तुरंत फिर निर्वाचित नहीं हो सकता। यह प्रावधान इसलिए रखा गया कि राष्ट्रसंघ की कौंसिल कोई भी सदस्य तुरंत फिर निर्वाचित नहीं हो सकता। यह प्रावधान इसलिए रखा गया है कि राष्ट्रसंघ की कौंसिल में निर्वाचित सीटों पर अधिकाशं चुनावों में मध्यवर्ती शक्तियों का ही नियंत्रण बना रहा और लघु शक्तियों को उसमें प्रवेश से लगभग वंचित रहना पड़ा। यद्यपि प्रतिनिधित्व का कोई निश्चित नियम नही है, तथापि इन सदस्यों का चुनाव करते समय महासभा को यह देखना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम रखने में आमुक सदस्य ने कितना योग दिया है तथा राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों को कहाँ तक माना है? इसका निर्णय महासभा करती है। व्यवहार में विश्व शांति और सुरक्षा की ओर सदस्य देशों के योगदान पर कम किन्तु समान भौगोलिक वितरण की शर्त पर अधिक ध्यान दिया जाता है। सन् 1965 के संशोधन के पूर्व सामान्यतः पश्चिमी और पूर्वी यूरोप से एक-एक दक्षिणी अमेरिका से दो अरब राज्यों से एक तथा ब्रिटिश डोमिनियम या राष्ट्रमंडल से एक सदस्य अस्थायी सदस्य रूप से चुने जाते थे किन्तु यह व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण थी। इसमें एशिया और अफ्रीका के देशों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता था। संशोधन के आधार पर यह तय किया गया है कि इन अस्थायी पदों में पाँच सीट अफ्रीकी-एशियाई देशों को दो लैटिन अमरीकी देशों को दो पश्चिमी यूरोपीय देशों को तथा एक पूर्वी यूरोप के देशों को मिले। 14 नवम्बर 1977 को भारत सहित 19 गुटनिरपेक्ष देशों ने सुरक्षा

परिषद् की संख्या बढ़ाने हेतु एक प्रस्ताव महासभा में पेश किया। इस प्रस्ताव में मांग की गयी की परिषद् के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 21 कर दी जाए। गुटनिरेपक्ष देशों का तर्क था कि इससे तीसरी दुनिया के देशों को परिषद् में समुचित प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। अमरीका और सोवियत संघ का तर्क है कि इससे सुरक्षा परिषद् की कुशलता नकारात्मक रूप से प्रभावित होगी। संयुक्त राष्ट्रसंघ में 1980-81 से ही यह प्रस्ताव विचारधीन है परन्तु इस पर आज तक मतदान नहीं हो सका है।

सुरक्षा परिषद् के संगठन की सबसे आपत्तिजनक बात महाशक्तियों की स्थिति की अपरिवर्तनशीलता है। चार्टर में स्थायी सदस्यों के लिए किसी प्रकार की शर्त का उल्लेख नहीं है, केवल पाँच महाशक्तियों को स्थायी सदस्यता प्रदान कर दी गयी है, और उनका नामोल्लेख चार्टर में कर दिया गया है। इससे चार्टर में स्थिरता आ गयी है, यह निश्चित नही है कि वे पाँचों वास्तविक रूप से सदा के लिए महान् शक्तियाँ बनी रहेगी।[77] संभव है कि उनमें से कोई कालांतर से अपनी महानता खो अथवा किसी नये राज्य से कम महान् रह जाय? ऐसी स्थिति में क्या उसे स्थायी सदस्यता से वंचित किया जा सकता है? परन्तु हम जानते है कि कोई भी संशोधन बिना महान् शक्तियों की सहमति के प्रभावकारी नहीं हो सकता। इसलिए सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता में परिवर्तन असंभव सा है, भले ही नामांकित स्थायी सदस्यों की शक्ति में ह्रास हो जाय। निषेधाधिकार की व्यवस्था के कारण नये महान् राज्यों के लिए सुरक्षा परिषद् द्वार बन्द है। सन् 1945 के बाद विश्व के अनेक राज्य महाशक्ति की श्रेणी में आ गये हैं। फिर भी उन्हें महाशक्ति की श्रेणी से अपदस्थ नही किया जा सकता। परिणामस्वरूप सुरक्षा परिषद् की स्थिति पाँच महाशक्तियों के अनन्य क्लब के रूप में है। चार्टर की यह व्यवस्था राष्ट्रसंघ से पूर्णतः भिन्न है। राष्ट्रसंघ की परिषद् में भी स्थायी और अस्थायी सदस्यों का विधान था किन्तु जहाँ परिषद् की सदस्यता में वृद्धि असेम्बली के निर्णय के द्वारा संभव थी, वहाँ, अब उसके लिए चार्टर में संशोधन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसंघ की परिषद् में मध्यम श्रेणी के कुछ राज्यों के लिए अर्द्ध-स्थायी सदस्यता की व्यवस्था की गयी थी। उस पद के लिए असेम्बली से दो-तिहाई बहुमत प्राप्त होने पर पुनर्निर्वाचन संभव था। परन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ की परिषद् में महान् शक्तियों को छोड़कर मध्यम एवं छोटे राज्यों को एक साथ रखा जाता है। किन्तु भारत और नेपाल के बीच जितना बड़ा अन्तर है उतना भारत और चीन के बीच में नही। उसी तरह कनाड़ा और पनामा के बीच जैसा अन्तर है उतना कनाड़ा और फ्रांस के बीच नहीं।

2.2.4. बैठक (Session)

सामान्यतः सुरक्षा परिषद् की बैठक प्रत्येक पखवाड़े होती है। इसका संगठन इस प्रकार बनाया गया है कि वह लगातार काम करती रहे। इसलिए प्रत्येक देश सुरक्षा परिषद् में अपना एक स्थायी सदस्य भेजता है। वह सदस्य स्थायी रूप से न्यूयार्क में रहता है, जिससे आवश्यकतानुसार तुरंत बैठक बुलाई जा सके। यह व्यवस्था राष्ट्रसंघ के विधान की उस व्यवस्था से भिन्न है जिसमें परिषद् की बैठक में एक बार होने का विधान था, हालांकि व्यवहार में उसकी बैठकें वर्ष में तीन बार होती थी। इसके विपरीत सुरक्षा परिषद्

[77] The Actural naming of them in the charater introduces a static element into the charter, for it cannot be assumed that these identical five will necessarily remain the five Great powers.

का अधिवेशन अनवतर ढंग से चालू रहता है, इसके सदस्य सदैव मुख्यालय में उपस्थित रहते है। परिणामस्वरूप यह आवश्यकतानुसार तुरंत कार्य करने के लिए तैयार रहती है। बैठक अध्यक्ष के द्वारा बुलायी जाती है। सुरक्षा परिषद् के किसी सदस्य की माँग पर अथवा महासभा द्वारा किसी विवाद की ओर परिषद् का ध्यान आकर्षित किये जाने पर इसकी बैठक बुलायी जाती है। यदि महासचिव यह सूचित करे कि उसके विचार में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा खतरे में पड़ने की सम्भावना है तो उस स्थिति पर विचार करने के लिए भी परिषद् की बैठक बुलायी जा सकती है। चार्टर में परिषद् की आवधिक बैठकों (Periodic Meetings) का भी विधान है। इस प्रकार की बैठकों में सदस्य देशों के विदेश मंत्री अथवा अन्य नियत अधिकारी के भाग लेने की व्यवस्था है। स्पष्टत: इस तरह की बैठकों का आयोजन विशेष महत्व की समस्याओं के समाधान के लिए किया जायेगा। किन्तु अब इस तरह की कोई भी आवधिक बैठक नही हुई है। परिषद् की बैठक सामान्यत: संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय से होती है, पर आवश्यकता पड़ने पर किसी ऐसे स्थान पर जहाँ संकट का केन्द्र हो, इसकी बैठक हो सकती है। इस तरह की एक बैठक आदिस अबावा में हुई थी।

परिषद् के सदस्य-देशों के प्रतिनिधि तो उसकी बैठक में भाग लेते ही है, उन देशों के प्रतिनिधि भी जो उसके सदस्य नही है, कुछ खास परिस्थितियों में उसकी बैठकों में भाग ले सकते है। धारा 31 के अनुसार यदि सुरक्षा परिषद् यह विचार करे कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के किसी ऐसे सदस्य का हित विशेष रूप से प्रभावित हो रहा हो जो उस का सदस्य नहीं हे तो बैठक में भाग ले सकता है। पर ऐसे सदस्य-राज्य को मत देने का अधिकार नहीं होता। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत ऐसे आमंत्रित सदस्य को मतदान का अधिकार था। सुरक्षा परिषद् ही यह निर्धारित करती है किसी सदस्य के हित कब प्रभावित होते है। धारा 32 के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई सदस्य जो सुरक्षा परिषद् का सदस्य नही है अथवा वैसा राज्य जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नही हो, यदि किसी विवाद से सम्बद्ध विचार-विमर्श में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है। ईरान व सोवियत रूस के झगड़े में ईरान को तथा इंडोनेशिया व निदरलैड के झगड़े में आमंत्रित किया गया था। सन् 1962 में कश्मीर के प्रश्न पर हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान को आमंत्रित किया गया था। ऐसे राज्य जिनके बीच झगड़े नही है तथा जो इसके सदस्य नही है वैसे राज्यों को भी आमंत्रित किया जा सकता है। यदि उन्होंने झगड़े में विशेष दिलचस्पी का प्रदर्शन किया हो जैसे इंडोनेशिया तथा नेदरलैंड के झगड़े में फिलिपाइन को। यदि कोई राज्य इसके समक्ष किसी झगड़े को प्रस्तुत करता है तो वैसे राज्य को भी यह आमंत्रित करती है। जैसे इंडोनेशिया और नेदर लैंड के झगड़े में हिन्दुस्तान एवं आस्ट्रेलिया को आमंत्रित किया गया था। वैसे राज्य को संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नही है उन्हें सुरक्षा परिषद् वाद-विवाद मे भाग लेने के लिए आमंत्रित कर सकती है परन्तु वैसे देशों की बैठक में भाग लेने की शर्ते परिषद् स्वयं निर्धारित करती है। कोरिया युद्ध के समय साम्यवादी चीन को सुरक्षा परिषद् में आंमत्रित किया गया था।

2.2.5. सुरक्षा परिषद का अध्यक्ष (President)

सुरक्षा परिषद् का एक अध्यक्ष होता है। वह परिषद् की बैठक का संचालन करता है। इस पद पर परिषद् के सदस्य बारी-बारी से एक-एक महीने के लिए अपने देश के

नाम के प्रथम अक्षर (अंग्रेजी वर्णमाला के) क्रमानुसार आसीन होते है। अध्यक्ष सभा की कार्रवाइयों को संचालित करता है। किसी मामले को परिषद् को समिति में विचारदार्थ भेजता है तथा आदेश जारी करता है। यद्यपि अध्यक्ष का पद विशेष महत्त्व का नही होता किन्तु मतदान के पूर्व सदस्य राज्यों तथा विवादग्रस्त पक्षों से अनौपचारिक वार्त्ताओं में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। कभी-कभी उसे राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए भारत कश्मीर विवाद के अवसर पर नार्वे के प्रतिनिधि के सुझाव पर परिषद् ने अपने अध्यक्ष को अधकृित किया कि वह दोनों पक्षों से मिलकर विवाद के संतोषप्रद हल की संभावना का पता लगाए। ऐसा भी देखा गया है कि राजनीतिक लाभ के लिए कभी-कभी अध्यक्ष परिषद् की बैठक बुलाने में देर कर देते है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाऐगी। सन् 1954 में अमरीकी राजदूत लॉज, जो परिषद् का अध्यक्ष था, ने ग्वाटेमाला की वामपंथी सरकार के अनुरोध पर परिषद् की बैठक बुलाना तब तक स्थगित रखा जब तक अमरीकी पक्ष की सरकार की वहाँ स्थापना नही हुई। इसी तरह रोडशिया के प्रश्न पर सन् 1966 में अध्यक्ष ने लगभग अड़तालीस घंटों पर परिषद् की संकटकालीन बैठक बुलाने से इनकार कर दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ अवसरों पर अध्यक्ष का पद काफी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। सुरक्षा परिषद् की प्रक्रिया के नियमों के अनुसार अध्यक्ष वैसी बैठकों की अध्यक्षता नहीं करेगा जिसमें ऐसे प्रश्नों पर विचार हो रहा हो जिससे उसका देश प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो।

सुरक्षा परिषद् के अन्य कर्मचारी जैसे किरानी, अनुवादक आदि सचिवालय द्वारा प्रदान किये जाते है। जब तक दूसरा निर्णय नहीं हो तब इसकी बैठक सार्वजनिक होती है। सभी महत्त्वपूर्ण अभीलेखों, प्रस्तावों तथा सार्वजनकि बैठकों की कागजातों का फ्रांसीसी, अंग्रेजी, रूसी, स्पेनिश तथा चीनी भाषाओं में प्रकाशित किया जाता है।

2.2.6. मतदान-प्रणाली (Voting)

सुरक्षा परिषद् की मतदान-व्यवस्था बड़ी महत्वपूर्ण है। चार्टर का 27वाँ अनुच्छेद इस व्यवस्था से सम्बन्धित है। इसके अनुसार सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है। पर स्थिति इतनी साधारण नहीं है। परिषद् के कार्यक्रम को दो भागों में बाँटा गया है-प्रक्रिया सम्बन्धी (Procedural) तथा अन्य महत्त्वपूर्ण (Substantive) प्रक्रिया सम्बन्धी बातों में परिषद् के किन्ही नौ सदस्यों के स्वीकारात्मक मत (Affirmative Vote) आने से प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। अन्य सभी मामलों में कम-से-कम नौ सदस्यों के स्वीकारात्मक वोटों में पाँच स्थायी सदस्यों का स्वीकारात्मक वोट अनिवार्य है। इन पाँच स्थायी सदस्यों में से यदि कोई भी अपनी असहमति प्रकट करे और अपना वोट प्रस्ताव के विरूद्ध दे दे तो वह प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जायेगा। इस उपबन्ध के फलस्वरूप सुरक्षा परिषद् की प्रत्येक स्थायी अथवा महान् शक्ति को निषेधाधिकार या 'वोटो' प्राप्त हो गया है। हालांकि वीटो शब्द का प्रयोग चार्टर में कहीं न कहीं किया गया है। किन्तु, किसी भी सदस्य को चाहे वह स्थायी सदस्य हो अथवा अस्थायी शांतिपूर्वक सुलझाये जाने वाले ऐसे मामलों में मतदान का अधिकार नहीं होगा, जिससे उसका अपना सम्बन्ध हो। यदि कोई स्थायी सदस्य अपने मत का प्रयोग नहीं करता तो वह निषेधधिकार नहीं कहलाता।

यदि सुरक्षा परिषद् की मतदान की तुलना राष्ट्रसंघ की कौंसिल से करें तो यह विदित होगा कि कौंसिल में सभी सदस्यों को वीटो का अधिकार प्राप्त था। पर राष्ट्रसंघ के विधान में निर्णय एवं प्रक्रिया के विषयों में अन्तर किया गया था। निर्णय के लिए मतैक्य आवश्यक था जबकि प्रक्रिया के विषयों के लिए सिर्फ मत। किन्तु, चार्टर के अन्तर्गत प्रक्रिया और सारभूत विषयों के बीच विभेद सम्बन्धी विवादों का फैसला वीटो के द्वारा होता। इससे जटिलता और अधिक बढ़ जाती है और कोई भी निर्णय लेने में काफी कठिनाई होती है।

सुरक्षा परिषद् की मतदान-प्रणाली से निष्कर्ष यही निकलता है कि किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य को सफल बनाने के लिए स्थायी सदस्यों का मत आवश्यक है और यही महाशक्तियों की सर्वसम्पति का सिंद्धात है। आई.पी.चेज का मत है: ''सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की स्थिति अनोखी है। इससे परिषद् की राजनीतिक समस्याओं की महत्ता का पता चलता है। सुरक्षा परिषद् की मतदान-व्यवस्था इसका सबसे अद्भुत लक्षण है। निषेधाधिकार का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ का सबसे कठिन प्रश्न है।''

2.2.7. कार्य और शक्तियाँ (Functions and Powers)

जैसा कि इसके नाम से ही व्यक्त होता है सुरक्षा परिषद् का मुख्य कार्य शांति और सुव्यवस्था बनाये रखना है। इस उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में राष्ट्रसंघ की कौंसिल की भांति सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ की सम्पूर्ण सदस्यता के अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करती है।[78] धारा 24 के अन्तर्गत सदस्य राज्यों ने यह स्वीकार किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के क्षेत्र में सुरक्षा परिषद् उनके बदले में कार्य करेगी। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि परिषद् मनमाने ढंग से कार्य करने के लिए स्वतंत्र है। वास्तव में सुरक्षा परिषद् अपने कार्यो के निर्वहन मे संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिंद्धातों के अनुसार कार्य करने के लिए बाधित है। यदि उसके कार्य संघ के उद्देश्यों तथा सिंद्धातों के अनुसार नहीं हो तो सदस्य राज्य उसकी अवज्ञा कर सकते है अन्यथा वे धारा 25 के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् के निर्णयों को मानने तथा कार्यान्वित करने को बाध्य है। सारांश यह कि सुरक्षा परिषद् की शक्तियो के सम्बन्ध में सामूहिक सुरक्षा के सिंद्धात को अपनाया गया है। इस सिंद्धात के अनुसार विश्व शांति की रक्षा संसार के सभी राष्ट्रों का संयुक्त उत्तरदायित्व है, और इस उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिए वे संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधन में संयुक्त रूप से कार्य करते है। इस सम्बन्ध में नेतृत्व और निर्णय का मुख्य भार सुरक्षा परिषद् को सौंपा गया है। इस दृष्टिकोण से सुरक्षा परिषद् की स्थिति संघ के सभी अंगो में सबसे अधिक शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण हो जाती है। ई.पी.चेज ने ठीक ही लिखा है। ''सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का हृदय है। संकट का समय हो या शांति कार्य, संयुक्त राष्ट्र के दूसरे अंग कार्य कर रहे हों या न कर रहे हो, साल का कोई भी समय या कैसा ही मौसम ही सुरक्षा परिषद् अपना कार्य करती ही रहती है।''[79]

संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषण-पत्र की धारा 24, 25 और 26 में सुरक्षा परिषद् के कार्यो और शक्तियों का उल्लेख किया गया है। संक्षेप में हम उन्हें निम्नलिखित ढंग से

[78] The Security Council functions essentially as an agent for the entire membership of the United Nations, producing by its decisions and action an institutionalized political and mroal pressure."
[79]

निरुपित कर सकते हैं- (क) संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों एवं सिंद्धातो के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाये रखना; (ख) ऐसे किसी भी विवाद अथवा स्थिति के बारे में जाँच पड़ताल करना जिससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव एवं सघर्ष पैदा होने का खतरा हो (ग) झगड़ो के निबटारे के लिए उपायों या समझौते की शर्तो की सिफारिश करना; (घ) हथयारों के नियमन की व्यवस्था के बारे में योजनाएँ तैयार करना (ड) शांति के लिए खतरा अथवा आक्रामक कार्रवाई की स्थिति को निश्चित करना तथा उसके सम्बन्ध में क्या कदम उठाए जाँए इसकी सिफारिश करना (च) आक्रमण को रोकने अथवा बन्द करने के लिए सदस्य राज्यों से आर्थिक अनुशक्ति तथा अन्य उपायों जिनमे बल-प्रयोग नहीं शामिल हो, लागू करने का अनुरोध करना; (छ) आक्रमण के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करना (ज) नये सदस्य बनाना निलंबित करना एवं निष्कासित करना; (झ) उन शर्तो का निर्धारण जिरमें कोई राज्य अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि का पक्ष हो सकता है; (ञ) सैनिक महत्त्व के क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्रसंघ के न्याय कार्यो को लागू करना; (ट) महासचिव की नियुक्ति के लिए महासभा से सिफारिश करना तथा महासभा के साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करना; तथा (प) महासभा के समक्ष वार्षिक तथा विशिष्ट प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।

इस प्रकार हम देखते है कि सुरक्षा परिषद् को काफी व्यापक अधिकार तथा दायित्व प्रदान किये गये है। इन दायित्वों को निभाने के लिए परिषद् को चार्टर के अध्याय, 6,7,8 और 12 में विशेष शक्तियाँ दी गयी है। अध्याय 6 विवादों के शांतिपूर्ण समाधान से सम्बन्धि है जिसमें 33 से 48 तक के अनुच्छेद सम्मिलित है। अध्याय 7 शांति को खतरे में डालने वाली, शांति-भंग और आक्रमण की चेष्टाओं के बारे में कार्रवाई से सम्बन्धित है; इसमें 39 से 51 तक के अनुच्छेद शामिल है। अध्याय 8 प्रादेशिक प्रबन्ध से सम्बन्धित है। जिसमें 52 से 54 तक के अनुच्छेद शामिल है। अध्याय 12 अन्तर्राष्ट्रीय न्याय-पद्धति की चर्चा करता हैं और इसमें सुरक्षा परिषद् के विभिन्न न्याय सम्बन्धी अधिकार सम्मिलित है। उपर्युक्त सभी अध्यायों में सुरक्षा परिषद् के जिन कार्यो और शक्तियों का उल्लेख है वे इस प्रकार है:

2.2.7.1. विवादों का शांतिपूर्ण समझौता (Pracific settlement of disputes)

अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान परिषद् का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। ऐसे विवादों से निपटने में परिषद् समय-समय पर विभिन्न उपायों का आश्रय लेती रही है। प्लानो तथा रिग्स ने परिषद् के विशिष्ट उपायों में विचार-विमर्श (Deliberations) अन्वेषण अथवा खोज-बीन (investigation) सिफारिश (Recomendation) समझौता (Counciliation) मध्यसथत (Inter position) अपील (Appeal) तथा आदेश (Enforcement) गिनाए हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का छठा अध्याय झगड़ों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की व्यवस्था करता है। इस अध्याय में झगड़ो को तय करने के विभिन्न ढंग बताए गये है। विवाद से सम्बन्धित पक्ष से यह आशा की जाती है कि पहले वे बातचीत, जाँच पड़ताल, मध्यस्थता, पंच-निर्णय, व्यापक निर्णय, क्षेत्रीय अभीकरण एवं व्यवस्थाओं की सहायता तथा अन्य शांतिपूर्ण तरीकों के माध्यम से आपसी झगड़ो का फैसला करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा परिषद् दोनों पक्षों को इन विधियों द्वारा अपने विवादों का फैसला करने के लिए कह सकती है। धारा 34 के द्वारा सुरक्षा परिषद् को

विवादों एवं परिस्थितियों की जाँच का महत्त्वपूर्ण अधिकार दिया गया है। इसके अनुसार सुरक्षा परिषद् किसी ऐसे विवाद या परिस्थिति की जाँच कर सकती है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय विवाद या झगड़े पैदा होने की संभावना हो। वह यह जाँच करेगी कि विवाद या परिस्थिति का कायम करना अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए खतरा तो नही पैदा कर रहा है। आवश्यक जाँच-पड़ताल के लिए परिषद् का अध्यक्ष विवादी पक्षों से पूछ ताछ कर सकता है अथवा इस उद्देश्य के लिए एक समिति अथवा एक आयोग भी नियुक्ति किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि समिति अथवा आयोग को संघर्ष स्थल पर तत्त्वों के निर्धारण के लिए भेजा जा सकता है। जाँच पड़ताल के उपायों द्वारा यद्यपि परिषद् विवाद से सम्बन्धित सभी तथ्यों का एकदम सही मूल्यांकन नहीं कर पाती फिर भी ऐसी परिस्थिति में पहुँचने की गुंजाइश रहती है कि परिषद् कामचलाऊ समाधान की दिशा में आगे बढ सके।

सुरक्षा परिषद् स्वयं किसी विवाद अथवा परिस्थिति की जाँ तो कर सकती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई सदस्य अथवा महासचिव भी उसका ध्यान ऐसे विवाद अथवा ऐसी परिस्थिति की ओर आकृष्ट कर सकता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के भंग होने की आशंका हो। कोई ऐसा राज्य जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नही है, सुरक्षा परिषद्, अथवा महासभा, के समक्ष कोई ऐसा विवाद ला सकता है जिसका कि स्वयं वह एक पक्ष है यदि उसे शांतिपूर्ण समाधान चार्टर की व्यवस्था स्वीकार हो।

यद्यपि विवादग्रस्त पक्षो का दायित्व है कि वे विवादों के समाधान किसी भी शांतिपूर्ण तरीके से करें किन्तु सुरक्षा परिषद् धारा 36 के अनुसार विवाद के किसी भी क्रम में समाधान हेतु कोई भी उपर्युक्त उपाय अथवा प्रक्रिया की सिफारिश कर सकती है। किन्तु सिफारिश करते समय उसे इस बात का ध्यान रखना होगा कि पक्षों ने किन-किन उपायों का पहले उपयोग किया है। परिषद् का दायित्व यह भी देखना है कि वैधानिक विवाद समाधान के लिए अन्र्तराष्ट्रीय न्यायालय के समझ भेजे जायँ।

अगर विवाद के विभिन्न पक्ष शांतिपूर्ण तरीके से किसी हल पर पहुँचने में असमर्थ हो तो उनका कर्त्तव्य है कि वे विवाद को सुरक्षा परिषद् को सौंप दे। सुरक्षा परिषद् विवादग्रस्त पक्षकारों के अनुरोध पर विवाद के शांतिपूर्ण समाधान के उद्देश्य से सिफारिशें कर सकती है। यदि सुरक्षा परिषद् यह निश्चय करती है कि विवाद से अन्तर्राष्ट्रीय शांति के भंग होने का भय है तो वह स्वयं ऐसे निपटारे की व्यवस्था का सुझाव दे सकती है जो वह न्यायोचित समझे।

सम्बद्ध पक्षों के अभाव में अन्य पक्षों द्वारा भी परिषद् के समक्ष कोई अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को उठाने की व्यवस्था की गयी है। यह व्यवस्था एक विशेष उद्देश्य से की गयी है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कोई राज्य किसी दूसरे राज्य का वैद्य सरकार को शक्ति प्रयोग या अन्य तरीकों से अपदस्थ करा देता है और उसके स्थान पर अपने मनोनुकूल कठपुतली सरकार को पदासीन करा देता है। कठपुतली सरकार उसके पक्ष में बयान देने लगती है और अक्सर उसे भारी सुविधाएँ प्रदान करने लगती है। ऐसी स्थिति में समबद्ध पक्ष आक्रमण की कार्रवाई को परिषद् के सामने कैसे ला सकता है? अत:

चार्टर में बडे व्यवस्था की गयी है कि कोई भी सदस्य राज्य ऐसे मामले को उठा सकता है। व्यावहारिक राजनीति की दृष्टि से यह व्यवस्था काफी उपयोगी है।[80]

विवादों के शांतिपूर्ण समाधान से सम्बद्ध विभिन्न धाराओं पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल एक स्थल पर सुरक्षा परिषद् द्वारा समझौता की शर्तो की सिफारिश का जिक्र है धारा 39 2 अन्यथा सुरक्षा परिषद् का काम अनुशसात्मक है जिसका अभिप्राय यह है कि इसकी अनुशंसा की अवहेलना की जा सकती है। परन्तु गुडरीव का विचार है कि अध्याय सात के अन्तर्गत परिषद् के बलशाली अधिकार को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि विवादग्रस्त पक्ष शांतिपूर्ण समाधान के लिए सुरक्षा परिषद् के सुझावों की अवहेलना नहीं करेंगे।

2.2.7.2. आदेशात्मक कार्य (Enforcement Action):

चार्टर के अध्याय 7 में उन तरीकों का उल्लेख किया गया है जिनका सहारा सुरक्षा परिषद उस स्थिति में ले सकती है जब झगड़ों का फैसला शांतिपूर्ण समझौते के तरीके से नहीं हो। इस अध्याय का शीर्षक है शांति को खतरा, शांति का भंग और आक्रामक कार्रवाईयों के सम्बन्ध में कार्रवाई।'' इसके अन्तर्गत परिषद् को दो तरह की दंड व्यवस्था लागू करने का अधिकार है। प्रथम, कूटनीतिक, आर्थिक एवं वित्तीय दंड व्यवस्था, तथा द्वितीय सैनिक दंड व्यवस्था। किन्तु कार्रवाई करने के पूर्व शांति भांग का निर्धारण आवश्यक है। धारा 39 के अनुसार परिषद् इस बात का निर्णय करेगी कि कौन चेष्टाएँ शांति को खतरे में डाले वाली, शांति भंग करने वाली और आक्रमण की चेष्टाएँ समझा जी सकती है। वही सिफारिश करेगी और तय करेगी कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम करने अथवा फिर से स्थापित करने के लिए कौन सी कार्रवाई की जानी चाहिए। दंड व्यवस्था लागू होने के पूर्व वह प्रयास करेगी कि परिस्थिति अधिक नहीं बिगड़ने पाये। इस उद्देश्य से वह विवाद के पक्षों को कतिपय आवश्यक अस्थायी उपायों का अनुकरण करने के लिए कह सकती है। ऐसे अस्थायी उपायों का वर्णन नही है किन्तु उनके अन्तर्गत ये विषय आते है, युद्ध विराम, युद्ध-क्षेत्रों या खास प्रदेशों से सेना की वापसी, खास क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सेना का रखा जाना तथा आक्रामक कारवाई को बंद करना। पिछले 40 वर्ष के अनुभव से यह सिद्ध होता है कि सुरक्षा परिषद् ने इस अधिकार का अनेक अवसरों पर प्रयोग किया है। 15 जुलाई 1948 को अरबों और इजरायल को युद्ध विराम का आदेश इसका उदाहरण है। सन् 1956 के स्वेज संघर्ष के दरम्यान, ऐसे ही आदेश के फलस्वरूप इजरायल को मिस्र के अधिकृत क्षेत्र से अपनी सेनाएँ वापस बुला लेने को कहा गया था। 21 दिसम्बर 1971 को भारत और पाकिस्तान को युद्ध विराम करने का आदेश दिया गया। अस्थायी उपायों का अनुकरण नही करने पर सुरक्षा परिषद् को अन्य कदम उठाने का अधिकार है। 2 अगस्त 1990 को जब ईराक के कुवैत पर कब्जा करने के रूप में सुरक्षा परिषद् ने इराक के विरुद्ध आर्थिक और सैनिक प्रतिबंध लागू किया। आर्थिक प्रतिबंध के साथ-साथ कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ने तथा यातायात संचार

---

[80] Armed withs this power chapter Vii it was though that the Security Cuncil would be in a strong position to persuade parties to any dispute or threatening situation to accept its proposals for settlement or adjustment even through there were strictly speaking only recommendations.

आदि की सुविधाएँ रोक देने का आदेश भी दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ अप्रैल 1992 में सुरक्षा परिषद् ने लीबिया के खिलाफ प्रतिबंध लागने का निर्णय लिया।

अगर सुरक्षा परिषद् समझे कि उपर्युक्त उपाय अंसतोषप्रद है तो हवाई सामुद्रिक या स्थल सेनाओं के माध्यम से कारईवाई सम्मिलित है। सैनिक दंड के निर्णय में सुरक्षा परिषद् को पूरी स्वतंत्रता है। पिछले लगभग पाँच दशकों में फिर खाड़ी संकट के समय (1990-91) इराक के खिलाफ सैनिक कार्रवाई की गयी। एक बार कोरिया के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्रसंघ के झंडे के नीचे सैनिक कार्रवाई की गयी थी। शांति-स्थापना के लिए सुरक्षा परिषद् द्वारा सन् 1960 में कांगो तथा 1964 में साइप्रस में सेना भेजी गयी किन्तु उसे सैनिक नहीं कहा जा सकता।

सैनिक दंड-व्यवस्था में सुरक्षा परिषद् के निर्णयों को कार्यान्वयन किस तरह से हो, उसके लिए 43 से 47 तक की धराओं में व्यवस्था है। धारा 43 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने में सहयोग देने के लिए संघ के सब सदस्यों का यह कर्त्तव्य है कि सुरक्षा परिषद् के माँगने पर और विशेष समझौते अथवा समझौतों के अनुसार अपनी सशस्त्र सेनाएँ, सहायता तथा अन्य सुविधाएँ जिनमें मार्ग-अधिकार सहयोग भी शामिल होगे, मुहैय्या करेंगे। सेनाओं की संख्या, उनके प्रकार, उनकी तैयारी और स्थिति आदि के बारे में निश्चय समझौते या समझौतों किये जायेंगे और इस प्रकार के समझौतों की बातचीत सुरक्षा परिषद् की प्रेरणा से जल्दी-से-जल्दी शुरू की जानी चाहिए। वे समझौते सुरक्षा परिषद् और सदस्यों के समुदाय के बीच में होंगे। इनका अनुसमर्थन समबद्ध राष्ट्रों द्वारा उनकी सांविधानिक प्रक्रियाओं के द्वारा होना आवश्यक है। इन उपबंधो के फलस्वरूप सामूहिक सुरक्षा की योजना तभी फलवती हो सकती है जब सामान्य या विशेष समझौते किये जाएँ, यद्यपि सदस्य राज्य सुरक्षा परिषद् के निर्णय को मानने के लिए वचनबद्ध है किन्तु समझौते के बिना सैनिक कार्रवाई में भाग नहीं ले सकते। अनुच्छेद 45 के अनुसार सदस्य सामूहिक अन्तर्राष्ट्रीय कारईवाई के लिए अपनी राष्ट्रीय वायुसेना के दल जल्दी-से-जल्दी उपलब्ध करेंगे ताकि संयुक्त राष्ट्रसंघ तुरंत सैनिक कार्रवाई कर सके। इस सैनिक दलों की संख्या तैयारी आदि के बारे में निश्चय के लिए परिषद् को उसकी सैनिक स्टाफ समिति मदद् देगी। यही परिषद् के अधीन सशस्त्र सेनाओं का संचालन करेगी।

सुरक्षा परिषद् के निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए सदस्य-राष्ट्र एक-दूसरे को हाथ बटाएँगे। जब अपराधी राज्य के खिलाफ सुरक्षा परिषद् के द्वारा कोई आदेशात्मक कार्रवाई की जाय और इस कार्रवाई के कारण किसी अन्य राज्य को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़े तो उन कठिनाईयों को सुलझाने के लिए वह सुरक्षा परिषद् की सलाह ले सकता है।

धारा 51 में कहा गया है कि चार्टर में लिखित कोई भी बात राज्यों को व्यक्तिगत और सामूहिक स्वसुरक्षा के अधिकार से वंचित नहीं करेगी। इस प्रकार उनका व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मरक्षा का अधिकार ज्यो-का-त्यों रखा गया है जब तक कि सुरक्षा परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम रखने के लिए आवश्यक कदम न उठा लिया हो। आत्मरक्षा के लिए किसी राष्ट्र द्वारा उठाये गये कदम की सूचना परिषद् के दायित्व पर उस कार्य का प्रभाव नही पड़ता। इसका तात्पर्य यह है कि सुरक्षा परिषद् कार्य कार्य करने का अधिकार अक्षुण्ण बना रहता है।

2.2.7.3. क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ (Regional Arrangments):

चार्टर के आठवें अध्याय मे क्षेत्रीय प्रबंध की व्यवस्था बतलायी गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था के दृष्टिकोण से किसी क्षेत्र में क्षेत्रीय संस्थाओं की स्थापना की जा सकती है। लेकिन इन व्यवस्थाओं और संस्थाओं को और उनक कार्य-कलापों को संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य और सिंद्धातों के अनुकूल होना चाहिए। यह आशा प्रकट की गयी है कि सदस्य राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का सहारा लेने के पहले इन क्षेत्रीय संस्थाओं के द्वारा स्थानीय झगड़ों को सुलझाने को प्रयत्न करेंगे। परिषद् भी स्थानीय विवादों के सुझाव के लिए क्षेत्रीय व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करेगी। परिषद् जब कभी उचित समझे तो क्षेत्रीय अभिकरणों और प्रबन्धों को किसी देश के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए प्रयोग मे ला सकती है। परन्तु क्षेत्रीय प्रबन्धों या अभिकरणों के अन्तर्गत जो कार्रवाई की जायेगी वह सुरक्षा परिषद् की अनुमति के बिना नही की जा सकेगी। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के सम्बन्ध में क्षेत्रीय व्यवस्थाओं या संस्थाओं द्वारा उठाये गये किसी प्रकार के कदम की सूचना सुरक्षा परिषद् को हमेशा मिलनी चाहिए।

2.2.7.4. अन्य कार्य (Other Functions of the Security Council):

यह ठीक है कि चार्टर के द्वारा सुरक्षा परिषद् को शांति और सुरक्षा के क्षेत्र में प्राथमिक दायित्व सौंपा गया है, किन्तु अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में भी उसे कतिपय शक्तियों से विभूषित किया गया है जिनमें से अधिकाशं का प्रयोग वह महासभा के साथ मिलकर करती है। प्लानों तथा रिग्स के अनुसार ये कार्य है- निर्वाचात्मक (Elective) प्रेरणात्मक (Initiatory) और निरीक्षणात्मक (Supervisory) निर्माताओं द्वारा परिषद् को ये कार्य इस दृष्टि से सौपे गये है कि महाशक्तियाँ महत्त्वपूर्ण संगठनात्मक मामलों पर अपना कुछ नियंत्रण रख सके।[81] सुरक्षा परिषद् के निर्वाचनात्मक कार्यो में महासचिव की नियुक्ति का कार्य महत्त्वपूर्ण है। धारा 97 यह व्यवस्था करती है कि महासचिव की नियुक्ति महासभा द्वारा सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर होगी। उस सिफारिश में सुरक्षा परिषद् के सभी स्थायी सदस्यों की सहमति आवश्यक है। इसका अभिप्राय यह है कि महासचिव के पद पर ऐसे व्यक्ति की ही नियुक्ति हो सकती है जो सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों को मान्य हो। महासभा के साथ मिलकर सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करती है। संघ में नये सदस्यों के प्रवेश पर परिषद् का कठोर नियंत्रण है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर ही महासभा किसी राज्य के प्रवेश पर धारा 4 के अनुसार निर्णय ले सकती है। इस सिफारिश में सभी स्थायी सदस्यों की सहमति आवश्यक है। चार्टर के अन्तर्गत परिषद् को एक और महत्त्वपूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है। यह अधिकार सदस्यों के निलंबन एवं निष्कासन से सम्बन्धित है। धारा 5 के अनुसार ऐसा सदस्य जिसके विरुद्ध दंड की कार्रवाई लागू की गयी हो, महासभा द्वारा सुरक्षा परिषद् की सिफारिश अनुसार ऐसा सदस्य जिसके विरुद्ध दंड की कारवाई लागू की गयी हो, महासभा द्वारा सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर सदस्यता के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के प्रयोग से निलंबित किया जा सकता है। धारा 6 के अनुसार ऐसा सदस्य

[81] Plano & Riggs: Op. cit., P. 59

जिसने लगातार चार्टर के सिद्धांतो की अवहेलना की हो, महासभा के द्वारा सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर निष्कासित किया जा सकता है।

चार्टर की धारा 26 के अनुसार सुरक्षा परिषद् को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह सैनिक स्टाफ समिति की सहायता से शस्त्रों के नियमन की योजना बनावे तथा उसे सदस्य-राज्यों को प्रस्तुत करें। परन्तु इस क्षेत्र में परिषद् का कार्य बहुत ही पीछे रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के प्राथमिक दायित्व के अनुसार परिषद् को विशिष्ट प्रदेशों की निगरानी का अधिकार प्रदान किया गया है। धारा 83 के अनुसार सामरिक महत्व के क्षेत्रो (Strategic areas) के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी कार्य जिसमें न्याय समझौते भी शामिल है, सुरक्षा परिषद् द्वारा सम्पादित किये जायेंगे। इस कार्य के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् न्याय परिषद् से यह माँग कर सकती है कि वह सामरिक न्यास क्षेत्रों में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक विषयों से सम्बद्ध सामान्य न्याय कामों का सम्पादन करें।

2.2.8. निषेधाधिकार की समस्या (Provision of Veto)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के किसी भी उपबंध ने हमें इतना आकर्षित नहीं किया है, जितना सुरक्षा परिषद् के निषेधाधिकार ने।[82] साधारण मनुष्य के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ का सुचारु रूप से चलना निषेधाधिकार के प्रयोग का दुरूपयोग पर निर्भर है। वास्तव में जैसा कि हैन्स केल्सन ने लिखा है ‘‘सामूहिक सुरक्षा संयुक्त राष्ट्र का प्रधान उद्देश्य है।’’ इस उद्देश्य की प्राप्ति का भार सुरक्षा परिषद् को सौंपा गया है। इसी कारण सुरक्षा परिषद् को संयुक्त राष्ट्र की कार्यकारिणी तथा सरकार का भ्रूण[83] एवं विश्व संगठन का विद्युत शक्तिगृह[84] कहा गया है। परन्तु आलोचको का मत है कि सुरक्षा परिषद् अपने सामूहिक सुरक्षा के कार्य में असफल हो गयी है और इस असफलता का प्रधान कारण महाशक्तियों का निषेधाधिकार है। परिणामस्वरूप निषेधाधिकार की व्यवस्था काफी आलोचना का पात्र रही है। गुडरीव और हैम्बो कहते है[85] कि चार्टर को कोई भी अनुच्छेद इतना विवादास्पद नही है जितना कि 27वाँ अनुच्छेद।’’ नार्मन डी. पामर और एच.सी.परकिन्स ने लिखा है ‘‘किसी भी बात ने संयुक्त राष्ट्र के प्रति जनता का विश्वास इतना अधिक नही खो दिया है जितना कि सुरक्षा परिषद् के निषेधाधिकार के अधिक प्रयोग और दुरुपयोग ने।’’[86] डब्ल्यू आर्नल्ड फास्टर के अनुसार निषेध अधिकार का भय सम्पूर्ण व्यवस्था पर छाया हुआ है। ऐसी व्यवस्था के रक्त में ही पक्षाघात है। यह उस मोटर गाड़ी के समान है, जिसका स्टार्टर किसी भी समय उसकी यंत्र-व्यवस्था में गड़बड़ करके उसके इंजन को रोक सकता है। परिणामस्वरूप निषेधाधिकार की समस्या केवल सुरक्षा परिषद् की समस्या न होकर सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्रसंघ की समस्या बन गयी है।’’ चेज ने ठीक ही लिखा है संगठन की नीति की समस्या के रूप में निषेधाधिकार की समस्या संयुक्त राष्ट्रसंघ की

[82] L.L Leonard: Op. cit., P. 203
[83] Norman Bentwich: From Geneva to San Fransisco P.52
[84] Sigrid Anue: United Nations Primer, P. 122
[85] Palmer and Perkins: Op. cit. p. 1010
[86] The veto power was insisted upon by the five great powers at San Fransisco it was forced upon the remainder. The marriage veto the charter was a shot gun wedding.

सर्वाधिक कठिन समस्या है।'' अनेक अर्थो में यदि इसे संघ की सर्वाधिक जानी हुई समस्या कहा जाय तो उनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

2.2.9. निषेधाधिकार का स्वरूप तथा अर्थ:

चार्टर की धारा 27 में सुरक्षा परिषद् की मतदान-प्रणाली का वर्णन है। इसमें कहा गया है कि सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत प्राप्त होगा। इस प्रकार ऐसा लगता है कि संयुक्त राष्ट्र का चार्टर सब सदस्यों की समान प्रभुता के सिद्धांत पर आधारित है परन्तु वास्तव में यह केवल दिखावे के लिए है। सुरक्षा सम्बन्धी प्रबन्धों की व्यवस्था करते समय महान् राष्ट्रों के विशेष अधिकारों को प्रभावशाली शब्दों में स्वीकार किया गया है। जैसा कि धारा 27 में आगे कहा गया है कि प्रक्रिया-सम्बन्धी विषयों (Precedural Matters) पर निर्णय नौ स्वीकारात्मक मतों के लिए जायेंगे। प्रथम संशोधन से पूर्व सात मतों से निर्णय लिए जाने के विधान था। अन्य सभी विषयों पर निर्णय नौ स्वीकारात्मक मतों द्वारा लिए जायेंगे जिसमें पाँच स्थायी सदस्यों के स्वीकारात्मक मतों का होना आवश्यक है। उपर्युक्त धारा के विशेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मतदान के दृष्टिकोण से सुरक्षा परिषद् के समक्ष लाये गये विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया है। साधारण जिसे चार्टर की भाषा में प्रक्रिया-सम्बन्धी मामला कहा गया है और दूसरा असाधारण जिसे महत्त्वपूर्ण मामला कहा गया है। साधारण बातें में सुरक्षा परिषद् के किन्हीं नौ सदस्यों से स्वीकारात्मक मत से प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है किन्तु अन्य सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में कम-से-कम नौ सदस्यों के स्वीकारात्मक मतों में पाँच स्थायी सदस्यों को स्वीकारात्मक मत अनिवार्य है। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय बिना पाँच स्थायी सदस्यों की सहमति के सम्भव नही है। इस उपबंध के फलस्वरूप कोई भी एक स्थायी राज्य सुरक्षा परिषद् को निर्णय लेने से रोक सकता है अर्थात् प्रत्येक महान् शक्ति को निषेधाधिकार या वीटो प्राप्त हो गया है, हालांकि वीटो शब्द का इस्तेमाल चार्टर में कहीं भी नहीं किया गया है। इसके केवल दो ही अपवाद है प्रथम प्रक्रिया-सम्बन्धी मामले तथा द्वितीय, वे मामले जिनमें स्वयं विरोध में मत देने वाली महाशक्ति एक पक्ष हो।

यदि कोई महान् राज्य सुरक्षा परिषद् की बैठक में अनुपस्थित हो अथवा अपना मत नहीं दे तो उसे वीटो नहीं कहा जा सकता। इस प्रश्न की व्याख्या के सम्बन्ध में पश्चिमी शक्तियों तथा सोवियत गुट के विचारकों में मौलिक मतभेद सन् 1950 के कोरियाई संकट के समय विशेष रूप से प्रकट हुआ। उन दिनों जनवादी चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश कराने के मामले को लेकर सोवियत रूस सुरक्षा परिषद् का बहिष्कार कर रहा था। फलत: अमेरिका के संकेत पर परिषद् में उत्तर कोरिया के विरुद्ध कारगर सैनिक कारवाई करने का निर्णय जल्दी-से-जल्दी लिया गया। बाद में जब सोवियत प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् वापस आये जो उसने यह दावा किया कि उसकी अनुपस्थिति में की गयी परिषद् की कार्रवाई अवैध है। उसका कहना था कि पाँच स्थायी सदस्यों का समर्थन अनिवार्य था, सदस्य उपस्थित हो या अनुपस्थित कोई फर्क नही पड़ता। पश्चिमी शक्तियों का कहना था कि घोषणा-पत्र की धारा 27 (3) में विहित पाँच स्थायी सदस्यों के समर्थन का अर्थ परिषद् की बैठक में उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों का समर्थन था। इस प्रकार उन्होंने सोवियत रूस के दावे को अस्वीकार कर दिया। यह निर्णय हुआ कि मतदान नहीं

करने का अर्थ निषेधात्मक मत नहीं है और न अनुपस्थिति का अर्थ ही निषेधात्मक मत है। यदि परिषद् का कोई भी स्थायी या अस्थायी सदस्य प्रस्तुत विवाद से सम्बन्धित हो तो उसे मतदान करने का अधिकार नही होता।

2.2.10. दोहरे निषेधाधिकार की व्यवस्था:

ऊपर हमने देखा कि परिषद् में मतदान के लिए साधारण और असाधारण में विभेद किया गया है। परन्तु चार्टर में साधारण और असाधारण शिक्षा प्रणालियों में अंतर करने वाली कोई व्यवस्था नहीं दी गयी है। यह निर्णय करने का अधिकार भी सुरक्षा परिषद् को प्राप्त है। जब यह प्रश्न उठता है कि कोई विषय साधारण या प्रक्रियात्मक मामला माना जाए अथवा असाधारण तब दोहरे निषेधाधिकार का प्रयोग होता है। सर्वप्रथम निषेधाधिकार के प्रयोग द्वारा किसी प्रश्न को साधारण विषय की कोटि में रखे जाने से रोका जाता है और इसके बाद प्रस्ताव के तत्वों के विरोध में दोबारा मत दिया जाता है। इस प्रकार एक ही प्रश्न पर दो बार निषेधाधिकार का विषय है। वास्तव में इसी नियमन ने निषेधाधिकार को दोहरे निषेधाधिकार में बदल दिया है। पहले तो एक नाकारात्मक वोट दिया जाता है जिसमें सुरक्षा परिषद् किसी विषय को साधारण नही मान ले और इसके बाद दूसरा वोट दि जाता है ताकि प्रस्ताव का तत्व ही निष्फल हो जाय। इस दोहरे निषेधाधिकार के चलते परिषद् के स्थायी सदस्यों को किसी निर्णय को रोकने की अनियंत्रित शक्ति प्राप्त है। वे किसी भी विषय को साधारण घोषित करके सुरक्षा परिषद् में उसको पारित होने से रोक सकते है। जैसा कि कैलसन ने लिखा है साधारण और असाधारण विषयों को कोई निश्चत अर्थ नहीं है। जिस दृष्टिकोण से वे देखे जाते है उसी के अनुसार उनका अर्थ बदल जाता है। एक ही विषय एक दृष्टिकोण से साधारण हे तो दूसरे दृष्टिकोण से असाधारण।'' इस प्रकार चार्टर मे साधारण और असाधारण विषयों में भेद सम्बन्ध के अभाव के कारण महाशक्तियों को काफी स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी है।

इस सम्बन्ध में दिलचस्प बात यह है कि किसी स्थायी सदस्य का निषेधात्मक मत तभी निषेधाधिकार का प्रयोग होगा जबकि उसके मत से परिषद् को कोई निर्णय गिर जाता है जो अन्यथा स्वीकृत हो जाता। उदाहरणार्थ, यदि किसी विषय पर एक से अधिक स्थायी सदस्य निषेधात्मक मत प्रदान करते है अथवा उनके निषेधात्मक मत के अतिरिक्त उसके विपक्ष में सामान्य सदस्यों का मत प्राप्त होता है, तो वह निषेधाधिकार का मामला नहीं समझा जायेगा। राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए सहयोग से काम करेगी क्योंकि युद्ध के समय उन्होंने मेल से काम किया था। परन्तु शीघ्र ही उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। चार्टर के निर्माण के शीघ्र ही बाद निषेधाधिकार का प्रयोग करना आंरभ कर दिया गया। सुरक्षा परिषद् के स्थापित होने के एक मास के भीतर ही सोवियत रूस ने सीरिया लेबनान प्रश्न के ऊपर प्रथम बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया। 16 फरवरी 1946 को रूस ने निषेधाधिकार का प्रयोग करके सीरिया और लबनान से विदेशी सेना को हटाने के अमरीका प्रस्ताव को रद्द कर दिया। सितम्बर 1946 में महासभा की बैठक होने के समय तक आठ बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया। उनमें से चार तो सिर्फ स्पेन के प्रश्न पर प्रयुक्त किए थे और तीन नये सदस्यों के प्रवेश के प्रश्न पर। सन् 1945 से 1947 के बीच के दो वर्षो की अवधि में 23 बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया। इनका प्रयोग भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया था। उद्देश्य के दृष्टिकोण से

नार्मन जे. पेडलफोर्ड ने उक्त निषेधाधिकारों को निम्नलिखित 6 वर्गो में विभाजित किया है:

i. एक निषेधाधिकार का प्रयोग सीरिया-लेबनान विवाद के सम्बन्ध में किया गया जिसका उद्देश्य एक दुर्बल प्रस्ताव को असफल बनाना था। क्योंकि एक अधिक तीव्र प्रस्ताव की आवश्यकता थी।

ii. चार निषेधधिकारों का प्रयोग अपने समर्थन राज्यों के विरुद्ध अन्य राज्यों द्वारा लगाए गए आरोपों की जाँच के प्रस्ताव को रोकने के लिए किया गया जैसे चार ग्रीक के मामले में और एक कर्फू विवाद के सम्बन्ध में।

iii. पाँच निषेधाधिकारों का प्रयोग अपने समर्थन राज्यों के विरुद्ध अन्य राज्यों द्वारा लगाए गए आरोंपो की जाँच के प्रस्ताव को रोकने के लिए किया गया। जैसे चार ग्रीक के मामले में और एक कर्फू विवाद के सम्बन्ध में।

iv. एक निषेधाधिकार का प्रयोग हिन्देशिया के मामले में किया गया जिसका उद्देश्य एक अन्तर्राष्ट्रीय पंच आयोग की नियुक्ति को रोकना था।

v. दस निषेधाधिकारों का प्रयोग संयुक्त राष्ट्रसंघ में नये सदस्यों के प्रवेश को रोकने के लिए किया गया।

vi. दो निषेधाधिकारों का प्रयोग प्रक्रिया सम्बम्धी अथवा सारभूत प्रश्नों के निर्णय के सम्बन्ध में किया गया।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि निषेधाधिकार का प्रयोग भिन्न-भिन्न उद्देश्य से किया जाता है। यह आशा की स्थायी सदस्य निषेधाधिकार का प्रयोग यथासंभव नही करेंगे, गलत साबित हुई। परिषद् के बैद्ध काम को रोकने क प्रयत्न महाशक्ति ने किया है। अभी तक सैकड़ों बार इस अधिकार का प्रयोग किया जा चुका है। इस प्रयोग का संगठन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। संकटों के समय इस अधिकार के प्रयोग के कारण अनेक बार संयुक्त राष्ट्र के कार्यो में बाधाएँ उत्पन्न हुई है।'' इस निषेधाधिकार के प्रयोग ने सुरक्षा परिषद् के कार्य को प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है।

वैसे देखने पर पिछले वर्षो में निषेधाधिकार का सबसे अधिक प्रयोग अकेले सोवियत रूस ने किया है। नवम्बर 1968 तक रूस ने 105 बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया था। परन्तु चार बार उसने बड़े महत्वपूर्ण अवसरों पर इस अधिकार का प्रयोग किया। पहला सन् 1956 में जब पश्चिम ने स्वेज नहर का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने का प्रस्ताव रखा तब रूस ने अपने निषेधाधिकार द्वारा इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया। दूसरे जब पश्चिमी देशों ने फरवरी, 1957 में जम्मू और कश्मीर में संयुक्त राष्ट्रसंघ सेना को स्थापित करने का सुझाव रखा तो रूस ने अपने इस अधिकार द्वारा इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया। तीसरे 19 दिसम्बर 1961 को भारतीय सैनिक कार्रवाई के विरुद्ध जब पश्चिमी देशों ने भारतीय सेना को गोआ से हटने के लिए कहाँ तक रूस ने निषेधाधिकार का प्रयोग कर इसे रद्द कर दिया। चौथा, 6 दिसम्बर 1971 को भारत-पाकिस्तान युद्ध को रोकने के लिए आठ देशों ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें युद्ध-विराम के अतिरिक्त फौजों की वापसी की बात कही गयी। सोवियत संघ ने वीटो का प्रयोग करके इस प्रस्ताव को रदद् कर दिया। रूस ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता के सम्बन्ध के आधी शती से भी अधिक बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया है। रूस द्वारा निषेधाधिकार के बार-बार प्रयोग

कर अमरीका तथा ब्रिटेन ने यह आरोप लगाया कि उसने निषेधाधिकार का दुरुपयोग किया है। यह भी कहा गया है कि सोवियत रूस ने अपनी निषेधाधिकार के प्रयोग से सुरक्षा परिषद् को पंगु बना दिया है। इसके चलते सुरक्षा परिषद् अर्थहीन हो गयी है। परन्तु ये आलोचनाएँ वास्तविकता से दूर मालूम पड़ती है। हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि सोवियत यूनियन द्वारा प्रयुक्त किए गए कुछ निषेधाधिकार में से आधे का प्रयोग सदस्यता के प्रश्न पर हुआ है। युद्धोतर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में जब शीतयुद्ध का समावेश हुआ तो इसका असर संयुक्त राष्ट्रसंघ पर भी पड़ना शुरू हुआ। यह भी दो भागों में विभाजित हो गया। सुरक्षा परिषद् में सोवियत रूस अपने गुट का एकमात्र प्रतिनिधि था। इस स्थिति से लाभ उठाकर पाश्चात्य शक्तियाँ हर विषय पर सोवियत संघ को तंग करने लगी। वहाँ से बराबर ऐसे प्रस्ताव पास होने लगे जो सोवियत गुट के विरूद्ध होते थे। अतएव अपने बचाव के लिए सोवियत संघ वीटो का प्रयोग करने लगा। वीटो की संख्या दिनो दिन बढ़ने लगी। अमरीका और उसक पिछलग्गू देशों ने होहल्ला मचाना शुरू किया कि यह बहुत बड़ा अत्याचार है।

इस सम्बन्ध में एक दूसरी बात यह है कि केवल रूस ही सुरक्षा परिषद् का ऐसा स्थायी सदस्य नही है जिसने निषेधाधिकार का प्रयोग किया है। ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका तथा चीन ने भी इस अधिकार का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ, सन् 1946 तथा 1947 की अवधि में परिषद् में गैर कार्रवाई विषयों पर 165 बार मतदान हुए। इसमें 23 बार निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया, जिसमें 21 बार सोवियत संघ ने तथा फ्रांस ने दो बार किया। पर इसी अवधि में सयुक्त राज्य अमरीका ने 34 बार ब्रिटेन ने 29 बार, फ्रांस ने 23 बार तथा चीन ने 27 बार निषेधात्मक मत दिए। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण इस प्रकार है। रंगभेद की नीति के प्रश्न पर दक्षिणी अफ्रीका ने जब बार-बार संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों की अवहेलना की तो संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् ने 30 अक्तूबर 1974 को 3 के मुकाबले 10 मतों से दक्षिणी अफ्रीका को संयुक्त राष्ट्रसंघ से निष्कासित करने का प्रस्ताव पारित कर दिया। परन्तु अमरीका, फ्रांस और ब्रिटेन द्वारा निषेधाधिकार का प्रयोग करने के कारण यह प्रस्ताव निरस्त हो गया। संघ के इतिहास में यह प्रथम अवसर था जबकि तीन स्थायी सदस्यों ने सुरक्षा परिषद् द्वारा पारित प्रस्ताव को रद्द करने के लिए एक साथ निषेधाधिकार का प्रयोग किया। 1975 तक पाँच बड़े राष्ट्रों ने 139 बार वीटो का प्रयोग किया था। जनवरी 1980 तक रूस ने इसे 113 बार प्रयोग किया था। पश्चिमी शक्तियों के निषेधात्मक मत निषेधाधिकार के अन्तर्गत नहीं आये; क्योंकि प्रत्येक विषय पर कई बार स्थायी सदस्यों ने भी उनका साथ दिया, सामान्य सदस्यों ने भी ऐसा ही किया। इस प्रकार उनके हित के मामले सामान्य मतदान-प्रक्रिया के द्वारा ही तय हो जाते, जबकि सावियत संघ को यह सुविधा प्राप्त नही थी। अतः उसे निषेधाधिकार का प्रयोग करके ही अपने या अपने मित्रों के हित की रक्षा करनी पड़ती। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया कि एक विषय पर कई बार मतदान कराकर निषेधाधिकार का हर बार प्रयोग करने को बाध्य किया गया। उदाहरणार्थ, दिसम्बर 1971 में भारत-पाकिस्तान संघर्ष के मामले पर चौबीस घंटे के भीतर ही सोवियत रूस को दो या तीन बार निषेधाधिकार का प्रयोग करने को विवश होना पड़ा। शीतयुद्ध की समाप्ति के

पूर्व तक 279 बार वीटो का प्रयोग किया जा चुका था। परन्तु शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद विशेषकर मई 1990 के बाद वीटो का प्रयोग नही किया जा रहा है।

थोड़े मे व्यवहार में निषेधाधिकार की शक्ति का काफी दुरुपयोग हुआ है। इसका प्रयोग उस भाँति नही हो पाया है जैसा चार्टर के निर्माताओं ने सोचा था। वास्तव में अपने निषेधाधिकार के बल पर स्थायी राष्ट्र अपना स्वार्थ-साधन करते है। अत: निषेधाधिकार की शक्ति अनुचित कार्यो के निवारण का साधन न होकर उनके स्वार्थ साधन का माध्यम बन गयी है।

2.2.11. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न:- 1.) सुरक्षा परिषद वर्णन संक्षेप में किजिए ?

प्रश्न:- 2.) सुरक्षा परिषद् प्रस्तावना एवं परिचय का वर्णन कीजिए?

प्रश्न:- 3.) सुरक्षा परिषद् के प्रमुख कार्यो का वर्णन कीजिए?

प्रश्न:- 4.) सुरक्षा परिषद का मतदान-प्रणाली संक्षेप में वर्णन किजिए ?

प्रश्न:- 5.) सुरक्षा परिषद् के निषेधाधिकार का स्वरूप तथा अर्थ का उल्लेख किजिए?

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न:- 1) सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष के कार्यो एवं शक्तियों का उल्लेख किजिए?

प्रश्न:- 2) निषेधाधिकार की व्यवस्था की आलोचनाएँ किन– किन आधार पर कि जा सकती है ?

प्रश्न:- 3) सुरक्षा परिषद का मूल्यांकन का किजिए?

प्रश्न:- 4) सुरक्षा परिषद् के विवादों एवं शांतिपूर्ण समझौता का उल्लेख किजिए?

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्न:- 1) सुरक्षा परिषद् में सदस्य देशों की संख्या है

1) 195 2) 187 3) 193 4) 183

प्रश्न:- 2) सुरक्षा परिषद् की बैठक आयोजित कि जाती है?

1) 3 बार 2) 2 बार 3) 1 बार 4) 4 बार

प्रश्न:- 3) सुरक्षा परिषद का मतदान-प्रणाली व्यवस्था से सम्बन्धित है

1) 27वाँ अनुच्छेद 2) 28 वाँ अनुच्छेद 3) 29 वाँ अनुच्छेद 4) 30 वाँ अनुच्छेद

प्रश्न:- 4) सुरक्षा परिषद् की अधिकारिक भाषा नहीं है?

1) अरबी 2) जर्मन 3) स्पेनी 4) फ्रांसीसी

प्रश्न:- 5) सुरक्षा परिषद् मुख्यालय का मुख्यालय स्थित है?

1) जेनेवा 2) न्यूयार्क 3) पेरिस 4) वाशिगठन डी० सी०

2.2.12. संदर्भ ग्रन्थ सूची

- द जनरल असैम्बली इन द सैन्टर ऑफ यूनाइटिड नेशन्स
- एन.डी. पलमर एण्ड एम.सी. पटकिंस
- हंस कैल्सन द लॉ ऑफ द यूनाइटिड नेशन्स
- इन शार्ट द चीफ एडिमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर ऑफ द यू.एन. होल्ड ऑफ यूनिक पोणिसन
- द सैक्टरी जनरल ऑफ द यू.एन हैज ए फॉनसिल्यूशनल लाइसंस ऑफ बी ऐज ए बीग मैन ऐज ही कैन क्लाउड
- स्टैपन एम. स्केवल द सैक्टरी जनरल ऑफ द यूनाइटिड नेशनस

इकाई-3: आर्थिक एवं सामाजिक परिषद

इकाई की रूपरेखा:

2.3.1. उद्देश्य कथन
2.3.2. प्रस्तावना
2.3.3. राष्ट्रसंघ का अनुभव
2.3.4. संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर तथा सामाजिक एवं आर्थिक कारवाई
2.3.5. आर्थिक और सामाजिक परिषद का संगठन
2.3.6. मतदान-प्रणाली पदाधिकारी तथा कार्य-विधि
2.3.7. आयोग तथा समितियाँ
2.3.8. आर्थिक और सामाजिक परिषद के कार्य
2.3.8.1. अध्ययन एवं प्रतिवेदन
2.3.8.2. विचार-विमर्श और सिफारिश
2.3.8.3. आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता कार्य
2.3.8.4. मानव अधिकारों का विकास
2.3.8.5. सहयोग एवं समन्वय
2.3.9. मूल्यांकन
2.3.10. पाठ का सार/सारांश
2.3.11. अभ्यास/बोध प्रश्न

2.3.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के बारे में जानकारी प्राप्त करोगें।
- आर्थिक और सामाजिक परिषद का संगठन के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।
- आर्थिक और सामाजिक परिषद के कार्यो के बारे में जानकारी हासिल होगी।

2.3.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्रसंघ एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जिसका स्वरूप राजनीतिक तथा गैरराजनीतिक दोनों ही है। इसकी सैद्धातिक पृष्ठभूमि में संघर्ष और सहायोग, दोनों प्रवृत्तियों का समावेश है। यद्यपि इसका जन्म द्वितीय विश्वयुद्ध के संदर्भ में हुआ और इसलिए संयुक्त राष्ट्रसंघ का सम्बन्ध युद्ध और शांति की समस्याओं से होना स्वाभाविक भी था परन्तु फिर भी इसने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि अनेक गतिविधियों में अधिक रूचि दिखलाई है। वस्तुत: इन गतिविधियों को युद्ध और शांति की समस्या से एकदम अलग भी नही किया जा सकता। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कई तनावों के पीछे आर्थिक और सामाजिक कारण होते हैं। जहाँ आर्थिक और सामाजिक असंतोष का वातावरण होता है वहाँ स्थायी शांति और व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जैसा कि वैन्डेनबोश तथा होगन ने लिखा है:- ‘‘आर्थिक संकट तथा

सामाजिक असंतोष निराशा तथा तनाव को जन्म देते हैं। जिससे व्यवस्था, स्थायित्व तथा सुरक्षा समाप्त हो जाती है। ऐसे परिस्थिति में केवल शक्ति के आधार पर ही यथास्थिति को बनाये रखकर शांति कायम रखी जा सकती है। परन्तु ऐसी स्थिति अवश्य ही अस्थायी तथा विस्फोटक होगी।''[87] आर्थिक और सामाजिक पहलू की महत्ता को स्वीकार करते हुए श्री रामस्वामी मुदालियर ने भी कहा था कि युद्ध के अधिकांश कारण ऐसी ही समस्याओं में अन्तर्निहित होते हैं।'' अतः शांति और व्यवस्था अन्य चीजों के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक स्थायित्व की माँग करती है।[88] यदि शांति और सुव्यवस्था को स्थायी आधार देना है तो आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में सहयोग आवश्यक है।

2.3.3. राष्ट्रसंघ का अनुभव (Experience of the League of Nations)

राष्ट्रसंघ की योजना बनाने वालों का बहुमत आर्थिक और सामाजिक सहयोग के प्रश्न पर सहमत नहीं था। उसने अपना सारा ध्यान राजनीतिक प्रश्नों पर ही केन्द्रित किया था। पेरिस शांति सम्मेलन में ही राष्ट्रपति विल्सन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि आर्थिक प्रश्नों में उसकी कोई रूचि नहीं है। जब फ्रांसीसी प्रतिनिधि द्वारा राष्ट्रसंघ के लिए एक पृथक आर्थिक तथा सामाजिक विभाग का प्रस्ताव रखा गया तो राष्ट्रपति ने इसका विरोध करते हुए कहा था: ''इस प्रस्ताव में एक खतरनाक सिंद्धात अन्तर्निहित है। राष्ट्रसंघ को ऐसे सिंद्धातों से सर्वथा अलग रहने की चेष्टा करनी चाहिए। वह इस बात से सहमत नही था कि राष्ट्रसंघ के विभाग में आर्थिक और सामाजिक मामलों के लिए किसी पृथक विभाग की व्यवस्था नहीं की गयी ।इन मामलों से सम्बद्ध कार्यो को संघ की असेम्बली तथा कौसिल को ही सौंप दिया गया। इस प्रकार शांति और व्यवस्था के उद्देश्य हेतु राजनीतिक प्रश्नों के समक्ष आर्थिक एवं सामाजिक प्रश्नों को गौण स्थान प्रदान किया गया। परन्तु शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि शांति, सुरक्षा एवं आर्थिक स्थिरता एक-दूसरे से बहुत सम्बद्ध है और इसीलिए राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में सहयोग आवश्यक है। प्रथम युद्ध के बाद विश्व की आर्थिक स्थिति काफी डावाँडोल थी और इस स्थिति को सँभालने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा पहल आवश्यक था। परिणामस्वरूप राष्ट्रसंघ के आर्थिक और सामाजिक कार्यो के सम्पादन के लिए समितियों एवं आयोगों का गठन किया गया। दोनों विश्वयुद्धों के दौरान आर्थिक, सामाजिक तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में राष्ट्रसंघ के द्वारा काफी उपयोगी तथा सराहानीय कार्य किए गये। जनकल्याण के क्षेत्र में राष्ट्रसंघ ने बहुत से काम किये। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत उक्त क्षेत्रों में गठित संस्थाओ की उपलब्धि की चर्चा करते हुए वाल्टर ने यह स्वीकार किया है कि उनके कार्यो ने परिषद् से भी अधिक जनमत को प्रभावित किया। इन संस्थाओं ने राष्ट्रसंघ तथा सदस्य एवं गैर-सदस्य राज्यो में तालमेल स्थापित किया। हिटलर और मुसौलिनी के आक्रामक कार्यो को रोकने में राष्ट्रसंघ की राजनीतिक असफलता परिलक्षित हो जाने के बाद ये संस्थाएँ आर्थिक, सामाजिक एवं मानव-कल्याणकारी कार्यो के क्षेत्र में कार्य करती रही। यही कारण

---

[87] Economic misery and social unreast involve frustrations and tensions which destroy order stability and security. Under such conditions peace can be preserved only by6 the maintaince of the status quo backed by overwhelming force. This type of situation certainly would would be temporary and exclusive one.

[88] Goodspeed: op. cit., p. 395

है कि यह कहा जाता है कि राष्ट्रसंघ को असल सफलता गैर राजनीतिक क्षेत्र में ही प्राप्त हुई। राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

2.3.4. संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर तथा सामाजिक एवं आर्थिक कारवाई (Charter of the U.N.O and Social and Economic Activities)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माताओं के समक्ष राष्ट्रसंघ का उदाहरण था। उन्होंने राष्ट्रसंघ के अनुभव से लाभ उठाया। उन्होंने यह महसूस किया कि जिस प्रकार राज्य केवल शांति और सुरक्षा प्रहरी मात्र नही है, उसी तरह विश्व-संस्था का दायरा भी विश्व समुदाय में शांति और आर्थिक स्थिरता एक-दूसरे से बहुत सम्बद्ध है और इसलिए शांति एवं सुरक्षा बनाये रखने के लिए राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में सहयोग आवश्यक है। चार्टर के निर्माण के लिए हुए सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में आये हुए प्रतिनिधियों ने आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए भावी संघ में एक प्रमुख अंग की व्यवस्था पर काफी जारे दिया ताकि आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग का उद्देश्य अन्य उद्देश्य से कम महत्त्वपूर्ण न रह जाय। उनके प्रयास के चलते ही चार्टर में विश्व-संस्था के लिए पिछड़े लोगों के जीवन स्तर का उन्नयन सबको पूर्ण रोजगार की व्यवस्था, मूलभूत मानव अधिकारों की स्वीकृति, दुनिया के लोगों के अभाव एवं दरिद्रता से मुक्ति आदि व्यापक उद्देश्य स्वीकृत किये गये। चार्टर में निम्नलिखित संकल्प दुहराये गये।

1. उच्चतर जीवन-स्तर पूर्ण रोजगार, आर्थिक-सामाजिक प्रगति एवं उन्यन
2. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-सामाजिक समस्याओं को दूर करना, दुनिया के लोगों को स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी जानकारी तथा सुविधाएँ प्रदान करना, शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र में सहयोग स्थापित करना आदि,
3. सभी को समान रूप से मौलिक अधिकारों तथा स्वतंत्रता को उपलब्ध कराने के लिए योजना जागृत करना तथा राजनैतिक स्तर पर प्रयास करना।

उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए चार्टर में संघ के छः प्रमुख अंगों में आर्थिक और सामाजिक परिषद् को प्रमुख स्थान दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के क्षेत्र में इसे नया प्रयोग कहा जा सकता है। यह राष्ट्रसंघ की धारणा के विपरीत था चूँकि उसके अन्तर्गत इस प्रकार के कार्यो का उतरदायित्व राजनीतिक अंगो (कौंसिल एवं असेम्बली) को सौंपा गया था जिसका निर्वहन सहायक आयोगों एवं समितियों के द्वारा किया जाता था। चार्टर के अन्तर्गत आर्थिक और सामाजिक परिषद् को संघ के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य, सम्बन्धी तथा अन्य विभिन्न प्रकार के कार्यो को सम्पादित करने का दायित्व सौंपा गया है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए यह उपर्युक्त विषयों का अध्ययन करती है। यदि सुरक्षा परिषद् का उद्देश्य विश्व युद्ध के आंतक से रक्षा करना है तो आर्थिक और सामाजिक परिषद् का उद्देश्य मानव की गरीबी, दरिद्रता तथा बीमारी से रक्षा करके युद्ध के मानसिक कारणों का उन्मूलन करना है।

2.3.5. आर्थिक और सामाजिक परिषद् का संगठन (Organisation of the Social and Economic Council)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा 61 में आर्थिक और सामाजिक परिषद् के संगठन का उल्लेख है। मूल विधान में यह कहा गया था कि परिषद् में 18 सदस्य होंगे।

परन्तु बाद में यह अनुभव किया गया कि प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से परिषद् की सदस्य-संस्था अपर्याप्त है। अत: बहुत दिनों से यह आवाज उठायी जा रही थी कि आर्थिक और सामाजिक परिषद् की सदस्यता में वृद्धि की जाय। 1963 में चार्टर में संशोधन स्वीकार करके सदस्यों की संख्या 27 कर दी गयी। यह संशोधन सदस्य-राज्यों की संपुष्टि के बाद 31 अगस्त, 1965 को लागू हुआ। 20 दिसम्बर 1971 में महासभा ने धारा 61 में संशोधन का एक दूसरा प्रस्ताव स्वीकार किया जिसके अनुसार परिषद् की सदस्य-संख्या 27 से बढ़ाकर 54 कर दी गयी। अत: वर्तमान समय में परिषद् में 54 सदस्य है।

परिषद् के सदस्यों का चुनाव महासभा अपने दो-तिहाई बहुमत से करती है। सदस्यों की योग्यता के सम्बन्ध में कोई लिखित निर्देश नहीं है। इसमें न तो सुरक्षा परिषद् की तरह सदस्यों को स्थायी जगह दी गयी है और न महासभा को इसके सदस्यों के चुनाव के सम्बन्ध में कोई निर्देश ही दिया गया। कारण यह था कि गैर सुरक्षात्मक प्रश्न महान् राष्ट्रों के हितों के लिए प्रत्यक्ष अथवा स्पष्ट तौर पर चुनौती नही साबित हो सकते थे। फिर इसमें खुली सदस्यता की बात छोटे राष्ट्रों के प्रति मित्रता का भाव प्रदर्शित करती थी। यह उन छोटे तथा मध्यमवर्गीय राज्यों को संतुष्ट करने के लिए भी आवश्यक था जो सुरक्षा परिषद् में महान् राज्यों को मिली स्थायी जगह से स्पष्ट रूप से असंतुष्ट थें जो भी हो, सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में कनाड़ा तथा फ्रांस के प्रतिनिधियों ने यह सुझाव रखा था कि चार्टर में इस तरह का विधान किया जाय कि मुख्य औद्योगिक राज्यों को परिषद् की सदस्यता हमेशा प्राप्त होती रहे। किन्तु बहुमत औपचारिक रूप से ऐसे विभेद को स्वीकार नही कर रहा था। अत: सदस्यता का द्वार सबों के लिए खुला रखा गया।

परन्तु पुनर्निर्वाचन तथा महत्वपूर्ण देश का विधान रखा गया है। परिणामस्वरूप सुरक्षा परिषद् के पाँच महान् तथा स्थायी सदस्य घुमा-फिराकर इसमें निर्वाचित होते रहे हैं, हांलाकि छोटे और मध्यम श्रेणी के राष्ट्रों को भी प्रतिनिधित्व मिलता रहा है। इस प्रकार पुनर्निर्वाचन की प्रथा के कारण सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य सर्वथा चुन लिये जाते है। अत: व्यवहार में करीब-करीब वही परिणाम निकले हैं जो औपचारिक रूप से घोषणा के कारण होते। वेन्डेनबोश तथा होगन के अनुसार बड़े तथा औद्योगिक महत्व के देशों के बार-बार चुने जाने के कारण व्यवहार में कुछ राज्य इसके स्थायी सदस्य बन गये है।

वैसे तो, महासभा अपने इच्छानुसार किसी भी सदस्य-राष्ट्र को इस परिषद् का सदस्य चुन सकती है। परन्तु ऐसा देखा गया है कि सदस्यों का चुनाव करते समय वह उनकी भौगोलिक स्थिति, सरकारों की आर्थिक स्थिति एवं उनकी संस्कृति का भी ख्याल करती है। 1965 के संशोधन के अनुसार परिषद् में नौ सीटों की वृद्धि हुई है उसके बँटवारे की व्यवस्था इस प्रकार की गयी सात छोटे अफ्रीकी एशियाई देशों को एक लैटिन अमरीकी देशों को तथा एक पश्चिमी यूरोपीय देशों को।

परिषद् के सदस्यों का चुनाव तीन वर्ष के लिए होता है। पर व्यवस्था यह है कि प्रत्येक वर्ष इसके एक-तिहाई सदस्य पदमुक्त हो जाते है और उनकी जगह नये सदस्यों का चुनाव होता है। इस प्रकार परिषद् एक स्थायी संस्था है। जैसा ऊपर कहा गया है कि परिषद् के सदस्यों के पुनर्निर्वाचन पर कोई प्रतिबंध नही लगाया गया है। जिन सदस्यों की अवधि समाप्त हो जाती है, वे अनुच्छेद 61 (2) के अनुसार तुरंत ही फिर चुनाव में

खडे हो सकते है। व्यवहार में ऐसा देखा गया है कि बड़ी शक्तियों तथा औद्योगिक महत्व के राज्यों को बार-बार चुल लिया जाता है।

2.3.6. मतदान-प्रणाली पदाधिकारी तथा कार्य-विधि (Voting Procedure Officer and Procedure)

आर्थिक और सामाजिक परिषद् में प्रत्येक सदस्य को सिर्फ प्रतिनिधि में भेजने का अधिकार है। आवश्यकतानुसार उसके साथ अन्य वैकल्पिक प्रतिनिधि तथा परामर्शदाता भी भेजे जा सकते है। परन्तु प्रत्येक सदस्य राज्य को सिर्फ एक ही मत प्राप्त है। परिषद् में निर्णय उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के साधारण बहुमत से लिया जाता है। परिषद् किसी ऐसे गैर सदस्य-राज्य को भी अपनी कार्रवाई में भाग लेने के लिए आमंत्रित कर सकती है जिसका किसी विचारधीन मामलें से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो। परन्तु आमंत्रित सदस्य को मतदान में भाग लेने का अधिकार नहीं होता। इसके अतिरिक्त गैर-सरकारी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से आवश्यकतानुसार परामर्श लेने की व्यवस्था है किन्तु ये संगठन परिषद् की बैठकों में भाग नही ले सकते। इस विधान से यह स्पष्ट है कि आर्थिक और सामाजिक परिषद् को विस्तृत स्रोतों से आवश्यक सूचना और परामर्श लेने का अधिकार है। नियम के अनुसार परिषद् की बैठके वर्ष में तीन बार होने का विधान है किन्तु सामान्यतया दो बार अप्रैल तथा जुलाई में बैठके होती है जो चार से छह सप्ताह तक चलती है। आवश्यकता पड़ने पर परिषद् की विशेष बैठक भी बुलाई जा सकती है। इस तरह की विशेष बैठक परिषद् के सदस्यों के बहुमत के अनुरोध पर बुलायी जाती है। चार्टर की धारा 72 (2) में कहा है। आर्थिक और सामाजिक परिषद् का अधिवेशन जब आवश्यक हो उसके अपने नियमों के अनुसार होगा। इन नियमों के अनुसार जब कभी उसके सदस्यों का बहुमत अनुरोध करे तो उसका अधिवेशन बुलाया जाय।'' जब तक परिषद् कोई दूसरा निर्णय नहीं करती तब तक उसका अधिवेशन संयुक्त राष्ट्रसंघ के मुख्यालय में ही होता है।

प्रत्येक वर्ष अपनी प्रथम बैठक के प्रांरभ से ही एक अध्यक्ष तथा दो उपाध्यक्षों का चुनाव करती है। ये पदाधिकारी केवल एक वर्ष के लिए ही चुने जाते हैं। किन्तु अपनी अवधि समाप्त होने के बाद वे पुनः निर्वाचित किये जा सकते है। जैसे ही उनके देश की परिषद् की सदस्यता समाप्त हो जाती है, उनकी सेवा अवधि भी समाप्त हो जाती है।[89]

अध्यक्ष का चुनाव करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि वह बड़े राष्ट्रों से न आता हो। वह परिषद् के अधिवेशन के आंरभ औश्र स्थगन की घोषणा करता है। वह परिषद् में वाद-विवाद को निर्देषित करता है तथा प्रक्रिया-सम्बन्धी नियमो का पालन करवाता है। वह किसी प्रश्न को मतदान के लिए पेश करता है और मतदान के बाद उसके निर्णयों की घोषणा करता है। उसके परामर्श से ही महासचिव कार्यावली का निर्धारण करता है। सचिवालय परिषद् के अधिवेशनों उसकी समितियों एवं अधीनस्थ निकायों के कार्यो का रेकर्ड रखता है।

परिषद् केवल प्रस्ताव पारित कर सकती है, निर्णय लेने का उसे अधिकार नही है। इसके द्वारा पारित प्रस्तावों को अनुमोदनार्थ सदस्य-राज्यों के पास भेज दिया जाता है।

[89] The Economic and social council shall meet as required in accordance with its rules which shall include provisions for the convening of meetings on the request of a majority of its members.

कभी-कभी यह सुरक्षा परिषद् की सहायक संस्था के रूप में कार्य करती है। शांति-भंग की अवस्था में विवादग्रस्त राज्य के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगाते समय सुरक्षा परिषद् आर्थिक और सामाजिक परिषद् की बैठक आमंत्रित करती है तथा उससे परामर्श लेती है। ऐसी स्थिति में परिषद् सुरक्षा परिषद् की पूरी सहायता करती है। यह अपने सहायक अंगो तथा विशिष्ट अभिकरणों से प्रतिवेदन स्वीकार करती है और उस पर विचार-विमर्श करती है। गुड्सपीड के शब्दों में परिषद् अभिकरणों से प्रतिवेदनों को सुनने में व्यतीत होता है।''[90]

2.3.7. आयोग तथा समितियाँ (Commission and Committee)

आर्थिक और सामाजिक परिषद् को काफी महत्त्वपूर्ण और व्यापक उत्तरदायित्व प्रदान किये गये है। उनका सम्पादन करने के लिए परिषद् को सहायक अंगों की स्थापना करने का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत परिषद् ने आयोगों और समितियों की स्थापना की है जो इसके कार्यो का सम्पादन करते है। इन आयोगों के सदस्यों का निर्वाचन परिषद् स्वयं करती है। कुछ आयोगों के सदस्यों का निर्वाचन सदस्य देश भी करते है। महासचिव भी परामर्श देते है ताकि प्रत्येक आयोग के अधीन विभिन्न क्षेत्रों का संतुलित प्रतिनिधित्व हो सके। ये आयोग दो प्रकार के होते हैं (क) यातायता व संचार आयोग (15 सदस्य) (ख) परिगणन आयोग (15 सदस्य) (ग) जनसंख्या आयोग (18 सदस्य) (घ) सामाजिक आयोग (18 सदस्य) (ड) मानव अधिकार आयोग (18 सदस्य) (च) नारी स्थिति सम्बन्धी आयोग (18 सदस्य) (छ) मादक आयोग (15 सदस्य) (ज) अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु व्यापार आयोग (18 सदस्य) (झ) आर्थिक विकास आयोग (18 सदस्य) कार्यात्मक आयोग के सदस्य निर्वाचित होते है और उनका निर्वाचन परिषद् के द्वारा किया जाता है। इनका कार्य-काल तीन चार साल का होता है। किन्तु उनके अतिरिक्त कार्य-काल पर कोई प्रतिबंध नही है। आयोग के सदस्य सम्बद्ध सरकारो द्वारा मनोनीत किये जाते है। आयोग के सदस्यों के रूप में केवल राज्यों का ही निर्वाचन होता है। फिर सदस्य देश महासचिव से परामर्श करके अपने प्रतिनिधियों को नियुक्ति करते हैं। इन नियुक्तियों को बाद में परिषद् अनुमोदित करत है। ऐसे अयोगो की कार्यविधि निम्नांकित होती है। (1) तथ्य एवं आंकडे एकत्रित करना (2) अध्ययन एवं विश्लेषण (3) पहले से उन क्षेत्रों में कार्यशील संस्थाओं के साथ सहयोग एवं समायोजन सम्बन्ध अनुशंसा (4) परिषद् को कार्रवाई के हेतु अनुशंसा। इन आयोगों के कार्य-क्षेत्र दुनिया के विभिन्न देशों में फैले होते हैं। कभी-कभी कोई राष्ट्रीय क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय संस्था उनके कार्य-क्षेत्र में काम करती रहती है, तब उस आयोग को पूर्ववर्ती संस्था के कार्य को अपनी हाथ में लेकर या उसके साथ सहयोग करते हुए अपना काम शुरू करना होता है। यह अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक होता है। पर अन्य क्षेत्रों में उन्हें कार्यारम्भ ही करना होता है।

कार्यात्मक आयोग का मुख्य-उद्देश्य अपने-अपने विषयों के सम्बन्ध में परिषद् को सुझाव देना है। कार्यो के दृष्टिकोण से इन आयोगों के तीन वर्ग बनाये जा सकते है। प्रथम वर्ग में परिगणना आयोग, आबादी आयोग तथा अन्तर्राष्टीय वस्तु-व्यापार आयोग को रखा जा सकता है। इन आयोगों का कार्य अपने क्षेत्र से सम्बद्ध विषयों का अध्ययन करना तथा उनके सम्बद्ध में परिषद् के समक्ष आँकड़े प्रस्तुत करना है। द्वितीय श्रेणी में

[90] Much time is devoted to hearing reports from its subsidiary bodies and from the specialized agencies.

सामाजिक आयोग, मानव अधिकार आयोग तथा नारी अधिकार सम्बन्धी आयोग आते हैं। वैसे इन आयोगों के कार्य की प्रथम कोटि के आयोगों के कार्यो से मिलते-जुलते हैं परन्तु इनकी विशेषता यह है कि ये नीति सम्बन्धी विषयों पर भी परामर्श एवं सुझाव देते हैं। तृतीय श्रेणी में मादक पदार्थ आयोग को रखा जाता है। अन्य आयोगों से भिन्न इसे निरीक्षणात्मक तथा परामर्शदात्री दोनों अधिकार प्राप्त हैं।

आयोगों की कार्यविधि परिषद् की कार्यविधि से मिलती-जुलती है। इनमें निर्णय बहुमत से लिया जाता है। आयोगों के अपने अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष होते हैं। नारी अधिकार-सम्बन्धी आयोग, मादक द्रव्य आयोग, मानव अधिकार आयोग, अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु-व्यापार आयोग तथा सामाजिक आयोग की बैठक प्रत्येक वर्ष होती है। अन्य आयोगों की बैठक दो वर्ष में एक बार होती है। आयोगों के सदस्य अपने देश की सरकार के निर्देशानुसार कार्य करते हैं अतः उनकी कार्य-स्वतंत्रता जाती रहती है।

इन आयोगों के अलावा कुछ उप-आयोग भी होते है; जैसे, सांख्यिकी विश्लेषण, भेद-भाव निरोध तथा सूचन से सम्बन्धित आयोग।

कार्यात्मक आयोगों तथा उप-आयोगों के अतिरिक्त परिषद् द्वारा कुछ क्षेत्रीय आयोगों की स्थापना की गयी है। इस तरह के चार आयोग है। (क) यूरोप निमित आर्थिक आयोग (29 सदस्य) (ख) एशिया व सूदूरपूर्व निमित आर्थिक आयोग (23 सदस्य दा सदस्य सह-सदस्य है) (ग)लेटिन अमरीका आर्थिक आयोग (24 सदस्य) और (घ) अफ्रीका निमित आर्थिक आयोग (15 सदस्य 7 सदस्य सह-सदस्य है) इन क्षेत्रीय आयोगों का कार्य विशेष क्षेत्रों में सीमित रहता है इनके मुख्यालय उन्ही क्षेत्रो में अवस्थित रहते हैं। उससे स्थानीय अवस्थाओ, समस्याओं तथा उनके समाधान के लिए अनुशंसा करने में सुविधा होती है।

परिषद् की कुछ स्थायी समितियाँ भी है जिनके द्वारा यह अपने कार्यो का सम्पादन करती है। ये समितियाँ पाँच है: (क) प्राविधिक सहायता समिति (ख) अन्तर्राज्यकीय संस्थाओ से बातचीत करने वाली समिति (ग) गैर-सरकारी संगठनो से परामर्श की व्यवस्था करने वाली समिति, (घ) कार्य-सूची समिति (ड) बैठकों के कार्यक्रम निमित अन्तरिम समिति। इन समितियों की बैठक परिषद् के पूर्ण अधिवेशनों के कुछ दिन पहले होती है। इन समितियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राविधिक सहायता समिति है। इसका मुख्य उद्देश्य दुख और दरिद्रता से मानव जाति को छुटकारा दिलाना है। इन स्थायी समितियों के अलावा समय-समय पर कुछ विशिष्ट कार्यो के सम्पादन हेतु पदार्थ समितियों की स्थापना भी की जाती है।

किसी क्षेत्र विशेष में विशेषता रखने वाले 14 अन्तर सरकारी संगठन विशेष समझौते द्वारा संयुक्त राष्ट्र से सम्बन्धित है। इसकी अधिकतर व्यवस्था इसी परिषद् द्वारा की गयी है। आर्थिक और सामाजिक परिषद् का एक काम प्रत्येक एंजेसी के काम को दूसरी एर्जेसी के काम व संयुक्त राष्ट्र के काम से सम्बद्ध करना भी है। इन एर्जेसियों को विशेष एर्जेसियाँ कहते हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक और सामाजिक परिषद् अपने कार्यो का सम्पादन अनेक आयोगो, स्थायी एवं तदर्थ समितियों तथा अनेक विशिष्ट अभिकरणों की सहायता से करती है। संसार के लोगों के जीवन-स्तर को

ऊँचा उठाने तथा उनकी मौलिक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान में इन आयोगों तथा संगठनों ने काफी सराहनीय कार्य किया है। परन्तु इन आयोगों और संगठनों की बहुलता के कारण परिषद् का संगठन काफी जटिल हो गया है। फिर भी इसके व्यापक तथा बहुमुखी दायित्वों को ध्यान में रखते हुए इन आयोगों तथा समितियों का रहना अनिवार्य है। जैसा कि वेन्डेनबोश तथा होगन ने कहा है ''आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने एक जटिल संगठनात्मक ढाँचे की स्थापना की है किन्तु इसके क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले बहुमुखी विषयों पर ध्यान देने से ऐसा आवश्यक ही मालूम पड़ता है।''[91]

2.3.8. आर्थिक और सामाजिक परिषद् के कार्य (Cunctions of Economic and Social Council)

संयुक्त राष्ट्र का कार्य तथा उद्देश्य सिर्फ राजनीतिक विवादों का शांतिपूर्ण समाधान ही नहीं है। वरन् आर्थिक सामाजिक, स्वास्थ्य, संस्कृति तथा मानवीय क्षेत्रो में कार्य करना भी है। चार्टर के निर्माताओं ने राष्ट्रसंघ के अनुभव से लाभ उठाकर यह महसूस किया था कि विश्व-शांति और सुव्यवस्था के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा उससे सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों में भी प्रभावशाली ढंग से कार्य करना होगा। उनका विचार था कि आर्थिक असंतोष और सामाजिक विषमता युद्ध के मानसिक कारणों को जन्म देते हैं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को यदि स्थायी आधार देना है तो इन क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का विकास करना होगा। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए चार्टर में सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के उन्नयन पर अधिक जोर दिया गया है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सदस्य राज्यों में भलाई और दृढ़ता स्थापित करने के लिए आवश्यक है। इसके द्वारा राष्ट्रों में मैत्री एवं शांतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होंगे। चार्टर की धारा 1 में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य विश्व की आर्थिक, सामाजिक या मानवतावादी समस्याओं के हल करने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना तथा जाति, लिंग, भाषा या धर्म का भेद किये बिना सबसे लिए मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के सम्मान को बढ़ावा देना तथा उसे प्रोत्साहित करना है। चार्टर के नवें अध्याय में इन उद्देश्यों को और व्यापक रूप प्रदान किया गया है। इसमें कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का कर्त्तव्य है कि वह निम्नलिखित बातों को प्रोत्साहन दे (क) जीवन-स्तर को उच्च बनाना, पूर्ण रोजगारी आर्थिक और सामाजिक उन्नति व विकास की अवस्था को पैदा करना (ख) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को हल करना और अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक और शिक्षण-सहयोग बढ़ाना (ग) जाति, लिंग, भाषा और धर्म का भेद-भाव किये बिना मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं को सम्मान देना। इस प्रकार चार्टर के द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ पर आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय क्षेत्रों में कार्य करने का बहुत बड़ा दायित्व सौंपा गया है। यह दायित्व उतना ही महत्वपूर्ण है जितना शांति और सुरक्षा बनाये रखने का दायित्व। जैसा कि चेज ने लिखा है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माताओं की दृष्टि में संघ का प्राथमिक उद्देश्य विश्व शांति और सुरक्षा को कायम रखना हे किन्तु अधिकांश लोगों की दृष्टि में एक दूसरा उद्देश्य भी है

[91] The Economic and social council has developed a rather complex organi

जो इसके प्रथम उद्देश्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह उद्देश्य है आर्थिक और सामाजिक हित का विकास करना।''

चार्टर में आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में जिन महान् उद्देश्यों की चर्चा की गयी है उनके निर्वहन के साधन के रूप में आर्थिक और सामाजिक परिषद् की रचना की गयी है। दूसरे शब्दों में संयुक्त राष्ट्रसंघ के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा उससे सम्बद्ध कार्यो को सम्पादित करने का दायित्व आर्थिक और सामाजिक परिषद् को सौंपा गया है। सूत्र रूप में यह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर स्वयं या किसी संस्था द्वारा अध्ययन करा सकती है, तथा इस प्रकार के किसी भी मामले से सम्बन्धित अपनी सिफारिशें साधारण सभा, संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों तथा तत्सम्बन्धित विशिष्ट एजेंसियों से कर सकती है। यह मानव अधिकारों एवं सभी के लिए मौलिक स्वतंत्रताओं के सम्मान एवं पालन को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से भी सिफारिशें कर सकती है। अपने अधिकार-क्षेत्र में आने वाले मामलों के सम्बन्ध में यह महासभा के सामने पेश करने के लिए कन्वेंशनों के मसविदे तैयार कर सकती है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार वह अपने अधिकार-क्षेत्र में आने वाले मामलों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी बुला सकती है। इस प्रकार आर्थिक-सामाजिक परिषद् का कार्य क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है। एक लेखक के शब्दों में यह सामान्य जन-कल्याण के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यो का केन्द्रबिन्दु तथा ह्रदय है। थोड़े में यदि सुरक्षा परिषद् का लक्ष्य विश्व को भय से मुक्त करना है तो आर्थिक और सामाजिक परिषद् का लक्ष्य संसार को अभाव से मुक्त करना है। वेन्डेनबोश तथा होगन ने ठीक ही कहा है। यह बातूबी सुरक्षा परिषद् की चुप्पी जुडवाँ बहन है। सुविधा के लिए आर्थिक-सामाजिक परिषद् के कार्यो को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते है:

2.3.8.1. अध्ययन एवं प्रतिवेदनः-

चार्टर की धारा 62 के अनुसार आर्थिक और सामाजिक परिषद् को आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा स्वास्थ्य तथा उससे सम्बद्ध विषयों के सम्बन्ध में अध्ययन आरंभ करने तथा रिपोर्ट तैयार करने का अधिकार है। परिषद् का यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आधारभूत तथ्यों की जानकारी के लिए कोई भी संस्था समस्या का निदान नहीं ढूँढ सकती। राष्ट्रसंघ के संदर्भ में हम परिषद् के इस कार्य का महत्व समझ सकते है। जिस समय राष्ट्रसंघ ने अपना कार्य प्रारंभ किया था, उस समय आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से सम्बन्धित पर्याप्त परिगणना एवं अन्य सुचनाओं का विश्व में काफी अभाव था। राष्ट्रसंघ ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किये। इसके तत्त्वावधान में जनसंख्या, परिवर्तन, जल-साधनों, नियोजन तथा औद्योगिक एवं कृषि से सम्बद्ध विषयों पर आँकड़ों को संकलित करने का प्रयास किया गया। इससे पूर्व सही अर्थ में विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में कभी भी ठीक जनगणना नहीं हो पायी थी। परिणामस्वरूप इस सम्बन्ध में युक्तियुक्त अनुमान लगाना कठिन था। कोई भी राष्ट्र अकेले इन विषयों से सम्बद्ध सूचनाओं को संकलित नहीं कर सकता था। या तो ऐसा करना उसके सामर्थ्य के बाहर था अथवा उसके पास प्रशिक्षित अनुसंधानकर्ताओं का अभाव था। कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था

ही तथ्यगत सूचनाएँ संकलित कर सकती थी और सारी दुनिया के लोगों के लिए तुलनात्मक परिगणना तैयार कर सकती थी। राष्ट्रसंघ ने इस दिशा में कार्यो की पहल की परन्तु उसने अपने-कार्य क्षेत्र का विस्तार नही किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने व्यापक पैमान पर इस कार्य को शुरू किया है। जैसा कि वेन्डेनबोश तथा होगन ने लिखा है। राष्ट्रसंघ ने इस कार्य को जहाँ छोड़ा था, संयुक्त राष्ट्रसंघ ने वही प्रारंभ किया है।''[92]

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में अध्ययन करना तथा उनके सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करना आर्थिक-सामाजिक परिषद् का महत्त्वपूर्ण कार्य है। परिषद् ने इस कार्य को बड़ी सफलता के साथ निभाया है। वह कई विषयों पर जैसे, विस्थापितों की समस्या विश्व में निवासगृहों का अभाव, विध्वस्त क्षेत्रों का पुनर्निमाण तथा महिलाओं के आर्थिक-स्तर आदि का अध्ययन करवा चुकी है तथा उनसे सम्बद्ध सूचनाएँ उपलब्ध कराने में सफल रही है। सचिवालय के साथ सहयोग कर इस परिषद ने एक स्टैटिस्टिकल इयर बुक तैयार करने तथा विश्व की आर्थिक परिस्थितियों का सर्वेक्षण करने की ओर पहल की है। सारभूत तथ्यों की खोज तथा उन्हें एकत्र करना इस परिषद् का तथा इसीक अधीनस्थ संस्थाओं का प्रथम कार्य रहा है। उदाहरण के लिए युद्धकाल में लाखों व्यक्ति लापता हो गये थे जिनकी सम्पत्ति तथा बीमें की अदायगी के सम्बन्ध में अनेक व्यावहारिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई। अतः इसके सम्बन्ध में सिफारिश करने के लिए तथ्यों का संकलन आवश्यक था। परिषद् ने खोये हुए व्यक्तियों के सम्बन्ध में अनेक व्यावहारिक समस्याएँ उठ खडी हुई। अतः इसके सम्बन्ध में सिफारिश करने के लिए तथ्यों का संकलन आवश्यक था। परिषद् ने खोये हुए व्यक्तियों के सम्बन्ध में मृत्यु-घोषणा का प्रारूप तैयार कर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसने आर्थिक और सामाजिक समस्या के अध्ययन एवं प्रतिवेदन के द्वारा सामान्य हित के प्रश्नों के बीच एकात्मकता स्थापित करने की कोशिश की है। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की दिशा में यह काफी महत्त्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। यद्यपि परिषद् के इस कार्य में अनेक कठिनाइयों है फिर भी इसके तत्वाधान में जो अध्ययन हुआ है और जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किये गये हैं, वे सदस्य-राष्ट्रों के लिए काफी उपयोगी सिद्व हुए है। सचिवालय तथा आर्थिक-सामाजिक परिषद् द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों की संख्या काफी अधिक है। पामर तथा पर्किन्स ने लिखा है। जीवन की छोटी-सी अवधि में संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में जितने प्रकाशन हुए है वे राष्ट्रसंघ के समय प्रकाशनों से काफी अधिक है। आज संयुक्त राज्य अमरीका को छोड़क रवह दुनिया का सबसे बड़ा प्रकाशक बन गया है।''

2.3.8.2. विचार-विमर्श और सिफारिशः-

आर्थिक और सामाजिक परिषद् का दूसरा कार्य अपने क्षेत्र से सम्बद्ध विषयो पर विचार-विमर्श करना तथा उन पर अपना सुझाव देना है। धारा 62 (1) में यह कहा गया है कि यह आर्थिक, सामाजिक तथा उससे सम्बद्ध किसी भी विषय के सम्बन्ध में महासभा, संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य तथा सम्बन्धित विशिष्ट अभिकरणो को सिफारिशें कर सकती है। परन्तु इसकी सिफारिशों के पीछे कोई बाध्यकारी शक्ति नही है। उन्हें मानना या न मानना सदस्य राज्यों की इच्छा पर निर्भर है। उसके प्रभाव की महत्ता उसी हद तक

[92] The United Nations picked up where the League left off and has broadened its activities to a significant extent.

है जिस हद तक इसे स्वीकार किया जाता है। ऐसा देखा गया है कि परिषद् की सिफरिशें की जाती है। और उन पर अमल करने के लिए सदस्य-राष्ट्रों से अपील की जाती है। इसका तरीका समझाने-बुझाने का है न कि शक्ति-प्रयोग का।

परिषद ने विचार-विमर्श के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। द्वितीय महायुद्ध के शीघ्र ही बाद इसने विश्व के खाद्यान्नाभाव की समस्या पर गंभीर विचार करने तथा उसके सम्बन्ध में वैयक्तिक रूप से अथवा खाद्य और कृषि संगठन के सहयोग से आवश्यक कदम उठाने के निमित अपने सदस्य-राज्यों से अपील की। इसी तरह जुलाई 1967 में परिषद् के 42वें अधिवेशन में प्राकृतिक साधनों के विकास से सम्बन्धित निर्णय एकमत से लिए गये। पाँच वर्षो के लिए एक सर्वेक्षण योजना भी बनायी गयी। इसने अपने सदस्य-राज्यों से पूर्ण रोजगारी की नीति अपनाने को सिफारिश की। गृह-निर्माण एवं योजना के सम्बन्ध में कदम उठाने के लिए भी आग्रह किया गया। आवास-व्यवस्था की कमी से उत्पन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं पर विश्व जनमत का ध्यान आकृष्ट करने के लिए परिषद् ने महासचिव से आग्रह किया। उनसे यह भी अनुरोध किया गया कि वे राष्ट्रीय सरकारों को आवास-योजना पर और अधिक ध्यान देने के लिए उत्साहित करें। परिषद् के 43वें अधिवेशन में भी विश्व खाद्य स्थिति, आर्थिक योजना तथा तकनीकी सहायता तथा मानव-शक्ति के उपयोग से सम्बन्धित कई निर्णय लिये गये।

चार्टर के अनुच्छेद 62 खंड 3 के अन्तर्गत परिषद् को अपने अधिकार क्षेत्र में आनेवाले सभी विषयों के सम्बन्ध में आम सभा के प्रस्तुत करने के लिए प्रारूप अभिसमय तैयार करने को अधिकार है। यह प्रस्तावित समझौते का मूल तैयार करती है। यदि कोई देश उसे स्वीकार कर लेता है तो उसे सिर्फ उस पर हस्ताक्षर कर उसे पारित करना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार वह अपने अधिकार-क्षेत्र में आनेवाले विषयों पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुला सकती है। यह अनुच्छेद 62 के अन्तर्गत आनेवाले किसी भी विषय पर सम्मेलन बुला सकती है। अभी तक परिषद् के द्वारा कई सम्मेलन बुलाये जा चुके है जैसे, सूचना सम्बन्धी स्वतंत्रता पर 1948 को जेनेवा सम्मेलन, विश्व परिगणना सम्बन्धी 1947 का वाशिंगटन सम्मेलन आदि। आदिश आबाबा में अफ्रीका के लिए आर्थिक आयोग द्वारा आयोजित उद्योग एवं वित्त पर एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में औद्योगिक योजनाओं को लागू करने के तरीके पर जोर डाला गया तथा अफ्रीका में लागत स्थितियों के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करने को कहा गया। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि परिषद् केवल अंतर्सरकारी सम्मेलन ही बुलाती है; वैसे विषय जो राज्यों के घरेलू क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते है, उनके सम्बन्ध में भी तक कोई सम्मेलन नही बुलाया गया है।

2.3.8.3. आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता कार्य:

आर्थिक और सामाजिक परिषद् का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य संसार के पिछड़े हुए देशों को आर्थिक और प्राविधिक सहायता देना है। विश्व की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या अल्प विकसित देशों मे निवास करती है, जिनका जीवन-स्तर अत्यन्त निम्नस्तर का है।

आर्थिक दृष्टि से उन लोगों का विकास करके ही उनका सामाजिक रूप से ऊँचा उठाया जा सकता है। अत: संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत आर्थिक और प्राविधिक सहायता देने का कार्य आर्थिक और सामाजिक परिषद् को सौंपा गया है। अल्पविकसित देशों के उत्थान के लिए परिषद् का यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सहायता टेक्नीकल स्कील (Technical Skill) एवं आवश्यक उपकरणों यंत्रों, मशीनों आदि को उपलब्ध कराकर दी जाती है। विभिन्न सरकारों को परामर्श देने तथा स्थानीय कर्मचारियों को आर्थिक क्षेत्रों में प्रशिक्षित करने के लिए परिषद् द्वारा प्राविधिक विशेषज्ञ भेजे जाते है। अल्पविकसित देशों के नागरिकों को विदेशों में अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियों दी जाती है। प्राविधिक-क्षेत्रों में विचारों तथा अनुभव के विनिमय के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों तथा विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है तथा विकास-योजनाओं को सफल बनाने के लिए उपकरणों और सामग्री की सहायता दी जाती है। इस कार्य के लिए एक प्राविधिक समिति को प्रस्तुत करता है। यह समिति प्राविधिक सहायता के भावी कार्यक्रम पर विचार करती है। इस समिति का उद्घाटन करते हुए अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमेन ने कहा था: विश्व की आधी से अधिक आबादी दरिद्रता का दु:ख भाग रही है, उसको पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। वह बीमारियों का शिकार होती है। उसका आर्थिक संगठन आदिम ढंग का है। उसकी दरिद्रता उसकी उन्नति में बाधक है और समृद्ध देशों के लिए बड़ा संकट है। इतिहास में पहली बार मनुष्य जाति को जनता के दु:ख को दूर करने का ज्ञान प्राप्त हुआ है। अत: हमें वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति के लाभों द्वारा कम विकसित प्रदेशों को उन्नत करने की नयी साहसपूर्ण योजनाओं की कार्यान्वित की कार्यान्वित करना चाहिए।'' आर्थिक और सामाजिक परिषद् उक्त लक्ष्यों को पूरा करती है। इस दिशा में उसके द्वारा किये गए कार्य काफी सराहनीय है।

2.3.8.4. मानव अधिकारों का विकास:-

प्रत्येक देश के लोगों को जाति, धर्म, नस्ल या रंग के आधार पर बिना भेद-भाव किए मानव अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताएँ प्राप्त हों, इसके लिए यत्नशील होना विश्व-संस्था का परम दायित्व है। यह महत्त्वपूर्ण कार्य आर्थिक-सामाजिक परिषद् को दिया गया है। परिषद् को यह अधिकार है कि वह इन अधिकारों की रक्षा के लिए योजनाएँ बनायें। अपने इस अधिकार के अन्तर्गत सन् 1946 में परिषद् ने मानव अधिकार आयोग की स्थापना की है। इस आयोग को निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में अपनी सिफारिश तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए कहा गया- अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार-पत्र नारियों की स्थिति, अल्पसंख्यकों की रक्षा, जाति, लिंग, नस्ल, धर्म एवं भाषा के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव को रोकना आदि। ध्यातव्य है कि परिषद् की सिफारिश पर ही महासभा ने जातिनाश (Genocide)के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित किया था। परिषद् द्वारा नारियों की स्थिति तथा सूचना एवं व्यापार की स्वतंत्रता से सम्बद्ध आयोग का निमार्ण किया गया है और उनसे सम्बद्ध विषयों के सम्बन्ध में समझौते और अभिसमयों के प्रारूप तैयार किये गए है। जुलाई 1967 में परिषद् के 42वें अधिवेशन में मानव अधिकार दक्षिण अफ्रीका की रंग-भेद नीति आदि के सम्बन्ध में भी निर्णय लिए गए। 23 मार्च 1967 को जेनेवा में समाप्त होने वाला पाँच सप्ताह का मानव अधिकार सम्मेलन के 23 वें सत्र में भी विभिन्न प्रश्न पर विचार किया गया। मुख्य रूप से मानव

अधिकार तथा मूल स्वतंत्रताओं से सम्बन्धित प्रश्न, दक्षिण अफ्रीकी गणतंत्र के राजनीतिक बन्दियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार, जातीय विभेद और रंग-भेद नीति, धार्मिक असहिष्णुता, युद्ध अपराधियों को दंड तथा मानव अधिकार के लिए एक हाई कमिशनर की नियुक्ति पर विचार किया गया।

परन्तु इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि मानव-कल्याण एवं अधिकार सम्बन्धी उद्देश्यों की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब राज्य सरकारें एवं लोक परिषद् के कार्यो में योगदान करे। परिषद् तो केवल समस्याओं का अध्ययन कर सकती है, उपलब्ध सामग्री के तथ्यों के आधार पर अनुशंसा कर सकती है, उन्हें लागू कराने की क्षमता उसमें नही है। अत: चार्टर पर हस्ताक्षर करने वाले राज्यों को यह दायित्व-बोध होना चाहिए कि नस्ल, वर्ण, या धर्म के आधार पर किसी वर्ग के लोगों को मानव अधिकारों से वंचित करना घोषणा-पत्र उल्लघंन है।

2.3.8.5. सहयोग एवं समन्वय:-

आर्थिक और सामाजिक परिषद् विश्व के आर्थिक और सामाजिक विकास के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रधन संस्था के रूप में कार्य करती है। परन्तु इस क्षेत्र में अनेक विशिष्ट अभिकरण तथा गैर सरकारी संगठन भी कार्य करते है। इन संगठनों के कार्य एक-दूसरे से सम्बन्धित है। अत: उनके कार्यो की पुनावृत्ति तथा अनावश्यक आर्थिक व्यय को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि उनके कार्यो के बीच सामंजस्य कायम रखा जाए। यह कार्य परिषद् के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। धारा 6 यह स्पष्ट उल्लेख करती है कि आर्थिक और सामाजिक परिषद् विशिष्ट अभिकरणों के कार्य कलापों में विचार-विमर्श और सिफारिशें द्वारा समन्वय स्थापित कर सकती है। इस प्रकार परिषद् आर्थिक और सामाजिक सहयोग का एक प्रधान साधन बन गयी है। इसके अतिरिक्त आर्थिक और सामाजिक परिषद् ही विभिन्न विशिष्ट अभिकरणो के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है। यह विशिष्ट अभिकरणों से नियमित प्रतिवेदन प्राप्त करने के लिए समुचित पग उठा सकती है। यह अपनी सिफारिशों और महासभा द्वारा उसके अधिकार क्षेत्र से सम्बद्ध विषयों पर की गयी सिफारिशों को लागू करने के लिए उठाये गए पगों के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्राप्त करने के हेतु संयुक्त राष्ट्रसंध और विशिष्ट अभिकरणों के साथ व्यवस्थाएँ कर सकती है। इन प्रतिवेदनों पर अपने विचारों सह यह महासभा को अवगत करा सकती है।

अभी तक निम्नलिखित विशिष्ट अभिकरणों के साथ परिषद् का समझौता हुआ है। (क) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ख) संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन, (ग) संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान एवं सांस्कृति संगठन (घ) विश्व स्वास्थ्य संगठन (ङ) अन्तर्राष्ट्रीय पुन:निमार्ण विकास बैंक (च) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (छ) अन्तर्राष्ट्रीय दूर संचार व्यवस्था ये विशिष्ट अभिकरण आर्थिक-सामाजिक परिषद् की देख-रेख में कार्य करते है। परिषद् उनके कार्यो पर अधीक्षण रखती है। फलत: जैसा कि निकोलास ने लिखा है: ''परिषद् को अधिकाशं समय अधीक्षण के कार्यो में व्यतीत हो जाता है।''

संक्षेप में चार्टर के अन्तर्गत आर्थिक-सामाजिक परिषद् को काफी व्यापक कार्य-क्षेत्र प्रदान किया गया है। यह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों का अध्ययन करती है, इन पर अपनी रपट प्रस्तुत करती है तथा अपनी

सिफारिशें पेश करती है। मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं को प्रोत्साहित करना तथा इसके लिए अध्ययन एवं अनुशंसा करना इसका उद्देश्य है। वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन करती है तथा अपने अधिकार-क्षेत्र में आने वाले मामलों के विषय में महासभा में पेश करने के लिए समझौतो का मसविदा तैयार करती है। वह विशिष्ट अभिकरणों के कार्यो में समन्वय स्थापित करती है। परन्तु इसका कार्य केवल सुझाव देने तथा सिफारिशें करने से सीमित है। फेनविक ने ठीक ही लिखा है आर्थिक और सामाजिक परिषद् कोई नीति-निर्धारक संस्था नही है बल्कि एक विशिष्ट सीमित के समान है जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक सहयोग के क्षेत्र में व्यावहारिक काम करना है।''

2.3.9. मूल्यांकन (Evaluation)

आर्थिक-सामाजिक परिषद् के उद्देश्य काफी विस्तृत तथा कार्य-क्षेत्र विश्वव्यापी है। मानव के जीवन-स्तर का उन्नयन, उसकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रगति के लिए कार्यो का समायोजन एवं दिशा-निर्देश-निश्चित ही बड़े ही विस्तृत कार्य हैं। इनको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने कार्यो को बड़े जोर-शोर से शुरू किया है। किन्तु यह कहना कि यह समस्याओं के निदान में सक्षम है, पूर्णतया उचित नही मालूम पड़ता। उसकी कार्यो की शुरूआत एवं उनके संचालन आदि बातों को ध्यान में रखते हुए उसकी सीमा का पता चलता है।

वास्तव में परिषद् के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं-कुछ संगठनात्मक तथा कुछ परिस्थितिजनित । साधारणतया परिषद् की निम्नलिखित आलोचनाएँ की जाती है:

i आर्थिक-सामाजिक परिषद् के विरोध मे सबसे पहले यह कहा जाता है कि यह एक अनावश्यक संस्था है। कारण यह है कि यह महासभा के अधीनस्थ के रूप में कार्य करती है। वास्तव में यह महासभा के कार्यो में सहायता देने के बजाय उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यो की ही पुनरावृत्ति करती है। महासभा की द्वितीय और तृतीय समिति को वे सारे कार्य और दायित्व सौंपे गए हैं जो आर्थिक-सामाजिक परिषद् को दिए गए हैं। अत: जिन कार्यो को परिषद् सम्पादित करती है उन्हें आमसभा की द्वितीय तथा तृतीय समिति भी सम्पादित करती है। परिणामस्वरूप एक ही कार्य की पुनरावृत्ति हो जाती है जो अनावश्यक तथा अनुपयोगी है। निकोलास ने लिखा है, व्यापक नीति-निर्धारक संस्था बनने के बजाय महासभा की द्वितीय तथा तृतीय समितियों ने परिषद् के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में काम किया है।''[93] इसके अलावा संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के पहले से चले आने वाले विशिष्ट अभिकरणों के अन्तर्गत सारे कार्य समाविष्ट नही हो पाते थे अत: एक होल्ड ऑल की भाँति शेष बचे हुए आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों के कार्यो पर निगरानी रखने का दायित्व आर्थिक सामाजिक परिषद् पर रखा गया। इस तरह जैसा कि लवडे (Loveday) ने कहा है कि यह समन्वयकर्ता तथा समन्वयकृत तथा समन्वयकृत दोनों ही रही है। इससे महासभा के अंदर स्वतंत्र रूप से कार्य करने की छूट नहीं दी गयी और न ही महासभा के निर्देशन पर ही कार्य करने

[93] Nicholas: op.cit., 131-132

का अवसर दिया गया। फलस्वरूप महासभा के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई उपस्थित हुई। आर्थिक-सामाजिक परिषद् के विषय में कहा भी जाता है कि यह गाडी का पाँचवाँ पाहिया (Fifth whell in the wagon) है।

ii आर्थिक-सामाजिक परिषद् के विरुद्ध दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि इसके उत्तरदायित्व काफी विस्तृत तथा महान् है किन्तु उनको सम्पादित करने की आवश्यक शक्ति का इसमे पूर्ण अभाव है। परिषद् केवल समस्याओं का अध्ययन कर सकती है, उपलब्ध सामग्री के तथ्यों के आधार पर अनुशंसा कर सकती है। उन्हें लागू कराने की क्षमता उसमें नहीं है। इसके निर्णय बाध्यकारी नही होते। वास्तव में इसकी स्थिति एक परामर्शदत्री संस्था मात्र की है। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इसे राष्ट्रीय सरकारों, महासभा, सुरक्षा परिषद् तथा विशिष्ट अभिकरणों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके अलावा आर्थिक सामाजिक परिषद् में विचार-विमर्श करने की प्रणाली संतोषजनक नही हैं। इसके विभिन्न आयोग सरकारी समस्याओं से ही इतने उलझे रहते है कि वे इन समूहों पर कुछ भी ध्यान नहीं दे पाते। कुछ गैर सरकारी संगठनो की सक्रिय देन भी कुछ नही होती वे सिर्फ परामर्शदात्री बने रहने में ही अभिरूचि रखते है। आयोगों के कार्यो का अनुभव भी उत्साहवर्द्धक नहीं है। उनके कर्मचारी राष्ट्रीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य होते हैं। उनसे कभी तो अर्थशास्त्री की उम्मीद की जाती है, कभी शिशु कल्याण विशेषज्ञ की कभी संरक्षण व्यवस्था के जानकार की तो कभी मानव अधिकार की सुरक्षा-व्यवस्था की ज्ञाता की। परिणामस्वरूप जिस उद्देश्य से आयोगों को रचना की जाती है। वह पूरा नहीं हो पाता।

परिषद् में अभिकरणों तथा आयोगों के प्रतिवेदनों पर भी काफी लम्बा वाद-विवाद होता है। इससे विचारों पर तो प्रकाश पड़ता है। परन्तु कभी-कभी व्यर्थ तथा स्वप्नलोकीय बातें से सम्बद्ध हो जाने से गंभीर से गंभीर विचार-विमर्श भी बेकार हो जाते हैं। मानव अधिकार के सम्बन्ध में अभी तक हुए विचारों विमर्शो के अध्ययन से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाएगी। इस मामलें में न तो संयुक्त राज्य अमरीका और न सोवियत रूस ही किसी बात से अनभिज्ञ है। लेकिन सभी सरकारों ने इसकी अवहेलना की है। प्रारंभ से ही इस पर लम्बे-लम्बे तथा आकर्षक भाषण होते रहे हैं। किन्तु परिणाम कुछ भी नही निकल पाया है।[94]

सांराश यह कि कई कारणों के चलते आर्थिक सामाजिक परिषद् की स्थिति केवल विचार-विमर्श करने वाली संस्था रही है। परिषद् की सीमित क्षमता की कई लेखकों द्वारा आलोचना हुई है। संयुक्त राज्य अमरीका के एक परराष्ट्र सचिव ने कहा था एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन आर्थिक सामाजिक समस्याओं के हल में सहायक हो सकता है परन्तु संप्रभु राज्यों के अधिकारों को कोई आदेश नहीं दे सकता। वह सदस्य राज्यों को कोई आदेश नही दे सकता। राष्ट्रों के आन्तरिक मामले उसकी पहुँच से बाहर है। उसके साधन और कार्य-पद्धति केवल अध्ययन विचार-विमर्श रिपोर्ट एवं सुझाव एक सीमित है। शर्मा के मतानुसार ''आर्थिक और

[94] Nicholas: op. cit. 131-132

सामाजिक परिषद् को मुश्किल से ही कार्यकारी अंग कहा जा सकता है क्योंकि इसका कार्य सिफारिश करने तथा सुझाव देने तक ही सीमित है।''[95] चेज ने भी इस तरह के विचारों का समर्थन किया है। उसका कथन है ''आर्थिक समाजिक परिषद् तथा आम सभा के पास आर्थिक एवं सामाजिक मामलो में कोई बाध्यकारी शक्ति नहीं है। अतएव वे सदस्य राष्ट्रों के लिए कोई दायित्व निश्चित करने की स्थिति में नही है।''

iii आर्थिक और सामाजिक परिषद् में राष्ट्रीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य होते है। वे आवश्यक नहीं कि विशेषज्ञ ही हो। उनके लिए कोई योग्यता निर्धारित नहीं की गयी है। परिणामस्वरूप बहुत से प्रतिनिधि परिषद् के जटिल तथा प्राविधिक कार्यो को समझने में असमर्थ होते हैं। इसके अलावा प्रतिनिधि विभिन्न राजनीतिक विचारों के होते हैं। वे अपनी-अपनी सरकारों से निर्देश प्राप्त करते है और उसी के अनुसार कार्य करते हैं। उनके कुछ विभेद इतने मौलिक होते हैं कि वे उसे सुलझाने के लिए सहमत नहीं होते। परिणामस्वरूप परिषद् के निर्णय भी राजनीतिक विचारों से प्रभावित रहते है। ई.पी.चेज ने लिखा है। परिषद् में विचार-विनियम उतने ही राजनीतिक वातावरण में सम्पादित होता है जितना राष्ट्रीय विधानमंडल में।''[96]

2.3.9. मूल्यांकन

उपर्युक्त आलोचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष नही निकालना चाहिए कि आर्थिक और सामाजिक परिषद् बिल्कुल निरर्थक है। वस्तुत: आर्थिक और सामाजिक परिषद् के कार्य अनेक त्रुटियों के बावजूद काफी सराहनीय रहे है। अपनी स्थापना के बाद से ही इसने मानव जाति के उत्थान तथा उसके जीवन स्तर के उन्नयन की दिशा में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसके चलते ही आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्रसंघ को काफी व्यापक सफलता प्राप्त हुई है। मानव के जीवन-स्तर का उन्नयन, उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक प्रगति के कार्यो का समायोजन एवं दिशा-निर्देश के कार्यो में परिषद् की विशेष समितियाँ एवं क्षेत्रीय तथा विशेष कार्यो के आयोग ने महत्वपूर्ण एवं अद्‌भुत सफलता हासिल की है। प्रतिवर्ष परिषद् के अनेक कार्यक्रम शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, भवन-निर्माण और अन्य अनेक विषयों से सम्बन्धित होता है जिनमें सब सदस्यों के सामान्य हित निहित है। मानव के व्यक्तित्व से सामाजिक जीवन, रूचि आदि का शायद ही कोई कोना या वर्ग ऐसा हो जिनसे सम्बन्धित कोई-न-कोई संस्था काम नहीं करती हो। यदि इनके द्वारा प्रयास नहीं किये जाते तो मानवजाति की हालत और भी असंतोषप्रद होती अत: विश्व संस्था के व्यापक संदर्भ में आर्थिक-सामाजिक परिषद् की उपदेयता ने इन्कार नहीं किया जा सकता। इतिहासकारों को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आर्थिक-सामाजिक परिषद् का कार्य विश्व-शांति के लिए सर्वाधिक स्थायी देन है जबकि इसका प्रचार सबसे कम होता है।

2.3.10. पाठ का सार/सारांश

[95] " The Economic and social council can hardly be described as an executive organ as its functions are primarily advisory and recommendatory

[96] Its deliberations are therefore conducted in as much of political atmosphere as those of national legislatures.

iv परिषद् की एक अन्य कठिनाई यह है कि इसका अधिवेशन केवल समय-समय पर ही होता है। अत: दिन-प्रतिदिन के समन्वयात्म कार्य में यह सम्मिलित नहीं हो पाती। समन्वय की समस्या और भी जटिल इसलिए हो जाती है कि विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तथा विभिन्न क्षेत्रों में कार्यो के विस्तार के कारण मुख्यालय तथा क्षेत्रीय निकायों की संख्या में अत्याधिक वृद्धि हुई है। उनके कार्यो के बीच समन्वयन स्थापित करना एक उलझनपूर्ण कार्य है।[97] उनके बीच समन्वय स्थापित करने का परिषद् का कार्य अर्थ तथा समय की दृष्टि से काफी कीमती साबित हुआ है। इतना ही नही समन्वय का कार्य बहुधा निराशाजनक भी साबित हुआ है यह सम्भवत: इसलिए भी होता है कि बहुत-से अभिकरण तो संयुक्त राष्ट्रसंघ से भी अधिक पुराने हैं। और उनको कुछ शेषाधिकार भी प्राप्त हैं। उनकी सदस्यता का आधार भी समान नही है क्योंकि उनका गठन अलग-अलग बहुपक्षीय समझौते के आधार पर हुआ है।

v यह भी कहा जाता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ अन्य उपागों की भाँति आर्थिक-सामाजिक परिषद् भी अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में वर्तमान राजनीतिक तनावो से आक्रांत रही है। उसकी कार्य-प्रणाली पर शीतयुद्ध तथा राजनीतिक तनाव की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर हुई है। सोवियत संघ ने इस क्षेत्र में नेतृत्व करने में अपनी अभिरूचि नही दिखलायी। संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी आर्थिक एवं सामान्य राजनीतिक मार्यादा के कारण महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। परिणामस्वरूप आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से सम्बद्ध अभिकरण अमरीकी आर्थिक समर्थन पर आश्रित हो गये है। इससे संगठन पर अमरीकी नियंत्रण भी कड़ा होता जाता है। अनेक अवसरों पर इसने अपने वित्तीय निषेधाधिकार का प्रयोग कर परिषद् के कार्यो को अवरुद्ध करने का प्रयास किया है। वह प्रजातिबद्ध कन्वेंशन से अलग रहा है, श्रम संगठन द्वारा पारित नियमों को अस्वीकार किया है तथा सम्पूर्ण विश्व के लिए एक ही स्तर की आर्थिक और सामाजिक नीतियों के निर्धारण में असहयोग किया है। तात्पर्य यह कि अंतर्राष्ट्रीय जीवन में वर्तमान शक्ति-राजनीति के परिषद् के कार्यो को बहुत हद तक प्रभावित किया है। लियोनार्ड ने ठीक ही लिखा है आर्थिक सामाजिक परिषद् के कार्य उन राजनीतिक तनावों को प्रतिबिम्बित करते है जो संपूर्ण संयुक्त राष्ट्रसंघ को आच्छादित किये हुए है।''

2.3.11. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1.) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की प्रस्तावना संक्षेप में वर्णन किजिए ?

प्रश्नः- 2.) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के संगठन का वर्णन कीजिए?

प्रश्नः- 3.) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के प्रमुख आयोग का वर्णन कीजिए?

प्रश्नः- 4.) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद का मतदान-प्रणाली संक्षेप में वर्णन किजिए ?

प्रश्नः- 5.) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद समितियाँ का उल्लेख किजिए?

97

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के कार्यो का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 2) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद पदाधिकारी एवं मतदान-प्रणाली व्यवस्था का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 3) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता कार्यो का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 4) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के विचार-विमर्श और सिफारिश उल्लेख किजिए?

प्रश्नः-5) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद मूल्यांकन किजिए?

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद में सदस्य देशों की संख्या है

1) 27 2) 54 3) 48 4) 57

प्रश्नः- 2) संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की किस धारा में आर्थिक और सामाजिक परिषद् के संगठन का उल्लेख है?

1) धारा 61 2) धारा 62 3) धारा 63 4) धारा 64

प्रश्नः- 3) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के सदस्यों के चुनाव कितन समय के लिए होता है?

1) 1 वर्ष 2) 2 वर्ष 3) 3 वर्ष 4) 4 वर्ष

प्रश्नः- 4) किस सदस्य को कार्रवाई में लेने का अधिकार है परन्तु मतदान में भाग लेने का अधिकार नहीं होता ?

1) आमंत्रित सदस्य 2) गैर सदस्य-राज्य 3) गैर-सरकारी सदस्य 4) वैकल्पिक प्रतिनिधि

प्रश्नः- 5) आर्थिक एवं सामाजिक परिषद का मुख्यालय में ही होता है।

1) जेनेवा 2) न्यूयार्क 3) पेरिस 4) वाशिगठन डी० सी०

2.3.12. संदर्भ ग्रन्थ सूची

- द जनरल असैम्बली इन द सैन्टर ऑफ यूनाइटिड नेशन्स
- एन.डी. पलमर एण्ड एम.सी. पटकिंस
- हंस कैल्सन द लॉ ऑफ द यूनाइटिड नेशन्स
- इन शार्ट द चीफ एडिमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर ऑफ द यू.एन. होल्ड ऑफ यूनिक पोणिसन
- द सैक्टरी जनरल ऑफ द यू.एन हैज ए फॉनसिल्यूशनल लाइसंस ऑफ बी ऐज ए बीग मैन ऐज ही कैन क्लाउड
- स्टैपन एम. स्केवल द सैक्टरी जनरल ऑफ द यूनाइटिड नेशनस

इकाई–4: अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

इकाई की रूपरेखा:

2.4.1. उद्देश्य कथन
2.4.2. प्रस्तावना
2.4.3. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना
2.4.4. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का संगठन
2.4.5. न्यायाधीशों की योग्यता एवं कार्य विधि
- **2.4.5.1 . पदाधिकारी**
- **2.4.5.2. मुख्यालय**
- **2.4.5.3. न्यायालय की कार्यप्रणाली**

2.4.6. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में विवाद
2.4.7. न्यायालय के निर्णयों के कानूनी आधार और उनका प्रभाव
2.4.8. न्यायालय के निर्णय लागू करने के उपाय
2.4.9. न्यायालय का क्षेत्राधिकार
- **2.4.9.1. ऐच्छिक क्षेत्राधिकार**
- **2.4.9.2. वैकल्पिक आवश्यक क्षेत्राधिकार**
- **2.4.9.3. पराकर्शक क्षेत्राधिकार**

2.4.10. मूल्यांकन
2.4.11. पाठ का सार/सारांश
2.4.12. अभ्यास/बोध प्रश्न
- **2.4.12.1. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना किस प्रकार की जाती है।**
- **2.4.12.2. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय पर संक्षिप्त नोट लिखिए।**
- **2.4.12.3. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के संगठन के विषय में बताइए।**

2.4.13.सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.4.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय एवं इसकी स्थापना के बारे में जानकारी प्राप्त करोगें।
- अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालक के संगठन के बारे में जानकारी प्रापत होगी।
- अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में न्यायधीशों की योग्यता एवं कार्यविधि की जानकारी प्राप्त होगी।
- न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विषय में जानकारी हासिल होगी।

2.4.2. प्रस्तावना

ई.पी.चेज ने अपनी पुस्तक दी यूनाइटेड नेशन्स इन एकाशन' में लिखा है: प्रत्येक पूर्ण सरकार में एक न्याय-विभाग होता है जिसमें एक या एक से अधिक न्यायालय होते हैं। यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ को किसी अर्थ में विश्व-सरकार होना है तो उसमें सदस्य-राज्यों के ऊपर एक न्यायाधिकरण की व्यवस्था होनी ही चाहिए जो कानून के सिंद्धातों के

अनुसार उनके विवादों का निर्णय कर सके।''इस प्रकार चेज के उपर्युक्त कथन में संयुक्त राष्ट्रसंघ के लिए एक न्यायालय की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विश्व-न्यायालय की स्थापना कोई नवीन घटना नहीं है। इसका इतिहास उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक-1899 ई. में शुरू होता है। इस वर्ष हेग में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय पंच फैसला न्यायालय की स्थापना की गयी। अन्तर्राज्यीय विवादों को पंच फैसले द्वारा सुलझाने के हेतु एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था स्थापित करने का यह कदाचित पहला प्रयास था। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत राष्ट्रसंघ की स्थापना की गयी। इसके संस्थापको के समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से सुझाने की समस्या थी। इसके लिए संघ के संविधान में स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था की गयी। इसके अनुसार हेग में एक न्यायालय का गठन किया गया।

सितम्बर 1921 में हेग में इस न्यायालय को विधिवत् स्थापित किया गया। जनवरी, 1922 में न्यायालय की पहली बैठक हुई। तब से सन् 1940 तक इसकी बराबर बैठकें होती रही। इस अवधि में न्यायालय ने 65 मुकदमों की जाँच की 32 मुकदमों में निर्णय दिया और 200 आदेश जारी किये तथा 27 परामर्श-सम्बन्धी निर्णय की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। न्यायालय के सदस्यों ने अंतर्राष्ट्रीय कानून, तर्क, परम्परा तथा औचित्य के आधार पर निर्णय दिये जिससे इसकी प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गये। शुमाँ ने ठीक ही लिखा है स्थायी न्यायालय ने राज्यों के आपसी विवादों को सुलझाने का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सफल प्रयास किया है।'' पॉटर ने शब्दों में स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय अपने क्षेत्र में सर्वाधिक सफल संस्था थी।'' सारांश यह कि राष्ट्रसंघ के सभी अंगो में न्यायालय अत्यन्त प्रभावशाली तथा कुशल अंग था। इसके सफल कार्य-करण से यह स्पष्ट था कि भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में न्यायालय की व्यवस्था अवश्य होगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम वर्षो मे जब नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की बात लगभग स्वीकृत हो रही थी और इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाए जाने लगे थे, जो उनके समक्ष यह समस्या प्रस्तुत हुई। अंतर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की बात हो रही थी, उसके संदर्भ में यह भावना भी जोर पकड़ रही थी कि भावी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय पूरे अर्थ में विश्व न्यायालय हो।

2.4.3. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना (Establishment of International Court of Justice)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के निर्माण हेतु 4 सितम्बर 1944 को आयोजित डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन में एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की आवश्यकता के प्रश्न पर विचार किया गया। यह तय हुआ कि भावी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में एक न्याय-विभाग का विधान अवश्य होगा। किन्तु यह तय नही हो सका कि पुराने न्यायालय को ही बनाये रखा जाय अथवा उसकी जगह एक नये न्यायालय को निर्माण हो। केवल इस बात पर सहमति हो पायी कि न्यायालय नया हो या पुराना वह संयुक्त राष्ट्रसंघ का अभिन्न अंग होगा, तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य स्वत: न्यायालय के सदस्य होंगे। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का विधान तैयार करने के लिए न्याय विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया गया। इसमें 45 देशों

के न्याय विशेषज्ञों को सदस्य नियुक्त किया गया। समिति को डम्बार्टन ओक्स प्रस्तावों के आधार पर एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की रूप-रेखा निर्धारित करती थी।

समिति के समक्ष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत स्थापित पुराने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का ही स्वीकृत करके नये न्यायालय के रूप में परिणत अथवा स्वीकृत कर लिया जाये अथवा सर्वथा नवीन न्यायालय का गठन किया जाय? कई प्रतिनिधियों का विचार था कि पुराना न्यायालय अपने कार्य में काफी सफल रहा है अतः नये संगठन में भी उसको कायम रखा जाय। उन्होंने पुराने न्यायालय के उत्कृष्ट रेकर्ड अनेक संधियों में उसके उल्लेख तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विकास में उसके योगदान को देखते हुए न्यायालय की अविच्छिन्नता पर जोर दिया। एक उपसमिति ने अपने प्रतिवेदन में स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा: संयुक्त राष्ट्र संघ स्थायी न्यायालय के न केवल संविधान वरन् कार्य-क्षेत्र संगठन तथा प्रक्रिया-सम्बन्धी बातों में कृतज्ञ है।'' फिर भी पुराने न्यायालय को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करने में अनेक बाधाएँ थी। सर्वप्रथम बाधा यह थी कि पुराने न्यायालय के 16 सदस्य जिनमें कुछ तो द्वितीय विश्वयुद्ध के विजेताओं के शत्रु राष्ट्र थे तथा कुछ तटस्थ, सम्मेलन में उपस्थित नहीं होने पर भी नई न्याय संस्था के सदस्य हो जाते। न्यायालय के सदस्य होने के नाते वे सहज ही विश्व संस्था के भी सदस्य बन जाते जिसके लिए विजेता राष्ट्र किसी भी मूल्य पर तैया नही होते। द्वितीयतः न्यायाधीशों का कई वर्षो से चुनाव नही होने के कारण पुराना न्यायालय समाप्त हो चुका था। उसको फिर से जीवित करना अनुपयुक्त था। तृतीयतः सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका उस न्यायालय के सदस्य नहीं थे। उसके प्रति उनका रूख अच्छा नहीं था। पुराने न्यायालय को कामय रखने का अर्थ था सोवियत रूस और अमेरिका के विरोध को आमंत्रित करना। चतुर्थतः पुराने न्यायालय की स्थापना करने का विचार उत्तम समझा गया। परन्तु पुरानी व्यवस्था को पूर्णरूपेण समाप्त करके सर्वथा नये न्यायालय की स्थापना की बात उचित नहीं समझी गयी। अतः समिति ने एक मध्यम मार्ग को खोज निकाला: (1) पुराने न्यायालय की आधारशिला पर नवीन अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की जाय (2) नीवनी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में गठिन हो (3) संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य सम्बद्ध उपबंधो भागीदार हो, (4) जिन राज्यों पे पुराने न्यायालय के कार्य-क्षेत्र को अनिर्वायिता स्वीकार कर लिया था, उनके ऊपर स्वीकृत अवधि तक नये न्यायालय का कार्य-क्षेत्र भी रहेगा।

2.4.4. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का संगठन (Composition of International Court of Justice)

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं जिनका महासभा और सुरक्षा परिषद् के लिए प्रत्याशी को परिषद् तथा महासभा, दोनों में पृथक-पृथक बहुमत का समर्थन मिलना आवश्यक है। जिस व्यक्ति को परिषद् तथा महासभा दोनों में आधे से अधिक बहुमत प्राप्त हो जाता है वह न्यायाधीश घोषित हो जाता है। यदि एक बार मतदान से सब स्थानों के लिए आवश्यक समवर्ती बहुमत प्राप्त न हो सके तो पुनः मतदान होगा। इस प्रकार कुल मिलाकर तीन बार मतदान होगा। यदि फिर भी कोई स्थान रिक्त रह जाय तो एक संयुक्त सम्मेलन द्वारा विचार होगा जिसमें महासभा और परिषद् के तीन-तीन

प्रतिनिधि होंगे। जिनके पक्ष में सम्मेलन के आधे से अधिक सदस्य हों, उनके नामों को परिषद् तथा सभा के स्वीकारार्थ भेजा जायेगा। यदि सम्मेलन कोई निर्णय नही कर पाये तो न्यायालय के निर्वाचित न्यायाधीश रिक्त स्थानों को भरने के लिए सुरक्षा परिषद् और महासभा के मत प्राप्त व्यक्तियों में से चुनाव करेंगे।

निर्वाचन के लिए प्रत्याशी मनोनयन का तरीका किंचित जटिल है। निर्वाचन के पूर्व स्थायी निर्वाचन (Permanenet Court of Arbitration) के राष्ट्रीय सदस्य-समूहों द्वारा चार-चार नामों की सूची पेश की जाती है। जिन राज्यों का न्यायालय में प्रतिनिधित्व नहीं है वे इस कार्य के लिए विशेष रूप से अपने चार प्रतिनिधियों के राष्ट्रीय सदस्य-समूह नियुक्त कर सकते हैं। उन नामें में से महासचिव वर्णमाला क्रम में एक सूची तैयार कर उसे महासभा तथा सुरक्षा परिषद् में भेजता है। निर्वाचन तिथि को महासभा तथा परिषद् अलग-अलग मतदान करती है। जिन प्रत्याशियों को स्पष्ट बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है। वे निर्वाचन घोषित किये जाते है। परिषद् में इस निर्वाचन के संदर्भ में स्थायी तथा अस्थायी सदस्यों का विभेद नहीं रहता अर्थात् स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार नहीं प्राप्त होता। यह भी व्यवस्था है कि एक ही राष्ट्र के दो राष्टिक् न्यायाधीश नहीं हो। यदि एक ही देश के दो राष्ट्रिको को बहुमत का बराबर समर्थन मिल जाता है तो उनमें जो व्यक्ति आयु में अधिक से अधिक होगा, उसे निर्वाचित घोषित किया जाता है। मतदान गुप्त मतदान-प्रणाली से होता है।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान में 15 न्यायाधीशों के अलावा तदर्थ न्यायाधीशों की व्यवस्था है। किसी विशेष विवाद के लिए ऐसे न्यायाधीश नियुक्त होते हैं यदि न्यायालय में विवादग्रस्त राज्यों को कोई नागरिक न्यायाधीश नहीं है अथवा केवल एक पक्ष का नागरिक न्यायाधीश है और दूसरे का नही, तो दोनों दशाओं में दोनों अथवा दूसरे पक्ष को अपना प्रतिनिधि न्यायाधीश तदर्थ नियुक्त रोकने का अधिकार है। परन्तु मामले की सुनवाई समाप्त होते ही ऐसे न्यायाधीशों का कार्य-काल समाप्त हो जाता है। इन न्यायाधीशों के अधिकार अन्य न्यायाधीशों के समान हैं। कुछ आलोचकों का कहना है कि अस्थायी अथवा तदर्थ न्यायाधीशों की व्यवस्था निष्पक्ष न्याय सम्पादन की व्यवस्था के लिए अनुपयुक्त है। उनका विचार है कि अच्छा यह होता कि जिस देश के मुकदमें की सुनवाई न्यायालय में हो रही हो, उस देश का न्यायाधीश न्यायालय की कार्रवाई में भाग ही नही लेता। शायद यह व्यवस्था न्यायालयों में राज्यों के विश्वास को बढ़ाने के लिए की गयी है।[98]

2.4.5. न्यायाधीशों की योग्यता एवं कार्यावधि (Qualification of Judges and Their Tensure)

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन उनकी योग्यता के आधार पर किया जाता है। न्यायालय के विधान के अनुसार न्यायाधीशों का निर्वाचन बिना राष्ट्रयता का ख्याल किए ऐसे व्यक्तियों के बीच से होता है जिनका नैतिक चरित्र ऊँचा हो, जो अपने देश के सर्वोच्च न्यायिक पद पर नियुक्त होने की योग्यता रखते हो या जो

[98] It would have been more in conformity with strict judicial procedure to disqualify a judge of the nationality of a party appearing before the court but it was dicided to resort to this solution in the hope that it would induce greater confidence in the court and them encourage the submission of disputes ot it.

अन्तर्राष्ट्रीय विधि मान्यता-प्राप्त क्षमत के विधि परामर्शदाता हों। इस प्रकार उच्च चरित्र के ऐसे व्यक्ति ही न्यायालय के न्यायाधीश हो सकते है। (1) जो अपने देश में सर्वोच्च न्यायिक पदो ‌के योग्य हो, अथवा (2) अन्तर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र में विधिवेता के रूप में मान्यता प्राप्त हो। यद्यपि न्यायाधीशों का चुनाव करते समय राष्ट्रीयता का ख्याल नही किया जाता लेकिन न्यायालय में किसी एक राज्य का एक से अधिक नागरिक एक समय नही हो सकता और न्यायाधीशों का चुनाव करते समय यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि न्यायालय में प्रमुख सभ्यताओं एंव विधिक व्यवस्थाओं का प्रतिनिधित्व हो।

न्यायाधीशों का कार्यकाल 9 वर्ष का होता है और उनके पुनर्निर्वाचन पर कोई प्रतिबंध नहीं है। परन्तु सब न्यायाधीश एक ही समय नही चुने जाते। प्रति तीसरे वर्ष पाँच न्यायाधीश पदनिवृत होते हैं और उनका स्थान नये न्यायाधीश लेते हैं। इस प्रकार प्रत्येक तीन वर्ष पर एक-तिहाई न्यायाधीशों का नवीनीकरण हो जाता है।

न्यायालय को राजनीतिक प्रभाव से मुक्त रखने की चेष्टा की गयी है। ऐसी व्यवस्था की गयी है कि न्यायाधीश अपने कर्त्तव्यों का सम्पादन स्वतंत्रता तथा निष्पक्षतापूर्वक कर सके। न्यायाधीश का असान ग्रहण कर लेने के उपरांत उन्हें पूर्ण निष्पक्षता तथा बिना किसी दबाव के पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपना दायित्व निभाना होता है। इसके लिए उन्हें महासभा तथा परिषद् के नियंत्रण से मुक्त रखा गया है। इसके लिए अन्य कोई कार्य-भार स्वीकृत करना भी वर्जित कर दिया गया है। किन्तु कोई भारी अपराध प्रमाणित होने पर न्यायालय के अन्य सभी न्यायाधीश जो विचाराधीन मामले में न्यायाधीश बनने से पूर्व किसी विवादग्रस्त पक्ष की ओर से वकील, अधिवक्ता, अथवा प्रतिनिधि के रूप में भाग ले चुका है अथवा किसी पंच-आयोग अथवा न्यायालय का सदस्य रह चुका है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के मतदान में भी नहीं ले सकता। न्यायाधीश जब तक अपने आसन पर रहेगा, उसे कूटनीतिक सुविधाएँ तथ सुरक्षाएँ प्राप्त रहती है। न्यायालय की संविधि की धारा 42 (3) के अनुसार न्यायालय के समक्ष सम्बद्ध पक्षों के एजेंट, परामर्शदाता तथा अधिवक्ता को अपने कार्यो को स्वतत्रतापूर्वक निभाने के हेतु आवश्यक सुविधाएँ तथा उन्मुक्तियाँ प्रदान करने की व्यवस्था की गयी है। उपर्युक्त सांविधानिक उपबंधो को देखने से यह ज्ञात होता है कि न्यायालय के विधान में न्यायाधीशों के निष्पक्ष कार्य-करण के लिए कतिपय व्यवस्थाएँ की गयी है। गतवर्षो का अनुभव यह बतलाता है कि न्यायालय की स्वतंत्रता तथा निष्पक्षता की रक्षा करने में यह उपबंध काफी हद तक सहायक रहे है। अनेक दृष्टांत ऐसे है जहाँ न्यायाधीशों ने अपने देश द्वारा अपनाए गये रूख का विरोध किया है। कर्फू चैनल के मामले में ब्रिटिश न्यायाधीश मैकनायर ने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सर्वसम्मत निर्णय से सहमति प्रकट की जिसमें कहा गया था कि ब्रिटेन ने अपने युद्धपोंतो को अल्बानिया के क्षेत्रीय जल में भेजकर उसकी संप्रभुता का उल्लंघन किया है। उसी प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ ने नये सदस्यों के प्रवेश की शर्तो के सम्बद्ध में न्यायाधीशों ने अपने-अपने देशों की सरकारों के रूख का समर्थन नही किया। इससे स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश सामान्यत: निष्पक्ष तथा स्वतंत्र रूप से कार्य करते रहे है।

2.4.5.1. पदाधिकारी (Officials)

न्यायालय अपने अध्यक्ष वं उपाध्यक्ष का चुनाव करता है। इसका कार्य काल तीन वर्ष होता है और इसका पुर्निर्वाचन हो सकता है।

2.4.5.2. मुख्यालय (Headquarter)

स्थायी निर्वाचन न्यायालय तथा स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की भाँति वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का स्थायी निवास नीदरलैंड के हेम नगर में स्थित शांति-भवन में हैं जो अमरीकी दानवीर एंड्रू कार्ने की भेंट है।

2.4.5.3. न्यायालय की कार्यप्रणाली (Procedure of the International Court of Justice)

2.4.6. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में विवाद

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में विवाद प्रस्तुत करने की एक निर्धारित कार्य-विधि है। न्यायालय के समक्ष मामला लाने के लिए न्यायालय के रजिस्ट्रार को याचिका और उसके साथ न्यायालय के क्षेत्राधिकार-सम्बन्धी विशेष समझौते की प्रतिलिपि भेजनी होती है। यदि किसी संधि अथवा समझौते के अंतर्गत अथवा अनुच्छेद 36 (2) के अन्तर्गत न्यायालय का क्षेत्राधिकार सम्बन्धित पक्ष स्वीकार करने के लिए वचनबद्ध है तो याचिका भेजने के लिए विशेष समझौता करने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय में आवेदन पत्र प्राप्त होने पर रजिस्ट्रार सभी सम्बद्ध पक्षों को उसको विधिवत् सूचना देगा।

मुकदमों की सुनवाई के लिए न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर सम्बन्धित पक्ष अपने विवाद एवं तर्क लिखित रूप से प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद मौलिक कार्रवाई होती है। मुकद्में की सुनवाई शुरू होने पर सम्बद्ध-पक्षों का प्रतिनिधित्व उनके द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि करते है। दोनों पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय विधान के विशेषज्ञों अथवा ख्याति-प्राप्त अधिवक्ताओं के द्वारा अपना तर्क प्रस्तुत करते है तथा अपने-अपने गवाह, विशेषज्ञ आदि प्रस्तुत कररते है। मुकदमे से सम्बन्धित जानकारी, निरीक्षपण प्रलेख अथ्ज्ञवा अन्य किसी सहायता की आवश्यकता पड़ने पर न्यायालय संबंद्ध पक्ष से उसकी याचना कर सकता है। मुकद्में की सुनवाई तो खुले न्यायालय में की जाती है किन्तु फैसला करने की कारवाई गुप्त होती है। निर्णय न्यायाधीशों के बहुमत से होता है। मताविभाजन बराबर होने पर अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। राष्ट्रीय न्यायालयों की भाँति बहुमत के निर्णय से असहमत होने पर असहमत का निर्णय देने की व्यवस्था की गयी है। मुकदमें का फैसला खुली अदालत में सुनाया जाता है। फैसले में उन कारणों का उल्लेख रहता है जिन पर वह निर्णय आधारित है। उसमें उन न्यायाधीशों का नाम भी दर्ज रहता है जो उस निर्णय में भाग लेते है।

2.4.7. न्यायालय के निर्णयों के कानूनी आधार और उनका प्रभाव (Legal Basis of the Decisions of the International Court of Justice and their Consequences)

न्यायालय अपने समक्ष प्रेषित विवादों का निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय विधि, अन्तर्राष्ट्रीय समझौते, अन्तर्राष्ट्रीय रीति-रिवाज सभ्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत कानून के सामान्य सिंद्धात, न्यायिक निर्णय आदि के अनुसार करता है। न्यायालय के विधान की धारा 38 के अनुसार

न्यायालय का कार्य उसके समक्ष प्रस्तुत विवादों में अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार निर्णय देना है जिसके निम्नलिखित स्रोत होंगे:

(क) अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन जिनमें प्रतिपादित नियमों को विवादग्रस्त राज्यों की मान्यता प्राप्त हो,

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय प्रथागत नियम जिन्हें सामान्य व्यवहार में विधि के रूप में स्वीकार किया जाता हो,

(ग) सभ्य राज्यों द्वारा मान्य विधि के आम सिंद्धात

(घ) विधि के नियम निर्धारित करने के लिए सहायक उपयाल के रूप में न्यायिक निर्णय एवं विभिन्न राष्ट्रो के महान् विधिवेत्ताओं के लेख एवं ग्रंथ

(ड) जहाँ किसी विवाद से संबंद्ध पक्ष सहमत हो जाएँ तो न्यायालय उनके विवाद का निर्णय उपर्युक्त साधनों का सहारा लिए बिना सुनीति अथवा न्याय के सामान्य सिंद्धातों के अनुसार भी कर सकता है।

न्यायालय के निर्णय अंतिम होते हैं। उनके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती। उनकी वैधता का प्रश्न भी नही उठाया जा सकता। यदि निर्णय में निहित अर्थ के सम्बन्ध में कोई मतभेद हो तो न्यायालय से व्याख्या करने की अपील की जा सकती है। विशेष स्थितियाँ निम्नलिखित है: (क) यदि निर्णय के उपरांत किसी ऐसे तथ्य का पता चले जो मामले के लिए निर्णायक हो परन्तु जिसका निर्णय के समय कोई ज्ञान नही था (ख) तथ्य के पता चलने के छह माह के भीतर पुनरीक्षण का आवेदन किया जाना चाहिए (ग) फैसला सुनाने के दस वर्ष के भीतर ही अपील की जा सकती है (घ) न्यायालय स्वयं यह निर्णय करेगा कि निर्णय का पुनरीक्षण किया जाय अथवा नही।

2.4.8. न्यायालय के निर्णय लागू करने के उपाय (Enforcements of the Decisions of the Court)

न्यायालय के निर्णय सम्बद्ध पक्षों तथा प्रेषित विवाद के सम्बन्ध में ही लागू होते है। न्यायालय के विधान में निर्णय को मानने से इन्कार करने वाले राज्य के विरुद्ध न्यायालय के निर्णय को कार्यान्वित करने की कोई ठोस व्यवस्था नही है। लेकिन चार्टर के अनुच्छेद 94 में इस हेतु कुछ व्यवस्था की गयी है। इसके अनुसार यदि विवाद के पक्ष अपनी सहमति प्रदान कर चुके हो तो न्यायालय के फैसले मानने के लिए वे प्रतिबद्ध है। यदि कोई राज्य किसी फैसले पर अमल नही करे और पहले वह इसके लिए अपनी सहमति प्रदान कर चुका हो तो दूसरा पक्ष सुरक्षा परिषद् से इसकी शिकायत कर सकता है। वैसी स्थिति में सुरक्षा परिषद् पर उस फैसले को कार्यान्वित करने का भार होगा। सुरक्षा परिषद् का यह दायित्व है कि निर्णय को लागू करने क लिए आवश्यक कार्रवाई करे। सुरक्षा परिषद् के निर्णय सदस्य-राज्यों के लिए बाध्यकारी होते है। उनका पालन कराने के लिए परिषद् अध्याय छह और सात के अनुसार अपराधी राज्य के साथ राजनयिक सम्बन्ध विच्छेद करने उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लागने अथवा बल प्रयोग का आदेश राज्यों को दे सकती है।

इस प्रकार यह व्यवस्था अपने में काफी महत्त्वपूर्ण है। विश्व संगठन के इतिहास में पहली बार उनके न्यायिक अंग के निर्णय को लागू कराने की कुछ व्यवस्था की जा सकी। परन्तु केल्सन ने इस व्यवस्था के कतिपय दोषों की ओर संकेत किया है। पहला

दोष यह है कि यह व्यवस्था निर्णय को निष्पादित करने का कोई दायित्व सुरक्षा परिषद् पर नही लादती। परिषद् केवल तभी न्यायालय के निर्णय को निष्पादित करने का निर्णय ले सकती है जब वह सोचती है कि न्यायालय के निर्णय की अवहेलना से अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संकटग्रस्त हो। दूसरा, न्यायालय के निर्णय की अवहेलना से अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संकटग्रस्त हो। दूसरा, न्यायालय के निर्णय का पालन कराने के लिए परिषद् जो भी कारवाई करने का निर्णय लेगी उस पर पाँच महान् तथा स्थायी सदस्यों का एकमत होना आवश्यक है। परिषद् को कोई सदस्य अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करके उसको कोई निर्णय लेने से रोक सकता है। महाशक्तियों के निषेधाधिकार के संदर्भ में न्यायालय के निर्णय को निष्पादित करने की परिषद् की क्षमता पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। एक अन्य दुर्बलता यह है कि उपर्युक्त धारा तभी लागू होगी जब कि दोनों पक्ष पहले से न्यायालय के निर्णय को मानने को अपनी सहमति प्रदान कर चुके हों। डॉ. ओपेनहाइम इस व्यवस्था को अपर्याप्त मानते है। उनके अनुसार चार्टर की धारा 94 में सुधार की आवश्यकता है। वे सुझाव देते है कि चार्टर के अनुच्छेद 94 को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि इसका संशोधन इस प्रकार हो कि सुरक्षा परिषद् का कार्य आदेशात्मक हो जाय न कि केवल अनुज्ञापक। साथ ही इस विषय में सुरक्षा परिषद् का कार्य इसके स्थायी सदस्यों के मतैक्य के बंधन से मुक्त हो जाए।

2.4.9. न्यायालय का क्षेत्राधिकार (Jurisidiction of the Court)

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय राष्ट्रसंघ द्वारा स्थापित स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की उत्तराधिकारी संस्था है। अतः इसका अधिकार क्षेत्र पुराने न्यायालय के समान है। वैसे देखने से लगता है कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार विश्वव्यापी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य-राज्य अनिवार्यतः इसके भी सदस्य है और अपना अन्तर्राज्जीय विवाद इसके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। वे राज्य भी जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नही है। न्यायालय के विधान के पक्षकार बन सकते हैं। इस सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा को नियम बनाने का अधिकार है। सर्वप्रथम स्विटजरलैंड ने जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नही था, न्यायालय के विधान का पक्षकार बनने के लिए आवेदन किया था। स्विटजरलैंड के विधान को स्वीकार करते हुए महासभा ने निम्न दशाएँ निर्धारित की थी। (क) वह विधान की व्यवस्थाओं को स्वीकार करेगा, (ख) चार्टर के अनुच्छेद 94 में प्रतिपादित दायित्वों को स्वीकार करेगा (ग) महासभा द्वारा निर्धारित न्यायालय के व्यय भार में उचित अनुदान करेगा। लाइकटैंस्टीन और सानमैराइनों भी इस उपबंध के अन्तर्गत न्यायालय के विधान के पक्षकार बन सके है यद्यपि वे संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नही है। वैसे राज्य भी जो न्यायालय के विधान के अनुसार न्यायालय का क्षेत्राधिकार स्वीकार करते हैं (ब) वे न्यायालय का निर्णय सद्भाव से स्वीकार करेंगे और (स) चार्टर के अनुच्छेद 94 में प्रतिपादित सभी दायित्व ग्रहण करेंगे। इस प्रकार न्यायालय का द्वारा सभी राज्यों के लिए खुला है। इसी अर्थ में यह कहा जाता है कि वर्तमान न्यायालय एक विश्व न्यायालय है।

न्यायालय के विधान के अनुसार केवल राज्य ही न्यायालय के समक्ष अपने विवाद प्रस्तुत कर सकते है। अर्थात् केवल राज्य ही न्यायालय के समक्ष वादी अथवा प्रतिवादी हो सकते है। वे भी किसी संस्था, व्यक्ति या संगठन के विरुद्ध अपना मुकद्मा यहाँ नही

कर सकते। किसी अन्य राज्य से ही अपने विवाद न्यायालय के समक्ष ला सकते है। इस उपबंध की व्याख्या केल्सन न इस प्रकार की है। इसका अर्थ यह है कि केवल राज्यों के विवाद को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया है।''[99] निस्संदेह यह उपबंध न्यायालय के क्षेत्राधिकार को सीमित कर देता है। जैसा कि ई.पी. चेज ने लिखा है। यह न्यायालय के क्षेत्राधिकार का बहुत ही सीमित कर देता है परन्तु न्यायालय के समक्ष लाये जानेवाले मामले के गंभीर महत्व को सुरक्षित करता है।''

प्रत्येक मामले में न्यायालय के क्षेत्राधिकार अनिवार्य नहीं है। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर काफी विचार-विमर्श हुआ था। सम्मेलन में आये हुए अधिकाशं देशों के प्रतिनिधि चाहते थे कि न्यायालय को अनिवार्य क्षेत्राधिकार प्रदान किया जाय। उनका कहना था कि पूर्ण न्याय-व्यवस्था के लिए अनिवार्य क्षेत्राधिकार को होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु सोवियत रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका भिन्न-भिन्न कारणों के चलते न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे परिणामस्वरूप न्यायालय के विधान में उसके अनिवार्य क्षेत्राधिकार की कोई व्यवस्था नही की गयी। अतः संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य अपने विवादों को न्यायालय के समक्ष रखने के लिए बाध्य नही है। जहाँ तक विषय वस्तु का सवाल है, न्यायालय के समक्ष वे सभी मामले लाये जा सकते है जिन्हें विवाद से सम्बद्ध पक्ष इसके समक्ष लाना चाहें। साथ ही यह कार्य-क्षेत्र संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में लागू संधियों तथा कन्वेंशनों में विहित मामलों पर भी लागू होगा। यह भी व्यवस्था है कि संधियों समझौतों से सम्बद्ध जिन मामलों को स्थायी न्यायालय में पेश करने की व्यवस्था थी वे सभी मामलें अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों के बीच होने वाले सभी विवाद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष लाये जाएँ। वे वैसे न्यायालयों के समक्ष भी रखे जा सकते है जो पहले से ही मौजूद हो अथवा भविष्य में कामय किये जाने वाले हो।

न्यायालयक के क्षेत्राधिकार को तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है: ऐच्छिक क्षेत्राधिकार (Voluntary Jurisdiction) वैकल्पिक अनिवार्य क्षेत्राधिकार (Optional Compulsory Jurisdiction) तथा परामर्शक क्षेत्राधिकार (Dvisory Jurisdiction)।

2.4.9.1. ऐच्छिक क्षेत्राधिकार:-

न्यायालय के विधान के 36वें अनुच्छेद के अनुसार न्यायालय उन सभी मामलों पर विचार कर सकता है, जिनसे सम्बन्धित राज्य पारस्परिक सहमति से उन विवादों को न्यायालय के विचारार्थ उपस्थित करें। इस प्रकार कोई भी मामला विवादग्रस्त राज्यों की सहमति से ही न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता है। किसी भी राज्य को न्यायालय के समक्ष आने क लिए इसलिए मजबूर नही किया जा सकता है। किसी भी राज्य को न्यायालय के समक्ष आने के लिए मजबूर नही किया जा सकता कि उसके विरुद्ध न्यायालय मे कोई मुकद्मा लाया गया है। प्रतिवादी राज्य की सहमति से ही न्यायालय

[99] The intented meaning of Article 34 of the statute is that only disputes between states shall be decided by the court, not disputes between individuals, between a state and a private individual, or between a state and a community of states especially not disputes between a state and the U.N

किसी मुकदमें की सुनवाई कर सकता है। राष्ट्रीय न्याय-व्यवस्था में ऐसी स्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। क्योंकि राष्ट्रीय न्यायालयों को अपने राज्य के क्षेत्र के अन्तर्गत रहने वाले सभी व्यक्तियों पर अनिवार्य क्षेत्राधिकार प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका में दीवानी तथा फौजदारी मामलों में प्रतिवादी को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना ही पड़ता है। यदि वे ऐसा नही करते तो उन्हें न्यायालय की मानहानि का दंड भुगतना पड़ता है। परन्तु अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्यक्तियों का स्थान संप्रभु राज्य ले लेते हैं जो अपनी सहमति के बिना न्यायालय में उपस्थित होन के लिए तैयार ही नहीं होते। परिणामस्वरूप उनको सहमति के बिना न्यायालय किसी मामले पर विचार ही नहीं कर सकता। यह संयुक्त राष्ट्र की न्याय व्यवस्था की बहुत बड़ी कमजोरी है। जैसा कि मार्टिन और वेंटविच ने लिखा है पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में सभी राज्यों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी सभी वैधानिक विवादों को न्यायाधिकरणों क समक्ष लावें किन्तु इस दृष्टि से न तो राष्ट्रसंघ और न संयुक्त राष्ट्रसंघ की व्यवस्था पूर्ण मानी जा सकती है। दोनों संस्थाओं का जन्म ऐसे तनाव एवं अविश्वासपूर्ण वातावरण में हुआ था कि सदस्य-राष्ट्र अपने विवादों के निपटारे के लिए विभिन्न उपायों में से किसी का भी चुनाव करने की अपनी स्वतंत्रता को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। परिणामस्वरूप न्यायालय के समक्ष अपने विवादों को रखने की बात ऐच्छिक ही रखी गयी।'' **ई.पी. चेज** के अनुसार यह व्यवस्था निजी कानून की उस पौराणिक व्यवस्था के समान है जिसमें न्यायालय तो होते थे लेकिन दोषी ठहराये जाने के भय से कोई व्यक्ति अपने विवादों को उनके समक्ष रखने के लिए तैयार नही था।

2.4.9.2. वैकल्पिक आवश्यक क्षेत्राधिकार:-

न्यायालय के अधिनियम के 36वें अनुच्छेद के दूसरे पैरे में, जिसे वैकल्पिक धारा (Optional Clause) भी कहा जाता है, यह व्यवस्था की गयी है कि कोई भी राज्य किसी भी समय यह घोषणा कर सकता है कि यदि अन्य राज्यों ने ऐसा ही किया हो तो वह निम्नलिखित चार बाते से सम्बन्धित सभी वैधानिक विवादों में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार को रक्त: अपने लिए आवश्यक मानते है:

1. किसी संधि की व्याख्या
2. अन्तर्राष्ट्रीय विधि का कोई प्रश्न
3. अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व को भंग करने वाले तथ्यों की स्थिति तथा
4. किसी अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व का उल्लघंन करने पर उसके लिए दी जानेवाली क्षतिपूर्ति की मात्रा और स्वरूप।

उपर्युक्त घोषणा से उत्पन्न न्यायालय के क्षेत्राधिकार को ओपनेहाइम ने वैकल्पिक आवश्यक क्षेत्राधिकार कहा है। यह वैकल्पिक है, क्योंकि यह उन्हीं राज्यों पर लागू होता है जो ऐसी घोषणा करें और तभी लागू होता है जब विवाद से सम्बन्धित अन्य राज्य भी ऐसी घोषणा कर चुके हो। यह आवश्यक है, क्योंकि जो राज्य ऐसी घोषणा कर देते है, उनसे सम्बन्धित विवाद किसी विशेष समझौते के बिना भी न्यायालय के समझ लाये जा सकते है। यह उल्लेखनीय है कि सन् 1970 तक इस धारा को स्वीकार करने हेतु घोषणा-पत्र जमा करने वाले राज्यों की कुछ संख्या 45 थी।

ऐसी घोषणा करने वाला राज्य इस घोषणा को बिना किसी शर्त के भी कर सकता है और कुछ शर्तो के साथ भी। समान्य शर्ते यह रहती है: (क) घरेलू क्षेत्राधिकार में आनेवाले समाले न्यायाल के क्षेत्राधिकार के बाहर रहेंगे। अनेक राज्यों के वैकल्पिक धारा स्वीकार करते समय यह शर्त लगायी है कि वे स्वयं निर्णय करेंगे कि कौन-सा मामला उनके घरेलू क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आता हे। यह उल्लेखनीय है कि विधान के अनुच्छेद 36(6) के अनुसार न्यायालय को स्वयं यह निर्धारित करने का अधिकार है कि कोई मामाल उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत है या नहीं। अत: जैसा कि एक मामले में न्यायाधीश लाटरपैक्ट ने कहा था कि अनुच्छेद 36(2) के अन्तर्गत न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार-सम्बन्धी की गयी घोषण जो क्षेत्राधिकार-सम्बन्धी प्रश्न निर्धारित करने का अधिकार घोषण करने वाले राज्य को देती है, वैध नहीं मानी जा सकती। (ख) कुछ राज्य यह शर्ते लगाते हैं कि वैकल्पिक धारा के अन्तर्गत की गयी घोषण केवल उन विवादों पर लागू होगी जो घोषण के उपरांत हुए हैं अथवा उन विवादों पर लागू नहीं होगी जिनको सम्बन्धित पक्ष अन्य उपायों से तय करने के लिए वचनबद्ध हैं अथवा युद्ध काल में लागू नहीं होगी। यदि घोषणाकर्त्ता राज्य युद्धरत है। (ग) इजरायल की घोषणा उन राज्यों के साथ विवादों पर लागू नहीं होगी जो उसे मान्यता नहीं देते अथवा जिन्होंने उसके साथ राजनयिक सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकार नहीं किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिशास्त्रियों ने न्यायालय के वैकल्पिक आवश्यक क्षेत्राधिकार की व्यवस्था की बड़ी आलोचना की है। केल्सन के अनुसार हम उसे अनिवार्य क्षेत्राधिकार नहीं मान सकते क्योंकि यदि ऐसी घोषणा करने वाला कोई राज्य दूसरे राज्य के विरुद्ध कोई मामला इस न्यायालय के समाने लाता है तो दूसरा पक्ष न्यायालय का क्षेत्राधिकार मानने के लिए तभी बाध्य है जबकि इसने भी ऐसी घोषणा की हो। यदि सिर्फ समझौता द्वारा न्यायालय के क्षेत्राधिकार की संभावना की व्यवस्था करता है।[100] उसी तरह एम.ओ. हडसन के अनुसार अनिवार्य क्षेत्राधिकार शब्द भ्रमकारी है। इसको स्वीकार करने वाली घोषणा के साथ इतनी अधिक शर्ते लगा दी जाती है कि अनिवार्य क्षेत्राधिकार की कोई व्यावहारिक उपयोगिता नही रह जाती। केल्सन ने ठीक ही लिखा है कि न्यायालय के विधान के 36वें अनुच्छेद के दूसरे पैरे के अनुसार विभिन्न राज्यों द्वारा की गयी घोषणाएँ ऐसी शर्तो के साथ जो उन्हें क्रियात्मक दृष्टि से बिल्कुल निरर्थन बना देती है।''[101] सी.एच.एम.वाल्डौक के अनुसार सन् 1945 के बाद न केवल घोषणाओं में कमजोर बनाने की प्रवृत्ति चल पड़ी है वरन् न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार को स्वीकार करने वाले राज्यों की संख्या में भी कमी आयी है।''[102] अभी तक संयुक्त राष्ट्रसंघ के आधे सदस्यों ने भी न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार को नही स्वीकार किया है। संघ के भूतपूर्व महासचिव डॉ. हमेरशोल्ड ने सन् 1957 मे इस पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा था कि न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार को स्वीकार करने वाले राज्यों की संख्या में जो कमी है, वह चार्टर-निर्माताओं की इच्छा के प्रतिकूल है। उन्होंने राज्यों द्वारा सशर्त घोषणा करने की प्रवृत्ति पर चिन्ता प्रकट करते हुए कहा था कि यदि इस प्रवृत्ति पर रोक नही लगायी गयी तो यह अनिवार्य

[100] Kelson: The Law of the United Nations, pp. 522-28
[101] Kelson: Principles of International Law, p. 292
[102] C.H.M Waldock: The decline of the Optional Clause.

क्षेत्राधिकार की सारी व्यवस्था को काल्पनिक तथा मायावी बना देगा। इन सब कमियों के बावजूद ओपने हाइम इस व्यवस्था को उपयोगी मानते हैं। उनके अनुसार प्रतिबंधो के बावजूद वैकल्पिक धारा अनिवार्य न्यायिक निर्णय की सर्वाधिक व्यापक और महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है। वैकल्पिक धारा के कारण ग्रहण किये गये उत्तरदायित्वों से न्यायालय की क्रियाशीलता में एक महत्वपूर्ण स्रोत की वृद्धि हुई है।''[103]

2.4.9.3. परामर्शक क्षेत्राधिकार:–

विवादग्रस्त मामलो में निर्णय देने के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को विधिकारक प्रश्नों पर परामर्शक मत देने का अधिकार है। चार्टर की धारा 96 में यह कहा गया है कि महासभा तथा सुरक्षा परिषद् द्वारा किसी भी विधिक प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से परामर्शक मत देने का अनुरोध किया जा सकता इसके अतिरिक्त महासभा संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य अंगों तथा विशिष्ट संस्थाओं को अपने-अपने कार्य-क्षेत्र सम्बन्धी विधिक प्रश्नों पर परामर्शक मत ले सकने का अधिकार प्रदान कर सकती है। किसी प्रश्न पर परामर्शक मत का अनुरोध प्राप्त होने पर न्यायालय उन सब राज्यों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को जो इस संबंध में सहायक हो सके अपने विचार लिखित अथवा मौखिक रूप से अथवा दोनों प्रकार से प्रेषित करने का अवसर देता है। और तदुपरांत अपने मत का निरुपण करता है। जिसे सार्वजनिक रूप से पढ़कर सुनाया जाता है।

मार्टिन एवं बेंटविच के अनुसार '' परामर्शक मत का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंगों तथा विशिष्ट अभिकरणों को उनके कार्य-क्षेत्र से सम्बद्ध विधिक प्रश्नों पर प्रमाणिक निर्देशन प्रदान करना है।'' परन्तु परामर्शक मत निवेदन अंग के लिए बाध्यकारी नहीं है और न ही इसके न्यायिक निर्णय ही माना जा सकता है। परन्तु फिर भी जैसाकि ओपेनहाइम का मत है। परामर्श सम्बन्धी क्षेत्राधिकार वास्तव में उससे कहीं अधिक उत्पादक और महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है जितना कि मूलत: सोचा गया था।''[104] आपेनहाइम का यह मत अन्तर्राष्ट्रीय का यह मत अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय के सम्बन्ध में व्यक्ति किया गया था लेकिन यह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सम्बन्ध में भी ठीक उतराता है।

सन् 1962 तक न्यायालय 13 परामर्शक मत दे चुका था। 1970 में दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका पर दक्षिणी अफ्रीका के शासन की वैधता और इस अवैध शासन के अन्तर्राष्ट्रीय परिणामों के विषय में न्यायालय से परामर्शक मत देने का अनुरोध किया गया था और 1971 में न्यायालय ने ऐलान किया कि नामीबिया में दक्षिण अफ्रीका की स्थिति अवैध है।

संयुक्त राष्ट्र प्रशासनिक निर्णय संख्या 273 में पुनर्विलोकन के लिए प्रार्थना पत्र विवाद मे न्यायालय ने अपने सलाहकारी मन मे स्पष्ट किया कि संयुक्त प्रशासनिक न्यायालय ने नियमों आदि को लागू करने में कोई त्रुटि नहीं की थी तथा न्यायल ने अपने क्षेत्राधिकार से परे कोई कार्य नहीं किया था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंतर्गत प्रभावित राज्यों द्वारा व्यवहार में न्यायालय के परामर्शक मतों की प्राय:

[103] Oppenheim: International Law, vol, II pp. 63-64
[104] Oppenheim : op.cit,, p.65

अवहेलना ही हुई है। अत: उपेक्षक राज्यों पर दबाव डालने के साधन के रूप में परामर्शक मत सफल नही रहा है।[105]

2.4.10. मूल्यांकन (Evaluation)

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना करते समय यह आशा व्यक्त की गयी थी कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिमय समाधन के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ की योजना में न्यायिक प्रक्रिया का केन्द्रीय स्थान होगा। यद्यपि यह आशा फलीभूत नही हो सकी परन्तु अनेक मामलों मे न्यायालय ने अन्तर्राष्ट्रीय विषमता और तनाव को कम कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, वैसे कोर्फू चैनल विवाद, मोरक्को में अमरीकी राष्ट्रजनों के अधिकार संबंधी विवाद, एंग्लो नावर्वेजियन मछलीगाह विवाद, पुर्तगाल के भारतीय प्रदेश में से होकर गुजरने के अधिरक से संबंधित विवाद आदि। अपने वैधानिक क्षेत्र में न्यायालय ने निष्पक्ष होकर अबाध रूप से नियमों का निमार्ण एवं स्पष्टीकरण किया है। अपने परामर्शक अधिकारों के द्वारा इसने अनेक कठिन और जटिल प्रश्नों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यह ठीक है कि न्यायालय विश्व में संघर्षो के बुनियादी कारणों जैसे राजनीतिक, आर्थिक तथा सैद्धांतिक तथ्यों से प्रत्यक्ष रूप में नही निबट सकता है फिर भी अपने निर्णयों तथा परामर्शक सम्मतियों के द्वारा न्यायालय विश्वशांति की स्थापना में योगदान दे रहा है, इसकी उपादेयता के अनेक कारण है। सर्वप्रथम न्यायालय एक स्थायी न्यायाधिकरण की तरह कार्य करता है अत: इसकी उपादेयता के अनेक कारण है। सर्वप्रथम न्यायालय एक स्थायी न्यायाधिकरण की तरह कार्य करता है। अत: इसकी उपस्थिति से विवाद के पक्ष लाभान्वित हो सकते है। द्वितीयत: कुछ ऐसे विवाद है जिन्हें यदि अनिर्णीत छोड़ दिया जाए तो वे युद्ध उत्पन्न नहीं करेंगे परंतु उनसे सम्बद्ध पक्षों का संबंध विषाक्त हो सकता है। वैसे विवादों को न्यायालय हल करके राज्यों के बीच सहयोग बढ़ाने में सहयोग देता है। तृतीयत: अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विकास में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। परन्तु एक विश्व न्यायालय के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का कीर्तिमान उत्साहवर्द्धक नही रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय न्याय प्रशासन में न्यायालय की सीमित भूमिका के अनेक कारण है। प्रो. लिसिट्जिन इसके लिए दो कारणों को उतरदायी मानते है। प्रथमत वैसे विवाद जो वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुव्यवस्था के लिए घ्रातक है कभी भी न्यायालय के समक्ष नही लाये जाते। उदाहरणार्थ कोरिया विवाद इंडासेनेशिया तथा फिलीस्तीन की समस्या, कश्मीर विवाद हंगरी विवाद आदि जो अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुव्यवस्था के लिए घ्रातक साबित हो सकते थे किसी भी न्यायालय के समक्ष नही लाये गये ।इन विवादों का निपटारा करने के लिए राजनीतिक तरीकों को ही अपनाया गया। द्वितीयत: विवादों के निपटारे के साधन के रूप में न्यायालय के कृत्यों का तात्कालिक प्रभव चमत्कारपूर्ण नही रहा है। ऐसा देखा गया है कि इसके निर्णय तथा परामर्शक मत अंतर्राष्ट्रीय विवादों से उत्पन्न संघर्ष को रोकने में सफल नही रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की सीमित भूमिका के लिए अनेक कारण उतरदायी है।

(i) यह कहा जाता है कि न्यायालय का संगठन दोषपूर्ण है। इसके संगठन में सभ्यता के प्रमुख स्वरूप तथा प्रधान वैधानिक के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है। परन्तु इस

[105] Max Sorensen, p. 714

प्रावधान का अभी तक पूर्ण रूप से पालन नही हो पाया है। व्यवहार में न्यायालय में यूरोप और अमेरिका को अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त है। 15 स्थानों में 6 यूरोप को 6 दोनो अमेरिका को 1 एशिया तथा 2 अफ्रीका को प्राप्त है। स्पष्ट है कि एशिया और अफ्रीका की सभ्यता एवं उनकी न्यायिक प्रणालियों का इसमें उचित प्रतिनिधित्व नहीं होता। यदि न्यायालय को विश्व की विभिन्न न्याय प्रणाणियों का वास्तविक प्रतिनिधि बनना है तो उसमें न तो केवल यूरोपीय अमरीकी वरन् एशियाई तथा अफ्रीका की नयी सभ्यताओं का उचित प्रतिनिधित्व देना अनिवार्य है।

(ii) यद्यपि न्यायालय के विधान में यह व्यवस्था है कि न्यायाधीशों का निर्वाचन राष्ट्रीयता के आधार पर नही वरन् उनकी वैयक्तिक योग्यता के आधार पर किया जायेगा। परन्तु व्यवहार में यह बात नही पायी जाती है। निर्वाचन में राजनीति को बालबाता रहता है। राष्ट्रीय ग्रुप द्वारा नामांकन में सरकार का प्रभाव रहता है क्योंकि सरकार के द्वारा ही उनकी नियुक्ति होती है। महासभा तथा सुरक्षा परिषद् के सदस्यों द्वारा इनका निर्वाचन होता है परन्तु ऐसा देखा गया है कि न्यायालय के सदस्यों के चुनाव के साथ संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य अंगों के लिए सदस्यों के चुनाव की सौदेबाजी की जाती है। इस प्रणाली से महान् शक्तियों को अनुचित लाभ प्राप्त होता है। उनके बीच साँठ-गाँठ रहने पर उनके द्वारा नामांकित व्यक्ति आसानी से चुने जा सकते है इस प्रकार हम देखते है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों के निर्वाचन की जो व्यवस्था है उससे निष्पक्ष तथा सर्वाधिक योग्य व्यक्तियों का चुनाव हो पाना मुश्किल है। न्यायाधीशों का चुनाव राजनीतिक प्रभाव से मुक्त नही हो पाता। इस दोष से बचने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून संस्थान ने यह सुझाव दिया था कि न्यायाधीशों के चुनाव को संघ के अन्य अंगों के चुनाव से बिल्कुल अलग रखा जाय।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में राष्ट्रीय न्यायाधीशों की व्यवस्था भी आलोचना का कारण नही है। वैसे यह व्यवस्था इसलिए की गयी थी कि इसमें न्यायाधीशों का मुकद्मा समझने में सुविधा होती, राष्ट्रीय कानूनी व्यवस्था की विशेषता आसानी से समझी जा सकती है। तथा इसके निर्णय का स्वरूप इस ढंग से निर्धारित होता है कि राष्ट्रीय भावना को ठेस नही लगे। इस व्यवस्था का औचित्य चाहे जो भी रहा हो, आलोचको का कहना है कि यह व्यवस्थान्यायिक परम्परा के प्रतिकुल हैं। लाटरपैक्ट केल्सन हैम्ब्रो मैकनायर आदि विधिशास्त्रियों ने इस व्यवस्था की सामाप्ति की माँग की है। ऐसा देखा जाता है कि अपने देश के प्रति भक्ति भावना रखने के कारण न्यायाधीशों का झुकाव अपने देश के प्रति ही होता है। न्यायाधीश हडसन ने इस बात की पुष्टि की है। उनका कहना है कि न्यायालय के विगत रेकर्ड को देखने से ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय जाजों ने प्राय: अपने देश का समर्थन किया है। ऐसी स्थिति में निष्पक्ष न्याय के हित में यही अच्छा होता है कि जिस देश के मुकदमे की सुनवाई न्यायालय में हो रही हो, उस देश का न्यायाधीश न्यायालय की कार्रवाई में भाग ही नही लेता।

(iv) चार्टर तथा न्यायालय के विधान के अनुसार केवल राज्य ही न्यायालय के समक्षवादी अथवा प्रतिवादी हो सकते है। किसी संस्था व्यक्ति या संगठन के

विरुद्ध यहाँ मुकदमा नहीं लाया जा सकता। इस तरह यह व्यवस्था न्यायालय के क्षेत्राधिकार को सीमित कर देती है। इसके अनुसार व्यक्तियों को वादी अथवा प्रतिवादी के रूप में न्यायालय के समक्ष आने का अधिकार नही है। अत: आलोचको का कहना है कि यह व्यवस्था परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय विधि के सिंद्धात पर आधारित है। जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में केवल राज्य को ही अधिकार आकर कर्त्तव्य प्राप्त होता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र में हुए आधुनिक विकास के अनुरूप नहीं है। नैतिक तथा व्यावहारिक तथ्य का तकाजा है कि विदेशी राज्य के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में कोई मामला लाने का व्यक्तियों को भी अधिकार होना चाहिए।

(v) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की एक अन्य दुर्बलता यह है कि इसे क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त है। यह वादी या प्रतिवादी राज्यों की सहमति पर आधारित है। जब तक मुकदमें से सम्बद्ध दोनों पक्ष सहमत न हो तब तक न्यायालय उस मामले पर विचार नही कर सकता। इस व्यवस्था के चलते न्यायालय की स्थिति काफी शक्तिहीन हो गयी है। क्योंकि कोई अपराधी राज्य अपने अपराध को छिपाने के लिए न्यायालय के समक्ष मुकदमा लाने से इन्कार कर सकता है। उदाहरण के लिए विमान दुर्घटना से सम्बद्ध अनेक मामले अमरीका द्वारा न्यायालय के समक्ष रखे गये किन्तु साम्यवादी राज्यों सोवियत संघ (हंगरी, चेकास्लोवाकिया, बुल्गेरिया)के विरोध रूख के कारण न्यायालय उक्त मामलों पर विचार नहीं कर सका। इस प्रकार राज्यों की सहमति पर आधारित होने के कारण न्यायालय का अधिकार काफी सीमित हो जाता है।

आलोचकों के अनुसार अनिवार्य क्षेत्राधिकार का उपबंध भ्रमोत्पादक है। अनिवार्य क्षेत्राधिकार का वैल्पिक उपखंड वैकल्पिक होने के कारण पूर्णत: ऐच्छिक है। कोई भी राज्य स्वेच्छा से उसे स्वीकार करता है और कभी भी विज्ञप्ति द्वारा उस दायित्व से हट सकता है। बाल्डौक का कहना है कि जहाँ कोई भी राज्य स्वेच्छा से जब चाहे अपना दायित्व भंग कर दे, वहाँ अनिवार्य क्षेत्राधिकार की प्रणाली व्यर्थ है। गुड्सपीड को कहना है कि जबक तक संप्रभु राज्यों के हितों का प्रश्न बना रहेगा तब तक किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को अनिवार्य क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त हो सकेगा।

(vi) न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार को अभी तक केवल एकतिहाई राज्यों ने ही स्वीकार किया है। यह क्षेत्राधिकार स्वयं सीमित है ही, इसे स्वीकार करने में राज्यों ने अनेक शर्ते लगायी है। ये शर्ते इतनी अधिक व्यापक है कि उन्होंने न्यायालय के अनिवार्य वैकल्पिक क्षेत्राधिकार के व्यावहारिक महत्व को बड़ी सीमा तक नष्ट कर दिया है। आर.पी. आनंद ने लिखा है अनिवार्य क्षेत्राधिकार को स्वीकार करना वस्तुत एक मखौल हो गया है। ऊपरी मन से इसको स्वीकार किया जाता है किन्तु कभी भी स्वेच्छा से उससे बन्धनमुक्त हुआ जा सकता है।''[106]इन शर्तो के

[106]Any state accepting the Compulsory Jurisdiction may while paying lipservice to the principle of Judicial determination of diputes and giving itself the air air of loyal supporter of the court, still reserve the freedom to evade its obligations as and then it peases.

कारण ही विश्व शांति के घातक अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय विवाद न्यायालय में लाये ही नहीं गये। ओपेनहाइम के मतानुसार विश्व की राजनीतिक परिस्थितियों के कारण न्यायालय महत्त्वपूर्ण विवादों पर जो शांति के लिए सिकटमयी थे, विधि लागू करने से वंचित रहा।''[107]

(vii) न्यायालय के निर्णय लागू कराने के कोई प्रभावकारी अंतर्राष्ट्रीय उपाय नही है। सुरक्षा परिषद् जिसे यह दायित्व सौंपा गया है, स्वयं राजनीति का अखाड़ा है। स्थायी राज्यों के निषेधाधिकार के कारण यह बिल्कुल निष्क्रिय तथा पंगु हो गयी है। एक लेखक ने आरोप लगाया है कि आंग्ल ईरानी तेल कम्पनी के मामले में न्यायालय का यह निर्णय कि वह इस मामले में क्षेत्राधिकार रहित है, इस आशंका से प्रेरित था कि किसी भी दिशा में ईरान मामले में दिये जाने वाले फैसले का पालन नहीं करेगा। यही आरोप इजरायल बनाम बल्गारिया के हवाई दुर्घटना के मामले में न्यायालय के क्षेत्राधिकार सम्बन्धी निर्णय के विरुद्ध लगाया जाता है। कभी-कभी न्यायालय दोनों पक्षों को संतुष्ट करने का प्रयास करता है जिसके परिणामस्वरूप न्यायालय के निर्णय अस्पष्ट तथा अनेकार्थी होते है।

(viii) अंततः अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का कार्य-करण उस राजनीतिक परिवेश से प्रभावित रहा है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्रसंघ को कार्य करना पड़ता है। यह सभी को विदित है कि महान् शक्तियों का सैद्धातिक मतभेद युद्धोतर विश्व का एक कटु सत्य रहा है। इस मतभेद ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों के मूल में यह सिंद्धात निहित था कि यदि सामूहिक सुरक्षा का सिंद्धात विवादों का राजनीतिक समाधान था तो शांतिपूर्ण समझौते का सिंद्धात मध्यस्थता तथा न्यायिक समझौता था। प्रसंविदा के अनुच्छेद 14 के अनुपालन में स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गयी।

स्थायी न्यायालय राष्ट्रसंघ को अंग नहीं था। हालाँकि इसकी स्थापना प्रसंविदा की धारा 14 के प्राधिकार के रूप में हुई थी। राष्ट्रसंघ के सदस्य स्वतः न्यायालय के सदस्य नहीं हो जाते, उसके लिए उन्हें अलग से संविधि से संलग्न आज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर उसे संतुष्ट करना पड़ता था। साथ ही राष्ट्रसंघ के गैर-सदस्य भी न्यायालय के सदस्य हो जाते थे। यह न्यायालय एक स्वतंत्र न्यायालय था लेकिन यह कई तरह से राष्ट्रसंघ से सम्बद्ध था। इसके सदस्यों का निर्वाचन कौंसिल तथा असेम्बली द्वारा संयुक्त रूप से होता था। असेम्बली उसका बजट पारित करती थी तथा उसके प्रशासन का अधीक्षण भी करती थी। राष्ट्रसंघ के अंग उससे परामर्शक विचार प्राप्त कर सकते थे। पारस्परिक सम्बन्ध के इन स्थलों के बावजूद राष्ट्रसंघ न्यायालय के न्यायसम्बन्धी कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

न्यायालय में 15 न्यायाधीश थे जिनका चुनाव बिना राष्ट्रीयता के विचार के ऐसे व्यक्तियों के बीच से होता था जिनका नैतिक उच्च हो, जो अपने देश के सर्वोच्च न्यायिक पदों पर नियुक्ति की योग्यता रखते हो या जो अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रधान वैधानिक प्रणालियों का प्रतिनिधि होना चाहिए। चुनाव के उद्देश्य के हेग पंचायत के स्थायी

[107] Oppenheim: op.cit., p.70

न्यायालय के राष्ट्रीय ग्रुप द्वारा चार नामों की सूची दी जाती थी। कौंसिल और असेम्बली द्वारा स्वतंत्र ढंग से चुनाव होता था। जिन व्यक्तियों को दोनों अंगों में अजेय बहुमत प्राप्त हो, उन्हें निर्वाचित घोषित किया जाता था। न्यायालय में अस्थायी न्यायाधीशों का भी विधान था। न्यायालय के समक्ष पेश किये गए विवाद के प्रत्येक पक्ष को अपनी राष्ट्रीयता के न्यायाधीश का भी विधान था। न्यायालय के समक्ष पेश किये गए विवाद के प्रत्येक पक्ष को अपनी राष्ट्रीयता के न्यायाधीश को नामांकित करने का अधिकार था। निर्वाचित न्यायाधीशों का कार्यकाल 9 वर्ष का होता था। कार्य-काल की समाप्ति पर उनका पुनर्निर्वाचन हो सकता था। न्यायालय के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को तीन वर्ष के लिए चुना जाता था। न्यायाधीश अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाहक थे न कि अपने सरकारों के प्रतिनिधि। न्यायाधीशों के सभी निर्णय प्रमाण और आदेश खुले रूप में दिये जाते थे। निर्णय सामान्यतः बहुमत से दिये जाते थे, निर्णयों का आधार कानून था।

न्यायालय को तीन प्रकार के अध्किार प्राप्त थे। सामान्य आवश्यक तथा परामर्श क्षेत्राधिकार। सामान्य क्षेत्राधिकार के अंतर्गत विवादग्रस्त पक्षों द्वारा स्वेच्छा से लाये बाद या प्रचलित संधि एवं समझौतों में उल्लिखित बातों से उत्पन्न बाद आते हैं। संविधि के साथ ही एक प्रकार के आज्ञापत्र द्वारा न्यायालय को कुछ मामलों में अनिवार्य क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया था जिसे राज्य स्वेच्छा से स्वीकार कर सकते थे जिन सदस्य-राज्यों ने इस धारा को स्वीकार किया उन्होंने निम्नलिखित कानूनी झगड़ों को न्यायालय में अनिवार्य न्याय की अनिवार्य मान्यता प्रदान की, (1) किसी संधि का स्पष्टीकरण (2) अंतर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी कोई भी प्रश्न (3) किसी अंतर्राष्ट्रीय समझौते का उल्लंघन एवं (4) इस प्रकार के उल्लघंन के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति के रूप में अथवा सीमा को निर्दिष्ट करना। अनिवार्य न्याय की मान्यता के सम्बन्ध में यह शर्त यह थी कि उपर्युक्त मामलों में सम्बद्ध दोनों पक्ष 'ऐच्छिक धारा' का पालन करते रहे हैं। उपर्युक्त श्रेणियों में आने वाले सभी झगड़ो में यद्यपि न्यायालय का निर्णय मानना अनिवार्य था। किन्तु इस धारा को नही मानने वालों की यह इच्छा पर था कि वे झगड़ों को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत करे अथवा नही जिन राज्यों ने न्यायालय के उपर्युक्त क्षेत्राधिकार को अस्वीकार किया उनकी संख्या 1927 से 20 बढ़कर 1939 में 39 और अब 47 हो गयी है। प्रसंविदा की धारा 14 में ही यह व्यवस्था थी कि न्यायालय असेम्बली अथवा परिषद् द्वारा भेजे गये विषयों पर परामर्श देगा। इस तरह के परामर्श को भी न्यायिक निर्णय का दर्जा दिया गया।

न्यायालय के 18 वर्ष के सक्रिय कार्य-काल (1922-1939) में इस न्यायालय के समक्ष कुल 79 मामले प्रेषित किये गये जिनमें 51 निर्णयों के लिए और 28 परामर्शक मत के लिए थे। न्यायालय ने कुल मिलाकर 30 निर्णय और 27 परामर्शक मत दिये थे। एक-दो अपवादों को छोड़कर न्यायालय के निर्णय की निष्पक्षता तथा औचित्य पर कभी भी शंका प्रकट नही की गयी। एक भी ऐसा उदाहरण नही मिला, जिससे न्यायालय का फैसला कार्यान्वित नहीं किया गया हो। परामर्शक मतों का भी यही हाल था। ऐसे मतों का अनुरोध परिषद् द्वारा किया जाता था और परिषद् उनका आदर करती थी। मूसल विवाद में टर्की की प्रतिक्रिया को छोड़कर अन्य मामलों में प्रभावित राज्यों ने न्यायालय के परामर्शक मतों को विधिक स्थिति की अधिकृत व्याख्या के रूप में सम्मान दिया। परन्तु राष्ट्रसंघ के विधटन के साथ-साथ यह न्यायालय भी विद्यटित हो गया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के साथ-साथ एक नवीन अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना करने का निश्चय किया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के अध्याय 15 में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का विधान किया गया है। चार्टर के अनुसार यह न्यायालय संयुक्त राष्ट्रसंघ के छह मुख्य अंगों में से एक अंग है। चार्टर में इसे संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्य न्यायिक अंग कहा गया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य-राज्य अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान के पक्ष माने जाते है। इस न्यायालय के विधान और इसके पूर्वज स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान में वस्तुत: कोई अंतर नही है। नये विधान में कुछ परिवर्तन अवश्य पाये जाते है जो अधिकांशत: औपचारिक है। जैसा कि आपेनहाइम ने लिखा है। विधि की दृष्टि से नया न्यायालय पुराने न्यायालय का उत्तराधिकारी नही है परन्तु वास्तव में यह उसी का अनुवर्ती है।'' चार्टर के अनुच्छेद 92 में यह स्वीकार किया गया है कि नये न्यायालय का विधान स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान पर आधारित है। नये न्यायालय के विधान के दो अनुच्छेद इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है।

(i) अनुच्छेद 36 (5) के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि जिन राज्यों के स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का अनिवार्य क्षेत्राधिकार स्वीकार करने की घोषणा अनुच्छेद 36 के अंतर्गत की थी उनकी यह घोषणा ज्यों-का-त्यों वर्तमान वर्तमान न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार की घोषणा मानी जायेगी।

(ii) अनुच्छेद 37 के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि जिन संधियों अथवा अनुबंधों के अंतर्गत विवादों के निपटारें के लिए स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार स्वीकार किया गया था और वे संधियों निरस्त नहीं हुई है तो इन विवादों पर अब नये न्यायालय का क्षेत्राधिकार होगा। इस प्रकार चूँकि वर्तमान न्यायालय न्यायालय की संविधि राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में गठित स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि के आधार पर बनायी गयी है। फलत: गठन, कार्यविधि और कार्य-क्षेत्र में दोनो अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय लगभग एक समान है। कुछ विचारकों के अनुसार केवल नाम को छोड़कर वर्तमान न्यायालय और राष्ट्रसंघ के अंतर्गत स्थापित स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में कोई अंतर नही है।

2.4.11. पाठ का सार/सारांश

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष केवल राज्य सरकारें ही वादी अथवा प्रतिवादी हो सकती है। इसके समक्ष अंतर्राष्ट्रीय विधि, संधि दायित्व का स्पष्टीकरण अथवा कोई अंतर्राज्यीय विवाद जिसमें कानूनी प्रश्न सम्बद्ध हो लाये जा सकते है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य इसके क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आते है। इसके अनिवार्य क्षेत्राधिकार को स्वीकार करने के लिए राज्यों को घोषणा करनी पड़ती है। इस प्रकार राज्यों को अनिवार्य क्षेत्राधिकार स्वीकार करने का विकल्प दिया गया है। सन् 1970 तक इस धारा को स्वीकार करने हेतु घोषणा-पत्र जमा करने वाले राज्यों को कुल संख्या 45 थी। प्राय: राज्य इस उपबंध को शर्तो सहित स्वीकार करते है। राष्ट्रसंघ के विधान की तरह चार्टर की धारा 96 में यह व्यवस्था है कि महासभा अथवा सुरक्षा परिषद् किसी भी वैधानिक प्रश्न पर न्यायालय से परामर्शक मत प्राप्त कर सकते है। न्यायालय का निर्णय लागू कराने के लिए कोई राज्य सुरक्षा परिषद् की शरण ले सकता है। सुरक्षा परिषद् का कर्त्तव्य है कि निर्णय को लागू करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करें।

राष्ट्रसंघ की तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ का न्यायालय भी अपने कार्य क्षेत्र में पूर्णतया स्वतंत्र संस्था है। चार्टर तथा इसके विधान में इस बात की पूर्ण व्यवस्था की गयी है कि इसके फैसले पूर्णतया निष्पक्ष हो। परन्तु फैसलों को कार्यान्वित कराने का इसका अनुभव राष्ट्रसंघ की तरह नही रहा है। ऐसा देखा गया है कि इसके परामर्शक मतों को वह आदर नही प्राप्त है जो राष्ट्रसंघ के न्यायालय को प्राप्त था। प्रभावित राज्यों द्वारा इनकी प्राय: अवहेलना हुई है। जहाँ तक निर्णय का निष्पादित करने का प्रश्न है वह दायित्व सुरक्षा परिषद् को प्राप्त है। परन्तु वह स्वयं ही राजनीति का अखाड़ा है। फिर भी इन दोनों न्यायालयों ने अनेक मामलों में अतर्राष्ट्रीय विषमता और तनाव को कम कराने में योगदान किया है। इनका महत्त्वपूर्ण योगदान यह रहा है कि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्पष्टीकरण एवं विकास में सहायता की है। एक लेखक के अनुसार दोनों विश्व न्यायालयो द्वारा 100 से अधिक मामलों में दिए गए निर्णय एवं परामर्शक मतों से उत्पन्न न्यायशास्त्र आज अंतर्राष्ट्रीय विधि निर्धारित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है।

2.4.12. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न:- 1.) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की प्रस्तावना संक्षेप में वर्णन किजिए ?

प्रश्न:- 2.) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना का उल्लेख किजिए?

प्रश्न:- 3.) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के संगठन के प्रमुख आयोग का वर्णन कीजिए?

प्रश्न:- 4.) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों की योग्यता संक्षेप में वर्णन किजिए ?

प्रश्न:- 5.) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में विवाद निर्धारित करने का उल्लेख किजिए?

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न:- 1) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के कार्यो का उल्लेख किजिए?

प्रश्न:- 2) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय पदाधिकारी एवं मतदान-प्रणाली व्यवस्था का उल्लेख किजिए?

प्रश्न:- 3) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों कार्य विधि का उल्लेख किजिए?

प्रश्न:- 4) न्यायालय के निर्णय लागू करने के उपाय वर्णन किजिए ?

प्रश्न:-5) न्यायालय का क्षेत्राधिकार उल्लेख किजिए?

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्न:- 1) अन्र्तराष्ट्रीय न्यायालय में कितन न्यायाधीश होते हैं

1) 27 2) 54 3) 48 4) 57

प्रश्न:- 2) अन्र्तराष्ट्रीय न्यायालय में न्यायाधीशों का कार्यकाल कितन वर्ष का होता है ?

1) 6 वर्ष 2) 7 वर्ष 3) 8 वर्ष 4) 9 वर्ष

प्रश्न:- 3) प्रति तीसरे वर्ष कितन न्यायाधीश पदनिवृत होते हैं ?

1) 3 2) 4 3) 5 4) 4

प्रश्न:- 4) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अध्यक्ष का कार्यकाल कितन का वर्ष होता है ?

1) 2 वर्ष 2) 3 वर्ष 3) 4 वर्ष 4) 5 वर्ष

प्रश्न:- 5) वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का मुख्यालय स्थित हैं।

1) जेनेवा 2) न्यूयार्क 3) हेग 4) वाशिगठन डी० सी०

2.3.13. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कैलसन द लॉ ऑफ द यूनाइटिड नेशनस
- कैलसन परिसिपल्ज ऑफ इंटरनेशनल लॉ
- सी.एच.एम बाल्डोक द डिसलाइन ऑफ द ऑपसनल क्लॉस
- एन.डी. पलमर एण्ड एम.सी. पटकिंस
- हंस कैल्सन द लॉ ऑफ द यूनाइटिड नेशन्स
- इन शार्ट द चीफ एडिमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर ऑफ द यू.एन. होल्ड ऑफ यूनिक पोणिसन
- द सैक्टरी जनरल ऑफ द यू.एन हैज ए फॉनसिल्यूशनल लाइसंस ऑफ बी ऐज ए बीग मैन ऐज ही कैन क्लाउड
- कैलसन द लॉ ऑफ द यूनाइटिड नेशनस
- कैलसन परिसिपल्ज ऑफ इंटरनेशनल लॉ
- सी.एच.एम बाल्डोक द डिसलाइन ऑफ द ऑपसनल क्लॉस

खण्ड–3: संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना, उद्देश्य एवं सिद्धान्त

इकाई–1: सचिवालय

इकाई की रूपरेखा:

3.3.1. उद्देश्य कथन
3.3.2. प्रस्तावना
3.3.3. सचिवालय का संगठन
3.3.4. कर्मचारियों का चयन
3.3.5. शपथ एवं सेवा की शर्ते
3.3.6. सचिवालय के विभिन्न विभाग
3.3.7. सचिवालय के कार्य तथा अधिकार
3.3.8. संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव के कार्य
3.3.9. नियुक्ति तथा पदावधि
3.3.10. महासचिव के अधिकार एवं कार्य
- **3.3.10.1.** प्रशासनकी कार्य
- **3.3.10.2.** प्राविधिक कार्य
- **3.3.10.3.** वित्तिय कार्य
- **3.3.10.4.** प्रतिनिध्यात्मक कार्य
- **3.3.10.5.** राजनीतिक कार्य
- **3.3.10.6.** अन्य कार्य

3.3.11. निष्कर्ष
3.3.12. पाठ सार/सारांश
3.3.13. अभ्यास/बोध प्रश्न
3.3.14. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.3.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- सचिवालय व सचिवालय का संगठन के विषय में जानकारी प्राप्त करोगे।
- सचिवालय के कर्मचारियों का चयन एवं सेवा की शर्ते के विषय में ज्ञान प्राप्त करोगे।
- सचिवालय के कार्य तथा अधिकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करोगे।

3.3.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के रक्षक तथा सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के अग्रदूत, इन दोनों ही रूपों में की गई थी। अत: घोषणा-पत्र के द्वारा उसे न केवल अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने का दायित्व सौंपा गया वरन् राष्ट्रों के बीच मित्रापूर्ण सम्बन्धों का विकास करने, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय मामलों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करने, रोग, अशिक्षा, अंधविश्वास आदि से

मानव को उन्मुक्त करने आदि के महत्वपूर्ण दायित्व भी इसे सौंपे गये। इस तरह राष्ट्रसंघ के उद्देश्य काफी महान् तथा कार्यक्षेत्र काफी व्यापक हैं। इन अनगिनत कार्यों का सम्पादन करने के लिए इनके अंगीभूत शाखाओं तथा सम्बद्ध संस्थाओं की संख्या हजारों में है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की योजना में सचिवालय की व्यवस्था उपर्युक्त आवश्यकता की पूर्ति के साधन के रूप में ही की गयी है। इसके बिना विश्व-संगठन अपने बहुद्देशीय और बहुपक्षीय कार्यो का निर्वहन समुचित तथा प्रभावशाली ढंग से नहीं कर पाता। इसके अभाव में उसमें वह क्षमता भी नहीं आ पाती जिससे कि वह अंतर्राष्ट्रीय घटना-चक्र पर कुछ स्वतंत्र प्रभाव डाल सके। शायद यही कारण है कि विश्वसंस्था की योजना से सचिवालय को संघ के प्रमुख अंगों की कोटि में रखा गया है। सचिवालय ही संघ के सभी अंगों को विशिष्ट सूचनाएँ प्रदान करता है जिससे नीति-सम्बन्धी निर्णय लेना आसान हो पाता है। अत: यह संघ का ''सचिवालय के कारण ही महासभा अथवा सुरक्षा परिषद् समय-समय पर मिलने वाली संस्था मात्र न रहकर एक स्थायी संगठन बन पायी है। वह अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की मुख्य शक्ति का केन्द्र है जिसके बिना संयुक्त राष्ट्रसंघ में संचार और समन्वय संभव है।''[108]

3.3.3. सचिवालय का संगठन (Organisation of the Secretariat)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सचिवालय का संगठन प्राय: वैसा ही है जैसा राष्ट्रसंघ के सचिवालय का था। चार्टर की धारा 95 से लेकर 101 तक इसकी स्थापना की व्यवस्था का उल्लेख है। धारा 97 में उल्लिखित है कि ''सचिवालय में महासचिव और संघ की आवश्यकतानुसार कर्मचारी वर्ग रहेगा। महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा करेगी। वही संघ का प्रमुख प्रशासकीय पदाधिकारी होगा।'' उसे सचिवालय का अध्यक्ष भी कहा जा सकता है। परन्तु महासचिव अपने सारे कार्यों का सम्पादन स्वयं नहीं कर सकता। इसके लिए सहायकों तथा स्टॉफ की जरूरत होती है। चार्टर के अनुसार महासचिव को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है। सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन में ही यह तय हो गया था कि महासचिव को सहायक महासचिवों की नियुक्ति की पूर्ण छूट रहेगी। महासचिव के अलावे सचिवालय के आठ विभागों के अध्यक्ष होते हैं, इनका पद उपमहासचिव का होता है। सन् 1955 में दक्षता तथा खर्च कम करने की दृष्टि से सचिवालय के सर्वोच्च पदों का प्रभावी पुनगर्ठन किया गया। इस पुनर्गठन के फलस्वरूप तत्कालीन महासचिव डाग हैमरशोल्ड ने दो बिना विभाग के अवर सचिव (Under Secretaries) नियुक्त किये जो विशिष्ट राजनीतिक मामलों में उसके व्यक्तिगत सहायक हो सकते थे। ये दोनों अधिकारी थे- संयुक्त राज्य अमेरिका के राल्फ बंच तथा सोवियत संघ के इलियम एस. टेहरनीचेम। इनका काम राजनीतिक सलाह देने के अतिरिक्त महासचिव के घूमन्तू राजदूत (Ooving Ambassadors) के रूप में जाँच पड़ताल करना तथा संकट का पता लगाना था। इस पूनर्गठन के परिणामस्वरूप पाँच विभागीय और महासचिवों के पद स्वीकृत किये गये। उपमासचिवों की नियुक्ति भी महासचिव द्वारा की जाती है। नियुक्ति करते समय महासचिव को यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि यथासंभव दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व हो सके। इस प्रकार कार्य-क्षमता, अर्हता

[108] Vandenbosch and Hogan: op.cit., 82.

तथा क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व वे आधार है जिन पर सामान्यत: उपमहासचिवों की नियुक्ति की जाती है।

सचिवालय में लगभग चार हजार लोग काम करते हैं। इसके तीन-चौथाई संयुक्त राष्ट्रसंघ के न्यूयार्क स्थिति मुख्यालय में काम करते हैं। शेष दुनिया भर में विश्व संस्था के तत्वावधान में होने वाले काम जहाँ-तहाँ होते हैं, वहाँ कम करते हैं। सचिवालय का मुख्यालय एक अड़तीस मंजिलें भवन में अवस्थित है। विश्व संस्था के सालाना बजट का लगभग दो-तिहाई इसी पर खर्च होता है।

सचिवालय संयुक्त राष्ट्रसंघ का स्थायी अंग है। संघ के अन्य अंगों के सदस्य कार्य-काल की अवधि के अनुसार बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ, महासभा या सुरक्षा परिषद् या अन्य संस्थाओं में प्रतिनिधि-मंडल एक समान नहीं रहते। इसके विपरीत सचिवालय में स्थायी सेवाओं के लोग काम करते हैं। इस तरह यह एक स्थायी संस्था है। कार्य की अविच्छिन्नता (Continunity) इसके सदस्यों की विशेषता है। इस संदर्भ में एक अन्य महत्वपूर्ण बात भी उल्लेखनीय है। सुरक्षा परिषद् को छोड़कर संघ के अन्य अंगों का अधिवेशन निर्धारित समय पर एक, दो या तीन बार होता है परन्तु सचिवालय की बैठक सालों भर होती रहती है। उसका काम सालों भर चलता रहता है। इनके अलावा सचिवालय ही एक ऐसा अंग है जिसका हर सदस्य केवल विश्व संस्था के प्रति ही निष्ठावान होता है और इसके लिए उसे शपथ भी लेनी पड़ती है। इस प्रकार सचिवालय विश्व संस्था का सही प्रतिनिधि है। प्लानों तथा रिग्स ने ठीक ही लिखा है कि आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संगठन का उदय वास्तविक अर्थ में स्थायी अंतर्राष्ट्रीय सचिवालय के निर्माण के साथ ही हुआ माना जाना चाहिए।

3.3.4. कर्मचारियों का चयन (Choice of Personnel)

सचिवालय के कर्मचारियों का चयन एक कठिन समस्या है। चार्टर में यह विधान किया गया है कि कर्मचारियों की नियुक्ति में कार्य-क्षमता का उच्चस्तर, सक्षमता तथा ईमानदारी बनाये रखने की आवश्यकता को सर्वोपरि माना जायेगा। वैसे सिद्धान्तत: महासचिव को किसी कर्मचारी को बहाल करने अथवा बर्खासत करने का पूरा अधिकार है किन्तु चार्टर द्वारा भी उसे निर्देशन दिया गया है। व्यवहार में नियुक्ति के पूर्व महासचिव की सदस्य-सरकारों से सलाह लेनी पड़ती है। अंत: महासचिव बिना सदस्य-सरकारों की राय के कर्मचारियों की नियुक्ति नहीं कर सकता। विशेषकर उच्च पदों पर नियुक्ति के लिए सरकारों की पुष्टि आवश्यक है। अत: सचिवालय के किसी उच्च पद पर किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो सकती जिसका अपनी सरकार से अच्छा सम्बन्ध नहीं हो अथवा जिसमें उसकी सरकार को विश्वास नहीं हो। इस प्रकार व्यवहार में जैसा कि चेज ने लिखा है कि 'राष्ट्रीय सरकारों के मनोनयन पर ही महत्वपूर्ण पदों पर भर्ती की जाती है। कोई भी पद राष्ट्रीय सरकार के प्रतिरोध के विरुद्ध नहीं भरा जा सकता। वास्तव में सम्बद्ध राज्यों की सरकारी सेवा के सदस्यों में से ही बड़ों पर नियुक्तियों होती हैं। सहायक महासचिव की नियुक्ति तो राष्ट्रीय सरकारें ही करती हैं।

नियुक्ति के समय इस पर भी ध्यान दिया जाता है कि जहाँ तक हो सके विश्व के विभिन्न देशों के कर्मचारी भर्ती किये जा सकें ताकि अधिकाधिक देशों को सचिवालय सेवाओं में प्रतिनिधित्व मिल सके। सन् 1948 में यह निर्णय किया गया था कि पेशेवर

एवं उच्चस्तरीय कर्मचारियों की नियुक्ति में पच्चीस प्रतिशत तक ऊँच-नीच की गुंजाइश रखते हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ के बजट में दिये गये चन्दे की मात्रा को आधार मानकर ही प्रतिनिधित्व दिया जाय। यह सूत्र संतोषजनक है परन्तु सभी सदस्यों पर समन रूप से लागू नहीं होता। व्यवहार में भौगोलिक आधार पर नियुक्तियाँ की जाती है। कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों के पदों पर स्थानीय लोगों को नियुक्त करने पर जोर दिया गया है। संघ के कर्मचारी-मंडल के विस्तृत भौगोलिक आधार पर एक स्पष्ट अनुमान 31 अगस्त, 1965 की निम्नलिखित स्थिति से लगाया जा सकता है।

Regison	Desirbale Ranges	Number off staff
Afirca	90-199	124
Asia and the Far East	235-233	236
Europe, Eastern	292-233	167
Europe, Western	316-276	343
Latin America	98-146	159
Middle East	36-74	67
North America and the Caribben	456-315	352
Sub Total	1523-1479	1448
Non-member States	....	43
Total		1491

Source: Personall Question, Composition of the Secretariate, Report of the Secretary General United nations Document A/6077, October 27, 1665, p.3

योग्यता एवं भौगोलिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांतों के बीच विरोध का होना स्वाभाविक है। यदि सिर्फ भौगोलिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांतों को मानकर नियुक्तियाँ एवं पदोन्नति की जायें तो इसके भयानग परिणाम होंगे। यह अंतर्राष्ट्रीय जनसेवा की भावना के विपरीत है। इससे अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि, कार्य-क्षमता एवं महासचिव की स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी। सौभाग्यवश नियुक्ति एवं पदोन्नति में भौगोलिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के विस्तार पर थोड़ी रोक लगायी गयी है।[109] किरानी तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति जहाँ तक संभव हो सके, स्थानीय कर ली जाती है तथा भाषा से सम्बन्धित पदों के लिए तकनीकी योग्यता को ध्यान में रखा जाता है।

3.3.5. शपथ एवं सेवा की शर्तें (Oath and Conditions of Service)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सचिवालय में दुनिया के सैंकड़ों देशों के नागरिक काम करते हैं। किन्तु उन सब की वफादारी विश्व-संस्था के प्रति होती है। सचिवालय में अपने कार्य-काल की अवधि में वे सही मानों में विश्व-नागरिक है। सचिवालय में काम शुरू

[109] "Fortunately attempts to extend the principle of geographic share out to promotion, as well as recruitement have been resisted, this would obvioubly spell death to the whole idea of truly international Civil Service and niddle it with national politics, b esides being renous to staff moral".
-H.G. Nicholas: op.cit., p. 163.

करने के पहले प्रत्येक व्यक्ति को एक शपथ लेनी पड़ती है। यह शपथ विश्व-संस्था के प्रति वफादारी की होती है। शपथ की शब्दावली इस प्रकार है:

"मैं सत्य निष्ठा से शपथ ग्रहण करता हूँ (पुष्टि करता हूँ, प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं सम्पूर्ण श्रद्धा भावना एवं आस्था के साथ अपने ऊपर दिये गये कार्यो को करूँगा जो अंतर्राष्ट्रीय जनसेवा का सदस्य होने के नाते मुझ पर दी गयी है। अपने चरित्र को उसी दिशा में निर्देशित करुँगा जिससे संयुक्त राष्ट्र का हित साधन हो तथा वैसे किसी भी कार्य को स्वीकार न करूँगा अथवा अपने कर्त्तव्यपूर्ति में वैसी किसी भी सरकार अथवा अन्य संस्था द्वारा दिये गये किसी भी नि र्देशन को स्वीकार न करूँगा।" इस शपथ की शब्दावली से स्पष्ट है कि महासचिव सहित संयुक्त राष्ट्र के सभी सचिवालय के पदाधिकारी तथा कर्मचारी संघ के सिद्धांतों के प्रति निष्ठा रहने के लिए वचनबद्ध हैं और अपने कार्य-काल में अपना सम्बन्ध या भक्ति संयुक्त राष्ट्रसंघ के बारह किसी भी सरकार अथवा सत्ता के प्रति नहीं रखेंगे।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कोई व्यक्ति सचिवालय का पद-ग्रहण करने से अपने राष्ट्र की राष्ट्रीयता नहीं खोता, हलांकि वह सभी सदस्य राज्यों की सेवा करता है और उसकी भक्ति सिर्फ संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रति होती है। इस दृष्टिकोण से सचिवालय के सदस्यों तथा किसी राष्ट्रीय प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों में अंतर है। जहाँ सचिवालय के सदस्य अंतर्राष्ट्रीय दायित्व का निर्वहन करते हुए अपने कार्यो का सम्पादकन करते हैं वहाँ राष्ट्रीय प्रतिनिधि-मंडल के सदस्य अपने देश की सरकार के निर्देशन में काम करते हैं। सदस्य-राज्य अपने-अपने प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों को निर्देशित करने का अधिकार रखते हैं; किन्तु वे सचिवालय में अपने देश के प्रतिनिधियों को किसी प्रकार के निर्देशन न देने के लिए वचनबद्ध है। अनुच्छेद 100 में सचिवालय के सदस्यों की अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति का उल्लेख है: "अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति करने में महासचिव और कर्मचारी वर्ग संघ के अतिरिक्त किसी अन्य सरकार या अन्य किसी अधिकारी सत्ता से आदेश न तो मांगेंगे और न ग्रहण का संकल्प करता है तथा उनके दायित्वों के वहन में हस्तक्षेप नहीं करने का प्रतिबद्ध होता है।" इस धारा की शब्दावली का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट है कि सचिवालय के पदाधिकारी अंतर्राष्ट्रीय अधिकारी है; और केवल संघ के प्रति उत्तरदायी हैं। वे ऐसा कोई काम नहीं करेंगे जिससे उनकी इस हैसियत पर प्रभाव पड़े। महासचिव की नियुक्ति की शर्तो के सम्बन्ध में महासभा द्वारा पारित प्रस्ताव में यह कहा गया है कि महासचिव संघ के सदस्य-सरकारों का विश्वास-पात्र है अतः पदनिवृत्ति के बाद उसे किसी भी सरकार को अपने यहाँ किसी ऐसे पद पर नियुक्ति नहीं करनी चाहिए, जिससे गोपनीय बातों की उसकी जानकारी से दूसरे सदस्य-राज्यों को कोई कठिनाई हो। सचिवालय की मर्यादा तथा प्रभावपूर्ण प्रशासन के लिए यह नियम है कि एक बार नियुक्त हो जाने पर उनके पदावधि का निर्धारण महासचिव ही करेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि महासचिव के अंतर्गत काम करने वाले इस सचिवालय का विधान इस प्रकार का किया गया है कि वह पूरी मानव जाति के प्रति जिम्मेदार हो सकें।

3.3.6. सचिवालय के विभिन्न विभाग (Different Sections of the Secretariate)

संरचना की दृष्टि से सचिवालय अनेक भागों में बँटा हुआ है। मुख्य विभागों की संख्या आठ है। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष एक उपमहासचिव होता था। उपमहासचिव के नीचे एकाधिक उच्चपदस्थ निदेशक होते हैं। उपमहासचिव की नियुक्ति महासचिव द्वारा की जाती है। 1 जनवरी, 1955 से महासचिव का कार्य-भार हलका करने के सात अवर सचिवों की भी नियुक्त की गयी- दो अवर सचिव तथा पाँच विभागीय अवर सचिव। सचिवालय के मुख्य आठ विभाग इस प्रकार हैं- महासचिव का कार्यकारिणी कार्यालय, सुरक्षा परिषद् सम्बन्धी विभाग, टेक्नीकल सहायता प्रशासन, आर्थिक विषय सम्बन्धी विभाग, कानूनी विभाग, सम्मेलन व साधारण सेवाएँ, प्रशासकीय व वित्तीय सेवाएँ। कुछ प्रमुख विभागों की सरंचना तथा कार्य इस प्रकार हैः सुरक्षा परिषद् सम्बन्धी विभाग का कार्य सुरक्षा परिषद् के सभी कार्यो में सहायता प्रदान करना है। विभाग के कार्यो को मुख्यतः दो वर्गो में वितरित किये जाते हैं जो योग्यता तथा निष्पक्षता के काम कर सकें। यह विभाग महासभा को भी शांति एवं सुव्यवस्था सम्बन्धी कार्यो में सहायता प्रदान करता है। आर्थिक विभाग आर्थिक और सामाजिक परिषद् के आर्थिके कार्य-क्षेत्र के कार्यो की प्रशासकीय व्यवस्था करता है इस विभाग का कार्य-क्षेत्र काफी व्यापक है- आर्थिक यातायात, संचार, चूँगी-व्यवस्था, सांख्यिकी, जीवन-स्तर का उन्नयन, औद्योगिक विकास, खाद्य तथा बेरोजगारी उन्मूलन आदि। इस विभाग में नियुक्तियाँ विशेषकर आर्थिक विशेषज्ञों की होती हैं। सचिवालय के सामाजिक कार्यो का विभाग आर्थिक-सामाजिक परिषद् के सामाजिक कार्यो में प्रशासकीय सहायता प्रदान करना है। इस विभाग के महत्वपूर्ण कार्य हैं- जनस्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण कार्य, नशीले द्रव्यों के व्यापकार की रोकथाम, पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन के कार्य, मानव अधिकार एवं सुंस्कृति उन्नयन के कार्य। यह विभाग यूनेस्को, खाद्य एवं कृषि संगठन, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आदि के कार्यो को सहायता प्रदान करता है। संरक्षण एवं अस्वाशासति क्षेत्रों में सूचना-विभाग का गठन, संरक्षण परिषद् कार्यो में सहायता प्रदान करने के लिए किया जाता है। अस्वशासति प्रदेशों एवं क्षेत्रों के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के आदर्शो के अनुरूप सभी तरह के संभव कार्यो का संचालन-सुनियोजन, अध्ययन एवं मूल्यांकन करने का दायत्वि इस विभाग का है। जन-सूचना, एकत्र कर विश्व लोकमत को अवगत कराते रहना है। सम्मेलन तथा सामान्य सेवा-विभाग संघ के विभिन्न अवयवों की बैठकों को आयोजित करने, कार्यवाही का अभिलेख तैयार करने और उनके मुद्रण आदि में सहायता प्रदान करता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की पत्रिका का प्रकाशन-भार इस विभाग पर है। सचिवालय के प्रशासनिक तथा वित्तीय सेवा विभाग का कार्य सचिवालय सेवा की सारी व्यवस्था से है। सचिवालय के आंतरिक संगठन की योजना, विकास तथा सुनियोजन का भार इस विभार पर है। इस विभाग की तीन प्रमुख शाखाएँ हैं- बजट कार्यालय, कार्मिक कार्यालय और लेखा-निरीक्षक कार्यालय। सचिवालय का कानून विभाग न केवल प्रलेखों की वैधानिकता पर परामर्श देता है वरन् आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों पर कानूनी सलाह भी देता है।

सचिवालय के प्रशासी वर्ग तथा कर्मचारी वर्ग में अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वैज्ञानिक, दुभाषिये, अनुवाद पुस्तकालयाध्यक्ष, प्रशासक, संपादक, वित्तीय अधिकारी, विधिवेत्ता,

फोटोग्राफर, सेबी वर्ग के अधिकारी तथा विशेषज्ञ, सरकारों द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ को भेजे गये विदेशी सेवा अधिकारी आदि सम्मिलित हैं।

3.3.7. सचिवालय के कार्य तथा अधिकार (Powers and Functions of Secretariate)

सचिवालय संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्य प्रशासकीय निकाय है। इसे अनेक तरह के कार्यो का सम्पादान करना होता है। यह संघ के विभिन्न निकायों तथा अभिकरणों की बैठकों के अनेक सेवाएँ प्रदान करता है। इस संस्थओं की बैठकों के लिए यह प्रलेख तथ सामग्रियाँ तैयार करता है। यह संघ के विभिन्न आयोंगों तथा मिशनों को प्रशिक्षित तथा दक्ष सदस्यों की सेवाएँ अर्पित कर सहायता प्रदान करता है। महासचिव के कार्यालय में होने वाले विचार-विमर्श की प्रक्रिया में यह सहायता प्रदान करता है। सचिवालय अंतर्राष्ट्रीय प्राविधिक सहायता के क्षेत्र में अनेक कार्यो का सम्पादन करता व ही विकासशील देशों में अनेक तरह के विकास कार्यक्रमों में संयुक्त राष्ट्रसंघ की ओर से तकनीकी सहायता प्रदान की जाती हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा दिये गये वित्तीय साधनों का उचित प्रयोग हो सके तथा सहायता प्राप्त करने वाली सरकारें उनके लिए समुचित योजनाएँ बना सकें, इसके लिए सचिवालय के तकनीकी विशेषज्ञ सहायता प्रदान करते हैं। सचिवालय महासभा, परिषदों अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय और विभिन्न अंगों द्वारा स्थापित समितियों और आयोगों के उचित संचालन के लिए प्रकासकीय सहायता प्रदान करता है। यह उन सरकारों को भी सहायता प्रदान करता है जो प्रतिनिधि निकायों के सदस्य हैं। चार्टर में यह निहित है कि स्थायी रूप में आर्थिक-सामाजिक परिषद्, न्यासिता परिषद् और आवश्यकता पड़ने पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के दूसरे अंगों को उचित प्रशासी वर्ग दिया जायेगा। यह वर्ग सचिवालय का भी होता है। इस प्रकार सचिवालय में विशेष खंड होते है जो दूसरे अंगों के निर्देशन में कार्य करते हैं। सचिवालय ही संघ का एक ऐसा अंग हैं जो विश्व-संस्था के विभिन्न अंगों तथा संस्थाओं को जोड़ने वाली कड़ी है। उनके बीच एक संपर्क कायम करना, एक दूसरे के बीच आवश्यक तथा याचित सूचनाओं को संप्रेषण कराना इसका विशेष काम है। दुनिया भर में फैले संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य-क्षेत्रों के मध्य समायोजन का काम सचिवालय ही करता है।

महासभा तथा सुरक्षा परिषद् के संदर्भ में सचिवालय को व्यापक अधिकार प्रदान किये गये हैं। महासभा के प्रक्रिया-सम्बन्धी नियमों के अनुसार सूचना प्राप्त करना, इसकी छपाई करना, अनुवाद करना, कागजातों प्रतिवेदनों एवं महासभा के निर्णयों का इनकी समितियों तथा अंगों की बीच वितरण, सभा में दिये गए भाषाणों की व्याख्या, प्रसारण तथा रेकर्ड रखन तथा कागजातों को महासभा के पुरातत्व विभाग में सुरक्षित रखना आदि सचिवालय के कार्य हैं। सुरक्षा परिषद् के संदर्भ में सचिवालय के अध्यक्ष को यह विशेष दायित्व दिया गया है कि वह दुनिया में कहीं भी शांति भंग होने का खतरा महसूस करें अथवा यह देखें कि कुछ ऐसे बातें हो रही हैं। जिनसे शांति भंग होने की संभावना हो, तो वह सुरक्षा परिषद् को इसकी सूचना देगा तथा उसकी आपातकालीन बैठक बुलाने का अनुरोध करेगा। परिषद् की बैठक के लिए सामग्रियाँ उपलब्ध कराना तथा उसकी ओर से उसके निर्णयों को कराने का उस पर विशेष दायित्व है। यह दायित्वपूर्ण कार्य सचिवालय के माध्यम से ही सम्पन्न होता है।

सारांश यह है कि सचिवालय संयुक्त राष्ट्रसंघ का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग हैं। यद्यपि चार्टर के अंतर्गत उसे बहुत ही विनीत तथा नम्र स्थान प्रदान किया गया है फिर भी इस विभाजित विश्व में जहाँ राज्य अपनी संप्रभुता के प्रबल समर्थक तथा दूसरे राज्यों के हितों को हेय नजर में देखते हैं; सचिवालय ही एक ऐसा अंग है जो विश्व संस्था का वास्तविक रूप में प्रतिनिधित्व करता है। सचिवालय में दुनिया के सैकड़ों देशों के नागरिक काम करते हैं। यहाँ दुनिया के हर क्षेत्र की समस्याओं पर विचार-विमर्श होता है। इसमें दुनिया के कोने-कोने से अनेक भाषाएँ बोलने वाले, अनेक रूप-रंग के तथा अनेक संस्कृतियों एवं सम्प्रदायों के लोग काम करते हैं। किन्तु, उन सबकी वफादारी विश्व-संस्था के प्रति है। इस तरह सचिवालय ही एक ऐसा मंच है जहाँ देश, राष्ट्र-नस्ल के सीमांत मानवता को खंडित नहीं करते। अभिप्राय यह है कि सचिवालय विश्व-नागरिकता को बढ़ावा देने का महत्वपूर्ण स्थल है।

3.3.8. संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव के कार्य (Functions of the Secretary General)

राष्ट्रसंघ की भाँति संयुक्त राष्ट्रसंघ के सचिवालय के प्रधान को महासचिव कहा जाता है। वह संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख कार्यपालक होता है। चार्टर की धारा 97 में यह कहा गया है 'महासचिव संघ का प्रमुख प्रशासकीय अधिकारी है' परन्तु यह धारा महासचिव की वास्तविक स्थिति का पूर्ण चित्र नहीं प्रस्तुत कर पाती क्योंकि उसके अधिकार केवल प्रशासकीय कार्यों तक ही सीमित नहीं है। वस्तुत: आज उसकी स्थिति एक राजनीतिक पदाधिकारी-सी हो गयी है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंतर्गत उसे कुछ ऐसे अधिकारों तथा दायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है जिनका राष्ट्रसंघ में पूर्णतया अभाव था।[110] अपने व्यापक अधिकारों तथा दायित्वों के कारण महासचिव का पद विश्व-संगठन में काफी गौरव, प्रतिष्ठा तथा शक्ति का पद बन गया है। अनेक लेखकों ने भी इस पद विश्व-संगठन में काफी गौरव, प्रतिष्ठा तथा शक्ति का पद बन गया है। अनेक लेखकों ने भी इस पद की महत्ता की चर्चा की है। बेन्डेनबोश तथा होगन के मतानुसार संयुक्त राष्ट्रासंघ के इस प्रशासकीय पदाधिकारी की स्थिति काफी अनूठी है।[111] केल्सन ने तो चार्टर के अनुच्छेद 7 में वर्णित सचिवालय का अभिप्राय महासचिव से ही लिखा है। उसके अनुसार ''चार्टर की धारा 7 में वर्णित संयुक्त राष्ट्रसंघ के एक प्रमुख अंग के रूप में जिस सचिवालय का वर्णन किया गया है, उसको एक इकाई के रूप में कार्य करने वाली सामूहिक संस्था के रूप में जिस सचिवालय का वर्णन किया गया है, उसको एक इकाई के रूप में कार्य करने वाली सामूहिक संस्था के रूप में नहीं गठित किया गया है। ..... अत: धारा 7 में जिस अंग की चर्चा है उसका अभिप्राय सचिवालय नहीं वरन् महासचिव है।'' **स्टीफन एम. शौक्बल** ने भी स्वीकार किया है कि चार्टर में वर्णित शक्तियों के आधार पर महासचिव का पद बड़ा महत्वपूर्ण और शक्तिशाली बन गया है। इन कथनों से यह स्पष्ट है कि महासचिव का पद काफी गौरव और प्रतिष्ठा का पद है।

---

[110] "The office of the Secretary General is one poessted of greater powers and responsibilities than his counterpart during the league."
- Goodspeed

[111] "In short the chief administrative officer of the U.N. holds of unique position."
- Vandenbosch and Hogan.

3.3.9. नियुक्ति तथा पदावधि (Appiontment and Tenure)

संघ के घोषणा-पत्र में महासचिव की नियुक्ति-प्रक्रिया का वर्णन तो मिलता है किन्तु उसके कार्य-काल के सम्बन्ध में चार्टर मौन है। महासचिव की नियुक्ति कैसे होगी, इसका वर्णन चार्टर की धारा 97 में मिलता है। इस धारा में कहा गया है किय 'महासचिव की नियुक्ति सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा करेगी।' केल्सन ने इस धारा की शब्दावली को दोषपूर्ण बतलाया है। उसका कहना है कि जिस तरह अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं वरन् निर्वाचन करता है उसी प्रकार सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा महासचिव की नियुक्ति नहीं वरन् निर्वाचन करती है। महासभा के मत देने वाले और उपस्थित सदस्यों का बहुमत ही उसके चुनाव के लिए काफी है। परन्तु सुरक्षा परिषद् में मनोनीत होने के लिए 9 सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। इन 9 सदस्यों पाँच में स्थायी सदस्यों की सहमति भी आवश्यक है। इसका मतलब यह है कि महासचिव के मनोनयन के प्रश्न पर महाशक्तियोंय को निषेधाधिकार प्राप्त है। यदि महाशक्तियाँ किसी नाम पर एकमत नहीं हो तो वह व्यक्ति सुरक्षा परिषद् द्वारा मनोनीत नहीं हो सकता। यही कारण है कि प्रत्याशी का चयन करने के लिए परिषद् के स्थायी सदस्यों की अनौपचारिक बैठक होती है और वहीं प्रत्याशी के विषय में निर्णय लिया जाता है। इसके बाद ही सुरक्षा परिषद् की अनौपचारिक बैठक होती है और वहीं प्रत्याशी के विषय में निर्णय लिया जाता है। इसके बाद ही सुरक्षा परिषद् की अनौपचारिक बैठक होती है। सुरक्षा परिषद् द्वारा केवल एक ही नाम महासभा के पास भेजा जाता है। महासभा साधारण बहुमत से इस पर निर्णय करती है। यदि महासभा चाहे तो सुरक्षा परिषद् की सिफारिश को अस्वीकार भी कर सकती है परन्तु वह स्वयं महासचिव को नियुक्त नहीं कर सकती। उसे सुरक्षा परिषद् की दूसरी सिफारिश के लिए रुकना पड़ेगा।

महासचिव के कार्य-काल के सम्बन्ध में चार्टर में कोई विधान नहीं है। सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया था कि महासचिव का कार्य-काल तीन वर्ष का हो। परन्तु सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार के भय से इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया। यह भी दलील पेश की गयी कि यदि महासचिव की कार्यविधि इतनी छोटी होगी तो वह स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पायेगा और अनुभव प्राप्त होने के पहले ही उसे पद से हट जाना पड़ेगा। सन् 1946ई. की जनवरी में महासभा ने इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। प्रस्ताव में निम्नलिखित बातों का उल्लेख था- (क) कार्य-काल ऐसा होना चाहिए कि ख्याति-प्राप्त व्यक्ति भी इस पद को स्वीकार करने के लिए तैयार हो सके। (ख) प्रथम महासचिव की नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए हो तथा उसके पुनर्निर्वाचन की व्यवस्था हो। (ग) कार्यकाल को बाद के अनुभव के आधार पर घटाया-बढ़ाया जा सके तथा (घ) कोई भी सदस्य-सरकार अवकाश प्राप्त महासचिव को किसी ऐसे पद पर नहीं नियुक्ति करे जहाँ संघ की गुप्त बातों की उसकी जानकारी दूसरे सदस्यों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर सके। इस व्यवस्था को इसलिए स्वीकार किया गया कि महासचिव की निष्पक्षता तथा ईमानदारी पर किसी प्रकार की आँच नहीं आने पावे। राष्ट्रसंघ के अंतर्गत इस तरह का विधान नहीं था इसीलिए अवकाश प्राप्ति के शीघ्र ही बाद ब्रिटिश सरकार ने एरिक ड्रूमंड को इटली में राजदूत नियुक्त किया। वियना-विवाद तथा अबीसीनिया कांड

के समय एवेनल के दृष्टिकोण ने महासचिव पद की निष्पक्षता तथा स्वतंत्रता को संदिग्ध बना दिया था।

इस प्रस्ताव के अनुसार 1 फरवरी, 1946 को नार्वे के ट्रीग्वे ली को पाँच वर्ष के लिए महासचिव के पद पर नियुक्त किया गया। सन् 1951 की फरवरी में यह कार्य-काल समाप्त होने वाला था। अतः ली के उत्तराधिकारी के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए सितम्बर, 1950 में सुरक्षा परिषद् की बैठक हुई। ली को ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका का समर्थ प्राप्त था। उन्होंने ली के पुनर्निर्वाचन का प्रस्ताव कौंसिल के सामने पेश किया। सोवियत रूस ली के पुनर्निर्वाचन का कट्टर विरोधी था। उसके निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण वह प्रस्ताव गिर गया। दूसरी ओर संयुक्त राज्य अमेरिका ने यह घोषणा की कि वह ली को छोड़कर किसी अन्य नाम पर अपनी सहमति नहीं देगा। यदि कोई दूसरा प्रस्ताव आया तो वह अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करेगा। इस गतिरोध को दूर करने के लिए महासभा के 15 सदस्यों ने यह प्रस्ताव रखा कि ली के कार्य-काल को तीन वर्ष के लिए बढ़ा दिया जाये। 1 नवम्बर 1950 को महासभा के बहुमत से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और इस तरह उसके कार्य-काल को तीन वर्ष के लिए बढ़ा दिया। सोवियत गुट ने नकारात्मक मत दिया। सोवियत प्रतिनिधि विशिंस्की ने उनकी निंदा की और उनके इस्तीर्फ की मांग की। पत्र-प्रतिनिधियों की सभा में बोलते हुए विशिंस्की ने उनकी निंदा की और उनके इस्तीफे की मांग की। पत्र-प्रतिनिधियों की सभा में बोलते हुए विशिंस्की ने यह स्पष्ट किया कि ली ने महासचिव-पद के लिए आवश्यक योग्यता का सर्वथा अभाव है। 15 राज्यों के प्रस्ताव पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उसने कहा की ''ली को पिछली खिड़की और पिछले दरवाजे से क्यों लाया जा रहा है? वे इतने बड़े हैं कि पिछले दरवाजे से नहीं आ सकते और निश्चय ही पिछली खिड़की से आने के लिए बहुत बड़े हैं।'' पहली फरवरी, 1951 से उनके साथ सारे सम्बन्ध विच्छेद कर लिये गये। ली को महासचिव नहीं मानते हुए सोवियत रूप सभी प्रकार के पत्र-व्यवहार सीधे सचिवालय के साथ करने लगा। सामाजिक भोजों में उन्हें तथा उनकी पत्नी को आमंत्रित नहीं किया गया। ली ने अपने आप को अपमानित समझा। उसने स्वयं स्वीकार किया था, ''किसी एक व्यक्ति और उसके परिवार के प्रति इस प्रकार के असम्भव व्यवहार से मुझे काफी दुःख हुआ।'' 10 नवम्बर, 1952 को उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

काफी विचार-विमर्श के बाद 31 मार्च, 1952 को सुरक्षा परिषद् के स्वीडन के डाग हैमरशोलड को महासचिव पद के लिए नामजद किया। महासभा ने उस पर अपनी सहमति प्रदान कर दी और 10 अप्रैल, 1953 को उन्होंने महासचिव का पद-ग्रहण किया। फिर 26 सितम्बर, 1957 को 10 अप्रैल, 1951 से शुरू होने वाले अगले पाँच वर्ष के लिए पुनः निर्वाचित किया गया। कांगों-संकट के समय उनकी काफी आलोचना की गयी। उन्हें साम्राज्यवादियों का चाकर कहा गया। सोवियत प्रधानमंत्री ने अपना 'ट्रायका प्रस्ताव' रखा। इससे महासचिव के पद को लेकर फिर उलझन पैदा हो गयी। इसकी बीच 18 सितम्बर, 1961 को एक हवाई दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद नवम्बर, 1961 में बर्मा के थाँट को कार्यवाहक महासचिव नियुक्त किया गया। 30 नवम्बर, 1962 को उन्हें पाँच वर्ष के लिए महासचिव नियुक्त किया गया। अवधि की समाप्ति के बाद उन्हें निर्वाचित किया गया। ऊ थाँट का कार्यकाल सन् 1971 में समाप्त हुआ। सन् 1972 में

आस्ट्रिया के कुर्त बाल्डहाइम को महासचिव के पद पर नियुक्त किया गया। 1981 में उनकी दूसरी कार्यावधि भी समाप्त हुई। 12 दिसम्बर, 1981 को पैरू के जेवियर पेरेज द कुइयार को इस पद पर नियुक्त किया गया। जनवरी, 1986 में वे दुबारा नियुक्त किए गए दस प्रकार वे दस वर्षो तक अपने पद पर रहें। जनवरी, 1992 को डॉ. बुतरस घाली जो मिस्त्र के रहने वाले है, को महासचिव नियुक्त किया गया।

3.3.10. महासचिव के अधिकार एवं कार्य (Powers and Functions of the Secretary General)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव की शक्तियाँ काफी व्यापक हैं और उस पर गुरुतर दायित्व सौंपा गया है। उसका पद अत्यन्त, गौरव, गरिमा तथा प्रतिष्ठा का है। यद्यपि चार्टर की धारा 97 में महासचिव को केवल मुख्य प्रशासकीय अधिकारी बतलाया गया है किन्तु उसके कार्य केवल प्रशासकीय दायित्वों तक ही सीमित नहीं है। वह अन्य अनेक महत्वपूर्ण कार्यो का भी सम्पादन करता है। उसके आधारभूत स्थान को विभिन्न शब्दों में चित्रित किया गया है। डॉलवे के मतानुसार ''महासचिव को जितने विस्तृत रूप में अंतर्राष्ट्रीय अधिकार प्राप्त है, वे शायद ही आज तक दुनिया के किसी एक व्यक्ति को प्राप्त हुए हों।'' क्लॉड ने लिखा है: 'संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव को वह संवैधानिक शक्ति प्राप्त है कि वह जितना बड़ा आदमी बनना चाहे बन सकता है।''[112] शिवेल ने उसे सुरक्षा परिषद् का अतिरिक्त सदस्य कहा है जिसे न तो मत देने का अधिकार है और न जिसके पास निषेधाधिकार है। उसकी तुलना समस्त महासभा से भी की गयी है। महासचिव को विश्व का प्रथम नागरिक अथवा विश्वनेता बतलाया गया है। ट्रीग्व ली ने अनुसार शांति और सभ्यता की आशाएँ महासचिव के पद में निहित है। न्यूयार्क टाइम्स का मत है कि संयुक्त राष्ट्रसंगठन का भाग्य काफी हद तक महासचिव के चरित्र व बुद्धिमता पर निर्भर है। उपर्युक्त सभी विचारों का सारांश यदि हम निरूपति करें तो वह इस प्रकार होगा कि विश्व-संगठन में महासचिव का पद बड़े महत्व का है और उसके कार्यो की सीमा निर्धारित करना बड़ा कठिन है फिर भी लेखकों द्वारा उसके कार्यो को सूचीबद्ध करने का प्रयास किया गया है। सन् 1947 में प्रस्तावक आयोग ने महासचिव के कार्यो को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया था:

(क) सामान्य प्रशासन अथवा व्यवस्था;
(ख) प्राविधिक कार्य;
(ग) वित्तीय कार्य;
(घ) सचिवालय के संगठन अथवा प्रशासन-समबन्धी कार्य;
(ङ) प्रतिनिध्यात्मक कार्य तथा राजनीतिक कार्य।

3.3.10.1. प्रशासकीय कार्य:- चार्टर की धारा 97 में महासचिव को संघ का मुख्य प्रशासकीय अधिकारी घोषित किया गया है। इस धारा की भाषा इतनी व्यापक है कि यदि हम महासचिव की तुलना सम्पूर्ण सचिवालय से करें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस धारा के अनुसार महासचिव और उनके कर्मचारियों को मिलाकर

[112] "The Secretary General of the U.N. has a constitutional licence to be as a big man as he can." -Claude: op.cit., p. 214

सचिवालय का गठन होता है।[113] महासचिव को सचिवालय के संगठन तथा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के दायित्वों का क्षेत्र निर्धारित करने का अधिकार है। सचिवालय के संगठन तथा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के दायित्वों का क्षेत्र निर्धारित करने का अधिकार है। सचिवालय के सदस्यों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, वेतन, पदोन्नति तथा अनुशासन की कार्यवाईयों के लिए वही जिम्मेवार है। कर्मचारियों की नियुक्ति में उसे भौगोलिक स्थिति का भी ध्यान रखना पड़ता है तथा सम्बद्ध सरकारों से परामर्श लेना पड़ता है। नियुक्ति के साथ-साथ महासचिव को उन्हें पदच्युत करने का भी अधिकार है। सचिवालय का समस्त प्रशासन-कार्य उसी की देख-रेख में चलता है। केवल यही सचिवालय के कार्य के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए अनुच्छेद 7 के अर्थ में महासचिव को संयुक्त राष्ट्र का एक प्रमुख अंग समझा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के ध्येयों की पूर्ति के लिए उसके प्रमुख अंग ही विशेष रूप से उत्तरदायी है और चार्टर के सिद्धांतों को निभाने का मुख्य दायित्व भी उन्हीं पर है। महासचिव को एक मुख्य अंग मान लेने से यह सिद्ध हो जाता है कि सदस्य राज्यों के संवैधानिक व्यवहार का उत्तरादायित्व निभाने में उसका हाथ है। संगठन का प्रमुख प्रशासकीय अधिकारी होने के नाते वह लेख्यों व प्रारूप रिपोटों और अन्य आवश्यक पत्रों को तैयार करता है। इस शक्ति के आधार पर वह वैसे कार्य कर सकता है जो अप्रत्यक्ष रूप से अन्तिम निर्णयों को प्रभावित करें।

धारा 98 के अनुसार भी महासचिव को अधिक शक्तियाँ प्राप्त है। इस धारा के अंतर्गत वह महासभी, सुरक्षा परिषद्, आर्थिक और सामाजिक परिषद् तथा संरक्षण परिषद् की बैठकों के महासचिव का कार्य सम्पन्न करता है और वह ऐसे कार्य भी कर सकता है जो इन अंगों द्वारा समय-समय पर सौंपे जायें। वही महासभा और सुरक्षा परिषद् की अस्थायी कार्यावली तैयार करता है।

चार्टर की धारा की 98 के अनुसार महासचिव को अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय को छोड़कर संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य अंगों से सम्बन्धित कतिपय प्रशासकीय अधिकार प्रदान किये गये हैं। सुरक्षा परिषद् को छोड़कर वह अन्य रंगों की असाधारण बैठक बुलाता है, सभी अधिवेशनों से सम्बद्ध कागजातों को रखता है, विभिन्न अंगों, आयोगों तथा विशिष्ट संस्थानों के लिए कर्मचारियों की व्यवस्था करता है; उनके सभी कागजातों का प्रकाशन करता है तथा अन्य रूटीन सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करता है। वह संधियों का पंजीकरण करता है तथा उनका प्रकाशन करता है। उदाहरणार्थ, 1968 में अमरीका, रूस आदि द्वारा की गयी खुले आकांश की संधि (Open Space Treaty) की पंजीकरण सचिवालय में ही हुआ।

3.3.10.2. प्राविधिक कार्य- प्रशाकीय कार्यों के साथ-साथ महासचिव को कुछ प्राविधिक कार्यो का भी सम्पादन करना पड़ता है। इस श्रेणी के अंतर्गत, महासचिव के अनेक कार्य आते हैं; जैसे- समस्याओं का आवश्यक अध्ययन, स्मृति-पत्र, प्रतिवेदन, वैधानिक तथ्य में सुझाव तथा सर्वेक्षण आदि। संघ के अन्य अंगों के अनुरोध पर आवश्यक अध्ययन की व्यवस्था की जाती है तथा आवश्यकतानुसार विशेष सुझाव

[113] Stephen M. Schwell: The Secretary General of the United Nations, pp. 25-26.

प्रदान किया जाता है। सचिवालय में एक परिगणना विभाग की स्थापना की गयी है जो सरकारी, विशिष्ट अभिकरणों तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों की जाँच तथा विश्लेषण करता है। वह विभाग उपयोगी सूचनाओं को प्रकाशित करता है। महासचिव अथवा उसका कोई प्रतिनिधि अधिवेशनों में भाग लेता है, आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करता है तथा प्राविधिक बातों में परामर्श देता है। लियोनार्ड के अनुसार ''चूँकि महासचिव तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारी इस विशिष्ट ज्ञान के भंडार है अतः महासचिव से ही समस्याओं के आवश्यकत अध्ययन, स्मृति-पत्र, प्रतिवेदन, कानूनी तथ्य तथा सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का अनुरोध किया जाता है।''

3.3.10.3. वित्तीय कार्य– महासचिव को कुछ महत्वपूर्ण वित्तीय कार्यों का भी सम्पादन करना पड़ता है। उसका मुख्य आर्थिक कार्य महासभा के अधिकार वं नियमों के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ का बजट तैयार करना है। उसके आय-व्यय का संचालन सुचारु रूप से हो रहा है अथवा नहीं। इसका सम्पूर्ण दायित्व महासचिव होता है। इस कार्य हेतु उसे सहायता देने के लिए एक विभाग का गठन किया गया है। यह एक सहायक महासचिव के अधीन है। इसका कार्य बजट बनाना, धन की मांग करना, सदस्य-राज्यों के अनुदानों को निश्चित करना तथा उनसे प्राप्त अनुदानों को एकत्रित करना है। यह आलेख का भी कार्य करता है। चूँकि यह विभाग महासचिव का सहायक निकाय है अतः इसके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्यो का अंतिम दायित्व महासचिव का ही है। सारांश यह कि महासचिव संयुक्त राष्ट्र का बजट तैयार करता है, धन का बँटवारा करता है तथा व्यय पर नियंत्रण रखता है। वही संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा प्राविधिक सहायता कार्य में खर्च किये जाने धन तथा अन्य व्यय की देख-रेख करता है। वह सदस्य राज्यों से अनुदान ग्रहण करने की व्यवस्था करता है। विशेषोद्देशीय अभिकरणों तथा अन्य व्यय की संस्थाओं के बजट पर भी उसकी नजर रहती है। वह अपने वार्षिक प्रतिवेदन के एक भाग के रूप में महासभा के समक्ष संघ के बजट को पेश करता है। इस दृष्टिकोण में उसकी स्थिति संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री से मिलती-जुलती है। जिस प्रकार प्रधानमंत्री संसद के समक्ष धन की मांग पेश करता है उसी प्रकार महासचिव भी धन की मांग महासभा के समक्ष पेश करता है। किन्तु संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री की स्थिति काफी मजबूत होती है। बहुमत दल को होने के नाते वह अपनी मांगों को बहुत आसानी से संसद से पास करवा लेता है परन्तु महासचिव को ऐसे निकाय से अपनी मांगे स्वीकृत करानी पड़ती है। जिसमें विरोधी दलों का ही प्राबल्य रहता है।

3.3.10.4. प्रतिनिध्यात्मक कार्यः महासचिव सम्पूर्ण संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रतिनिधि होता है। इस दृष्टिकोण से सचिवालय का ही अध्यक्ष नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व संस्था का महासचिव होता है। इस दृष्टिकोण से उसकी स्थिति काफी मजबूत है। संघ के विभिन्न अंगों में बहुत से सवस्य होते हैं और प्रत्येक अंग का अपना अलग-अलग दायित्व होता है। परन्तु सम्पूर्ण संघ का केवल एक ही महासचिव होता है। इस नाते वह संघ के किसी भी अंग की बैठक में उपस्थित हो सकता है या अपना प्रतिनिधि भेज सकता है। विश्व संस्था के विभिन्न अंगों तथा संस्थाओं के बीच

संचार-सूत्र महासचिव का कार्यालय ही होता है। उसी के माध्यम से इनके मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। वह संघ का प्रमुख प्रवक्ता होता है। अत: वह संघ की नीतियों को स्पष्ट करता है तथा समाचार-पत्र प्रतिनिधियों के प्रश्नों के उत्तर देता है। विश्व जनमत, सरकारी अधिकारियों वह मंत्रियों के वक्तव्यों पर अधिक ध्यान नहीं गया, वे प्रचार-मात्र समझे जाते हैं। परन्तु महासचिव के वक्तव्यों के सम्बन्ध में ऐसी धारणा नहीं हैं। वह एक निष्पक्ष पदाधिकार समझा जाता है। लियोनार्ड के अनुसार महासचिव की एक ऐसा स्रोत है जिसके पास अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के निष्पक्ष ब्योरे को जानने के लिए आँखें उठी रहती है। उसके द्वारा निर्धारित नीतियाँ अवश्य ही अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण व अंतर्राष्ट्रीय हित को दर्शाती हैं।

वह अपने भाषणों द्वारा संसार के जनमत को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है। वह संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता वह विफलता पर प्रकाश डालता है तथा उसकी त्रुटियों को सुधारने का सुझाव देता है। वह अनेकों व्यक्तिगत सम्मेलनों, सभाओं और संयुक्त राष्ट्र वे शांति के सम्बन्ध में भाषण देता है। डाग हैमरशोल्ड ने इस तरह के अनेक भाषण दिये थे। बहुत से ऐसे भाषण विश्वविद्यालयों में संयुक्त राष्ट्र परिषदों के तत्वावधान में दिये गये हैं। 28 मई, 1967 को पेरिस इन टैरिस में दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुए महासचिव ऊ थाँट के अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को स्पष्ट करते हुए वियतनाम और मध्य-पूर्व के झगड़ों के सम्बन्ध में ऐसी भाषा का प्रयोग किया था जो अवश्य ही महान राष्ट्रों को अप्रसन्न करने वाली थी।

महासचिव को यह अधिकार है कि संयुक्त राष्ट्र के कार्य पर महासभा को एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करें। यह रिपोर्ट साधारण सभा के नियमित सत्र में प्रस्तुत की जाती है जो प्रतिवर्ष सितम्बर के तीसरे सप्ताह में शुरू होता है। महासचिव अपनी वार्षिक रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यो का ब्योरेवार वर्णन करता है और यह भी बताता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों पर कहाँ तक कार्य हुआ है। इन रिपोर्टो में महासचिव का व्यक्तित्व बोलता है, अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर उसके दृष्टिकोण व्यक्त होते हैं। उदाहरण के लिए ट्रीग्वी ली ने अपनी चौथी और पाँचवी रिपोर्ट में संसार की राजनीतिक स्थिति पर भली भाँति प्रकाश डाला था। ऊ थाँट ने अपनी सभी वार्षिक रिपोर्टो में इस बात पर बल दिया है कि संसार सब राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता मिलनी चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं, अपनी वार्षिक रिपोर्टो में महासचिव विश्व की स्थिति का परीक्षण करते हुए अपनी विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। स्टीफन एम. शैवबल के विचार में ''महासचिव की वार्षिक रिपोर्ट की प्रस्तावना संगठन के कार्य और उसके पद के लिए अत्यनत महत्वपूर्ण साबित हुई है।''[114] आर.ए. फैल्क और एस. सच. मैंडलोविट्ज के अनुसार ''वास्तव में ये रिपोर्ट संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलताओं और विफलताओं का संतुलित-विवरण बन गयी है।[115] लियोनार्ड[116] ने महासचिव की वार्षिक रिपोर्टो की तुलना अमरीकी राष्ट्रपति के संदेशों से की है। जिस प्रकार अमरीकी राष्ट्रपति

[114] Schewell: op. cit., p. 25
[115] The United Nations, p. 309
[116] L.L. Leonard: op. cit., p. 245

अपने संदेशों में देश की स्थिति और नीतियों का स्पष्टीकरण करता है, उसी प्रकार महासचिव अपनी वार्षिक रिपोर्ट में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति व घटनाओं का वर्णन करता है और अपने सुझाव को प्रस्तुत करता है।

3.3.10.5. राजनीतिक कार्य– उपर्युक्त कार्यो के अतिरिक्त महासचिव को राजनीतिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। उसकी राजनीतिक शक्तियों का स्रोत चार्टर की धारा 99 हैं। उसे भार दिया गया है कि विश्व समुदाय में शांति और व्यवस्था बनी रहे, इस पर वह हमेशा सतर्क रहे तथा कहीं भी इन पर किसी तरह का खतरा उत्पन्न होने पर सुरक्षा परिषद् का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करें। दुनिया में कहीं भी राजनीतिक, आर्थिक अथवा राज्य-सम्बन्धी और विश्व-संस्था का ध्यान अविलम्ब आकृष्ट कराने का दायित्व दिया गया है। महासचिव को महासभा की कार्यसूची में कोई अतिरिक्त विषय जोड़ने का भी अधिकार दिया गया है। वह सुरक्षा परिषद् के समक्ष उन आर्थिक और सामाजिक घटनाओं को रख सकता है जिनके राजनीतिक परिणाम निकलने की सम्भावना हो। उसे यह अधिकार मिल गया है कि वह स्वयं निश्चय करें कि अमुक अंतर्राष्ट्रीय समस्या को किस समय सुरक्षा परिषद् के सामने रखें। उसे अधिकार है कि परिषद् के समक्ष मामला पेश करने से पूर्व वह सविस्तर अनौपचारिक रूप से गुप्त वार्तालाप भी कर ले। गुप्त वार्तालाप की शक्ति के प्रयोग में महासचिव स्वतंत्र है और इस आधार पर उसकी कोई भी आलोचना किया जाना अनुचित है। इन गुप्त वार्ताओं को कभी प्रकाशित नहीं किया जाता और यही उनकी विशेषता है। वियतनाम और इजरायल की समस्या को सुलझाने के लिए ऊ थाँट ने इस प्रकार के राजनय का प्रयोग किया था।

महासचिव को अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक घोषणा करने और सुझाव रखने का अधिकार है। वह चाहे तो सुरक्षा परिषद् के विचारार्थ प्रारूप-प्रस्ताव भी रख सकता है। अनेक ऐसे अवसर आये हैं जब सुरक्षा परिषद् की कार्यवाई के बीच महासचिव ने उसके समक्ष विचारार्थ अपने प्रारूप-प्रस्ताव पेश किये हैं। उदाहरण के लिए सन् 1950 में जब कोरिया-समस्या पर विचार-विमर्श करने के लिए सुरक्षा परिषद् की बैठक बलायी गयी तो महासचिव ने ही इस समस्या पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला और उत्तरी कोरिया के विरूद्ध सैनिक कार्यवाई करने की अपील की। साथ ही इस सैन्यकार्यवाही के लिए सदस्य-राज्यों का सहयोग हासिल करने तथा साम्यवादी सरकारों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न के लेकर सोवियत रूस ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्यवाहियों के बहिष्कार का निर्णय लिया तो लगता था कि संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्रृंखल हो जायेगा। इस समस्या के समाधान हेतु ट्रीग्वी ली ने महान् देशों के प्रधानों के साथ बातचीत करने के लिए लगभग आधे विश्व की यात्रा की और समझौते की योजनाएँ प्रस्तुत की। ठीक ऐसे ही संघ के दूसरे महासचिव ने अनेक ऐसे कदम उठायें जिनका राजनीतिक महत्व था, जैसे लेबनान स्थित संघ के पर्यवेक्षक दल को बड़ा बनाने (सन् 1958) लेबनान की समस्या को सुलझाने (सन् 1959) तथा रंगभेद की नीति के समाधान सम्बन्धी निर्णय। कांगो-युद्ध के समय उनको बहुत बड़ी जिम्मेवारी का निर्वाह करना पड़ा था। वहां गृहयुद्ध की समाप्ति कर शांति-स्थापना हेतु जो सेना भेजी गयी, महासचिव ने स्वयं उस सैनिक कार्यवाही का निर्देशन किया। सन् 1965 में भारत-पाक युद्ध समाप्त कराने के निमित्त महासचिव ऊ थाँट

के द्वारा अनेक प्रयास किये गये। इसके अतिरिक्त साइप्रस संकट, पचिमी एशिया संकट, वियतनामा समस्या के सम्बन्ध में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही। मध्यपूर्व की समस्या के समाधान के लिए ऊ थाँट ने श्री जारिंग को नियुक्त किया था। संयुक्त राष्ट्र आपात् सेना के मुख्य अधिकारी भी महासचिव के द्वारा ही नियुक्त किए गए थे। जब निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् किसी विवाद के सम्बन्ध में पंगु हो जाती है तो महासचिव की उस विवाद को अन्य साधनों से सुलझाने का प्रयास करता है। महासभा के शिष्टमंडलों के बीच जो वार्ता हों है उसमें भी महासचिव सहायक होते हैं।

इस प्रकार धारा 99 के अंतर्गत, जो महासचिव के राजनीतिक अधिकारों का स्त्रोत हैं, महासचिव को विस्तृत एवं व्यापक दायित्व एवं अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया है। इस धारा की आड़ में वह अनेक दृष्टियों से विश्व-संस्था को देखकर कहा था- ‘‘काश यह अनुच्छेद मेरे अधिकार में रहता।’’[117]

3.3.10.6. अन्य कार्य- महासचिव को कुछ ऐसे कार्य करने होते हैं जिनका संयुक्त राष्ट्रसंघ से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरणार्थ, मलेशिया की स्थापना के सम्बन्ध में जब मलेशिया और इंडोनेशिया के बीच मतभेद पैदा हो गये तो दोनों सरकारों ने महासचिव से प्रार्थना की कि वे साबाहा तथा सारबाक की जनता का मत जानने की व्यवस्था करें। महासचिव ने अपनी इच्छानुसार राष्ट्रसंघीय मिशन भेज दिया जिसने निर्णय दिया कि साबाह और सारबाक की जनता मलेशिया की स्थापना के पक्ष में है। कम्बोडिया और थाईलैंड की समस्या को सुलझाने के लिए एक विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किया। इसी तरह के कच्छ के रन का विवाद जब अंतर्राष्ट्रीय विवाचन न्यायाधिकरण को सौंप दिया गया। महासचिव ने इस न्यायाधिकरण के लिए एक अध्यक्ष मनोनीत कर दिया। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सदस्य-सरकारों की प्रार्थना पर महासचिव कई महत्तवपूर्ण कार्यो का सम्पादन करता है जिनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से विवादों के शांतिपूर्ण समाधान में सहायता मिलती है।

विगत वर्षों में महासचिव के पद पर जो व्यक्ति निर्वाचित होकर आसीन रहे उन्होंने अपने-अपने ढंग से इस पद की गरिमा और महत्व को बनाये रखने तथा बढ़ाने में योगदान किया है। अतः इन विभिन्न महासचिवों द्वारा निभायी गयी भूमिका का ज्ञान अनिवार्य है।

3.3.12. पाठ सार/सारांश

ऊपर लिखी बातों को ध्यान में रखकर हम कह सकते है कि संयुक्त राष्ट्र के महासचिव का पद वास्तव में महत्त्वपूर्ण है। भले ही राष्ट्रों की संप्रभु एकता के सिद्धांत के कारण उसकी शक्तियों का क्षेत्र सीमित क्यों न हो गया हो फिर भी स्पष्ट है कि उसकी शक्तियाँ बढ़ी है; और बढ़ती जा रही हैं। पिछले तीन दशकों के अनुभव से यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा कि जैसे-जैसे शीतयुद्ध की तीक्षणता कम होती जाएगी और संयुक्त राष्ट्रसंघ को वित्तीय संकट से मुक्ति मिलती जाएगी वैसे-वैसे महासचिव का पद अधिक क्रियात्मक तथा गत्वर होता जायेगा। परन्तु इसके लिए सदस्य-राष्ट्रों का सहयोग और विश्वास आवश्यक होगा। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि न तो वह हिटलर बन

[117] Schewell: op.cit., p. 17

सकता है और न नेपालियन। वह लिंकन, रूजवेल्ट और लॉयड जार्ज भी नहीं बन सकता। सदस्यों के सहयोग के अनुपात में उसकी शक्ति घट-बढ़ सकती है। उसके अपने व्यक्तित्व पर भी उसकी शक्ति घट-बढ़ सकती है। जैसा लियोनार्ड ने लिखा है: ''महासचिव अपनी अद्वितीय राजनीतिक शक्तियों के प्रयोग में महान् उत्तरादायित्व रखता है। यदि वह उनका प्रयोग बुद्धिमता से करे तो वे शांति स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो सदस्य-सरकारें महासचिव के अधिकार को सीमित करने की चेष्टा करेंगी और इससे सम्पूर्ण संगठन को हानि होगी।''[118] अपनी बुद्धिमता तथा राष्ट्रों के सहयोग से वह केवल सेक्रेटरी ही नहीं रहेगा वरन् एक कारगर जेनरल भी बन सकेगा। इसके निमित्त चार्टर में संशोधन की भी आवश्यकता नहीं है। महासचिव-पद की उभरती हुई प्रवृत्तियों पर टिप्पणी करते हुए बेन्डेनबोश तथा होगन ने लिखा है: ''कुछ दशकों के बाद महासचिव की भूमिका तथा परिस्थिति क्या होगी, इसका कोई अनुमान नहीं कर सकता, ठीक वैसे ही जैसे कि सन् 1789 में यह नहीं कहा जा सकता था कि संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति के पद की आगे आने वाले समय में क्या प्रवृत्तियाँ होगी।''[119]

3.3.13. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1.) सचिवालय की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ? प्रश्नः- 2.) सचिवालय में शपथ एवं सेवा की शर्ते के विषय में बताइए।

प्रश्नः- 3.) सचिवालय में कर्मचारियों का चयन किस प्रकार से किया जाता है।

प्रश्नः- 4.) महासचिव के कार्यो व अधिकारों का वर्णन कीजिए।

प्रश्नः- 5.) सचिवालय के विभिन्न विभाग का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 6.)सचिवालय की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

प्रश्नः- 7.) सचिवालय में शपथ एवं सेवा की शर्ते के विषय में बताइए।

प्रश्नः- 8.)सचिवालय में कर्मचारियों का चयन किस प्रकार से किया जाता है।

प्रश्नः- 9.)महासचिव के कार्यो व अधिकारों का वर्णन कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) सचिवालय में महासचिव की नियुक्ति तथा पदावधि का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 2) सचिवालय में महासचिव का कार्यकारिणी कार्यालय का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 3) सचिवालय में महासचिव के प्राविधिक कार्य उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 4) महासचिव के राजनीतिक कार्य का वर्णन किजिए ?

प्रश्नः-5) सचिवालय का संगठन उल्लेख किजिए?

---

[118] L.L. Lenoard: op.cit., p. 252

[119] No one can say exactly what the role and status of the Secretary General will be after a few decades, any more than the later trends in the office of the Presidents of the United States could have been pradicated in 1789".

- Vandenbosch & Hogan: op.cit., p. 182

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) सचिवालय में विभागों की संख्या है

1) 6 2) 7 3) 8 4) 10

प्रश्नः- 2) संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख कार्यपालक होता है।

1) महासचिव 2) उपमहासचिव 3) अध्यक्ष 4) प्रशासक

प्रश्नः- 3) सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में महासचिव के कार्य-काल कितने वर्ष का सुझाव दिया गया?

1) 3 2) 4 3) 5 4) 4

प्रश्नः- 4) चार्टर की किस धारा में महासचिव को संघ का मुख्य प्रशासकीय अधिकारी घोषित किया गया है। ?

1) धारा 97 2) धारा 98 3) धारा 99 4) धारा 100

प्रश्नः- 5) ट्रीग्वे ली को महासचिव के पद पर नियुक्त किया गया वह किस देश से है ?

1) जेनेवा 2) न्यूयार्क 3) हेग 4) नार्वे

3.3.14. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- इन शार्ट द चीफ एडिमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर ऑफ द यू.एन. होल्ड ऑफ यूनिक पोणिसन
- द सैक्टरी जनरल ऑफ द यू.एन हैज ए फॉनसिल्यूशनल लाइसंस ऑफ बी ऐज ए बीग मैन ऐज ही कैन क्लाउड
- स्टैपन एम. स्केवल द सैक्टरी जनरल ऑफ द यूनाइटिड नेशनस

- इन शार्ट द चीफ एडिमिनिस्ट्रेटिव ऑफिसर ऑफ द यू.एन. होल्ड ऑफ यूनिक पोणिसन
- द सैक्टरी जनरल ऑफ द यू.एन हैज ए फॉनसिल्यूशनल लाइसंस ऑफ बी ऐज ए बीग मैन ऐज ही कैन क्लाउड
- स्टैपन एम. स्केवल द सैक्टरी जनरल ऑफ द यूनाइटिड नेशनस

इकाई–2: न्याय–परिषद

इकाई की रूपरेखा:

3.2.1. उद्देश्य कथन

3.2.2. सरंक्षण–प्रणाली के आधार (Basis of Trusteeship System)

3.2.3. संरक्षेण–प्रणाली के उद्देश्य (Aims and Objects of Trusteeship System)

3.2.4. संरक्षण–व्यवस्था के प्रदेश (Trust Territories)

3.2.5. न्यास समझौते (Tust Pacts)

3.2.6. संरक्षण–परिषद् (Trusteeship Council)

3.2.7. मतदान और कार्य विधि तथा संघ के अन्य अंगों के साथ

3.2.8. न्यास प्राप्त करने वाले देशों का कर्त्तव्य

3.2.9. संरक्षण परिषद् के अधिकार और कार्य

- 3.2.9.1.वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार:
- 3.2.9.2. प्रार्थना–पत्रों का परीक्षण:
- 3.2.9.3.निरीक्षक–मंडल भेजने का अधिकार:

3.2.10. संरक्षण पद्धति की सीमाएँ और महत्त्व (Limitations and importance of Trusteeship System)

- 3.2.10.1. स्वेच्छा से संरक्षण पद्धति के अंतर्गत प्रदेश रखने की योजना कागजी:
- 3.2.10.2. दंड–व्यवस्था का अभाव:
- 3.2.10.3. संरक्षित प्रदेशों की जनता की याचिकाओं पर दृढ़ निर्णय नहीं:
- 3.2.10.4. संरक्षित प्रदेशों के निवासियों के विकास पर बहुत कम ध्यान:
- 3.2.10.5. सदस्यों की राजनीति गुटबंदी:

3.2.11.संरक्षण–व्यवस्था और समाज्ञा–व्यवस्था की तुलना (Comparison between Trtusteeship Sytem and Mandae System)

3.2.12.अन्तर

- 3.2.12.1. सरंक्षण परिषद् अधिक व्यापक एवं विस्तृत है जेम्स मूरे
- 3.2.12.2. संरक्षण प्रदेशों का विभिन्न श्रेणियों में विभाजन नहीं
- 3.2.12.3. निरीक्षण एवं अधीक्षणा की भिन्न व्यवस्था
- 3.2.12.4. व्यापक आधार एवं उद्देश्य
- 3.2.12.5. संरक्षण परिषद् का संगठन स्थायी मैण्डेट आयोग से भिन्न
- 3.2.12.6. सरंक्षण परिषद् की शक्तियाँ मैण्डेट आयोग से अधिक व्यापक

3.2.13. पाठ का सार/ सारांश

3.2.14. अभ्यास/बोध प्रश्न

- 3.2.14.1. संरक्षण प्रणाली के आधार के बारे में बताइए।
- 3.2.14.2. सरंक्षण परिषद् के बारे में आप क्या जानते है?

3.2.14.3. सरंक्षण परिषद् के पदेश के बारे में बताइए।

3.2.14.4. संरक्षण परिषद् के उद्देश्यों के विषय में बताइए।

3.2.15. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.2.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- संरक्षण प्रणाली के आधार के विषय में जानकारी प्राप्त करोंगें
- सरंक्षण प्रणाली के उदेश्यों के विषय में जानकारी प्राप्त होगी।
- संरक्षण परिषद के बारे में जानोंगे।
- सरंक्षण परिषद् के प्रदेश के बारे में जानोगें।

3.2.2. प्रस्तावना

पिछली शताब्दी में पराधीन क्षेत्रों की जनता के प्रति अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के विचार का धीरे-धीरे विकास हुआ। अब सभ्य राज्य यह अनुभव करने लगे कि पिछड़ी हुई जातियों के नैतिक स्तर का सुधार करना उनका अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व है। राष्ट्रसंघ की समाज्ञा पद्धति पराधीन प्रदेशों के प्रति अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों को बढ़ावा देने वाला प्रमुख पग था। यह पद्धति उन क्षेत्रों पर लागू होती थी जो प्रथम विश्वयुद्ध के फलस्वरूप शत्रु राज्यों से छीन लिए गये थे। फिर भी इस व्यवस्था में यह सिद्धांत अंतर्निहित था कि पराधीन देशों की व्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय देख-रेख आवश्यक थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों की ओर से आत्म-निर्णय के सिद्धांत को बड़े जोर-शोर से प्रचारित किया गया। मित्र राष्ट्रों की इस नीति की अभिव्यक्ति 1941 के अटलांटिक चार्टर में हुई जिस पर राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथ प्रधानमंत्री चर्चिल ने हस्ताक्षर किये थे। सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन में न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, मध्यपूर्व तथा दक्षिण अमरीका के देश, सोवियत रूस तथा चीन उपनिवेशवाद के पूर्ण उन्मूलन के पक्ष में थे। परन्तु फ्रांस, हालैंड तथा दक्षिण अफ्रीका आदि उपनिवेशों वाले देश अपने उपनिवेशों पर अपना नियंत्रण छोड़ने को तैयार नहीं थे। संयुक्त राज्य अमरीका सामान्यत: उपनिवेशवाद विरोधी था, परन्तु वह भी सामरिक कारणों से प्रशांत महासागर के द्वीपों पर अपना नियंत्रण चाहता था। ऐसी परिस्थिति में सम्मेलन में भाग लेने वाले राष्ट्रों को परस्पर दो विरोधी विचारों के संघर्ष के बीच मार्ग ढूँढ़ निकलना था जो पराधीन क्षेत्रों की समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से स्थायी रूप से सुलझा सके। इन दो परस्पर विरोधी विचारों में पहला विचार यह था कि कुछ राष्ट्र उपनिवेशों पर अपना पूर्ण नियंत्रण चाहते थे। लेकिन समझौते के लिए वे कुछ बंधन स्वीकार करने के पक्ष में थे। दूसरी ओर यह विचार लोकप्रिय था कि उपनिवेशों को स्वतंत्र किया जाना चाहिए अथवा उन्हें व्यापक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण में रखा जाना चाहिए। इन दोनों के बीच हुए समझौते का परिणाम संरक्षण प्रणाली थी। यह व्यवस्था एक ओर तो इस साम्राज्यवादी सिद्धांत को स्वीकार करती है कि संसार की कुछ पिछड़ी हुई जातियाँ अभी स्वशासन के योग्य नहीं हैं और सभ्य जातियों का यह कर्त्तव्य है कि उन्हें सभ्य और स्वशासन के योग्य बनावें। परन्तु दूसरी ओर यह एक साम्राज्यवाद-विरोधी व्यवस्था भी है क्योंकि, इसके अंतर्गत ''पूर्ण स्वतंत्रता न पाये प्रदेशों के प्रशासन का उत्तरदायित्व ग्रहण करने वाले संयुक्त राष्ट्र के सदस्य, यह स्वीकार करते हैं कि इन प्रदेशों

के निवासियों के हितों की रक्षा सर्वप्रथम होनी चाहिए और वे एक पवित्र न्यास के रूप में अपना यह दायित्व मानते हैं कि वर्तमान चार्टर के स्थापित अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा प्रणाली, के अधीन इन देशों के निवासियों की अधिक-से-अधिक भलाई करनी है।''

3.2.3. संरक्षेण-प्रणाली के उद्देश्य (Aims and Objects of Trusteeship System)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि संरक्षण-पद्धति पराधीन प्रदेशों को अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण के अंतर्गत रखने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस दृष्टिकोण से यह चार्टर के अंतर्गत राष्ट्रसंघ की समाज्ञा की पद्धति का रुपांतर है। चार्टर के अध्याय 11,12 और 13 में अर्थात् अनुच्छेद (75-91) में इस पद्धति की विस्तृत व्याख्या की गयी है। अध्याय 11 में एक ऐसी घोषणा का उल्लेख किया गया है जिसमें उन सिद्धांतों और उत्तरदायित्वों का वर्णन किया गया है, जिन्हें सदस्य-राज्य अपने अधीन उन क्षेत्रों के प्रशासन में लागू करेंगे जहां के मनुष्यों को पूर्ण रूप से स्वराज्य नहीं मिला है। 12वें अध्याय में एक अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण-पद्धति के स्थापित होने की व्यवस्था की गयी है। इस पद्धति के अंतर्गत उन क्षेत्रों का प्रशासन रहेगा जो पृथक्-पृथक् संरक्षण समझौते द्वारा इसके अंतर्गत रखे जाएंगे। 13वें अध्याय में संरक्षण परिषद् के गठन्, कार्य, शक्ति, मतदान-पद्धति और प्रक्रिया की व्याख्या की गयी है।

चार्टर में संरक्षण-व्यवस्था के उद्देश्य बड़े ही ऊँचे बताये गये हैं जो सामाज्ञा-प्रणाली के उद्देश्य से कहीं अधिक विस्तृत हैं। अनुच्छेद 76 के अंतर्गत इस प्रणाली के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाये गये; 1. अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बढ़ाना 2. संरक्षित प्रदेशों के मनुष्यों ककी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति में योग देना तथा स्वशासन अथवा स्वतंत्रता के क्रमिक विकास को प्रोत्साहन देना, 3. जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के भेद-भाव के बिना सबके लिए मानव-अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान बढ़ाना, 4. सामाजिक, आर्थिक तथा वाणिज्य सम्बन्धी मामलों में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी सदस्यों एवं उनके प्रजाजनों के लिए समानता के व्यवहार का आश्वासन देना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा एक सामान्य आदेश जारी किया गया कि पराधीन क्षेत्रों पर शासन करने वाले सभी सदस्य-राज्य, चाहे वे संरक्षण पद्धति के अधीन हों या न हों, इस सिद्धांत को स्वीकार कर लें कि इन क्षेत्रों के निवासियों के हित सर्वोपरि हैं और इसलिए उन्नति, न्याय, स्वतंत्रता, स्वशासन, शांति, सुरक्षा, विकास, खोज, सहयोग, अच्छे पड़ोस आदि की भावनाओं को प्रोत्साहन दें और सुरक्षात्मक व वैधानिक प्रयोजनों की दृष्टि से आवश्यक परिमिति का ध्यान रखते हुए महासचिव के समक्ष आवश्यक तथ्यों को प्रस्तुत करें। इस प्रकार संरक्षण-पद्धति राष्ट्रसंघ की समाज्ञा पद्धति से भिन्न एक नवीन व्यवस्था है।

3.2.4. संरक्षण-व्यवस्था के प्रदेश (Trust Territories)

संरक्षण-व्यवस्था का क्षेत्र समाज्ञा व्यवस्था की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। सामाज्ञा व्यवस्था केवल उन उपनिवेशों तक सीमित थी, जो शत्रु राज्यों से छीने गये थे, परन्तु संरक्षण व्यवस्था संसार के सभी पराधीन देशों से सम्बन्ध रखती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत संसार के सभी पराधीन देशों और उपनिवेशों को 2 वर्गों में विभाजित किया गया

है: 1. अ-स्वशासित प्रदेश (Non-self Governing Territories) 2. संरक्षित प्रदेश (Trust Territories)।

अ-स्वशासित प्रदेश में वे सब पराधीन देश और उपनिवेश आते हैं, जो संरक्षित प्रदेश न बना दिए गए हो। इस प्रदेशों के सम्बन्ध में शासक देशों से इन प्रदेशों के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं शिक्षा-सम्बन्धी स्थितियों के सम्बन्ध में सूचना देने को कहा गया है, परन्तु उसके अतिरिक्त किसी अन्य प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण की व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में नहीं की गयी है।

संरक्षण प्रदेश के अंतर्गत वे प्रदेश आते हैं जो न्याय-समझौते के द्वारा संरक्षित प्रदेश बना दिये जाते हैं। ये समझौते सम्बन्धित राज्यों के मध्य होते हैं, पर उन पर महासभा की स्वीकृति आवश्यक होती है। निम्नलिखित तीन प्रकार के प्रदेश संरक्षित बनाये जा सकते हैं-

1. सामाज्ञा के अधीन प्रदेश:
2. द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप शत्रु राज्यों से छीने गये प्रदेश: तथा
3. ऐसे प्रदेश, जिन्हें उनके शासन के लिए उत्तरदायी राज्यों द्वारा स्वत: इस व्यवस्था के अंतर्गत रख दिया गया हो।

व्यवहार में किसी भी देश ने अपने अधीन किसी क्षेत्र को संरक्षण-पद्धति के अंतर्गत रखने की उदारता नहीं दिखलाई है। केवल वे ही प्रदेश संरक्षित प्रदेश बनाये गये तो या तो पहले सामाज्ञा प्रदेश थे या जो द्वितीय महायुद्ध के बाद शत्रु राज्यों से छीने गये थे। सामाज्ञा प्रदेशों में दक्षिण-अफ्रीका को छोड़कर सभी प्रदेश-प्राप्त राज्य अपने प्रदेशाधीन प्रदेशाधीन प्रदेशों को संरक्षण-प्रणाली के अंतर्गत हस्तान्तरित करने के लिए सहमत हो गये। तीव्र आलोचना तथा महासभा द्वारा अनुरोध किये जाने के बाद भी शासक देश दक्षिण-अफ्रीका ने दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका को एक संरक्षित प्रदेश बनाना स्वीकार नहीं किया। मामला अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में लाया गया, जिसने यह निर्णय दिया कि यद्यपि दक्षिण अफ्रीका को इस बात के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता कि वह दक्षिण-अफ्रीका को संरक्षित प्रदेश बना दे परन्तु उस पर राष्ट्रसंघ का मैडेट विद्यमान है और राष्ट्रसंघ के उत्तराधिकारी के रूप में संयुक्त राष्ट्र को उस प्रदेश पर वे अधिकार प्राप्त हैं जो राष्ट्रसंघ को प्राप्त थे। परन्तु दक्षिण-अफ्रीका पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उसने महासभा द्वारा स्थापित समिति को इस प्रदेश के शासन के सम्बन्ध में रिपोर्ट भेजने से इनकार कर दिया।

दिसम्बर, 1949 तक न्यास-समझौतों के द्वारा निम्नलिखित 11 प्रदेश संरक्षित प्रदेश बना दिये गये-

क्रं.सं.	संरक्षित प्रदेश	शासक राज्य	जनसंख्या	क्षेत्रफल
1.	टांगानिका	ब्रिटेन	70,79,557	3,62,688
2.	ब्रिटिश कैमरून	ब्रिटेन	9,91,000	34,081
3.	ब्रिटिश टोगोलैंड	ब्रिटेन	3,82,200	13,040
4.	नौरू	आस्ट्रेलिया	3,162	82
5.	न्यूगिनी	आस्ट्रेलिया	10,06,200	9,300
6.	रूआण्डा उरुण्डी	बेल्यिम	37,18,696	20,916

7.	फ्रेंच कैमरून	फ्रांस	27,02,500	1,66,797
8.	फ्रेंच टोगोलैंड	फ्रांस	9,44,446	21,226
9.	पश्चिमी समोआ	न्यूजीलैंड	72,936	1,133
10.	प्रशांत महासागर के द्वीपों का सुरक्षित प्रदेश	संयुक्त राज्य अमरीका	60,000	687
11.	सोमालीलैंड	इटली	9,15,000	1,94,000
योग			174,75,647	9,07,660

3.2.5. न्यास समझौते (Tust Pacts)

न्याय-समझौते में वे शर्ते लिखी हुई होती हैं, जिनके अंतर्गत न्यास भ्-भागों का शासन चलाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार शर्ते ऐसी होनी चाहिए जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित राज्य स्वीकार कर लें। यह समझौते साधारण सभा द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। युद्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए समझौते सुरक्षा परिषद् द्वारा स्वीकृत होने चाहिए। इन समझौतों में परिवर्तन करने के लिए महासभा या सुरक्षा परिषद् की अनुमति आवश्यक है। समझौतों में यह भी लिखा रहता है कि अमुक भू-भाग के लिए प्रशासी अधिकारी कौन-सा राज्य होगा। प्रशासी अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि उसके अधीन संरक्षित भू-भाग शांति व सुरक्षा परिषद् के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने, स्थानीय सुरक्षा और क्षेत्र में शांति-व्यवस्था बनाये रखने के लिए उस क्षेत्र की स्वयं-सेवक सेना व सुविधाओं का उपयोग करें।

प्रशांत महासागर के द्वीपों के संरक्षित प्रदेश को सामरिक महत्व का संरक्षित प्रदेश माना गया है। शेष सब सामान्य संरक्षित प्रदेश है।

3.2.6. संरक्षण-परिषद् (Trusteeship Council)

संरक्षण प्रदेश सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों का सम्पादन करने वाली मुख्य संस्था संरक्षण परिषद् है। यह राष्ट्रसंघ के मैण्डेट आयोग से अधिक शक्तिशाली संस्था है, और संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंगों में से एक है। इस परिषद् का संगठन स्थायी मैण्डेट आयोग से भिन्न है। इसके सदस्य-सरकार के प्रतिनिधि होते हैं, न कि स्वतंत्र विशेषज्ञ। वे सदस्य औपनिवेशिक मामलों के विशेषज्ञ होते हैं क्योंकि चार्टर में विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति की व्यवस्था है। किन्तु उनकी योग्यता की जाँच करने की कोई व्यवस्था नहीं है। इसका संगठन जटिल है क्योंकि इसमें तीन प्रकार के सदस्यों की व्यवस्था हैं:

क) संरक्षित प्रदेशों का प्रशासन करने वाले सदस्य।

ख) सुरक्षा परिषद् के ऐसे स्थायी सदस्य जो संरक्षण प्रदेशों का प्रशासन नहीं कर रहे हो।

ग) अन्य सदस्यों का चुनाव महासभा द्वारा तीन वर्षो के लिए इस तरह किया जाय कि संरक्षित प्रदेश की सम्पूर्ण सदस्य-संख्या प्रशासकीय एवं गैर-प्रशासकीय राज्यों के बीच बराबर विभक्त हो।

इस प्रकार परिषद् में दो तरह के सदस्य होते हैं, स्थायी तथा अस्थायी। पाँच महाशक्तियों सहित प्रशासन करने वाले राज्य स्थायी सदस्य हैं। शेष सदस्य अस्थायी हैं तथा तीन वर्ष के लिए महासभा इनका निर्वाचन करती है। संरक्षण परिषद् में प्रशासी और गैर-प्रशासकीय सदस्यों की संख्या बराबर होनी चाहिए। इस व्यवस्था के अनुसार महासभा द्वारा निर्वाचित सदस्यों की संख्या कमीबेशी होती रहेगी। उदाहरणार्थ, यदि परिषद् में छह ऐसे सदस्य हैं, जिनके अंदर संरक्षित क्षेत्र हों, तो महासभा को केवल चार ही सदस्यों का निर्वाचन करना होगा; क्योंकि पाँच महाशक्तियों में से दो सोवियत संघ, तथा चीन के अधीनस्थ कोई पर-प्रशासित क्षेत्र नहीं है। इस व्यवस्था में प्रशासन करने वाले सदस्य-राज्य तथा गैर-प्रशासन करने वाले सदस्य राज्यों की संख्या एक-सी बनी रहेगी।

3.2.7. मतदान और कार्य विधि तथा संघ के अन्य अंगों के साथ सम्बन्ध (Voting Procedure and Relation in the othe r Organs of the U.N.O.)

चार्टर की धारा 9 में संरक्षण परिषद् की मतदान-प्रणाली का उल्लेख है। इसके अनुसार परिषद् के प्रत्येक सदस्य का एक वोट होगा। इसके निर्णय परिषद् में उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत में किये जायेंगे। संरक्षण परिषद् अपनी कार्यविधि के नियम स्वयं बनाती है। अपने अध्यक्ष चुनने का तरीका भी वह स्वयं निर्धारित करती है। संरक्षण परिषद् की बैठकें नियमानुसार की जाती है। सदस्यों की प्रार्थना पर विशेष बैठक भी बुलायी जा सकती है।

यह परिषद् आवश्यकतानुसार आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् और अन्य संस्थाओं से सहयोग ले सकती है। आर्थिक-सामाजिक परिषद् को यह अधिकार है कि वह सामान्य आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करें या उनके सम्बन्ध में अपने सिफारिशें पेश करें। यदि इस परिषद् को संरक्षित प्रदेशों के सम्बन्ध में विशेष सिफारिश करनी पड़े, तो इसे सरंक्षण परिषद् की सम्मति लेने पड़ेगी। यदि सरंक्षित प्रदेशों के सम्बन्ध में मानव अधिकारों, महिलाओं की स्थिति आदि के सम्बन्ध में याचिकाएँ हों तो सबसे पहले उन पर संरक्षण परिषद् विचार करेगी। यह भी व्यवस्था की गयी है कि विशेष अभिकरणों को संयुक्त राष्ट्रसंघ के क्षेत्राधिकार में लाने के लिए जो विचार-विमर्श किया जाये उसमें संरक्षण परिषद् तथा आर्थिक-सामाजिक परिषद् के प्रतिनिधि साथ-साथ सम्मिलित हो सकते हैं। चार्टर के अनुसार महासभा ने संरक्षण परिषद् को यह अधिकार भी दे रखा है कि वह अपने कार्यो के सम्बन्ध में वैधानिक प्रश्नों पर अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय से परामर्श देने के लिए प्रार्थना करें।

3.2.8. न्यास प्राप्त करने वाले देशों का कर्त्तव्य

संयुक्त राष्ट्रसंघ के संविधान में यह उल्लेख किया गया है कि न्यास प्राप्त करने वाले देशों को अपने आपको प्रशासक न मानकर पवित्रता और ईमानदारी से उन प्रदेशों के निवासियों के हितों की रक्षा का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। इस सम्बन्ध में चार्टर में निम्नलिखित उत्तरदायित्वों का वर्णन किया गया है-

1. इन प्रदेशों के लोगों की संस्कृति का पूर्ण ध्यान रखते हुए उनकी राजनीतिक, उनके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार और उन्हें अत्याचारों से बचाने के लिए पूर्ण व्यवस्था करनी होगी।

2. प्रत्येक प्रदेश और उसकी जनता की अपनी परिस्थितियों तथा उनके विकास की अवस्था के अनुसार उनमें स्वशासन को बढ़ावा देने का, उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं को पूर्ण करने और उनकी स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाओं के अधिकाधिक विकास में पूर्ण सहायता देने की व्यवस्था करनी होगी।
3. अंतर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था को बढ़ावा देना होगा।
4. विभिन्न प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए रचनात्मक और शोधकार्यो को प्रोत्साहित करना तथा इस सम्बन्ध में कार्य करने वाली अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से साथ सहयोग देना होगा।
5. सुरक्षा और वैधानिक बातों की सीमाओं का ध्यान रखते हुए महासचिव को इन प्रदेशों की आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में विविध प्रकार की सूचनाएँ और आंकड़ें देने होंगे।

3.2.9. संरक्षण परिषद् के अधिकार और कार्य

संरक्षण परिषद् संयुक्त-राष्ट्रसंघ का एक मुख्य अंग है। यह महासभा से आदेश लेती है और संरक्षित भू-भागों के प्रशासन की देख-रेख करती है। यह मुख्य रूप से तीन प्रकार के कार्य करती है: (क) वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार, (ख) प्रार्थना-पत्रों का परीक्षण, (ग) निरीक्षक-मंडल योजना आदि।

3.2.9.1. वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार:

संरक्षित प्रदेशों पर शासन करने वाले प्रत्येक राज्य का यह कर्त्तव्य है कि यह संरक्षित प्रदेश के निवासियों के राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक और शैक्षणिक विकास के सम्बन्ध में किये गये कार्यों की विस्तृत सूचना प्रतिवर्ष संरक्षण परिषद् को भेजे। यह सूचना वार्षिक रिपोर्ट कहलाती है और परिषद् द्वारा तैयार की गयी एक विस्तृत प्रश्नावली में लगभग ढाई सौ प्रश्न रहते हैं जिनका उत्तर प्रशासकीय राज्यों को देना पड़ता है। संरक्षण परिषद् उस प्रतिवेदन पर विचार करती है। प्रतिवेदन पर विचार करते समय प्रशासकीय राज्य का प्रतिनिधि परिषद् के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उपस्थित रहता है। इसके बाद वह सिफारिशी सहित यह प्रतिनिधि महासभा को देती है। लियोनार्ड का मत है कि ''यह प्रश्नावली एक वास्तविक रूप से विलक्षण लेखा है और एक सरंक्षित प्रदेश के प्रशासन चलाने में जो समस्याएँ आती हैं, इसमें उनका अत्यन्त गहन विश्लेषण किया गया है और इसके कारण प्रशासनकर्ता अधिकारियों पर अपने प्रशासन-कार्यो की जाँच करने व उनका अर्थ निकालने का पूर्ण दायित्व आ जाता है।''[120]

संरक्षण परिषद् ने अपने तीस वर्ष के कार्य-काल में सभी सरंक्षित भू-भागों से सम्बन्धित प्रतिवेदनों पर अनेक बार विचार किया है और महासभा व सुरक्षा परिषद् के समक्ष विभिन्न प्रकार की सिफारिशें भेजी हैं। परिषद् की सिफारिशें इस प्रकार की रही हैं; जैसे मूल निवासियों को सरकार के विभिन्न अंगों में स्थान दिया जाये। उनके वेतन और जीवन स्तर को बढ़ाया जाय, चिकित्सा तथा अधिक लाभप्रद स्वास्थ्य सेवाएँ सुलभ की जायँ, दंढ-पद्धति में सुधार हो, सामाजिक कुरीतियों का अंत करते हुए मूल निवासियों की

[120] Leonard; op.cit, p. 502.

कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहन दिया जाए आदि। संरक्षण परिषद् ने संरक्षित भू-भागों में होने वाले अणु विस्फोटों पर भी विचार किया था।

3.2.9.2. प्रार्थना-पत्रों का परीक्षण:

संरक्षण परिषद् का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य संरक्षित भू-भागों के निवासियों के लिखित एवं मौखिक आवेदन-पत्रों पर विचार करना है। परिषद् के एक भूतपूर्व अध्यक्ष लेसली नोक्स मुनरों के अनुसार ''आवेदन-पत्रों पर विचार करना सरंक्षण परिषद् की सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधियों में से हैं क्योंकि चार्टर द्वारा प्रत्याभूतित आवेदन-पत्र देने का अधिकार संरक्षित प्रदेशों की जनता तथा परिषद् के मध्य सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है।''[121] ये प्रार्थना-पत्र संरक्षित प्रदेशों के निवासियों की व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक कठिनाईयों के सम्बन्ध में होते हैं। जो प्रार्थना-पत्र अभी तक प्राप्त किये गये हैं उनमें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुविधाओं जैसे- विद्यालयों एवं स्कूलों का खुलवाना, रंग-भेद, शिशु-विवाह पर प्रतिबंध, और आर्थिक एवं सामाजिक शोषण को दूर करने की माँग की गयी है। परिषद् इन प्रार्थना-पत्रों को प्रशासकीय अधिकारियों के पास उनकी टिप्पणी के लिए भेजती है, इसके बाद प्रार्थना-पत्रों पर निर्णय लेकर सम्बन्धित पक्षों को आवश्यक निर्देश जारी करती है। इस व्यवस्था के कारण संरक्षित प्रदेश के मूल निवासी अपनी वास्तविक कठिनाइयों से संरक्षण परिषद् को अवगत करा सकते हैं और प्रशासनिक अधिकारियों को मनमानी करने से रोक सकते हैं। अपने अल्पकाल में संरक्षण परिषद् ने विभिन्न प्रश्नों से सम्बन्धित हजारों याचिकाओं पर विचार किया है जिनमें कुछ व्यक्तिगत रही है और कुछ साधारण। परिषद् ने सभी तरह की याचिकाओं पर पूरी तरह ध्यान देने का प्रयत्न किया है।

3.2.9.3. निरीक्षक-मंडल भेजने का अधिकार:

संरक्षण परिषद् का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य संरक्षित प्रदेशों में समय-समय पर निरीक्षक-मंडल भेजना है। सामान्यत: दो वर्ष में एक बार प्रत्येक संरक्षित प्रदेश में यह मंडल पहुँचता रहता है। ये मंडल संरक्षित प्रदेशों की अंतर्राष्ट्रीय जाँच-पड़ताल के बड़े प्रभावशाली साधन हैं। राजनीतिक संस्थाओं, कृषि सम्बन्धी स्थानों, सार्वजनिक सेवाओं, विद्यालयों, कारखानों और स्वास्थ्य सम्बन्धी संगठनों को देखने में निरीक्षक मंडल यह भली-भाँति मालूम कर सकता है कि अमुक क्षेत्र में संरक्षण परिषद् के सिद्धांतों को कहां तक लागू किया गया है। संरक्षण परिषद् के भूतपूर्व अध्यक्ष रोजर गैरो ने कहा है कि पिछड़े हुए प्रदेशों की जटिल समस्याओं का ज्ञान इन निरीक्षक मंडलों से भली प्रकार हो जाता है।[122] संरक्षण परिषद् के प्रति ही उत्तरदायी होने के कारण ये स्वतंत्र और निष्पक्ष अन्वेषण कर सकते हैं। स्थानीय जनता निरीक्षक मंडलों के सम्मुख अपनी समस्या रख सकती हैं। संरक्षित प्रदेशों में जाकर निरीक्षक मंडल बहुत-सी आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करते हैं जो परिषद् के कार्य में सहायक होती हैं। डब्ल्यू. एफ. कोटरल का कहना है कि 'जब निरीक्षक-मंडल संरक्षित प्रदेशों का भ्रमण करता है तो वहां की जनता को यह प्रतीत होता है कि जैसे संयुक्त राष्ट्र ही उनके समक्ष आ गया है। स्थानीय सरकारों द्वारा जो कार्य संरक्षित प्रदेशों में हो रहे हैं निरीक्षक-मंडल उन्हें देखकर उनकी सराहना कर सकते

---

[121] United Nations Bulletin, 1 August 1953, p. 81.
[122] Ibid., 15 October, 1949, p. 433

है।'[123] पामर एवं परकिन्स के अनुसार ''इन मंडलों की उपस्थिति का महान् लाक्षणिक महत्त्व है। संयुक्त राष्ट्र के ध्वज को फहराते हुए मंडल के सदस्य मूल निवासियों के प्रतिनिधियों तथा स्थानीय अधिकारियों से खुले आम मिलते हैं, प्रदेश के विभिन्न भागों का दौरा करते है और लोगों में यह भावना उत्पन्न करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र उनके कल्याण के विष्ज्ञय में उत्सुक और अन्तिम स्वतंत्रता के लिए कार्य कर रहा है।''[124] मिस्त्र के प्रतिनिधि मोहम्मद एल. कोनी का मत है कि सामाज्ञा पद्धति (Mandate System) के बाद संरक्षण पद्धति में जो सबसे बड़ा सुधार किया गया है वह भू-भागों की देखभाल करने के लिए निरीक्षण मिशनों की व्यवस्था करना है। एल.कोनी निरीक्षण मिशनों को संरक्षण परिषद् की 'आँख और कान' बताता है।[125]

3.2.10. संरक्षण पद्धति की सीमाएँ और महत्त्व (Limitations and importance of Trusteeship System)

अपने लगभग पैंतालिस वर्ष के कार्य-काल में संरक्षण परिषद् और अन्य सम्बन्धित निकायों ने बहुत ही उपयोगी कार्य किये हैं। संसार को और पिछड़े हुए मनुष्यों को भली-भांति मालूम हो गया है कि अब उनकी उपेक्षा नहीं की जाएगी। मैंडेट प्रणाली की अपेक्षा संरक्षण पद्धति में सरंक्षित प्रदेशों की जनता के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक विकास को प्राथमिकता दी गयी है। इसके कारण उपनिवेशवाद की परिसमाप्ति में काफी योगदान मिलाहै। ग्यारह संरक्षित प्रदेशों में अधिकांश स्वतंत्र हो चुके हैं। ब्रिटिश टोगालैंड, फ्रांसीसी टोगालैंड, ब्रिटिश कैमरून, फ्रांसीसी कैमरून, सोमालीलैंड, टांगानिका, पश्चिमी समोआ तथा रूआंडा-उरुंडी को स्वतंत्रता मिल चुकी है। इस प्रकार केवल पैसीफिक आइलैंड्स के न्यास क्षेत्र को छोड़कर अन्य सभी न्यास-क्षेत्र या तो स्वतंत्र हो गए या पड़ोसी स्वतंत्र राज्यों में मिल गए। इससे संरक्षण पद्धति की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत संरिक्षत भू-भागों के आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक विकास में सहायता मिली है। यद्यपि न्यास प्रदेशों (Trust Territories) का आर्थिक ढाँचा उपनिवेशों के समान रहा है किन्तु उनके मूल निवासियों के कल्याणार्थ उपाय किये गये हैं। श्रमिकों की दशा सुधारने की कोशिश की गयी है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मापदंड़ों को लागू करने का प्रयास किया है। संरक्षित प्रदेशों की जनता को प्रशासनिक पदों पर नियुक्त कर स्थानीय जनता के साहचर्य, समावेश एवं सहयोग की प्रशंसनीय नीति अपनायी गयी है। संरक्षण पद्धति के अंतर्गत निगरानी करने के अभिकरण एवं साधन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावपूर्ण रहे हैं; परिषद् के एक भूतपर्वू अध्यक्ष मैक्स हेनरी विज उरीना परिषद् के कार्य को संतोषजनक बतलाते हैं। कारण यह कि परिषद् के सब निर्णय बिना झगड़े और बिना किसी विवाद के होते हैं। 24 जून, 1956 को परिषद् के एक अन्य भूतपर्व अध्यक्ष मैसन सीयर्स ने कहा कि पिछले दस वर्षो में विश्व के पिछड़े हुए मनुष्यों की दशा में एक महत्वपूर्ण विकास हुआ है। परिषद् के बारहवें अधिवेशन में बोलते हुए डाग हैमरशोलल्ड ने कहा कि परिषद् का कार्य मानव विकास के लिए एक महान् देन है। यह कार्य पिछड़े हुए देश की जनता के विकास के लिए एक चुनौती है।

[123] The Annals of The American Academy of Polltical and Social Science, July, 1956, p. 56
[124] Plamer & Perkins: op. cit., p. 417
[125] United Natins Bulletin, October 15. 1949, p. 454

ऐसे विकास का कार्य करते समय परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यो का एक केन्द्र बन जाता है।

परन्तु उपर्युक्त विवरण का तात्पर्य यह नहीं है कि संरक्षण परिषद् में कोई दोष नहीं है। विश्व की कोई भी संस्था दोषरहित नहीं है। यदि हम संरक्षण परिषद् के कुछ कार्यो से संतुष्ट नहीं हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। संरक्षण में पद्धति की कतिपय सीमाएँ हैं, जो इस प्रकार हैं-

3.2.10.1. स्वेच्छा से संरक्षण पद्धति के अंतर्गत प्रदेश रखने की योजना कागजी:

संरक्षण पद्धति के अंतर्गत जितने प्रदेशों को रखे जाने की आशा की गयी थी, उससे बहुत कम राष्ट्र इस व्यवस्था में रखे गये। केवल दो ही प्रकार के प्रदेश इसके अंतर्गत रखे जा सके: राष्ट्रसंघ के मौजूदा मैंडेट प्रदेश तथा युद्ध के कारण शत्रु राज्य के लिए गए प्रदेश। स्वेच्छा से इसके अंतर्गत प्रदेश रखने को योजना कागजी महत्व की ही रही। संयुक्त राष्ट्रसंघ की ऐसी कोई शक्ति भी नहीं दी गयी जिसके बल पर वह किसी पराधीन प्रदेश को अपनी अफ्रीका को संरक्षण पद्धति के अंतर्गत रख दिया जाये। यहाँ तक कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यह घोषित किया कि स्वयं अपनी ओर से दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। उसे संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रश्नावली के आधार पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट नियमित रूप से भेजनी चाहिए। लेकिन दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने अपने दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं किया। उसने दक्षिण-अफ्रीका को अपने देश का भाग बना लिया।

3.2.10.2. दंड-व्यवस्था का अभाव:

संरक्षण पद्धति की एक अन्य दुर्बलता बहुत-कुछ मैंडेट प्रणाली के ही समान है। यदि कोई प्रशासनिक देश संरक्षण पद्धति के अंतर्गत देशों पर प्रशासन करते हुए अपने उत्तरदायित्वों का ईमानदारी से निर्वहन न करे तो उसके विरूद्ध किसी प्रकार की दंड-व्यवस्था नहीं है। संयुक्त राष्ट्र को यह अधिकार भी नहीं है कि ऐसी स्थिति में यह प्रशासकीय अधिकार को ही समाप्त कर दे। चार्टर में इस की व्यवस्था नहीं है। इसके अलावे संरक्षण परिषद् के निर्णय केवल नैतिक शक्ति रखते हैं। उनका पालन करना प्रशासकीय राष्ट्रों की इच्छा पर निर्भर है, उन्हें परिषद् के निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

3.2.10.3. संरक्षित प्रदेशों की जनता की याचिकाओं पर दृढ़ निर्णय नहीं:

संरक्षित प्रदेशों के मूल निवासियों की याचिकाओं के सम्बन्ध में संरक्षण परिषद् ने संक्षिप्त निर्णय लिए हैं। बहुत कम विषयों में दृढ़ निश्चय लिये गये हैं। साधारणतया परिषद् प्रशासकीय अधिकारियों की बातों को ही स्वीकार कर लेती हैं। कभी-कभी याचिकाओं पर विचार अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया जाता है। वर्षो तक बहुत-सी समस्याएँ नहीं सुलझायी जा सकती हैं। इतना ही नहीं, संरक्षण परिषद् ने संरक्षित प्रदेशों में प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा दी जाने वाली स्वास्थ्य और शिक्षा-सेवाओं की ओर ध्यान ही नहीं दिया है।

3.2.10.4. संरक्षित प्रदेशों के निवासियों के विकास पर बहुत कम ध्यान:

प्रशासकीय अधिकारियों ने संरिक्षत प्रदेशों के निवासियों के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया। उन्होंने अपने संरक्षित प्रदेशों की जनता का स्वास्थ्य सुधारने के लिए बहुत

कम प्रयास किये। शिक्षा के ऊपर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया गया। जनमत तथा संघ के प्रभाव में आकर उन्हें विवश होकर शिक्षालय खोलने भी पड़े तो उन्होनें यह कार्य धार्मिक संस्थाओं को सौंप दिया, जिन्होंने शिक्षा के नाम पर मूल निवासियों के धर्म-परिवर्तन का कार्य शुरू किया। महासभा के निर्णय के होते हुए भी कुछ क्षेत्रों में शारीरिक दंड का अंत नहीं किया गया। अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास नहीं किया गया यद्यपि परिषद् ने उनकी कड़ी आलोचना की थी। कुछ क्षेत्रामें जाति भेद-भाव की रोक-थाम नहीं की गयी तथा राजनीतिक स्वतंत्रता देने में देर लगायी गयी। रूसी प्रतिनिध ने यह आरोप लगाया था कि न्यूगिनी में शिक्षा और स्वास्थ्य की अवस्था बड़ी दयनीय थी। एक-तिहाई से भी कम बच्चे स्कूलों में जाते थे। लगभग सभी स्कूलों पर पादरियों का नियंत्रण था। वर्षो के शासन के बाद भी न्यूगिनी सबसे पिछड़ा हुआ संरक्षित भू-भाग रहा। संरक्षण परिषद् के अंतर्गत रहते हुए भी सोमांलीलैंड संसार के दरिद्रतम देशों में एक था। ऐसे दशा में होते हुए भी इटली की सरकार ने वहाँ पर छह-सात हजार पुलिस और सेना रख रखी थी। बारह-तेरह लाख की जनसंख्या के लिए पुलिस और सेना का बोझ अधिक था। अभिप्राय यह कि प्रशासकीय अधिकारियों ने संरक्षित प्रदेशों के मूल निवासियों के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया।

3.2.10.5. सदस्यों की राजनीति गुटबंदी:

संरक्षण परिषद् की दुर्बलता का कारण सदस्यों की राजनीतिक गुटबंदी रही है। रूस की सरकार का यह अनुमान है कि संरक्षण परिषद् के औपनिवेशिक राष्ट्रों के दबाव में आकर परतंत्र भू-भागों की जनता का स्वतंत्रता के मार्ग में रोड़े अटकाए हैं। उनके विचार में संरक्षण परिषद् संयुक्त राष्ट्र के मरूदेश में आखिरी हरियाली भूमि (The last Oasis Structure of the United Nations) है जहां पर उपनिवेशवादी राष्ट्रों ने प्रमुख भाग लिया है और जहाँ समय-समय पर ऐसे निर्णय लिए गए हैं जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न अंगों द्वारा उपनिवेशवाद का अंत करने के निर्णयों के विरुद्ध हैं। रूस की सरकार के विचार में संरक्षण परिषद् को एक ऐसे अंग में परिणत कर दिया गया है जिसका ध्येय उपनिवेशवादी शक्तियों के सुझावों का पंजीकरण करना है। संरक्षण परिषद् के अंतर्गत न्यास भू-भाग उपनिवेशवादी देशों के हितों की पूर्ति करते हैं और उपनिवेशवादी राष्ट्रों के लिए सैनिक अड्डों का कार्य करते हैं।[126]

कुछ भी हो, संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरक्षण-व्यवस्था अनेक दुर्बलताओं के बावजुद अपने उद्देश्य में बहुत सीमा तक सफल हुई है। यह पराधीनता को स्वाधीनता या स्वशासन में परिवर्तित कराने का महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हुई है। इसके कार्यो का प्रभाव गैर-स्वशासी प्रदेशों के भविष्य पर पड़ा है। यद्यपि साम्राज्यवाद की पूर्ण समाप्ति नहीं हो पायी परन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में तीव्रता अवश्य आयी है। इसके कार्यो से पराधीन लोगों को यह आभास हो गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की भांति उनके कल्याण एवं स्वतंत्रता की मुँहदेखी बात नहीं करता, अपितु सच्चे हृदय से उनकी स्वाधीनता का इच्छुक है और उसके लिए वातावरण भी तैयार करता है। यही कारण है कि विश्व के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने इस पद्धति के कार्यो की प्रशंसा की है। महासभा के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष

[126] U.N. Monthly, June 1967, p. 76

जनरल सी.पी. रोम्पुलों करते हैं: ''संरक्षण परिषद् ने शीघ्रता से विकास किया है। यह विकास आधुनिक विश्व में राजनीतिक नैतिकता का ऊँचा मापदंड है।''[127] संरक्षण परिषद् का उल्लेख करते हुए इराक के अवनीखालिदी ने कहा था कि ''यह परिषद् संयुक्त राष्ट्र का शांतिपूर्वक कार्य करने वाला वह अवयव है जो बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके कार्यों का प्रभाव स्थायी है।'' रोजर गैरों के अनुसार ''यह परिषद् हल्ला-गुल्ला करने वाला मंच नहीं है और न यह झगड़ा करने वाला अखाड़ा है। यह परिषद् अपना कार्य एक संचालक मंडल की तरह करती है। इसका ध्येय केवल मनुष्यों की भलाई और प्रगति करना ही है। इस कार्य के लिए यह विश्वव्यापी समाज के प्रति उत्तरदायी है।''[128] संयुक्त राष्ट्र के भूतपूर्व महासचिव डाग हैमरशोल्ड ने संरक्षण पद्धति को मानव-विकास के लिए एक महान देन माना है।[129]

न्यास-क्षेत्र में केवल पैसीफिल आइलैंड्स के न्यास-क्षेत्र को छोड़कर बाकी सभी न्यास्-क्षेत्र या तो स्वतंत्र हो गए या अपने पड़ोसी स्वतंत्र राज्यों में मिल जाए। 'न्यास-क्षेत्रों में केवल पैसीफिक आईलैंड्स को ही सामरिक महत्व का क्षेत्र घोषित किया गया। सामरिक महत्व के न्यास-क्षेत्र का पर्यवेक्ष्ज्ञण सुरक्षा परिषद् द्वारा किया जाता है। इस पूरे न्यास क्षेत्र को माइक्रासेनिशिया भी कहते हैं। इसके चार भाग हैं:- माइक्रोनेशिया के फेडरेटेड स्टेट्स, मार्शल आईलैंड्स, उत्तरी मारियाना आइलैंड्स तथा पलाओं। 22 दिसम्बर 1990 को सुरक्षा परिषद् के इनके सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव के द्वारा पहले तीन भागों के न्यास-करारों को समाप्त कर दिया गया, क्योंकि या तो वे स्वतंत्र हो गए अथवा संयुक्त राज्य अमरीका के साथ मिल गए। अब केवल पलाओ ही न्यास-क्षेत्र बच गया है। इस प्राकर हम देखते है कि जिस उद्देश्य से न्यास-परिषद् की स्थापना की गयी थी, उसने अपना कार्य समाप्त कर दिया है। यदि पलओं स्वतंत्र हो जाता है तो न्यास-परिषद् के पास कोई काम ही नहीं बच जाता है। यह न्यास परिषद् की बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है कि जबकि अधिकांश मैंडेट प्रदेश राष्ट्रसंघ की समाप्ति के बाद भी पराधीन रहे वहाँ न्यास प्रदेशों ने शीघ्र ही स्वतंत्रता प्राप्त कर ली।

3.2.11. संरक्षण-व्यवस्था और समाज्ञा-व्यवस्था की तुलना (Comparison between Trtusteeship Sytem and Mandae System)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंतर्गत संरक्षण पद्धति की स्थापना पुराने राष्ट्रसंघ की समाज्ञा पद्धति के स्थान पर की गयी है। अत: जिज्ञासु मन में यह प्रश्न उठना स्वाभावितक है कि क्या संरक्षण पद्धति समाज्ञा पद्धति से अधिक प्रगतिशील है? लेखकों ने इस प्रश्न के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी व्यक्त किए हैं। कुछ आलोचकों का मत है कि अधीन प्रदेशों के मनुष्यों के प्रति अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ की सरंक्षण पद्धति के अंतर्गत राष्ट्रसंघ की व्यवस्था में भिन्न जो भी परिवर्तन लाये गये हैं, वे औपचारिक हैं, वास्तविक नहीं। उनके अनुसार संरक्षण पद्धति और सामाज्ञा पद्धति 'एक ही

[127] For Trust Territories (A.U.N. Publlcation), p. 24
[128] United Nations Bulletin, 15 October, 1949, p. 496
[129] Ibid, 1 July, 1953, p. 18

सिक्के के दो पहलू' हैं। और सामाज्ञा पद्धति की भाँति संरक्षण पद्धति की भाँति-संरक्षण पद्धति भी 'एक चमकीला धोखा' है। शूमाँ ने इस तरह का विचार व्यक्त करते हुए लिखा: ''संरक्षण पद्धति की नवीनता वास्तविक न होकर, औपचारिक ही अधिक है।'' इस तरह के विचार का आधार यह है कि प्रशासकीय दृष्टिकोण से दोनों पद्धतियों में सादृश्य है। दोनों पद्धतियों के अंतर्गत विश्व के कुछ अविकसित भू-प्रदेश अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण के अंतर्गत रखे गये हैं। दोनों में ऐसे प्रदेशों को प्रशासन हेतु कुछ विकसित तथा प्रगतिशील राष्ट्रों के मातहत रख दिय गया है। ऐसे प्रगतिशील एवं विकसित राष्ट्रों का यह दायित्व है कि वह अपने मातहत के ऐसे प्रदेशों के विकास में यथासम्भव, सहायता प्रदान करें और अपने को न्यासिताधारी समझते हुए तब तक उनके हितों की देख-भाल करते रहें, जब तक वे स्वयं अपना शासन संभालने योग्य न हो जाएँ। इसके अतिरिक्त दोनों पद्धतियों में साम्राज्यवाद का अंत करने का प्रयास नहीं किया है। संरक्षण परिषद् के कार्य और दायित्व भी बहुत कुछ मैंडेट आयोग के कार्य और दायित्व से मिलते-जुलते हैं। दोनों पद्धतियों में पायी जाने वाली उपर्युक्त समानताओं के आधार पर यह कहा जाता है कि संयुक्त राष्ट्र की संरक्षण पद्धति पुराने राष्ट्रसंघ की सामाज्ञा पद्धति का ही परिवर्तित रूप है; वह नई बोतल में पुरानी शराब (Old winde in a new bottle) है। सामाज्ञा पद्धति की भाँति कुछ लोगों ने इसे साम्राज्यवाद का एक नवीन रूप कहा है।

उपर्युक्त विचार के विपरीत कुछ लोगों का मत है कि संरक्षण पद्धति का परिवर्तित रूप नहीं वरन् उसका अधिक प्रगतिशील तथा विकसित रूप है। जिस तरह सामाज्ञा पद्धति 19वीं शताब्दी की औपनिवेशिक व्यवस्था से अधिक प्रगतिशील थी, ठीक वैसे ही संरक्षण पद्धति भी सामाज्ञा पद्धति से अधिक प्रगतिशील है। जैसा कि डॉ. रैल्फ बुंश ने स्वीकार किया है: ''नयी पद्धति पुरानी आदेश-व्यवस्था का परिवर्तित रूप नहीं है। यह निश्चित रूप से एक विस्तृत क्षेत्र रखती है तथा इसमें अधिक व्यापक अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण सम्भव है। संरक्षण प्रदेशों के निवासियों को स्वशासन और स्वतंत्रता के लिए शिक्षित करने की क्षमता भी इसमें है।'' पैडिलफोर्ड तथा लिंकन ने संरक्षण व्यवस्था को चार बातों में राष्ट्रसंघ की सामाज्ञा व्यवस्था में भिन्न माना है। प्रथम, संरक्षक राज्यों को अपने संरक्षित प्रदेशों में सैनिक प्रतिष्ठान बनाने तथा अपने स्थिति को दृढ़ बनाने का अधिकार नहीं है। दूसरे, इस पद्धति के अंतर्गत कुछ प्रदेशों को सामरिक महत्त्व का क्षेत्र घोषित किया गया है और उनकी सुविधा के लिए विशेष उपबंधों की व्यवस्था रखी गयी है। इस प्रदेशों में कार्य करने का अधिकार संरक्षण परिषद् की अपेक्षा सुरक्षा परिषद् को सौंपा गया है। तीसरे, संरक्षित प्रदेशों की प्रगति और प्रशासन के सम्बन्ध में अपने विचार बनाने के लिए निरीक्षक-मंडल भेजने का अधिकार संरक्षित परिषद् को दिया गया है। चौथे, राष्ट्रसंघ के मैंडेट आयोग की तुलना में संरक्षण परिषद् के सदस्य उपनिवेश-प्रशासन विशेषज्ञ के स्थान पर सरकारी प्रतिनिधि होते हैं।[130] इस प्रकार इन विचारकों के अनुसार राष्ट्रसंघ की संरक्षण प्रणाली मैंडेट प्रणाली से न केवल भिन्न वरन् श्रेष्ठ भी है।

उपर्युक्त दोनों विरोधी विचारों में कौन-सा विचार सही है, इसकी जानकारी के दिए दोनों प्रणालियों में पायी जाने वाली विभिन्नताओं का ज्ञान आवश्यक है।

[130] Internatinal Politiics, p. 596

3.2.12. अन्तर (Difference)

3.2.12.1. संरक्षण परिषद् अधिक व्यापक एवं विस्तृत है: जेम्स मुरे ने अपनी पुस्तक 'दी यू.एन. ट्रस्टीशिप सिस्टम' (The U.N. Trusteeship System) में कहा है कि संरक्षण प्रणाली मैंडेट प्रणाली से अधिक व्यापक तथा विस्तृत है। राष्ट्रसंघ और उसकी मैंडेट प्रणाली प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत होने वाले शांति समझौते का एक भाग था जबकि संयुक्त राष्ट्रसंघ और उसकी संरक्षण पद्धति इस तरह के समझौते का भाग नहीं है। परिणामस्वरूप संरक्षण पद्धति क्षेत्र मैंडेट पद्धति से अधिक व्यापक हो जाता है। मैंडेट व्यवस्था केवल शत्रु राज्यों से छीने गये उपनिवेशों तक ही सीमित थी। राष्ट्रसंघ ने ऐसे प्रदेशों का शासन-प्रबन्ध कुछ विकसित राष्ट्रों को सौंप दिया था। परन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ की सरंक्षण प्रणाली केवल शत्रु राज्यों के उपनिवेशों तक ही सीमित नहीं है इसके अंतर्गत तीन तरह के प्रदेशों को रखने की व्यवस्था है- (क) राष्ट्रसंघ की मैंडेट प्रणाली के अंतर्गत बचे हुए प्रदेश; (ख) ऐसे प्रदेश जो द्वितीय महायुद्ध के बाद पराजित राज्यों से छीने गये; (ग) ऐसे प्रदेश जिन्हें उपनिवेशवादी राज्य स्वेच्छा से संरक्षण पद्धति के अंतर्गत रख दें। आज तक किसी भी राज्य ने किसी भी प्रदेश को अपनी, इच्छा से इसकें अंतर्गत नहीं रखा है। व्यवहार में केवल वे ही प्रदेश संक्षित प्रदेश बनाए गए जो या तो पहले मैण्डेट प्रदेश थे या जो शत्रु राज्यों से छीने गये थे। फिर भी सिद्धान्त: संरक्षण पद्धति का क्षेत्र राष्ट्रसंघ की मैण्डेट प्रणाली से अधिक व्यापक है। जैसा कि जनरल स्मट्स का मत है: ''क्षेत्र की दृष्टि से राष्ट्रसंघ की पुरानी योजना से संरक्षण व्यवस्था बहुत भिन्न है। अब संरक्षण अथवा न्यास का सिद्धान्त सामान्य रूप से लागू किया गया है। यह सब पराधीन देशों में परतंत्र लोगों के लिए लागू होता है। इस सिद्धान्त को दिया गया यह विस्तार बढ़ा दूरगामी और महत्वपूर्ण है।''

3.2.12.2. सरंक्षण प्रदेशों का विभिन्न श्रेणियों में विभाजन नहीं: राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत मैण्डेट प्रदेशों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया था- अ,ब,स। यह विभाजन प्रदेशों के राजनीतिक विकास, आर्थिक अवस्था तथा भौगालिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर किया गया था। तीनों श्रेणियों के प्रशासकीय राज्यों के लिए अलग-अलग कर्त्तव्य निर्धारित किये गये थे। संरक्षण-पद्धति के अन्तर्गत इस तरह के विभाजन को समाप्त कर दिया गया है। अब सभी संरक्षित राज्यों के लिए सामान्य उद्देश्य निर्धारित कर दिये गये हैं। केवल नियंत्रण के दृष्टिकोण से संरिक्षित प्रदेशों को दो भागों में विभाजित किया गया है- (क) साधारण और (ख) सामरिक महत्त्व वाले प्रदेश। साधारण संरक्षित प्रदेशों पर प्रशासकीय राज्य महासभा की निगरानी एवं नियंत्रण के अधीन प्रशासन करते हैं। सामरिक महत्त्व के प्रदेशों पर सुरक्षा परिषद् की निगरानी और नियंत्रण है।

3.2.12.3. निरीक्षण एवं अधीक्षणा की भिन्न व्यवस्था: संयुक्त राष्ट्रसंघ में संरक्षित प्रदेशों पर निरीक्षण और अधीक्षण रखने हेतु की गयी व्यवस्था से भिन्न है। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत यह अधिकार वास्तव में कौंसिल को प्राप्त था। कौंसिल की वह कड़ी थी जो राष्ट्रसंघ को मैण्डेट प्रदेशों की प्रशासकीय व्यवस्था से जोड़ती थी। कौंसिल के कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिए एक स्थायी मैण्डेट आयोग का संगठन किया गया था। राष्ट्रसंघ की असेम्बली को मैण्डेट प्रदेशों पर निरीक्षण एवं अधीक्षण का अधिकार नहीं था। संयुक्त राष्ट्रसंघ में इस व्यवस्था में परिवर्तन लाया गया है। इसके अन्तर्गत संरक्षित प्रदेशों के प्रशासन पर निरन्तर निगरानी रखने के लिए एक संरक्षण परिषद् की व्यवस्था की गयी है। यह परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख अंग है। उन प्रदेशों को छोड़कर जिन्हें सामरिक महत्त्व को क्षेत्र घोषित किया गया, समस्त संरक्षण परिषद् महासभा के मातहत कार्य करती है। स्पष्ट है कि संरक्षण-व्यवस्था में महासभा महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गयी है। महासभा में छोटे-छोटे राज्यों की बहुसंख्या है। वे औपनिवेशिकशक्तियों के तीव्र आलोचक हैं। वे संरक्षित प्रदेशों की हित चिन्ता एवं कल्याण के लिए बहुत व्यग्र एवं चिन्तित रहते हैं। अत: राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत मैण्डेट-प्रदेश प्राय: उपेक्षित रहा करते थे, किन्तु अब संयुक्त राष्ट्रसंघ के सरक्षित प्रदेशों की ओर ध्यान दिया जाने लगा है।

3.2.12.4. व्यापक आधार एवं उद्देश्य: संरक्षण पद्धति की स्थापना के आधार और उद्देश्य मैण्डेट से कहीं अधिक व्यापक हैं। वैसे तो मैण्डेट पद्धति की स्थापना कर साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने यह दर्शाने का प्रयास किया था कि शत्रु राज्यों के जीते हुए प्रदेशों को अपने साम्राज्य में मिलाने की उनकी कोई लालसा नहीं है। परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न थी। वास्तव में मैण्डेट प्रणाली विभिन्न प्रदेशों की उन्नति, स्वशासन और स्वतंत्रता के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। लेकिन, संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरक्षण व्यवस्था इस बात पर स्पष्ट रूप से बल देती है कि देशी जनता का हित संरक्षित प्रदेशों के प्रशासन का सर्वप्रमुख लक्ष्य है। इसमें स्वशासन एवं स्वतत्रंता के लिए समर्थ तथा योग्य बनायें। इसमें उपनिवेशवाद के उन्मूलन की स्पष्ट व्यवस्था है। इनिस क्लॉड ने यह स्वीकार किया है कि संरक्षण पद्धति की स्थापना करके संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्माताओं ने औपनिवेशिक शक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा, जो युद्ध का एक प्रमुख कारण है, को दूर करने का प्रयास किया है। राष्ट्रसंघ की मैण्डेट-प्रणाली में ऐसा नहीं था।

3.2.12.5. संरक्षण परिषद् का संगठन स्थायी मैण्डेट आयोग से भिन्न: संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरक्षण पद्धति के प्रधान अंग संरक्षण परिषद् की रचना और संगठन पुराने राष्ट्रसंघ के स्थायी मैण्डेट आयोग की अपेक्षा अधिक संतुलित, स्वतंत्र और संगठित है। स्थायी मैण्डेट आयोग राष्ट्रसंघ का प्रमुख अंग था, लेकिन संरक्षण परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रमुख अंग है। मैण्डेट कमीशन में केवल विशेषज्ञ होते थे, वे प्राय: शासक देशों के होते थे अत: यह एकपक्षीय और असंतुलित संगठन था, इसमें शासक वर्ग की ही प्रधानता थी। लेकिन

संयुक्त राष्ट्र की संरक्षण परिषद् में तीन तरह के सदस्य होते हैं- प्रशासन चलाने वाले सदस्य, सुरक्षा परिषद् के वे स्थायी सदस्य जो संरक्षित प्रदेशों का प्रशासन नहीं चलाते हों तथा इनकी संख्या के बराबर-बराबर है। इससे परिषद् में केवल शासक शक्तियों की प्रधानता नहीं रहती। शासक और गैर-शासक देशों की संख्या बराबर-बराबर है। इससे परिषद् में केवल शासक शक्तियों की प्रधानता नहीं रहती। शासक और गैर-शासक दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व होने से संतुलन बना रहता है। इसके अलावे संरक्षण परिषद् के सदस्य सरकारों के प्रतिनिधि होते है। जबकि मैण्डेट आयोग के सदस्य विशेषज्ञ होते हैं। अत: संगठन तथा बनावट की दृष्टि से संरक्षण परिषद् मैण्डेट आयोग से अधिक सुसंगठित तथा संतुलित है।

3.2.12.6. संरक्षण परिषद् की शक्तियाँ मैण्डेट आयोग से अधिक व्यापक: संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरक्षण परिषद् की शक्तियाँ पुराने स्थायी मैंडेट आयोग से अधिक व्यापक हैं। परिषद् को अपनी कार्यवाई के नियम बनाने में पूरी स्वतन्त्रता है जबकि मैण्डेट आयोग को इस तरह की स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त थी। राष्ट्रसंघीय व्यवस्था में स्थायी मैण्डेट आयोग को संरक्षित प्रदेशों में जाकर न तो निरीक्षण करने का अधिकार था और न वह वहाँ के निवासियों के किसी प्रार्थना-पत्र पर विचार कर सकता था। यह ठीक है कि मैण्डेट प्रणाली में संरक्षक प्रदेशों को अपना वार्षिक प्रतिवेदन स्थायी मैण्डेट आयोग के पास देना पड़ता था। आयोग का कर्त्तव्य था कि वह ऐसे प्रतिवेदनों का परीक्षण करे परन्तु उसे यह अधिकार नहीं था कि वह किसी क्षेत्र का उसी स्थान पर पहुँचकर स्वयं निरीक्षण करे। आयोग को जाँच-पड़ताल, कमीशन अथवा खोज आयोग भेजने का अधिकार नहीं था। सांराश यह कि स्थायी मैण्डेट आयोग संरक्षित प्रदेशों के सम्बन्ध में देखने और सुनने के अधिकारों से वंचित था। संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरक्षण परिषद् के सम्बन्ध में इस तरह की बात नहीं है। संरक्षण परिषद् को संरक्षित प्रदेशों के प्रशासन की देख-रेख के लिए अनेक महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। उसे प्रशासकीय अधिकारों से प्रत्येक वर्ष प्रतिवेदन प्राप्त करने का अधिकार है। इन प्रतिवेदनों की जाँच करते समय परिषद् को संरक्षित प्रदेशों की स्थिति के सम्बन्ध में सुझाव देने का अवसर प्राप्त हो जाता है। इसी तरह के अवसर का लाभ उठाकर परिषद् ने यह सुझाव दिया है कि स्थानीय जनता को प्रशासकीय देशों के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में सहयोग देने का अवसर प्राप्त होना चाहिए और उनमें शिक्षा का विकास होना चाहिए। इसके अलावा-परिषद् को सरंक्षित प्रदेशों का सामायिक निरिक्षण करने और प्रदेशों के निवासियों द्वारा भेजे गये प्रार्थना-पत्रों पर विचार करने का अधिकार है। निरीक्षण-मिशन संरक्षित प्रदेश में जाकर यह मालूम कर सकता है कि किसी संरक्षित प्रदेशों में संरक्षण पद्धति के सिद्धान्तों को कहाँ तक लागू किया गया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की इस व्यवस्था से दो लाभ हुए हैं- एक तो यह कि संरक्षण परिषद् को संरक्षित प्रदेशों के सम्बन्ध में सही जानकारी मिलती है और दूसरा यह कि जनता की शिकायतें वास्तविक रूप से सुनी जाती है।

अतएव, नवीन व्यवस्था में निरिक्षण की पद्धति पहले की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी और क्षमतापूर्ण है। मिस्र के प्रतिनिधि मोहम्मद एल. कोनी का मत है कि मैण्डेट पद्धति के बाद संरक्षण पद्धति में जो सबसे बड़ा सुधार हुआ है वह भू-भागों की देखभाल करने के लिए निरीक्षण मिशनों की व्यवस्था करना है। वह निरीक्षण मिशनों को संरक्षण परिषद् की आँख और कान बतलाता है। डॉ. राल्फ बुंश ने ठीक ही कहा है कि संरक्षण परिषद् मैण्डेट आयोग से अधिक प्रमुख और प्रभावशाली है।

3.2.13. पाठ का सार/ सारांश

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्रसां पद्धति पुराने राष्ट्रसंघीय मैण्डेट पद्धति का केवल विकसित रूप ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय संरक्षण की एक नवीन व्यवस्था है। एक आदर्श एवं पूर्ण व्यवस्था न होते हुए भी यह मैण्डेट व्यवस्था से श्रेष्ठतर है। व्यवहार में भी यह पद्धति व्यवस्था से कहीं अधिक सफल सिद्ध हुई है। महासभा के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष सी.टी. रोमुलो के अनुसार ‘‘न्यास पद्धति का सतत प्रगति आधुनिक विश्व में राजनीतिक नैतिकता के उच्चबिन्दु का प्रतिनिधित्व करती है।’’[131] अधिकांश मैण्डेट प्रदेश राष्ट्रसंघ का अंत हो जाने तक भी पराधीन ही रहे परन्तु एक-दो को छोड़कर लगभग सभी संरक्षित प्रदेश स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकार जैसा कि गुडारीच ने लिखा है, ‘‘यह पराधीनता को स्वाधीनता एवं स्वशासन में बदलने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हुई है।’’[132] इसके कार्यो का प्रभाव गैर-स्वशासी प्रदेशों के भविष्य पर पड़ा है। यद्यपि साम्राज्यवाद की पूर्णतः समाप्ति नहीं हो सकी है किन्तु उस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में प्रयत्नों में तीव्रता आयी है। इसने उपनिवेशवाद को निरस्त्र कर पराधीन प्रदेशों को उसके शोषण एवं अत्याचार से मुक्त किया है। आज एशिया और अफ्रीका के बहुत-से उपनिवेश साम्राज्यवाद के चंगुल से निकलकर स्वतंत्र हो चुके हैं। संरक्षण पद्धति के अभाव में यह कह सकना बड़ा मुश्किल है कि जो क्षेत्र आज स्वतन्त्र हैं; वे उतनी ही तेजी से स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेते। इस प्रकार जैसा इनिस क्लॉड का कथन है कि ‘अनेक कमियों एवं दुर्बलताओं के होते हुए भी उपनिवेशवाद को हल करने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघीय प्रयास अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी, रचनात्मक एवं सर्वांगीण प्रतीत होता है।’’[133] डाग हैमरशोल्ड के अनुसार द‘संरक्षण परिषद् का कार्य मानव-विकास के लिए एक महान देन है। यह पिछड़ी हुई जनता के लिए एक चुनौती है। संक्षेप में संरक्षण-प्रणाली के कार्यान्वयन ने यह सिद्ध कर दिया है कि नयी पद्धति पुरानी पद्धति का परिवर्तित रूप नहीं है। यह काफी लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध हुई है। बहुत पहले प्रो. के.टी. शाह ने अपनी पुस्तक फाउण्डेशन आफ पीस में यह आशा व्यक्त की थी कि यदि संरक्षण व्यवस्था को चार्टर के उपबन्धों की मूल भावना के अनुरूप लागू किया गया तो यह व्यवस्था अपनी पूर्वगामी व्यवस्था से कई मामलों में भिन्न होगी। संरक्षण-व्यवस्था के सफल कार्य-करण ने इस आशा का यथार्थ में बदल दिया है। अतः ‘नेशन (The Nation) नामक अमरीकी पत्रिका का यह विचार कि मैण्डेट प्रणाली की भाँति

[131] For Trust Territories, (A.U.N. Publication), p. 24.
[132] Goodrich: op.cit., p. 316.
[133] Inis Claude: op. cit., p. 370

संरक्षण-प्रणाली भी एक चमकीला धोखा (Aglamerous fraud) है, उचित नहीं प्रतीत होता।

3.2.14. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1 संरक्षेण-प्रणाली के उद्देश्य के विषय में बताइए

प्रश्नः- 2 संरक्षण-व्यवस्था के प्रदेश का वर्णन कीजिए।

प्रश्नः- 3 न्यास समझौते विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ?

प्रश्नः- 4 संरक्षण-परिषद् विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ?

प्रश्नः- 5 मतदान और कार्य विधि तथा संघ के अन्य अंगों के साथ उल्लेख किजिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1 न्यास प्राप्त करने वाले देशों का कर्त्तव्य के बारे में बताइए

प्रश्नः- 2 दंड-व्यवस्था के अभाव का वर्णन कीजिए।

प्रश्नः- 3 संरक्षित प्रदेशों की जनता की याचिकाओं पर दृढ़ निर्णय का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 4 संरक्षित प्रदेशों के निवासियों के विकास वर्णन किजिए ?

प्रश्नः- 5 सदस्यों की राजनीति गुटबंदी का उल्लेख किजिए?

बहुवैकल्पिक

प्र. 1) न्यास परिषद में देशों की संख्या थी।

1) 10 2) 11 3) 12 4) 15

प्र. 2) न्यास परिषद का उद्देश्य था।

1) परापित सम्पति प्राप्त करना 2) युद्ध मु हुए घायलों की सहायता

3) हथियारों पर प्रतिबन्ध 4) परावित संपति को लौटाना

प्र. 3) न्यास परिषद का अधिवेशन वर्ष में कितनी बार होता है।

1) 5 बार 2) 3 बार 3) 2 बार 4) मासिक

प्र. 4) न्यास परिषद का अधिवेशन कब होता है।

1) अगस्त, सितम्बर 2) जनवरी, जून

3) जून, नवम्बर 4) जुलाई, दिसम्बर

प्र. 5) न्यास परिषद की स्थापना किस अनुच्छेद के अंतर्गत है।

1) 70 2) 78 3) 89 4) 82

3.2.15. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हाल.डी.मैन्डटेस, डीपैन्डन्सीज एण्ड, ट्रस्टशिप, वांशिगंटन
2. डी.सी., करनेगल: अण्डोमैन्ट, फोर इंटरनेशनल पीस, 1948
3. जम्स.अलान: दा पोलिटिस, ऑफ पीस किपिंग, लोनडोंग, चार्टो एण्ड वीन्डस 1969.
4. खान. रहामथुल्ला: कश्मीर ण्ड दा यूनाईटेड नेशनल, न्यू डेली विकास 1969.
5. लाल अर्थुर- मोडर्न इंटरनेशनल नीगोटिहेशन न्यूयार्क: कोलूबिया यूनिवर्सिटी प्रैस 1966.
6. लिनोर्ड.एल.लेर. इंटरनेशनल ओर्गेनाइजेशन: न्यूयार्क मैक ग्रीव हिल 1951.
7. ली ट्रयगव, इन दा कोष ऑफ पीस, न्यूयार्क, मैकमिलन 1951
8. ली ट्रयगव, इन दा कोप ऑफ मोडर्न वर्ल्ड सोसायटी कैलिफोर्निया: रतैण्डफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस 1948.
9. मार्टिन ए: कोलेक्टीव सिक्योरिटी ए प्रोग्रेस, रिपोर्ट, पेरिस, यूनेस्को 1952.
10. मिलर डेविड एच.दी. ड्राफटिंग ऑफ दी कोवनअन्ट 'न्यूयार्क. वी.पी. पूतनाम. 1928.
11. यूनाइटिड नेशन्स बुलटिन 1 अगस्त 1953
12. पलमर एण्ड परकिंस 417
13. यूनाटिड नेशन्स बुलटिन अक्बूबर 15.1949
14. यू.एन. मंथली, जून 1967
15. इंटरनेशनल पालिटिक्स 596

इकाई–3: विशिष्ट अभिकरण

इकाई की रूपरेखा:

3.3.1. उद्देश्य कथन
3.3.2. प्रस्तावना
3.3.3. स्थापना के उद्देश्य
3.3.4. विशिष्ट अभिकरणों की सामान्य विशेषताएँ
3.3.5. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना
3.3.6. उद्देश्य एवं सिद्धान्त
3.3.7. संगठन
3.3.8. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय
3.3.9. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम–संगठन के कार्य
3.3.10. पाठ का सार/सारांश
3.3.11. अभ्यास/बोध प्रश्न
3.3.12. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.3.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बा आप:

- विशिष्ट अभिकरण एवं स्थापना के उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त करोगे।
- विशिष्ट अभिकरण की सामान्य विशेषताओं के बारे में जानोगें।
- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना एवं सिद्धान्तों के बारे में जानकारी प्राप्त करोगें।
- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम–संगठन के कार्य की जानकारी प्राप्त होगी।

3.3.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में यह स्वीकार किया गया है कि संघ का मुख्य उत्तरदायित्व संसार में अमन कायम रखना है। अत: राष्ट्रों के बीच उत्पन्न राजनीतिक और राजनयिक विवादों को शांतिपूर्ण तरीकों से सुलझाना इसका सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है। परन्तु, इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र के कुछ गैर–राजनीतिक कार्य भी हैं जिनका उद्देश्य मानव के भौतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में सहयोग देना है। संघ के चार्टर में इन कार्यो को काफी महत्त्व प्रदान किया गया है। पामर एवं परकिन्स ने लिखा है कि ''वे ऐसे कार्य हैं जो क्षेत्र, उपलब्धि तथा महत्त्व के दृष्टिकोण से संघ के राजनीतिक एवं सुरक्षात्मक कार्यो को आच्छादित कर लेते हैं।''[134] इन कामों को संघ कई विशिष्ट अभिकरणों (Specialised Agencies) की सहायता से करता है। इस तरह की कई एजेंसियाँ संयुक्त राष्ट्रसंघ के साथ सम्बद्ध हैं।

[134] N.D. Palmer & H.C. Perkins: op.cit., p. 1151.

संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरण के संस्थाएँ हैं, जिनकी स्थापना विभिन्न अन्तर्सरकारी समझौतों के द्वारा की गयी है तथा जिनका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शिक्षा-सम्बन्धी, स्वास्थ्य तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में बहुत विस्तृत उत्तरदायित्व है। चार्टर की धारा 57 में कहा गया है कि‘‘अन्तसर्रकारी समझौतों द्वारा स्थापित वे विभिन्न अभिकरण, जो विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों से युक्त हैं और जिनकी परिभाषाएँ उनके मूल आलेख में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य एवं सम्बद्ध विषयों के अन्तर्गत की गयी है, उनका सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्र के साथ धारा 63 के प्रावधानों के अनुसार स्थापित किया जाएगा। संयुक्त राष्ट्र के साथ सम्बद्ध ऐसे अभिकरणों को विशिष्ट अभिकरण कहा जाएगा।’’ ऐसे अभिकरणों को संयुक्त परिषद् की एक स्थायी समिति द्वारा की जाती है। इसके द्वारा किये गये समझौतों को आर्थिक-सामाजिक परिषद्, महासभा और सम्बन्धित अभिकरणों की शाखा-विशेष स्वीकार करती है। इन अभिकरणों के कार्यो में तालमेल बनाये रखना आर्थिक-सामाजिक परिषद् का कार्य है।

3.3.3. स्थापना के उद्देश्य (Aims of their Establishment)

संयुक्त राष्ट्र के विशिष्ट अभिकरणों की स्थापना राष्ट्रोत्तर मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करने के लिए की गयी है। ये अभिकरण विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं। इन संगठनों के विभिन्न राष्ट्र सदस्य होते हैं। जो आपस में मिलकर पारस्परिक हित के कार्य करते हैं। इनके पीछे, डेविड मिट्रेनी के शब्दों में, दार्शनिक अथवा प्रकार्यात्मक आधार यह है कि इन गतिविधियों के द्वारा समस्त प्रशासन के अन्तर्गत सामान्य हित के कार्यो में लगे रहने के कारण धीरे-धीरे राष्ट्रों की सीमान्त रेखाएँ सारहीन हो जायेंगी और लोग राष्ट्रोत्तर दृष्टिकोण से सोचने-विचारने के अभ्यस्त होकर अन्तर्राष्ट्रीय हित में कार्य करने लगेंगे। मिट्रेनी का तर्क यह है कि विश्व समाज का विकास विभिन्न राष्ट्रों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर ही हो सकती है। चूँकि विशिष्ट अभिकरण राष्ट्रीय सीमाओं का बिना विचार किये हुए कार्य करते हैं, अतः राष्ट्रोत्तर मूल्यों, हितों व कार्यों के विकास में सहायक हैं। गुड्सपीड ने विशिष्ट अभिकरणों की स्थापना के निम्नलिखित कारण बतलाये हैं:

(क) संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के निर्माताओं का विचार था कि संघ के लिए इन (क्षेत्रों आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, स्वास्थ्य एवं अन्य सम्बद्ध क्षेत्र) के पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकना न तो उचित है और न सम्भव ही। यदि केवल संयुक्त राष्ट्रसंघ को ही इन क्षेत्रों में पूर्ण दायित्व प्रदान किया जाएगा तो इसका संगठन काफी भारी-भरकम तथा पेचीदा हो जाएगा।

(ख) आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों के अधिकांश कार्य तकनीकी स्वभाव के होते हैं। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इन क्षेत्रों में कार्यों का सम्पादन संयुक्त राष्ट्र से छोटे विशिष्ट अभिकरणों को प्रदान किये जाएँ।

(ग) विशिष्ट अभिकरणों के अधिकांश कार्य प्रशासकीय किया गया था। ऐसे कार्यो का सम्पादन कतिपय ऐसे अभिकरणों द्वारा भूतकाल में काफी सफलतापूर्वक किया गया था। ऐसे कार्यो का सम्पादन कतिपय ऐसे अभिकरणों द्वारा भूतकाल में काफी सफलतापूर्वक किया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ तथा विश्व डाक संघ के नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

3.3.4. विशिष्ट अभिकरणों की सामान्य विशेषताएँ (General Features of Specialised Agencies)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरण स्वतंत्र संगठन हैं। प्रत्येक अभिकरण की स्थापना पृथक् अन्तर्सरकारी समझौते द्वारा की जाती है। वे अपने विभिन्न क्षेत्रों में निश्चित सीमाओं में स्वतंत्र हैं। परन्तु बेन्जामिन ए. कोहन के अनुसार एक उच्चतर विश्व के निर्माण का सबका सामान्य उद्देश्य होने के कारण वे एक-दूसरे पर निर्भर हैं। इन विशिष्ट अभिकरणों के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. प्रत्येक विशिष्ट अभिकरण का अपना चार्टर अथवा संविधान होता है जो इसके कार्यों, दायित्वों, संगठन आदि का वर्णन करता है। प्रत्येक का अपना प्रधान कार्यालय और एक प्रबन्धकारी निकाय होता है। प्रत्येक अभिकरण का अपना बजट होता है। इस तरह प्रत्येक अभिकरण संयुक्त राष्ट्रसंघ से तथा अन्य अभिकरणों के सदस्य हैं।
2. प्रत्येक विशिष्ट अभिकरण का वैधानिक अस्तित्व अन्तर्सरकारी समझौतों का परिणाम है। यह एक ऐसा संगठन है जिसे राज्यों ने अपनी इच्छा से स्वीकार किया है। संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य सभी विशिष्ट अभिकरणों के सदस्य नहीं हैं। कुछ ऐसे राज्य हैं जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं किन्तु कुछ विशिष्ट अभिकरणों के सदस्य हैं।
3. प्रत्येक विशिष्ट अभिकरण का लगभग सामान्य संगठन होता है। उदाहरणार्थ: प्रत्येक विशिष्ट अभिकरण की एक असेम्बली अथवा कान्फ्रेंस होती है जिसमें सभी सदस्यों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। प्रत्येक की अपनी कार्यकारणी अथवा प्रबन्धकारिणी समिति होती है जो प्रबन्धकारी तथा निरीक्षात्मक कार्यों का सम्पादन करती है और प्रत्येक का अपना निदेशक अथवा महासचिव होता है जिसका कार्य संघ के महासचिव के समान है।
4. प्रत्येक विशिष्ट अभिकरण विशिष्ट समझौतों द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ से सम्बद्ध है। इस समझौते को अभिकरण के प्रबन्धकारी निकाय और संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा स्वीकार किया जाता है।
5. इस सम्बन्ध के कारण संयुक्त राष्ट्र अपनी आर्थिक और सामाजिक परिषद् के द्वारा इन संगठनों की गतिविधियों निरन्तर जाँच करता है ताकि वे मिलकर सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित रूप से कार्य कर सकें।
6. सामान्यत: विशिष्ट अभिकरण अपने कार्यों की योजना बनाते हैं और यह सुझाव देते हैं कि उनका सम्पादन किस प्रकार किया जाए। उन योजनाओं को कार्यान्वित करना सदस्य-राज्यों पर निर्भर है।
7. विशिष्ट अभिकरण व्यक्ति के दैनिक जीवन के कार्यों से विशिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। उनके कार्यक्रम प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन को प्रभावित करते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य व्यक्ति के जीवन को उतना प्रभावित नहीं कर सकते।

उपयुक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है है कि विशिष्ट अभिकरणों में कुछ सामान्य विशेषताएँ पायी जाती है परन्तु अपने स्वभाव और कार्यों के आधार पर

उनमें कुछ अंतर भी पाये जाते है। जहाँ हम कुछ विशिष्ट अभिकरणों के संगठन और कार्ये पर प्रकाश डालेंगे।

3.3.5. अंतर्राष्ट्रीयी श्रम-संगठन (International Labour Organisation-ILO)

स्थापना (Establishment)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरणों में सबसे पुराना तथा अति महत्वपूर्ण हैं। इसका कार्य-क्षेत्र अन्य अभिकरणों की तुलना में अधिक व्यापक है। इसकी स्थापना प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 11 अप्रैल, 1919 को वर्साय-संधि के भाग 13 के अनुसार मजदूरों के हित-साधन के लिए की गयी थी। यद्यपि इस संगठन की स्थापना एक स्वतंत्र संस्था के रूप में की गयी थी किन्तु राष्ट्रसंघ के साथ इसके अनेक प्रत्यक्ष तथा प्रच्छन्न संबंध थे। संस्थापकों ने यह विधान किया था कि संगठन का मुख्यालय राष्ट्रसंघ के मुख्यालय में ही होगा तथा उसकी स्थापना राष्ट्रसंघ के एक अंग के रूप में होगी। राष्ट्रसंघ का प्रत्येक सदस्य श्रम-संगठन का भी सदस्य होगा तथा उसका मुख्य काम राष्ट्रसंघ को संबंद्ध कार्यक्षेत्र में सहयोग एवं निर्देशन का होगा। उसे अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का सहयोग और सहारा लेना अनिवार्य था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसके खर्च राष्ट्रसंघ के आम अधिकोष से पूरे किये जाते थे। श्रम कार्यालय का निर्देशक का होगा। उसे अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का सहयोग और सहारा लेना अनिवार्य था। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसके खर्च राष्ट्रसंघ के आम अधिकोष से पूरे किये जाते थे। श्रम कार्यालय का निर्देशक राष्ट्रसंघ के महासचिव के प्रति संगठन व्यय के लिए जवाबदेह था। परन्तु राष्ट्रसंघ के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के बावजूद यह संस्था अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रही। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के मध्यवर्ती काल में इस संस्था ने श्रमिकों के हित-साधन के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। युद्ध-काल में राष्ट्रसंघ की एक मात्र यही संस्था अपना मुख्यालय कनाडा ले जाकर कार्यशील रही। इसके सफल कार्यकारण को देखकर ही संयुक्त राष्टसंघ ने संस्थापकों के बिना किसी परिवर्तन ने उसको संयुक्त राष्ट्रसंघ में अंगीभूत कर लिया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रथम विशिष्ट एजेंसी के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन 1946 में संविधान में बिना किसी संशोधन के नई विश्व-संस्था के साथ संबद्ध हो गया। इसके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार इस संगठन के विश्व के देशों में श्रम एवं सामाजिक कार्य को करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक विशिष्ट अभिकरण बना।

3.3.6. उद्देश्य एवं सिद्धांत (Aims and Principles)

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का मुख्य लक्ष्य श्रमिकों का कलयाा एवं हित-साधन है। इसके संविधान में, जो 1919 में बनाया गया यह, स्पष्ट रूप से घोषित किया गया कि सार्वजनिक तथा स्थायी शांति केवल उसी दशा में स्थापित की जा सकती है जब वे दूसरे लोगों के समान ही आर्थिक कल्याण और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हों। वास्तव में यह संगठन इस उद्देश्य को लेकर चला है कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा श्रमिकों की दशा उन्नत की जाय, उनकी आर्थिक स्थिति में स्थिरता लायी जाय और सामाजिक क्षेत्र में उनके स्तर को उन्नत बनाया जाये, उनकी आर्थिक स्थिति में स्थिरता

लायी जाये और सामाजिक क्षेत्र में उनके स्तर को उन्नत बनाया जाय। सन् 1944 में फिलाडेल्फ्रिया में श्रम-संगठन की एक बैठक हुई और उसमें संगठन की ओर से एक घोषणा निकाली गयी। इस घोषणा में श्रम-संगठन के उद्देश्यसों को स्पष्ट किया गया। इस घोषणा के अनुसार संगठन के निम्नलिखित सिद्धांत बतलाये गये:

(क) श्रम वस्तु नहीं है;

(ख) किसी एक स्थान की दरिद्रता सभी स्थानों की समृद्धि के लिए खतरनाक है;

(ग) अभिव्यक्ति अथवा संघ-निर्माण की स्वतंत्रता स्थायी उन्नति के लिए परमाश्वयक है;

(घ) प्रत्येक देश को अभाव और दरिद्रता के विरुद्ध पूरे जोश के साथ युद्ध करना चाहिए।

फिलाडेल्फिया-घोषणा अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के इतिहास की सर्वाधिक महत्त्व की घटना थी। इसके द्वारा संगठन के मूल अधिकारों एवं लक्ष्यों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया; केवल फिर से स्पष्ट रूप से उनकी पुष्टि की गयी। इस घोषणा में इस बात पर भी जोर दिया गया कि अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय नीतियों का उद्देश्य ऐसी दशाओं को प्राप्त करना होना चाहिए जिनमें प्रत्येक मानव-प्राणी को स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा आर्थिक सुरक्षा तथा समान अवसर की अवस्थाओं में भौतिक सुख और विकास करने का समान अवसर प्राप्त हो। इस घोषणा के अनुसार श्रम-संगठन के निम्नलिखित कार्यक्रम किये गये:

1. जीवन निर्वाह और पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक और पूरी मजदूरी मिले।
2. मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा के लिए कार्यों का विस्तार हो।
3. मजदूरों के लिए पर्याप्त भोजन एवं निवासगृहों की व्यवस्था हो।
4. मजदूरों को सामूहिक रूप से सौदा करने का अधिकार प्रदान किया जाए।
5. उन्हें अवसरों की पूरी समाना मिले।
6. मजदूरों के वेतन, कार्य के घंटे तथा कार्य करने की अन्य अवस्थाओं के विषय में हितकर नीतियों का निर्णय हों।
7. उनके स्वास्थ्य और सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था हो।
8. उनके लिए शिशु-कल्याण और प्रसूति संरक्षण की व्यवस्था हो।
9. उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए प्रबन्धकों और मजदूरों में सहयोग स्थापित हो।

'थोड़े में, अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का मुख्य लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा मजदूरों की दशा में उन्नत करना, उनके जीवन-मान को ऊँचा उठाना तथा आर्थिक और सामाजिक स्थिरता को बढ़ावा देना है। आर्थिक विषमताओं से मुक्ति प्राप्त करने पर ही श्रमिकों को आर्थिक स्तर ऊँचा उठेगा, वे जीवन योग्य जीवन बिता सकेंगे। जब आर्थिक सुख-समृद्धि का प्रसार होगा तो अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के प्रसार में सहयोग मिलेगा।

3.3.7. संगठन (Organisation)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के तीन प्रमुख अंग है- (1) अंतर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन (International Conference) (2) प्रशासकीय निकाय (Governing Body)। (3) अंतर्राष्ट्रीय श्रम-कार्यालय (International Labour Office)।

संगठन का कार्य इन्हीं तीन अंगों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन (International Labour Concference)- यह अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का सत्ताधारी अंग है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के सभी सदस्य इसके

प्रतिनिधि होते हैं। यह श्रम-संगठन का प्रतिनिधित्यात्मक अंग है। इसे संसार का औद्योगिक संसद् कहा जा सकता है। प्रत्येक सदस्य-राज्य में इसमें चार प्रतिनिधि आते हैं। इनकी नियुक्ति सम्बन्धित सरकार द्वारा की जाती है किन्तु उनमें से दो सरकार के प्रतिनिधि होते हैं और एक मालिकों का तथा एक मजदूरों का प्रतिनिधि होता है। इसके अलावा प्रतिनिधि-मंडल में कुछ सलाहकार भी हुआ करते हैं। सरकारी प्रतिनिधियों में अधिकांशत: मंत्रिमंडल के सदस्य हुआ करते हैं जो अपने-अपने देश में श्रम से सम्बद्ध मामलों के प्रभारी होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन की बैठक वर्ष में एक बार अवश्य जेनेवा में होती है।

इस सम्मेलन का प्रमुख कार्य समझौतों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक मानदंडों का निर्धारण करना है। इसके अधिकांश निर्णय समझौते तथा सिफारिशों के रूप में होते हैं। इन्हें पारित करने के लिए सम्मेलन के दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। सदस्य-राज्य इन सिफारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। सम्मेलन में अंगीकृत समझौते को व्यवस्थापन के लिए अपनी राष्ट्रीय सरकार के पास रखना प्रत्येक सदस्य-राज्य के प्रतिनिधि का प्रधान कर्तव्य है। सदस्य-राज्यों की सरकारें उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस प्रकार सम्मेलन के निर्णय केवल दिशानिर्देशन का कार्य करते हैं और सदस्य-राज्यों के लिए अपनी राष्ट्रीय सरकार के पास रखना प्रत्येक सदस्य-राज्य के प्रतिनिधि का प्रधान कर्तव्य है। सदस्य-राजयों की सरकारें उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस प्रकार सम्मेलन के निर्णय केवल दिशानिर्देशन का कार्य करते हैं और सदस्य-राज्यों के लिए बंधनकारी नहीं होते। फिर भी, सदस्य-राज्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सिफारिशों के अनुरूप अपने देश में श्रम-सम्बन्धी कानूनों का निर्माण करें। सदस्य-राज्य श्रम संगठन का वार्षिक प्रतिवेदन भेजकर यह बतलाते हैं कि अभिसमयों के अनुरूप व्यवस्थापन करने के लिए उन्होंने क्या कदम उठाये हैं? यह सम्मेलन एक मंच का भी काम करता है जहाँ समग्र विश्व के महत्वपूर्ण सामाजिक एवं श्रम-सम्बन्धी प्रश्नों पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार किया जाता है। यह श्रम-संगठन का नीति-निर्धारण करने वाला निकाय है। प्रशासनिक निकाय के सदस्यों का निर्वाचन तथा संगठन के वार्षिक बजट को पारित करना इसके अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य हैं।

प्रशासनिक निकाय (Governing Body): यह अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का दूसर महत्वपूर्ण अंग है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह श्रम-संगठन का प्रशासनिक निकाय है। लियोनार्ड के मतानुसार प्रशासनिक निकाय संगठन की कार्यकारिणी परिषद् के रूप में कार्य करता है। इसमें 48 सदस्य होते हैं। उनमें 24 सरकारों के, 12 मालिकों के तथा 12 श्रमिकों के प्रतिनिधि होते हैं। 24 सरकारी जगहों में 10 मुख्य औद्योगिक देशों के लिए सुरक्षित हैं। वर्तमान समय में ये राज्य निम्नलिखित हैं: कनाडा, चीन, फ्रांस, जर्मनी, भारत, इटली, जापान, ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ। इन राज्यों की सूची में समय-समय पर संशोधन होता रहता हैं। शेष चौदह सदर- राज्य प्रत्येक तीन वर्श के लिए होता है। प्रशासनिक निकाय अपना अध्यक्ष स्वयं चुनता है और अपनी बैठकों का समय निश्चत करता है। इसकी बैठक वर्ष में कई बार होती है। श्रम-कार्यालय के महानिदेशक की नियुक्ति इसी के द्वारा की जाती है। संघ के विभिन्न कार्यों में एकसूत्रता लाने का दायित्व इसी को दिया गया है। यह अंतर्राष्ट्रीय आयोगों तथा समितियों एवं श्रम

कार्यालयों के कार्यो की देख-रेख करता है। यही सम्मेलन के लिए कार्यक्रम तैयार करता है, जाँच-पड़ताल करता है तथा समितियों के माध्यम से अध्ययन करता है।

3.3.8. अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office)

यह संगठन स्थायी सचिवालय है। इसका प्रधान कार्यालय जेनेवा में अवस्थित है और शाखाएँ न्यूयार्क तथा यूरोप एवं एशिया के अन्य देशों में फैली हुई हैं। इसका प्रधान महानिदेशक होता है, जिसकी नियुक्ति प्रशासनिक मंडल के द्वारा होती है। यह कार्यालय अनेक प्रकार के कार्यो का सम्पादन करता है जैसे, प्रशासकीय, सूचना प्रदान करने तथा शोध-सम्बन्धी कार्य आदि। यह कार्यालय तीन विभागों में बँटा हुआ है- राजकीय विभाग, गुप्तचर विभाग एवं अनुसंधान विभाग। राजनायिक विभाग विभिन्न राज्यों के साथ पत्र व्यवहार करता है, गुप्तचर विभाग विव में श्रम की स्थिति के सम्बन्ध में सुचनाएँ एकत्रित करता है तथा एक अन्य विभाग श्रम समस्याओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक जाँच तथा अनुसंधान से सम्बद्ध है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय अंतर्राष्ट्रीय औद्योगिक जीवन तथा श्रमिकों की स्थिति से सम्बद्ध सभी विषयों के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्रित करता है और आवश्यकता पड़ने पर सदस्य-राज्यों को उनसे अवगत कराता है। यह मजदूरों के कार्य की शर्तो एवं आर्थिक परिस्थितियों के बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।

इन मुख्य अंगों के अलावा एशिया, अफ्रीका, अमरीका तथा निकट एवं मध्य पूर्व के लिए चार क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से श्रम-संगठन विश्व-भर में विकेन्द्रित आधार पर अपने कार्यो का सम्पादन करता है। लियोनार्ड के मतानुसार द्वितीय महायुद्ध के बाद क्षेत्रीय संगठन श्रम-संगठन के कार्यो में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगा है। इन संगठनों के अलावा विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम-संगठन के तत्त्वावधान में कई अधीनस्थ संस्थाओं की स्थापना की गयी है। प्रशासनिक निकाय द्वारा अपने कार्यो में सहायता के लिए समितियों की स्थापना की गयी है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन समय-समय पर श्रम-समस्याओं पर विचार करने के लिए विशिष्ट टेक्नीकल बैठकों का आयोजन करता है। उदाहरणार्थ, सन् 1969 में इसने जूता और चर्मोउद्योग में श्रम-समस्याओं पर विचार करने के लिए इस तरह की बैठक का आयोजन किया था।

3.3.9. अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के कार्य (Functions of the ILO)

श्रम-संगठन के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि इसका मुख्य लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा मजदूरों की दशा में सुधार लाना, उनके जीवन के मानदंडों को ऊँचा उठाना तथा आर्थिक एवं सामाजिक स्थिरता को बढ़ावा देना है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन अपनी स्थापना के समय से ही इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा है। दोनों विश्वयुद्धों के बीच समय में इस संस्था ने श्रमिक-कल्याण के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। इसी के प्रयास से अनेक समझौतों और सिफारिशों को स्वीकार किया गया। इन समझौतों और सिफारिशों में मजदूरों के कल्याण से सम्बद्ध ऐसे सिद्धांतों का समावेश होता था जो श्रम-कानूनों के निर्माण के लिए उपयोगी हो सकते थे। समझौते प्राय: ऐसे विस्तृत कानूनी प्रस्ताव होते थे, जिनके सम्बन्ध में प्रत्येक सदस्य-राज्य से यह आशा की जाती थी कि वह इसका अनुमोदन करेगा और इसके अनुसार कानून बनाएगा। सन् 1939 तक प्रतिवर्ष होने वाले सामान्य सम्मेलनों ने एक सौ तैंतीस सिफारिशें और समझौते पास कियें। इनका सम्बन्ध मजदूरों के कल्याण सम्बन्धी विषयो से था। राष्ट्रसंघ

के सदस्य-राज्यों की सरकारों ने अनेक समझौतों का अनुमोदन किया। इस प्रकार दोनों विश्वयुद्धों के बीच की अवधि में इस संस्था ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। यही कारण है कि राष्ट्रसंघ से सम्बद्ध संस्थाओं में यह सबसे अधिक सफल संस्था थी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशिष्ट अभिकरण के रूप में भी इसके द्वारा अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये जा रहे है। इसके प्रमुख कार्यो को निम्नलिखित ढंग से सूचीबद्ध किया जा सकता है:

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का मुख्य काम अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संहिता का निर्माण करके तथा उसे विभिन्न सरकारों द्वारा स्वीकृत करा कर, श्रमिकों की सेवा-अवस्थाओं में तथा जीवन-स्तर में सर्वतोमुखी उन्नयन करना है। इसके लिए यह समझौते और अनुशंसाएँ प्रस्तुत करता है। समझौतों और सिफारिशों में जो सिद्धांत निहित हैं वे सब सदस्य-राज्यों को मानने पड़ते हैं। इस संस्था के संविधान के अनुसार सदस्य-राज्यों का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक वर्ष इस संस्था के संविधान के अनुसार सदस्य-राज्यों का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक वर्ष इस संस्था को बताए कि उसने इस समझौते को कार्यान्वित करने के लिए कौन-कौन से पग उठाए हैं। सिफारिशों के लिए अनुसमर्थन आवश्यक नहीं है। वे कार्यान्वित करने के लिए कौन-कौन से पग उठाए हैं। सिफारिशों के लिए अनुसमर्थन आवश्यक नहीं है। वे समझौतों की तरह प्रभावशाली नहीं हैं। समय-समय पर सदस्य राज्यों को यह बताना चाहिए कि उन्होंने सिफारिशों में दिए गये सिद्धांतों को कहाँ तक अपनाया है तथा किन-किन समझौतों को स्वीकार करने में उन्हें कठिनाइयाँ हैं। अब तक संगठन 118 कन्वेंशन तथा 117 अनुशंसाएँ प्रस्तुत कर चुका है। सब समझौतों और सिफारिशों को मिलाकर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संहिता करते हैं। ये मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रश्नों से सम्बन्धित हैं- बेकारी और नौकरी, नौकरी की साधारण शर्ते (वेतन, काम करने का समय, वार्षिक छुट्टियाँ), बच्चों और नवयुवकों की नौकरी की शर्ते, स्वास्थ्य-परीक्षा, रात का काम इत्यादि, महिलाओं की नौकरी, व्यावसायिक स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, व्यावसायिक सम्बन्ध, श्रमिक निरीक्षण, समुद्रीयश्रम, प्रव्रजन, अंकशास्त्र व संगठन की स्वतंत्रता आदि। इन समझौतों में अधिकांश जमा किये जा चुके हैं। समझौतों और सिफारिशों में दिये गये सिद्धांत सदस्य सरकारों की नीति को अवश्य प्रभावित करते हैं, यद्यपि बहुत-से समझौतों और सिफारिशों को सदस्य-राज्यों ने सरकारी रूप से स्वीकार नहीं किया है। इस प्रकार विश्व में श्रम-कानून तथा सामाजिक न्याय के विकास में अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संहिता ने महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है।
2. संगठन का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य विभिन्न सरकारों को निर्धारित कार्यक्रमों में तकनीकी सहयोग एवं सहायता प्रदान करना है। संगठन के लिए तकनीकी कार्य बिल्कुल नया नहीं है। दोनों महायुद्धों के बीच के समय में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संस्था ने बहुत देशों को तकनीकी सहायता प्रदान की। यह सहायता सलाहकारी शिष्टमंडलों द्वारा दी गयी। अब इस संस्था का इस प्रकार का कार्य बहुत बढ़ गया है। इस कार्य को अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संस्था क्षेत्रीय निकायों के सहयोग से कर रही है। इस कार्य के अंतर्गत संगठन ने विशेष सलाह दी है, शिक्षण संस्थाएँ

स्थापित की हैं, प्राविधिक सूचना प्रदान की है, छात्रवृत्ति दी है तथा परामर्श गोष्ठियाँ संगठित की हैं। इस संस्था ने व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं को स्थापित करने में विशेष रुचि दिखलाई है। पिछड़े हुए देशों में इस तरह की संस्थाओं की विशेष आवश्यकता है। विभिन्न ध्येयों की पूर्ति के लिए बर्मा, चीन, इंडोनेशिया, थाईलैंड, पाकिस्तान, मिस्र, भारत, टर्की, हेटी, युगोस्लाविया आदि में प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये हैं। केवल 1962 में लगभग तीन करोड़ लागत डालर की पैंतीस विशेष अधिकोष योजनाएँ संगठन को सुपुर्द की गयी थीं। तकनीकी सहायता के संगठन के कार्य एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमरीका जैसे अल्पविकसित क्षेत्रों में विशेष रूप से परिचालित होते हैं। 1962 में केवल एशिया में लगभग एक-तिहाई लागत के कार्य सम्पादित किये जा रहे थे। गत दस वर्षों में संगठन के प्राविधिक सहायता कार्यों में काफी विस्तार हुआ है। सन् 1960 और 1970 के बीच की अवधि में संयुक्त राष्ट्रसंघ विकास-कार्यक्रम के अंतर्गत श्रमसंगठन की 150 योजनाएँ सुपुर्द की गयीं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संस्था ने श्रम-अवस्था, प्रशासन, सामाजिक सुरक्षा, सहकारिता के सम्बन्ध में भी योजनाएँ तैयार की हैं। तकनीकी सहायता कार्यक्रम के प्रशासन के सम्बन्ध में अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संस्था ने लीमा, स्तम्बुल, बंगलोर और मैक्सिको शहर में क्षेत्रीय कार्यालय स्थापित किये हैं।

3. अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य श्रम-सम्बन्धी समस्याओं के बारे में ज्ञान और सूचना एकत्रित करना है। यह संस्था इन सूचनाओं के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करती है और अपने प्रकाशन के रूप में इन्हें प्रकाशित करती है। वह विभिन्न भाषाओं में पत्रिका, श्रम कानून तथा परिनियमों, अध्ययन तथा तकनीकी कार्यों आदि के लिए एक प्रकाशनगृह का कार्य करती हैं। संगठन का यह कार्य काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा प्रकाशित आँकड़ों से श्रमिकों की दशा की जानकारी प्राप्त करने में सदस्य-राज्यों को काफी सुविधा होती है। यह एक सूचना-केन्द्र का कार्य करती है और प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय प्रशासनों द्वारा पूछे गये हजारों-हजार प्रश्नों का उत्तर-प्रदान करती है। वह संगठन निम्नलिखित आधुनिक समस्यों पर अधिक बल दे रहा है। अणुशक्ति का औद्योगिक उपयोग, स्वयं-संचालन (Automation) की सामाजिक और श्रमिक प्रतिक्रिया और श्रम प्रबन्धकर्त्ताओं के बीच सम्बन्ध आदि कुछ इस प्रकार की समस्याएँ हैं।

4. अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का परामर्शदात्री कार्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। मज़दूरों की क्षमता बढ़ाने, उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, बेकारी की समस्या को रोकने आदि विषयों के सम्बन्ध में यह सदस्य-राज्यों की लाभदायक तथा उपयोगी परामर्श देता है। इसके द्वारा पारित समझौते एवं सिफारिशें सदस्य-राज्य के लिए मार्गदर्शन का कार्य करती है। यह संस्था समय-समय पर अमरीका, एशिया और यूरोप में अपनी क्षेत्रीय बैठकें मार्गदर्शन का कार्य करती हैं। यह संस्था समय-समय पर अमरीका, एशिया और यूरोप में अपनी क्षेत्रीय बैठकें करती हैं। विश्व के आठ मुख्य व्यवसायों के लिए त्रिपक्षीय समितियों की बैठकें भी इसी प्रकार होती हैं। निम्नलिखित विषयों पर भी समितियाँ स्थापित की गयी हैं: रोपस्थली, कृषि, सहकारिता, सामाजिक सुरक्षा, दुर्घटना की रोक, व्यावसायिक स्वास्थ्य, महिलाओं की

नौकरी, अंकशास्त्र, स्थानीय मजदूर वर्ग। सदस्य-राज्यों की प्रार्थना पर इस संस्था ने जाँच-आयोग स्थापित किये है। बलपूर्वक किये गये कार्यो और संगठन की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करने के लिए भी समितियाँ स्थापित की गयी हैं। ये समितियाँ सम्बद्ध समस्याओं का अध्ययन करती हैं और उनके सम्न्ध में अपना परामर्श और सुझाव देती है। विभिन्न सरकारों तथा उद्योगों ने इन सुझावों तथा सिफारिशों से लाभ उठाया है। सहकारिता, सामाजिक सुरक्षा, औद्योगि सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के परामर्श काफी लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

5. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का ध्यान ग्रामीण विकास-कार्यक्रमों की ओर भी गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में औसत आय तथा जीवन-स्तर का उन्नयन करने के लिए कई व्यापक योजनाएँ बनायी गयी हैं और उन पर काम हो रहा है। इनमें ग्रामीण क्षेत्रों में बेकारी दूर करने तथा सम्बद्ध विषयों पर अध्ययन, शोध एवं आँकड़े एकत्र करने के कार्य सम्मिलित हैं। इसके अनुरोध पर ही राष्ट्रीय सरकारों द्वारा पूर्ण रोजगार की नीति (Full employment policy) अपनायी गयी है। सन् 1969 में अपनी 50वीं वर्षगाँठ के अवसर पर श्रम-संगठन ने विश्व रोजगार कार्यक्रम लागू किया। उद्योगों तथा छोटे व्यवसायों में उत्पादन-क्षमता बढ़ानें के लिए भी श्रम-सगंठन ने कार्य किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगंठन के कार्यों का मूल्यांकन (Evaluation of the works of the ILO)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के कार्यों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि इसके कार्य काफी महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। श्रमिक मानदंडों की स्थापना, अध्ययन एवं अनुसंधान तथा प्राविधिक सहायता के द्वारा विश्व-भर के करोड़ों मजदूरों के जीवन-स्तर तथा काम करने की दशाओं में सुधार लाने की दिशा में इस संस्था के कार्य काफी सराहनीय हैं। जैसा कि जेकब तथा अथर्टन ने कहा है: ''यह पहली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थ है जिसका निर्माण मुख्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक मानदंडों की स्थापना करने के लिए किया है और, इस संस्था ने इस कार्य को बड़े उत्साह एवं साहस से सम्पादित किया है।''[135] अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संस्था के कार्य के कारण संसार में श्रमिक समस्याओं सम्बन्ध में जागृति उत्पन्न हो गयी है और श्रमिक वर्ग की अवस्था को सुधारने के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं। श्रमिक वर्ग के सम्बन्ध में कानून भी तेजी से बनाये जा रहे हैं। राज्य ने श्रमिक वर्ग के प्रति अपने कर्त्तव्यों को स्वीकार किया है। एन.एन.कौल लिखते हैं: ''अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संस्था के स्थापित होने के कारण सामाजिक न्याय में अनिश्चित और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति नहीं रही है। इस संस्था ने विश्व-चेतना को जागृत कर दिया है। इस संस्था के कार्यो के फलस्वरूप श्रमिक समस्याओं के बारे में सरकारों का दृष्टिकोण ही बदल गया है। इस संस्था के संविधान ने उन शक्तियों को प्रोत्साहन दिया है जो श्रमिक-वर्ग की अवस्था को सुधारने में लगी हुई थी। इसके कार्य से विरोधी आवाजें बन्द हो गयी।''[136] श्रम-संस्था के सम्पर्क में आकर भारत में अधिक लाभ उठाया है। भारत की ओर से

[135] Jacob and Atherton: op.cit., p. 539
[136] N.N. Kaul: India and the ILO, p. 35.

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समझौतों का अनुसमर्थन आकर्षक नहीं है परन्तु कई ढंग से यह महत्त्वपूर्ण है।[137] जिन समझौतों को भारत ने अनुसमर्थित नहीं किया है उनकी भावनाओं को उसने स्वीकार किया है। भारत सरकार द्वारा बनाये गये बहुत से कानूनों में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संस्था द्वारा बनाए गये समझौतों से प्रेरणा ल है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन संयुक्त राष्ट्र के विशिष्ट अभिकरणों में काफी उपयोगी साबित हुआ है।

अनेक अच्छाइयों के होते हुए श्रम-संगठन की अनेक आधारों पर आलोचना की गयी है। सर्वप्रथम यह आरोप लगाया जाता है कि श्रम-संगठन एशियाई तथा अन्य अविकसित देशों की अपेक्षा पश्चिमी राष्ट्रों की ओर अधिक ध्यान देता रहा है। द्वितीयतः, कुछ लोगों का कहना है कि यह संस्था इतने अधिक समझौते और सिफारिशें तैयार करती जाती है कि राज्यों के लिए उन्हें स्वीकार करना और लागू करना संभव नहीं है। आलोचकों का यह भी कहना है कि संगठन द्वारा पारित समझौते तथा सिफारिशें काफी प्रभावशाली नहीं रही हैं। सदर-राज्यों द्वारा उनका अनुसमर्थन बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं रहा है। कुछ राज्य ऐसे भी है जिन्होंने एक का भी अनुसमर्थन नहीं किया है। इन आलोचनाओं में कुछ बल अवश्य है परन्तु ये पूर्ण सत्य का विवेचन नहीं करतीं। यह ठीक है कि प्रारंभ में इस संस्था को स्थापित करने की प्रेरणा पश्चिम से मिली। प्रारंभ में यह एक यूरोपीय संगठन ही था और यह यूरोप की आवश्यकताओं को ही पूरा करता था। परन्तु अब स्थिति बदल गयी है। पिछले कुछ वर्षो में संयुक्त राष्ट्र में एशिया और अफ्रीका के हैं। इतनी अधिक संख्या ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन को प्रभावित किया। सन् 1957 में डेविड ए. मोर्स ने कहा था: ‘‘संयुक्त राष्ट्रसंघ के कारण इस संस्था की स्थिति में परिवर्तन हो गया है। दिसम्बर, 1939 में इस संस्था में 57 सदस्य थे। सन् 1984 में इसकी सदस्य-संख्या 151 थी। अधिकतर नये सदस्य एशिया और मध्यपूर्व के हैं। ये वे देश हैं जिन्होंने हाल में ही स्वतंत्रता प्राप्त करी है तथा प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर आए हैं।[138] इसलिए यह कहना कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संस्था एक यूरोपीय संगठन है, ठीक नहीं है। जहाँ तक संगठन द्वारा पारित किए गए समझौतों का राज्यों द्वारा अनुसमर्थन का सवाल है, राज्यों का दृष्टिकोण कुछ हद तक उत्साहवर्द्धक नहीं कहा जा सकता। सम्अन्ध में जागृति उत्पन्न कर दी है। श्रमिक वर्ग के सम्बन्ध में तेजी से कानून बनाए जा रहे हैं तथा श्रमिक वर्ग की अवस्था को सुधारने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं। जकेब तथा अथर्टन ने स्वीकार किया है कि सदस्य-राज्यों में सुरक्षा अधिनियमों, खतरनाक उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों के सम्बन्ध में व्यवस्थाओं तथा इसी तरह की अन्य अनेक, बातों में जो विकास हुए हैं, उनका पूरा श्रेय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन को प्राप्त है।’’[139] जॉन मैकमोहन के अनुसार, ‘‘अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन द्वारा विकसित किए गए विधायी तरीकों एवं उन्हें लागू करने वाले यह निश्चित रूप से किसी भी विशिष्ट अभिकरण से अधिक प्रगतिशील है।’’[140] अपने इन्हीं कामों के चलते इसे 1969 को नोबेल शांति पुरस्कार प्राप्त हुआ जो संयोग से इस संस्था की स्वर्ण जयन्ती भी थी।

---

[137] Ibid., p. 34
[138] David A. Morse: "The Annals of the American Acaemy of Political and Social Science" 1957, p. 33
[139] Jacob and Athertion: op.cit., p. 540
[140] Evan Lunard (ed.): The Evolution of International Organisation, p. 198

संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संगठन (UNESCO)

संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संस्था जो यूनेस्कों के नाम से विख्यात है, संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक विशिष्ट अभिकरण है। यह अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सांस्कृतिक गतिविधियों की सर्वप्रमुख और प्रतिनिधि संस्थो है। इसकी स्थापना का उद्देश्य शिक्षा, विज्ञान एवं संस्कृति के माध्यम से राष्ट्रों के बीच परस्पर सहयोग के द्वारा शांति और सुरक्षा की स्थापना को प्रोत्साहन देना है।

स्थापना (Establishment)

इस संस्था की स्थापना 4 नवम्बर, 1946 ई. को हुई थी, परन्तु इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि इसके पूर्व इस क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच बिल्कुल खाली था। वैसे राष्ट्रसंघ की संविदा में बौद्धिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में सहयोग स्थापित करने के लिए कोई स्पष्ट विधान नहीं था, परन्तु सन् 1922 में असेम्बली तथा कौंसिल के प्रस्ताव पर बौद्धिक सहयोग समिति की स्थापना की गयी। इस समिति के तीन मुख्य उद्देश्य थे: 1. बुद्धिजीवियों की भौतिक स्थिति में सुधार, 2. दुनिया-भर के शिक्षकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, लेखकों तथा अन्य बुद्धिजीवियों के मध्यम अन्तर्राष्ट्रीय संबंध एवं सम्पर्क स्थापित करना एवं 3. बुद्धिजीवियों के सहयोग तथा संपर्क से विश्व-शांति का पक्ष मजबूत करना। कहना नहीं होगा कि ये तीनों उद्देश्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे। कतिपय यूरोपीय देशों में इनकी कुछ मजबूत करना। कहना नहीं होगा कि ये तीनों उद्देश्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे। कतिपय यूरोपयी देशों में इसकी कुछ परंपरा भी थी। फ्रांस में फ्रांसीसी बुद्धिजीवि संघ प्रभावी और शक्तिशाली संस्था थी। राष्ट्रसंघ के जीवन-काल में बौद्धिक समिति के द्वारा कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए। उसकी उपलब्धियाँ देखकर संयुक्त राष्ट्रसंघर के तत्त्वाधान में अखिल विश्वस्तर पर वैसी ही संस्था स्थापित करने की कल्पना की गयी।

नये विश्व-संगठन में यह महत्त्वपूर्ण कार्यभार संयुक्त राष्ट्रसंघ के शिक्षा-विज्ञान संस्कृति संगठन को सौंपा गया। इनकी स्थापना के लिए लन्दन में 1 नवम्बर से 16 नवम्बर, 1945 तक एक सम्मेलन हुआ। 44 राज्यों के शासनों ने सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजे। बड़े ही उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्मेलन की कार्यवाइयाँ चलीं। विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त इस संगठन का संविधान बनाया गया। एक वर्ष बाद संविधान के स्वीकृत होने पर संगठन की स्थापना की विधिवत् घोषणा की गयी। 4 नवम्बर, 1946 को यह संगठन अस्तित्व में आया। समझौते द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इस संगठन को अपने विशिष्ट अभिकरण के रूप में स्वीकार कर लिया।

उद्देश्य एवं सिद्धांत (Aims and Principles)

यूनेस्को के संविधान की प्रस्तावना और अनुच्छेद 1 में संगठन के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों का वर्णन है। प्रस्तावना का प्रथम वाक्य: ''युद्ध मनुष्य के दिमाग में पैदा होता है, इसलिए शांति को सुरक्षित रखने की आधारशिलाएँ भी मनुष्य के दिमाग में बनायी जानी चाहिए।'' शांति स्थापना का यह एक नया मार्ग है- एक नया सन्देश है। यह इस धारणा पर आधारित है कि जितना मनुष्य एक-दूसरे को अधिक समझेंगे, उतनी ही कम संभावना उनमें आपस में संघर्ष की होगी। यह समझाना भूल है कि युद्ध केवल राजनीतिक एवं आर्थिक कारणों के चलते ही होता है। एक-दूसरे के जीवन एवं ढंग के

सम्बन्ध में अज्ञान सामान्यत: मानव-मानव के बीच सन्देह और अविश्वास को जन्म देता है। जो युद्ध का करण होता है। जैसा कि यूनेस्कों की प्रस्तावना में कहा गया है: ''मानव जाति के समस्त इतिहास में एक-दूसरे के जीवन और ढंग के सम्बन्ध में अज्ञान सामान्यत: मानव-मानव के बीच सन्देह और अविश्वास को जन्म देता है और इन मतभेदों के परिणामस्वरूप ही युद्ध होते हैं।'' अत: युद्ध को रोकने तथा स्थायी शांति की व्यवस्था करने के लिए मनुष्य के दिमाग को इस तरह से बदलना होगा जिससे युद्ध की संभावना सदा के लिए समाप्त हो जाए। इस हेतू राष्ट्रों के बीच केवल आर्थिक और राजनीतिक सहयोग ही स्थापित करना पर्याप्त नहीं है वरन् बौद्धिक सहयोग तथा सांस्कृतिक सहयोग भी आवश्यक है। प्रस्तावना इस तथ्य पर जोर देती है कि स्थायी शांति की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि मानव जाति की बौद्धिक और नैतिक ऐक्य भावना और दृढ़ता के आधार पर निर्मित की जाए। जिस शांति को प्राप्त करना यूनेस्कों का मुख्य लक्ष्य है उसके सम्बन्ध में प्रो. पी.डी. वैरोडो कारनीरो (ब्राजील) कहते हैं: ''यह सेनाओं की शांति नहीं है, न आर्थिक समझौतों की शांति है, यह मस्तिष्क और ह्रदय की शांति है।''

यूनेस्कों के संविधान के अनुच्छेद 1 में संस्था का उद्देश्य शांति और सुरक्षा की स्थापना में योगदान करना बतलाया गया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के द्वारा राष्ट्रों में मेल-भाव स्थापित करना है। उसे उन बौद्धिक दशाओं में परिवर्तित करना है जिनके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों, साहित्यकारों, शिक्षकों और लेखकों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों का विकास हो तथा सामान्य सभ्यता और संस्कृति की उन्नति में सहयोग हो। इस प्रकार यूनेस्को का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य के साथ जुड़ा रहता है। प्रस्तावना का अन्त यह कहते हुए किया गया है कि यूनेस्कों का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय शांति और मानव जाति का सामान्य कल्याण विकसित करने के लिए किया गया है, जिसके लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण हुआ है और जिसकी घोषणा उसका चार्टर करता है। मानव-जाति के सामान्य कल्याण का विकास करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थापित करना। वास्तव में मानव-जाति के कल्याण का विकास करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थापित करना। वास्तव में मानव-जाति के कल्याण से ही अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए मार्ग प्रशस्त होता है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में, ''हमारी प्रस्तावना ठीक ही इस बात पर जोर देती है कि सच्ची शांति मानव कल्याण के आधार पर ही निर्मित की जा सकती है। भूख ही मनुष्य को पाशविकता की ओर ले जाती है। शांति और सन्तोष परस्पर गुँथे पहुए हैं।''

संगठन (Composition)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य यूनेस्को के सदस्य होते हैं। वैसे जो राज्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं, वे भी यूनेस्को के सदस्य बन सकते हैं यदि कार्यकारिणी-मंडल की सिफारिश पर यूनेस्कों सामान्य सम्मेलन अपने उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करें। सन् 1951 में महासम्मेलन द्वारा स्वीकार किए गये संशोधन के अनुसार वे क्षेत्र या क्षेत्र समुदाय जो अपने परराष्ट्र सम्बन्धों को निर्धारित नहीं कर सकते; उत्तरदायी सत्ता की प्रार्थना पर यूनेस्कों के सम्बद्ध सदस्य के रूप में प्रवेश पा सकते हैं। यूनेस्कों अपने कार्यो का सम्पादन निम्नलिखित तीन प्रमुख अंगों के द्वारा करता है- सामान्य सम्मेलन, कार्यकारिणी-मंडल और सचिवालय।

1. **सामान्य सम्मेलन (General Conference):** यह यूनेस्कों का प्रतिनिध्यात्मक अंग है। सभी सदस्य-राज्य सम्मेलन के सदस्य होते हैं। प्रत्येक राज्य के अधिक-से-अधिक पाँच प्रतिनिधि होते हैं परन्तु एक ही वोट प्राप्त है। प्रतिनिधियों का चुनाव यदि राष्ट्रीय आयोग हो तो उसके परामर्श से या शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के परामर्श से किया जाता है। प्रति दूसरे वर्ष सम्मेलन के साधारण अधिवेशन होते हैं। सम्मेलन संगठन के लिए आम नीतियाँ निरूपित करता है, दो वर्षो के लिए बजट पारित तथा कार्यक्रम निर्धारित करता हैं। वह कार्यकारिणी के सदस्यों का निर्वाचन भी करता है। सम्मेलन के अधिवेशन संसार की महत्त्वपूर्ण शैक्षिणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं के पूर्ण विवेचन और विश्लेषण के लिए स्थल उपलब्ध करते हैं। मिस एलन विलकिन्सन ने ठीक ही कहा था कि सामान्य सम्मेलन समस्त संसार के 'मानसिक कार्यकर्त्ताओं की संसद' के रूप में कार्य करेगा।
2. **कार्यकारिणी मंडल (Exectuive Board):** यह यूनेस्कों का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रारम्भ में इसमें 18 सदस्य होते थे। परन्तु संगठन के सदस्यों में वृद्धि के कारण कार्यकारिणी मंडल के सदस्यों में भी वृद्धि हुई है। इस समय मंडल में 45 सदस्य है। इनका निर्वाचन सामान्य सम्मेलन करता है। प्रारम्भ में मंडल के सदस्य अपने व्यक्तिगत रूप में कार्य करते थे अपने शासनों के प्रतिनिधि के रूप में नहीं, वरन कला, विज्ञान और ज्ञान की विविध शाखाओं के प्रतिनिधि के रूप में सन् 1951 में संविधान में संशोधन किया गया, जिसके अनुसार मंडल के सदस्यों को व्यक्तिगत बुद्धिजीवियों के स्थान पर शासकीय प्रतिनिधियों का स्तर दिया गया। मंडल का मुख्य काम सामान्य सम्मेलन द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम को कार्यान्वित करना, सम्मेलन के लिए कार्य-सूची तैयार करना तथा संगठन के कार्यो का अधीक्षण करना है। इसके अधिकारों को देखकर ही मंडल को 'संस्था का हृदय' कहा जाता है।
3. **सचिवालय (Secreiariate):** यूनेस्कों का तीसरा अंग सचिवालय है। इसे विशेषज्ञों का आगार कहा जाता है। यूनेस्कों के संविधान में यह कहा गया है कि 'सचिवालय में एक महानिदेशक एवं अन्य नियुक्त अधिकार होंगे।' सचिवालय का मुख्यालय फ्रांस की राजधानी पेरिस में अवस्थित है। इसमें लगभग 1000 अन्तर्राष्ट्रीय सेवा-कर्मचारी काम करते हैं। महानिदेशक की नियुक्ति कार्यकारिणी मंडल की सिफारिश पर सामान्य सम्मेलन के द्वारा की जाती है। यह यूनेस्कों का प्रमुख पदाधिकारी है। यह यूनेस्कों के आये दिन के कार्यवाइयों को निर्देशिक करता है। सचिवालय में छह विभाग है।

इन प्रमुख अंगों के अतिरिक्त यूनेस्कों अपने कार्यो का सम्पादन राष्ट्रीय आयोगों, स्थायी प्रतिनिधि-मंडलों तथा ऐसी गैर-सरकारी संस्थाओं की सहायता से करता है जो शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत रहे हैं। विभिन्न राज्य-सरकारों के साथ संगठन का सम्पर्क प्रत्येक सदस्य-राज्य में राष्ट्रीय आयोग के माध्यम से बना रहता है। इन आयोगों के सदस्य सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि होते हैं। आयोग संगठन के कार्यो में योगदान प्रदान करता है।

यूनेस्को के मुख्य कार्य और उपलब्धियाँ (Functions and Achievements of UNESCO)

यूनेस्कों के कार्य-क्षेत्र विस्तृत और बहुमुखी है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, व्यापक और विविध क्षेत्र वाले तीन विषय-शिक्षा, विज्ञान और संस्कृत- उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हैं। संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख करके एक चौथा विषय जन-संचारण इसके क्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार संगठन के कार्य विविध प्रकृति के हैं। इसके कार्यो की विधिवेत्ता को देखकर ही चार्ल्स एस.एशर ने विचार व्यक्त किया है कि यूनेस्कों को संघ का विशिष्ट अभिकरण कहना गलत है। जरजी स्जैपिरों के मतानुसार ‘‘संयुक्त राष्ट्रसंघ की सभी विशिष्ट संस्थाओं में यूनिस्कों सबको कम विशिष्ट है। कारण यह है कि इसके कार्य शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के विविध और विस्तृत क्षेत्रों को आवृत करते हैं।’’

यूनेस्को के कार्यो का अध्ययन सुविधा के लिए निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. **शिक्षा-सम्बन्धी कार्यः** जैसा कि नाम से स्पष्ट है यूनेस्कों का प्रथम कार्य है। फ्रिसटाइन एम. असिकार के मतानुसार ‘‘विज्ञान और संस्कृति को आच्छादित करते हुए शिक्षा इस संगठन के समस्त कार्यो के हृदय पर अवस्थित है।’’ शिक्षा के क्षेत्र में यूनेस्कों तीन प्रकार के कार्यो का सम्पादन करता हैं- शिक्षा का विस्तार, शिक्षा की उन्नति तथा विश्व समुदाय में रहने की शिक्षा की व्यवस्था। निरक्षरता का उन्मूलन यूनेस्कों के मुख्य कार्यो में एक है। दक्षिण एशिा तथा प्रशान्त महासागर क्षेत्र में 50 प्रतिशत से भी अधिक बच्चों को किसी प्रकार की शिक्ष नहीं मिलती। अतः यूनेस्कों का कार्य अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करना है। संगठन में एशिया के प्राथमिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु 1980ई. तक बच्चें के लिए शिक्षा-सुविधा प्रस्तुत करने का लक्ष्य स्वीकृत किया है। इसके लिए कई तरह के कार्यक्रम हाथ में लिये गये हैं- यथा क्षेत्रीय शिक्षा कार्यालयों की स्थापना, स्कूल प्रशासकों का प्रशिक्षण तथा विद्यालय-भवन निर्माण में नये आयाम की तलाश आदि। लैटिन अमरीका शिक्षा के विस्तार के लिए यूनेस्कों की प्रमुख योजना का विशेष प्रभाव पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप प्राथमिक स्कूलों की संख्या में वृद्धि हुई और शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था हुई। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में यूनेस्कों के अन्तर्राष्ट्रीय सद्‌भावना के विकास के दृष्टिकोण से इतिहास, भूगोल एवं विदेशी भाषाओं के शिक्षण में सुधार के प्रयत्न किये हैं।

स्कूलों के बाहर दी जाने वाली शिक्षा में यूनेस्कों की बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम विशेष रूप में उल्लेखनीय है। सन् 1947 में इस संस्था ने इस कार्यक्रम को अपने हाथ में लिया ताकि संसार के लगभग 50 प्रतिशत व्यक्तियों को, जिन्हें कभी स्कूल में पढ़ने का मौका नहीं मिला है, न्यूनतम स्तर पर बुनियादी शिक्षा दी जा सके। बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम इस धारणा पर आधारित है कि केवल अक्षर-ज्ञान देना ही प्र्याप्त नहीं है। वयस्कों के लिए कुछ बुनियादी बातों का ज्ञान आवश्यक है; जैसे पीने के पानी को उबालना, पाखाना खोदना, ऊँचे उठे हुए रसोईघर बनाना, स्थानीय सामग्रियों से अच्छे घर बनाना, भोजन में सुधार करना आदि। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा का अभिप्राय सामुदायिक विकास की उस शिक्षा से है जो जनसामान्य को उनके स्वास्थ्य, भोजन, फसलों और

जीवन-स्तर को सुधारने के लिए दी जाती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निरक्षर जनता को न केवल साक्षर बनाने बल्कि उनके शारीरिक स्वास्थ्य, आहार एवं पोषाण, कृषि, गृह-विज्ञान, आदि प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। इस कार्य के लिए बुनियादी शिक्षा-केन्द्र खोले गये हैं; जैसे मैक्सिकों में लैटिन अमरीका के लिए तथा इजिप्ट में अरब राज्यों के लिए। इन केन्द्रों में नवसाक्षरों को उपयुक्त पठन-सामग्री उपलब्ध कराने के लिए प्रयत्न किये गये हैं। वयस्क शिक्षा से सम्बन्धित नयी विधियों और पद्धतियों के विषय में सूचनाएं एकत्रित की गयी हैं और वितरित की हैं। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर गोष्ठियाँ आयोजित करने और विशेषज्ञों को भेजकर यूनेस्कों के सदस्य-राज्यों और उपर्युक्त अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को वयस्क शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम विकसित करने में सहायता पहुँचाई है।

यूनेस्कों का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य शिक्षा के माध्यम से बालकों को विश्व समाज में रहने के लिए तैयार करना है। शिक्षा के रूप में सम्बन्ध में यूनेस्कों की प्रारम्भिक योजना यह थी कि वह इस प्रकार की हो कि उससे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास हो सके। सन् 1952 में इसके कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए इसने सदस्य राज्यों से आग्रह किया है कि वे अपने यहाँ के पाठ्य पुस्तकों से दूसरे देशों के प्रति पक्षतापूर्ण सामग्री को निकाल दें तथा इस बात का प्रयत्न करें कि बच्चों के मस्तिष्क में दूसरों के प्रति घृणा और मिथ्या राष्ट्रीय अभियान तथा पक्षपात की मानेवृति जागृत न हो। इसी उद्देश्य हेतु स्कूलों के पाठ्यक्रम में संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा उसके विशिष्ट अभिकरणों एवं मानव-अधिकारों की घोषणा को शामिल करने का प्रयास किया गया है।

2. **सांस्कृतिक कार्य:** संगठन का एक मौलिक उद्देश्य है, अधिकारिधक लोगों में सांस्कृतिक चेतना जागृत करना। तकनीकी प्रगति एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों की होड़ में विश्व में लगे यूनेस्कों का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में साहित्य, कला, संगीत, नाटक और लोक परम्पराओं के रूप में व्यक्त सांस्कृतिक मूल्य एक बड़ी सीता तक मानव के मस्तिष्क और आत्मा की वृद्धि कर सकते हैं। इसलिए यूनेस्कों ने मानव जाति की सांस्कृतिक विरासत को कायम रखने के लिए प्रयत्न किये। उसने अनेक प्रकार की कार्यवाइयाँ की हैं। उसने कला तथा साहित्य का ज्ञान प्रसार, मानविकी में शोध को प्रोत्साहन दने, सांस्कृतिक महत्व के अवशेषों तथा वस्तुओं के सरंक्षण में हाथ बैठाया है और संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों के विकासार्थ सहायात प्रदान की है। इसके तत्त्वावधान में संग्रहालयों को लोकप्रिय बनाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार किया गया है। सांस्कृतिक सम्पत्ति की सुरक्षा और पुनर्निर्माण के अध्ययन के लिए रोम में एक अन्तर्राग्ष्ट्रीय केन्द्र खोला गया है। सार्वजनिक पुस्तकों के विकास को प्रेरणा देने के लिए यूनेस्कों ने भारत-नाइजीरिया और कोलम्बिया में तीन सार्वजनिक पुस्तकालय योजनाएँ आरम्भ करने में सहायता पहुँचाई है। प्राचीन अवशेषों के संरक्षण के लिए संगठन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेशन तैयार करके उसे लगीाग पचास देशों से स्वीकृत कराया है।

इस क्षेत्र में संगठन का महत्त्वपूर्ण योगदान है- अन्तर्राष्ट्रीय थियेटर संस्थान, अन्तर्राष्ट्रीय संगीत परिषद, अन्तर्राष्ट्रीय मानविकी तथा दर्शन अध्ययन परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय समाज-विज्ञान, और राजनीतिक-विज्ञान संघ आदि की स्थापना। इसके माध्यम से देश-विदेश के चिन्तन में तालमेल लाना संभव होगा।

यूनेस्कों के सांस्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत अनुसंधान, सभा-सम्मेलनों तथा विचार गोष्ठियों के आयोजन होते हैं, और बहुमुखी साहित्य का प्रकाशन होता है। संग्रहालयों के लिए फ्रेंच और अंग्रेजी में 'म्यूनियम' नामक पत्रिका निकलती है। ग्रामीण क्षेत्रों में वयस्क शिक्षा सम्बन्धी गोष्ठी का आयोजन किया जाता है। काल के विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास होता है तथा यह राय दी जाती है कि सांस्कृतिक विषयों का शिक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत कैसे लिया जाये। यूनेस्कों नाटक, संगीत, दर्शन, म्यूजियम, पुस्तकालयों आदि के सांस्कृतिक क्षेत्रों में स्वेच्छित संगठनों को अनुदान तथा चलती-फिरती कला-प्रदर्शनियों को प्रोत्साहन देता है।

पूर्व और पश्चिम के लोगों को एक-दूसरे के विषय में सीखने और अधिक अवसर देने के लिए यूनेस्को ने सन् 1956 में इस वर्ष के लिए 'पूर्वी-पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों के परस्पर अवधारण सम्बन्धी प्रमुख योजना'' प्रारंभ की। इसके अन्तर्गत यूनेस्कों ने इस सम्बन्ध में प्रयत्न किया है कि सूचना-सामग्री का प्रवाह दोनों तरफ हो अर्थात् पश्चिम से पूरब और पूरब से पश्चिम। इस उद्देश्य हेतू यूनेस्को ने पूरब और पश्चिम के समाज विज्ञानों के एवं मानवीय शास्त्रों के विशेषज्ञों की बैठकें आयोजित की हैं, छात्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं जिससे कि शिक्षक एवं शोध करने वाले विद्वान अन्य देशों की संस्कृतियों का अध्ययन कर सकें। बालकों के मस्तिष्क में अन्य राज्यों के सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सम्मान की भावना विकसित करने के उद्देश्य से शालाओं के पाठ्यक्रम में सुधार करने के प्रयत्न किये हैं और पूर्व के साहित्यिक ग्रन्थों का पश्चिम की भाषाओं में अनुवाद करने के कार्यक्रम को बढ़ावा दिया है। इस प्रकार यूनेस्कों ने अपने कार्यो में उन बौद्धिक एवं सांस्कृतिक दीवारों को तोड़ने का प्रयास किया है। जिन्होंने हमारी पृथ्वी को विभाजित कर रखा है।

3.3.10. पाठ का सार/सारांश

अपनी स्थापना के बाद में श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने तथा उसके कार्य करने की दशाओं में सुधार लाने में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की भूमिका काफी सराहनीय रही है। इसके वे स्तर निर्धारित कर दिए हैं जिनके द्वारा श्रमिक वर्ग की अवस्थाओं को सुधारा जा सकता है। जार्ज जी. गिरार्ड ने इसे एक नये ढंग की बहुपक्षीय कूटनीति बताया है जो हमारे युग की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इस संस्था की श्रम संहित दरिद्रता को दूर करने का मुख्य अस्त्र है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शीतयहयुद्ध ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के करीब-करीब सभी अंगों के कार्य-करण को प्रभावित किया लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन शीतयुद्ध से व्याप्त अंधकार में भी अपनी प्रभा से दीप्तिमान रहा। वी.वी.गिरी ने कहा है कि राष्ट्रसंघ असफल रहा लेकिन यह संस्था सफल रही है और अभी तक संसार में अच्छा कार्य कर रही है। द्वितीय युद्ध के उपरान्त इस संस्था के द्वारा एक नवीन युग का आरंभ होता है। इस संस्था की 40वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आकाशवाणी से भाषण करते हुए भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इस संस्था की प्रशंसा करते हुए कहा था: ''संसार की जनता अब इस संस्था से लाभ उठा रही है। उन्होंने इस संस्था के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों को श्रम की विश्व संसद् कहा था।''[141] उनके अनुसार ''इस संस्था की मुख्य देन यह है कि इसने श्रमिक वर्ग की अवस्था में स्थायी सुधार कर

[141] ILO Naws Servie, New Delhi, 14 August, 1959, p. 6.

दिया है तथा इसने सामाजिक न्याय के क्षेत्र को विकसित कर दिया है। इस संस्था की सफलता उन सब मनुष्यों की सफलता है जो अपनी शुभ-कामनाओं द्वारा मनुष्य मात्र की भलाई करना चाहते हैं।[142]

3.3.11. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1.) विशिष्ट अभिकरण के बारे विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ?

प्रश्नः- 2.) विशिष्ट अभिकरण की स्थापना किस प्रकार की जाती है।

प्रश्नः- 3.) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यो के बारे में बताइए।

प्रश्नः- 4.) श्रम-संगठन के सिद्धान्त कौन-कौन से है।

प्रश्नः- 5.) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय का उल्लेख किजिए?

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) विशिष्ट अभिकरण की सामान्य विशेषताओं के बारे में बताइए।

प्रश्नः- 2) अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के तीन प्रमुख अंगों का उल्लेख किजिए?

प्रश्नः- 3) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के कार्य कार्यो का मूल्यांकन किजिए?

प्रश्नः- 4) संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संगठन का वर्णन किजिए ?

प्रश्नः-5) संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संगठन के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों का वर्णन उल्लेख किजिए?

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्रश्नः- 1) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन स्थापना की गयी थी

1) 1919 2) 1920 3)1921 4) 1922

प्रश्नः- 2) अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के कितने अंग है।

1) 1 2) 2 3) 3 4) 4

प्रश्नः- 3) अंतर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन की बैठक वर्ष में होती है ?

1) 1 बार 2) 2 बार 3) 3 बार 4) 4 बार

प्रश्नः- 4) अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन प्रधान कार्यालय किस देश में अवस्थित है?

1) जेनेवा 2) न्यूयार्क 3) हेग 4) नार्वे

प्रश्नः- 5) संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संगठन की स्थापना हुई ?

1) 4 नवम्बर, 1946 2) 1 नवम्बर, 1946 3) 6नवम्बर, 1946 4) 16 नवम्बर, 1946

3.3.12. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- एन.डी.पलकर एण्ड एच.सी. परकिंस
- पलमर एण्ड परकिंस 417
- यूनाटिड नेशन्स बुलटिन अक्बूबर 15.1949
- यू.एन. मंथली, जून 1967
- इंटरनेशनल पालिटिक्स 596

[142] Ibid., p. 6

इकाई-4: संयुक्त राष्ट्र एवं मानव अधिकार

इकाई की रूपरेखा:

4.4.1. उद्देश्य कथन
4.4.2. प्रस्तावना
4.4.3. संयुक्त राष्ट्र चार्टर एवं मानवाधिकार
4.4.4. मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा
- 4.4.4.1. जीवन का अधिकार
- 4.4.4.2. स्वतंत्रता का अधिकार
- 4.4.4.3. सम्पत्ति का अधिकार
- 4.4.4.4. समानता का अधिकार
- 4.4.4.5. सामाजिक अधिकार
- 4.4.4.6. धार्मिक अधिकार
- 4.4.4.7. राजनीतिक अधिकार

4.4.5. आलोचनाएँ
- 4.4.5.1. व्यर्थ उच्च आकांक्षा
- 4.4.5.2. मानवाधिकारों की अधूरी सूची
- 4.4.5.3. उपलब्धियों के समान स्तर की घोषणा गलत
- 4.4.5.4. मानव अधिकार न्यायसंगत नही है
- 4.4.5.5. अल्पसंख्यकों के अधिकारों की अवहेलना
- 4.4.5.6. आर्थिक अधिकारों की गणना व्यर्थ व अनुचित
- 4.4.5.7. अधिकार केवल राज्य द्वारा संरक्षित
- 4.4.5.8. विश्व में समरूपता का अभाव

4.4.6. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम
- 4.4.6.1. गठन
- 4.4.6.2. मुख्यालय
- 4.4.6.3. कार्यकरण
- 4.4.6.4. कार्य
- 4.4.6.5. जाँच-पड़ताल एवं अन्वेषण
- 4.4.6.6. आयोग की विभिन्न सिफारिशें

4.4.7. राज्य मानव अधिकार आयोग
- 4.4.7.1. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम का मूल्यांकन

4.4.8. गुट निरपेक्षता का सिद्धान्त
- 4.4.8.1. अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति का लक्ष्य
- 4.4.8.2. मानवाधिकारों पर बल
- 4.4.8.3. भारत का सुरक्षा परिषद् की दावेदारी का समर्थन

4.4.9. मूल्यांकन
4.4.10. पाठ सार/सारांश

4.4.11. अभ्यास बोद्ध प्रश्न
4.4.12. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.4.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप:

- संयुक्त राष्ट्र में मानवधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की जानकारी प्राप्त करोगे।
- संयुक्त राष्ट्र में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाए रखने में मानवधिकारों की आवश्यकता के बारे में पता लगाएगें।
- संयुक्त राष्ट्र विश्व स्तर पर लोगों के मानवाधिकारों को कैसे बचा पाएगें की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.4.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर, में सबसे अधिक उल्लेख मानवाधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का है। मानवाधिकारों का इतिहास काफी पुराना है। अनेक घोषणाएं, प्रलेख व अधिनियम मानवाधिकारों को कार्यान्वित करने के लिए लागू किए गए हैं; जैसे ब्रिटेन का 1215 का मैग्ना कार्टा घोषणा-पत्र व 1689 का अधिकार-पत्र। 4 जुलाई, 1776 की संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता की उद्‌घोषणा तथा 1789 में फ्रांस में मानवाधिकारों की घोषणा। इतना ही नहीं, 1787 के फिलाडेल्फिया सम्मेलन में निर्मित अमेरिका के संविधान ने अपने नागरिकों को विस्तृत अधिकार प्रदान किए। उल्लेखनीय है कि अमेरिका के संविधान में प्रथम दो वर्षों में होने वाले 10 संशोधन जनता के मौलिक अधिकारों की स्वीकृति है। आधुनिक युग में अनेक विचारकों ने मानव अधिकारों का समर्थन किया है। लॉक, रूसो, वाल्टेयर, मॉण्टेस्क्यू, लास्की आदि ऐसे विद्वान हैं, जिन्होंने अधिकारों के विषय में सैद्धान्तिक आधार ही प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि इन्हे लोकप्रिय भी बनाया।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन अधिकारों की पैरवी का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। 1942 के वाशिंगटन सम्मेलन, 1942 के मास्को सम्मेलन व 1943 के डम्बार्टन ओक्स सम्मेलन ने मानवीय आकिारों के क्षेत्र में सराहनीय योगदान दिया। दो विश्वयुद्ध के बीच इन अधिकारों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों को भी बहुत अधिक बल मिला, जिसके कारण संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में इन अधिकारों को शामिल किए जाने के प्रयास किए गए।

4.4.3. संयुक्त राष्ट्र चार्टर एवं मानवाधिकार

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना में ''मानव अधिकरों में, मानव के व्यक्तित्व के सम्मान और महत्व में आस्था प्रकट की गयी है। इसके चार्टर के पहले अनुच्छेद के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के अनेक उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है, जाति, भाशा, लिंग अथवा धर्म को कोई भेद किए बिना, सभी के लिए मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंमत्रताओं के सम्मान को बढ़ावा देना। अनुच्छेद 1 में इस उद्देश्य की पूर्ति का कार्य संयुक्त राष्ट्र महा सभा के अधीन आर्थिक व सामाजिक परिषद् को सौंपा गया है। अनुच्छेद 56 व 76 भी मानवाधिकारों को संरक्षण देते हैं। उल्लखनीय है कि जहां राष्ट्र संघ के अंतर्गत अधिकारों के संबंस में आश्वासन मित्र देशों की सरकारों की ओर से दिए गए थे, वहां संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में मानवाधिकारों को सुरक्षित रखने का दायित्व संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों का माना गया है। इन सदस्यों को यह वैधानिक उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वे संयुक्त राष्ट्र

के सदस्यों के सहयोग से व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से मानवाधिकारों की रक्षा करें।

4.4.4. मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

संयुक्त राष्ट्र महा सभा द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को स्वीकार किया गया। विश्व के 58 राज्यों ने इस घोषणा का किसी प्रकार का विरोध नहीं किया, यद्यपि विश्व के आठ राज्य- यूगोस्लोवाकिया, दक्षिण अफ्रीका, पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, सोवियत संघ, यूक्रेन, बेलारूस तथा सऊदी अरब उपस्थित नहीं थे। एलेनोर रूजवेल्ट ने, जो मानवाधिकार आयोग की सभापति थीं, इस घोषणा के विषय में अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा ‘‘यह महान घोषणा कोई कानूनी दस्तावेज नहीं है और न ही कानूनी दायित्व का दावा करती है। यह तो विश्व के समस्त राष्ट्रों के लोगों के अधिकारों का आदर्श मापदण्ड प्रस्तुत करती है।’’

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में प्रस्तावना सहित 30 अनुच्छेद शामिल हैं। इसकी प्रस्तावना मनुष्य की प्रतिष्ठा व अधिकारों में अपार विश्वास प्रकट करती है। और इसे विश्व शांति, न्याय तथा स्वतंत्रता का आधार मानती है। मानव अधिकारों सार्वभौमिक घोषणा की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:-

1. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा कोई कानूनी दस्तावेज नहीं है। इसे अधिकारों के संबंध में विश्व के अनेक भागों में अलग-अलग समयों से की घोषणाओं की प्रक्रिया का अंतिम चरण कहा जा सकता है।
2. यह घोषणा मानव अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों का भी उल्लेख करती है। इसके अनुच्छेद 29 (1) के अनुसार, ‘‘प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे समाज के निर्माण के लिए कार्य करे, जिसमें सभी का विकास हो सके।’’
3. यह घोषणा एक विस्तृत प्रलेख है, जिसमें सभी प्रकार के अधिकारों का उल्लेख है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, नागरिक, राजनैतिक व कानूनी अधिकार शामिल हैं। इतना ही नहीं, इसमें प्राकृतिक अधिकारों को भी स्थान दिया गया है।
4. यह घोषणा मानव अधिकारों पर उचित सीमाओं को भी स्वीकार करती है अर्थात वर्णित अधिकार सीमित हैं क्योंकि इन पर नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था तथा सामान्य कल्याण के बंधन लगे हैं।
5. यह घोषणा समस्त मानव जाति की धरोहर है। यह घोषणा आग्रह करती है कि मानव अधिकारों को उपलब्ध करवाने में सदस्य-राज्य किसी प्रकार का भेदभाव न करे। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 29 में जाती-धर्म, भाषा, लिंग आदि भेदभाव के बिना मानव अधिकार सभी को दिलाने का आश्वासन दिया गया है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में वर्णित अधिकारों को निम्नलिखित शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

4.4.4.1. जीवन का अधिकार:- व्यक्ति के कुछ प्राकृतिक अधिकार माने गये हैं, जैसे- जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार व संपत्ति का अधिकार। इसमें सार्वधिक महत्वपूर्ण जीवन का अधिकार है, क्योंकि इस अधिकार के अभाव में व्यक्ति अन्य किसी अधिकार का उपभोग नहीं कर सकता है। टी. एच. ग्रीन के अनुसार, ‘‘यदि व्यक्ति को जीवन का अधिकर नही है, तो रज्य की उपयोगीता ही समाप्त हो जाती है।’’ लगभग सभी विचारकों का मत

है कि राज्य का मुख्य कार्य व्यक्ति के जीवन की रक्षा करना है। जीवन के अधिकार के अभाव में अराजकता की जो स्थिति पैदा होगी वह राज्य का वजूद न होने की सूचक होगी। थोमस होब्स के मतानुसार, ''जीवन की रक्षा का अधिकार इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपना सम्प्रभु को सौंप देता है।'' जीवन के अधिकार के विषय में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:-

1. जीवन का आधार व्यक्ति की आत्म-रक्षा की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। किसी भी अधिकार को मान्यता देने से पहले समाज को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि यह व्यक्ति का आत्म-रक्षा के लिए जरूरी है। जीवन का आधार असीमित नहीं होता अर्थात यह केवल उस सीमा तक प्रदान किया जाता है, जहां तक कि यह व्यक्ति के आत्म विकास में सहायक हो और समाज के हित में उचित सिद्ध हो सके।
2. जीवन के अधिकार में यह अंतर्निहित है कि प्रत्येक व्यक्ति को नया जीवन की रचना का अधिकार है। इसका यह अर्थ नहीं होता कि व्यक्ति निरपेक्ष रूप से इसका दवा करे।
3. जीवन के अधिकारों के तहत प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-रक्षा का अधिकार है अर्थात व्यवित द्वारा आत्म-रक्षा के लिए जिस भी साधन का प्रयोग किया जाएगा। वह न्यायोचित होगा, किन्तु इसका फैसवला न्यायालय द्वारा किया जाएगा।
4. जीवन के अधिकार में यह बात भी शामिल है कि हर व्यक्ति को काम करने का अधिकार प्रदान किया जाए।

4.4.4.2. स्वतंत्रता का अधिकार:- व्यक्ति का दूसरा महत्वपूर्ण अधिकार जो उसे राज्य द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए, वह है- स्वतंत्रता का अधिकार। वास्तव में स्वतंत्रता का अधिकर बहुत व्यापक है। मानव हर युग में स्वतंत्रता के प्रति आकर्षित रहा है। स्वतंत्रता को मानव जीवन का मूल गुण माना जाता है। आज स्वतंत्रता के अतिरिक्त केवल कुछ ही ऐसे आदर्श हैं, जो व्यक्ति को आकर्षित करते हैं, किन्तु व्यक्तियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान नहीं की जा सकती है। व्यक्ति को केवल यह अधिकार दिया जा सकता है कि वह अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्रतापूर्वक विकास कर सके। स्वतंत्रता के दो पहलू है- निषेधात्मक पहलू और सकारात्मक पहलू। निषेधातमक दृष्टि से स्वतंत्रता का अभिप्राय होता है, बन्धनों का अभाव। सकारात्मक दृष्टि से स्वतंत्रता का अभिप्राय होता है- उचित बन्धनों का अभाव।

5. **सम्पत्ति का अधिकार**- व्यक्ति के जीवन में संपत्ति का बहुत महत्व है, क्योंकि सम्पत्ति का अधिकार जीवन का का आधार होता है। विश्व-विख्यात विद्वान कार्ल मार्क्स ने संपत्ति को व्यक्ति की समस्त क्रियाओं को मूल माना है। इतना ही नहीं, मार्क्स ने मानव इतिहास की व्याख्या ही आर्थिक आधार पर की है। सम्पत्ति व्यक्ति के कार्यो की मूल प्रेरणा है। समय-समय पर सम्पत्ति का रूप बदलता रहता है। एक समय था, जब पशु-पक्षियों का स्वामित्व सम्पत्ति का अधिकार माना

जाता था, किन्तु आज औद्योगिक उपलब्धियाँ इसका प्रतीक बन चुकी है।

संपत्ति का अधिकार राज्य द्वारा दिया जाए या न दिया जाए, इस संबंध में फैसला इस आधार पर किया जाता है कि व्यक्ति का संपत्ति पर स्वामित्व उपयोगी है या नहीं। लास्की ने वर्तमान व्यवस्था को हर दृष्टि से अपर्याप्त माना है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपर्याप्त है, क्योंकि यह भय की भवना पैदा करके उन गुणों के विकास को रोक देती है, जो जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक है। यह नैतिक दृष्टि से पूर्ण नहीं है, क्योंकि यह ऐसे व्यक्तियों के अधिकार सौंप देती है, जिन्होंने सम्पत्ति कमाने के लिए कुछ भी नहीं किया था तथा जिन लोगों ने जितनी मेहनत की, उनको उतना प्राप्त नहीं हो सका। यह भावनातमक दृष्टि से भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इनके द्वारा धन का वितरण इस प्रकार नही किया जाता है कि सभी को स्वस्थ जीवनयापन और सुरक्षा की आवश्यक परिस्थितियां प्राप्त हो सकें। इसी कारण लेगों का बहुमत इसको अच्छी निगाह से नहीं देखता। कुछ लोग इससे घृणा करते हैं और अधिकांश लोग इसे उदासीनता की नजर से देखते हैं।

6. **समानता का अधिकार:**– मानवाधिकारों की श्रेणी में चौथा अधिकार समानता का अधिकार है। प्रत्येक राज्य अपने नागरिकों को समानता का अधिकार देने का प्रयास करता है, जिसके अनुसार किसी भी व्यक्ति, समुदाय या जाति को दूसरों के विरुद्ध विशेष अधिकार प्रदान नही किए जाते। प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में देखा जाता है और धर्म, सम्पत्ति आदि अधिकारों पर व्यक्ति-व्यक्ति में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता। इतना ही नहीं असमान व्यवहार व्यक्तिगत स्वतंत्रता को असंभव बना देता है, यहां कि उसके लिए सम्पत्ति के अधिकार को भी अधिक उपयोगिता नहीं रह जाती। राज्य के सभी व्यक्ति नागरिक के रूप में समान अधिकारों का प्रयोग करते हैं। लोकतंत्र के विकास ने इस अधिकार को और भी अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। राज्य सभी को एक समान दृष्टि से देखता है। डायसी द्वारा उल्लेखित 'कानून का शासन' असमानता से मुक्त व्यवहार है।

7. **सामाजिक अधिकार:**– मानव अधिकारों की श्रेणी में अगला अधिकार सामाजिक अधिकार है। व्यक्ति समाज का एक अंग है और समाज में रहकर वह स्वयं की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति कर सकता है। हर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपना पारिवारिक जीवन संगठित कर सके और अपनी सामाजिक प्रवृत्तियों को संतुष्ट कर सके। इस अधिकार में विवाह करने, अपने बच्चों की रक्षा तथा उनकी देखरेख करने तथा अपनी रुचि के अनुसार पारिवारिक जीवन व्यतीत करने का अधिकार शामिल है। किसी भी व्यक्ति का पारिवारिक जीवन पूरी तरह उसका अपना व्यक्तिगत मामला नहीं होता, क्योंकि संपूर्ण समाज पर उसका प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक अधिकार का प्रयोग करते हुए व्यक्ति को यह ध्यान रखना होता है कि दूसरे लोगों के किसी अधिकार में बाधा पैदा न हो। सामान्य कल्याण की दृष्टि से राज्य किसी भी व्यक्ति के पारिवारिक अधिकार पर रोक लगा सकता है।

आत्म-विकास के लिए व्यक्ति को विचार-अभिव्यक्ति का पूरा मौका प्रदान

किया जाना चाहिए। समाज में रहने वाले लोगों को निर्बाध रूप से विचार-विनियम करने तथा अपनी राय प्रकट करने का अधिकार प्राप्त होता है। जब किसी समाज में लोगों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान नहीं की जाती है, तो उस समाज का विकास अवरुद्ध हो जाता है। भाषण एव विचार-अभिव्यक्ति के अधिकार का प्रयोग करते हुए व्यक्ति अन्याय व अतयाचार का विरोध कर सकने में समर्थ होता है। साथ ही वह सरकार की नीतियों की आलोचना भी कर सकता है। भाषण के अधिकार के साथ-साथ प्रकाशन के अधिकार के द्वारा भी व्यक्ति को विचार-अभिव्यक्ति का मौका प्रदान किया जाता है।

8. **धार्मिक अधिकार:-** मानव अधिकारों की श्रेणी में छठा अधिकार धार्मिक अधिकार है। व्यक्ति के जीवन का एक आध्यात्मिक पक्ष भी होता है, जिनमें भावनाएं तथा विश्वास निहित होते हैं। यदि व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान न की जाए, तो वह एक प्रकार की घुटन महसूस करता है। इसलिए आवश्यक है कि व्यक्ति को अन्त:करण की स्वतंत्रता प्रदान की जाए अर्थात् व्यक्ति को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म को अपना सके। इसलिए राज्य को व्यक्ति के अन्त:करण से संबंधित क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। धर्म प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसलिए उचित यह होगा कि राज्य का स्वरूप धर्म-निरपेक्ष हो। वर्तमान समय में विश्व में अनेक धर्म-निपेक्ष राज्य हैं, जहां किसी धर्म विशेष को राजकीय धर्म के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है।

9. **राजनीतिक अधिकार:-** राजनीतिक अधिकार राज्य द्वारा केवल अपने नागरिकों को ही प्रदान किए जाते हैं, क्योंकि राज्य किसी भी अनागरिक तथा विदेशियों को अपनी प्राभुसत्ता के प्रयोग में भागीदार नहीं बनाना चाहता। राजनीतिक अधिकार कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे:-

- **मतदान का अधिकार:-** इस अधिकार के तहत व्यक्ति को चुनावों में अपनी पसंद का प्रत्याशी चुनने का अधिकार होता है। यह एक लोकतांत्रिक अधिकार है, किन्तु कुछ राज्यों में योग्यता या संपत्ति के आधार पर नागरिकों को मताधिकार प्रदान किया जाता है।
- **निर्वाचित होने का अधिकार:-** इस अधिकार के अनुसार प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह अन्य लोगों तथा उनके हितों का प्रतिनिधित्व कर सके। मताधिकार तथा निर्वाचित होने के अधिकार को एक-दूसरे का पर्यायवाची माना जाता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए इन दोनों अधिकारों का होना अपरिहार्य है।
- **राजनीतिक अधिकार:-** राजनीतिक अधिकार के तहत व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार सार्वजनिक पद ग्रहण कर सकता है।
- **सरकार की आलोचना करने का अधिकार:-** इस अधिकार द्वारा विचार-विमर्श एवं आवश्यकतानुसार की जाने वाली सरकार की आलोचना राज्य की क्रान्तियों के भय से मुक्त कर सकती है।

4.4.5. आलोचनाएँ

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की विभिन्न आधारों पर आलोचना की गयी है।

4.4.5.1. व्यर्थ उच्च आकांक्षाएँ:– विद्वानों का मानना है कि मानवाधिकारों की यह घोषणा उच्च आकांक्षाओं से अधिक कुछ नही है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति विशेष को अधिकार प्राप्त नहीं है, तो उस व्यक्ति की यह घोषणा कोई भी सहायता नहीं कर सकती। यह घोषणा व्यक्ति के मन में निराशा का भाव तो पैदा कर सकती है, किन्तु उसे कोई अधिकार नहीं दिलवा सकती।

4.4.5.2. मानवाधिकारों की अधूरी सूची:– कुछ विद्वानों की धारणा कि अधिकारों की यह सूची अधूरी है। शवर्जनवर्जर ने मानवाधिकारों की इस घोषणा की आलोचना करते हुए कहा है कि इस घोषणा में कुछ महत्वपूर्ण अधिकार हैं ही नहीं; जैसे- इस घोषणा में बेगार के विरुद्ध अधिकार को शामिल नहीं किया गया है, इसलिए कहा जाता है कि अधिकारों की यह सूची अधूरी है।

4.4.5.3. उपलब्धियों के समान स्तर की घोषणा गलत:– मानवाधिकारों की यह घोषणा समस्त व्यक्तियों तथा राज्यों के लिए अधिकारों के एक समान स्तर पर बल देती है, किन्तु व्यवहार में समस्त, व्यक्तियों तथा राज्यों के लिए अधिकारों का एक समान स्तर उपयुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक देश की, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियां भिन्न-भिन्न होती हैं। ऐसी स्थिति में अधिकारों के समान स्तर की घोषणा अनुचित है।

4.4.5.4. मानव अधिकार न्यायसंगत नही है:– मानव अधिकारों की इस घोषणा में शामिल अधिकार न्यायसंगत नही है अर्थात ये अधिकार राज्य सरकारों की इच्छा पर निर्भर है। प्रो0 केल्सन के शब्दों में, ‘‘अंतर्राष्ट्रीय अधिकार-पत्र व्यर्थ है, क्योंकि यह ऐसी किसी अंतराष्ट्रिय न्यायपलिका की स्थापना नहीं करता, जिसमें जाकर व्यक्ति अपने छिने अधिकारों को फिर से प्राप्त कर सके तथा इस संस्था के निर्णय उन राज्यों पर बाध्य हों, जिन्होंने इन अधिकारों की अवहेलना की है। इसलिए यह न्यायसंगत नहीं है।’’

4.4.5.5. अल्पसंख्यकों के अधिकारों की अवहेलना:– मानव अधिकारों की इस घोषणमें अल्पसंख्यक के अधिकारों की अवहेलना की गयी है। वर्तमान समय में प्रत्येक राज्य में अलग-अलग तरह के अल्पसंख्यक रहते हैं, जिनके संरक्षण और सुरक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। यह तभी संभव है जब प्रत्येक देश अल्पसंख्यकों के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करे, किन्तु मानवाधिकार घोषणा अल्पसंख्यकों के लिए किन्ही विशेष अधिकारों का उल्लेख नही करती है।

4.4.5.6. आर्थिक अधिकारों की गणना व्यर्थ व अनुचित:– मानव अधिकारों की इस घोषणा में आर्थिक अधिकार, काम का अधिकार, विश्राम व अवकाश का अधिकार, रखे तो गये हैं, लेकिन आर्थिक संसाधनों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं की गयी। भारत जैसे अनेक देशों में इन अधिकारों को लागू करवाना सरकार

के लिए आसान कार्य नहीं है, इसलिए आर्थिक अधिकारों की गणना व्यर्थ है।

4.4.5.7. अधिकार केवल राज्य द्वारा संरक्षित:- मानव अधिकारों की इस घोषणा की इस आधार पर भी आलोचना की गयी है कि केवल राज्य ही नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने की सामर्थ्य रखता है; अंतर्राष्ट्रीय संगठन नहीं। स्वेर लीन के शब्दों में, ''यह घोषणा अंतर्राष्ट्रीय संगठन को एक ऐसा कार्य करने के लिए कह रही है, जिसे करने में केवल रज्य ही समर्थ है।''

4.4.5.8. विश्व में समरूपता का अभाव:- मानव अधिकारों की इस आधार पर भी आलोचना की गयी है कि संपूर्ण विश्व में एक जैसी संस्कृति मौजूद नही है। फ्रीडम के अनुसार, ''सर्वमान्य अधिकरों को लागू करने के लिए ऐसा समाज होना आवश्यक है, जिसमें समान सामाजिक मूल्य और जीवन के समान स्तर हों।'' किन्तु विश्व में मौजूद विभिन्नताएं इन अधिकारों के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है।

4.4.6. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम

1993-भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना 27 सितंबर, 1993 में की गयी। इसकी स्थापना के लिए भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ0 शंकरदयाल शर्मा द्वारा एक अध्यादेश जारी किया गया। इसी अध्यादेश में राज्य स्तर पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोगों की स्थापना के लिए भी प्रावधान किया गया। इसके बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने के बाद यह विधेयक 8 जनवरी, 1994 को अधिनियम बन गया, जिसे ''मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम का उद्देश्य केन्द्र में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और राज्यों में मानव अधिकार आयोगों की स्थापना करना था। इसलिए इस अधिनियम द्वारा भारत में एक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गयी।

4.4.6.1. गठन

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में आठ सदस्य होते हैं और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधश इसके अध्यक्ष होते हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार के अन्य सदस्यों में सर्वोच्च नयायालय के सेवारत या सेवानिवृत्त न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के सेवारत या सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश होते हैं। राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली 6 सदस्यों की एक समिति की सिफारिश, पर की जाती है। इसके अध्यक्ष तथा सदस्य पद ग्रहण करने की तिथि से 5 वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बने रहते हैं। इनकी पुनः 5 साल के लिए नियुक्ति की जा सकती है। कोई भी व्यक्ति 70 वर्ष की आयु पूरी होने तक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की सेवा कर सकता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का एक महासचिव होता है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य को कदाचार या अक्षमता के आधार पर उसके पद से हटाया जा सकता है, किन्तु इसकी जांच-पड़ताल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की जाती है और उसकी रिपोर्ट आ जाने पर ही ऐसा किया जा सकता है। राष्ट्रपति द्वारा आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य के उसके पद से हटाया जा सकता है, यदि-

वह दिवालिया निर्णीत कर दिया गया हो,

अथवा

वह मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के योग्य न रह गया हो,

अथवा

वह अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के अतिरिक्त किसी वैतनिक नियोजन में संलग्न हो।

अथवा

वह ऐसे अपराध के लिए दोष सिद्ध या दण्डित किया गया हो, जो राष्ट्रपति की राय में नैतिक आर्मता के अन्तर्गत हो।

अथवा

उसे किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विकृतचित्त घोषित कर दिया गया हो।

4.4.6.2. मुख्यालय

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का मुख्यालय देश की राजधानी नई दिल्ली में है, किन्तु यह आयोग केन्द्र सरकार से अनुमति लेकर देश के अन्य स्थानों पर भी अपने कार्यालय स्थापित कर सकता है।

4.4.6.3. कार्यकरण

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 4 के अनुसार राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा ऐसी समिति की सिफारिश पर करने की व्यवस्था है, जिसका इस अधिनियम में प्रावधान है। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जस्टिस रंगनाथ मिश्र राष्ट्रीय मानव अधिकर आयोग के पहले अध्यक्ष थे, उन्होंने 12 अक्तूबर, 1993 को अपना पद ग्रहण किया था। वर्तमान में जस्टिस के. जी.बालाकृष्णन इस आयोग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं।

4.4.6.4. कार्य

राष्ट्रीय मानव अधिकर आयोग के कार्यो का उल्लेख मानव अधिकर संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 12 में किया गया है, जो इस प्रकार है:-

1. यह आयोग स्वप्रेरणा से या पड़ित व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपने समक्ष प्रस्तुत की गयी याचिका पर (अ) मानव अधिकार के उल्लंघन या उसके उपशमन या (ब) किसी लोक सेवक द्वारा ऐसे उल्लंघन के निवारण में की गयी उपेक्षा के बाद की जांच पड़ताल करेगा।
2. इस आयोग द्वारा ऐसे कार्य किए जाते हैं, जो मानव अधिकारों की अभिवृद्धि के लिए जरूरी समझे जाते हैं।
3. यह आयोग मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं एवं गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों को बढ़ावा देता है।
4. यह आयोग मानव अधिकार के विषय में की गयी संधियों एवं अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों का अध्ययन करेगा और उनको प्रभावी रूप से लागू करने की सिफालिश करता है।
5. यह आयोग मानव अधिकारों के क्षेत्र में चल रहे (अनुसंधान) कार्यो को बढ़ावा देता है।

6. इस आयोग द्वारा समाज के विभिन्न वर्गो के मध्य मानव अधिकार एवं संरक्षणों की अभिवृद्धि, प्रकाशन, समाचार माध्यम, संगोष्ठियों एवं अन्य उपलब्ध संसाधनों के द्वारा किया जाता है।
7. वह आयोग किसी न्यायालय के समक्ष लंबित किसी ऐसी कार्रवाई पर, न्यायालय के आग्रह से हस्तक्षेप कर सकता है, जिसमें मानव अधिकारों के उल्लंघन का कोई अभिकथन हो।
8. इस आयोग द्वारा राज्य सरकार को सूचना देकर राज्य सरकार के नियंत्रण में रहने वाले किसी कारागार या अन्य किसी संस्था का, जहां व्यक्तियों को उपचार, सुधार या संरक्षण के लिए निरुद्ध किया जाता हो, अन्त:वासियों की जीवन-दशा का अध्ययन करने तथा उस पर सिफारिश करने के लिए निरीक्षण करता है।
9. वह आयोग मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान या तत्संबधित प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन प्रावधानिक संरक्षणों का पुनर्विलोकन करता है और उनको प्रभावी ढंग से लागू करने के उपायों की सिफारिश करता है।
10. यह आयोग केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। आयोग ऐसे किसी भी मामले में विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत करता है, जो उसकी राय में इतना जरूरी तथा महत्वपूर्ण है कि उसे वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक स्थगित नहीं किया जा सके।

4.4.6.5. जाँच-पड़ताल एवं अन्वेषण

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य मानव अधिकारों के उल्लंघनों के परिवादों की जांच पड़ताल करना या उस पर अन्वेषण करना है। 1 नवम्बर, 1993 को आयोजित अपनी पहली बैठक में राष्ट्रीय मानवाधिकार ने बिजबेहना में लोगों की भीड़ पर सीमा सुरक्षा बल द्वारा गोली चलाने की घटना की स्वप्रेरणा से जांच की तथा घटना की रिपोर्अ पर अमल करते हुए भारत सरकार को नोटिस जारी किया थां उस समय से लेकर अब तक आयो ने अनेक परिवादों को प्राप्त किया है। आयोग द्वारा प्राप्त होने वाले परिवादों में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है।

उपयोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि आरम्भ से लेकर 2000 की अवधि तक परिवादों में लगातार वृद्धि हुई। वस्तुत: वे परिवाद जो विनियम संख्या 8 में सूचीबद्ध श्रेणियों के अन्तर्गत आते हैं, आयोग द्वारा ग्रहण नहीं किए जाते हैं। सूचीबद्ध कोटियों में आने वाले परिवाद निम्नलिखित प्रकार के होते हैं:-

1. ऐसी घटनाओं-संबंधी परिवाद, जो परिवाद किए जाने से एक वर्ष पूर्व से अधिक समय पहले घटित हुई थी।
2. इस प्रकार के परिवाद, जो न्यायालय के अधीन हैं।
3. इस प्रकार के परिवाद, जो अस्पष्ट, बिना नाम के या छद्म नाम के हैं।
4. ऐसे परिवाद, जो तुच्छ प्रकृति के हैं तथा
5. इस प्रकार के परिवाद, जो आयोग के क्षेत्राधिकार के बाहर के होते हैं।

इसके साथ-साथ राष्ट्रीय मनव अधिकार आयोग समय-समय पर मानव अधिकर के गम्भीर उल्लंघनों की रिपोर्ट पर परिवादों का अन्वेषण करता है। अन्वेषण उन व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है, जो योग्य होते हैं तथा जिनका मानव अधिकारों के संबंध में बेदाग

रिकार्ड रहा हो।

4.4.6.6. आयोग की विभिन्न सिफारिशें

मार्चा, 1997 तक मानवाधिकार आयोग ने सरकार के समक्ष अपनी चार रिपोर्ट प्रस्तुत की थीं। इन रिपोर्टों में आयोग के कामों को और भी अधिक प्रभावी बनाने के लिए अनेक सिफाशिं की गयी थीं; जैसे-

1. किसी पीड़ित व्यक्ति या उसके परिवार के सदस्यों को अनुतोष देने की शक्ति प्रदान करने हेतु आयोग के लिए अधिक स्वायत्तता सुनिश्चित करने के क्रम में आयोग ने मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में संशोधन करने की सिफरिश की थी।
2. इस आयोग द्वारा यह सिफारिश भी की गयी है कि व्यक्तियों को उनके अधिकारों की जानकारी देने के लिए जन-साधारण में जागृति की आवश्यकता है, किन्तु इतनी अधिक संख्या में गैर-सरकारी संगठनों के अस्तित्व में होने पर भी इस दिशा में कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया गया है।
3. इस आयोग द्वारा यह भी सिफारिश की गयी कि नीति-निर्माताओं, सुरक्षा बलों एवं मानव अधिकार के प्रतिपादकों के मध्य बातचीत जारी रहे, क्योंकि इसका विद्रोह और आतंकवाद को निपटाने के कार्य पर बहुत प्रभाव पड़ेगा।
4. इस आयोग ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा दिसम्बर, 1984 में अंगीकार किए गए यातना और क्रूर अमानवीय और अपमानजनक व्यवहर या दण्ड के अन्य रूपों के विरुद्ध अभिसम जो जून, 1987 को लागू हुआ था, को भी स्वीकृत करने की सिफारिश की है।
5. इस आयोग द्वारा पुलिस को सुधारने तथा उसे शिक्षित करने की सिफारिश की गयी। इसने यह सिफारिश भी की कि पुलिस सुधार आयोग 1979 की द्वितीय रिपोर्ट, जिसमें पुलिस के अन्वेषण कार्य को राजनीतिक दबाव से मुक्त रखने का सुझाव शामिल है, पर कार्रवाई की जाए।
6. इस आयोग की सिफारिश के अनुसार राष्ट्र को बाल श्रम की सामप्ति के प्रयास, शिशुओं की शिक्षा के अधिकार आदि में प्रगति करनी चाहिए।
7. इस आयोग ने सिफारिश की कि अर्द्धसैनिक बल तथा सेना अपनी अभिरक्षा में रहने वाले व्यक्ति की मृत्यु या बलात्कार के मामलों की रिपोर्ट सीधे आयोग को प्रदान करे।
8. इस आयोग ने यह भी कहा कि मानव अधिकार से संबंधित प्राथमिकताओं में से एक प्राथमिकता यह है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अल्पसंख्यक प्राथमिकताओं में से एक प्राथमिकता यह है कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अल्पसंख्यक वर्गों की स्थिति में सुधार किया जाए।
9. इस आयोग ने सिफारिश की कि दूरदर्शन और आकाशवाणी दोनों को मानव अधिकर की जानकारी में बढ़ोत्तरी करने की अपनी अन्तर्ग्रस्तता को बढ़ावा देना चहिए।

4.4.7. राज्य मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अध्याया 5 में राज्यों में राज्य मानव अधिकर आयोग की स्थापना के लिए प्रावधान किया गया है। इन आयोगों को उन समस्त कार्यो के निर्विघ्न करने की शक्ति प्राप्त है, जिन्हें राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को करने का अधिकार प्रदान किया गया है। राज्य मानव अधिकार आयोगों की स्थापना के क्रम में पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम तथा तमिलनाडु में मार्च, 1997 तक राज्य आयोगों का गठन किया जा चुका था। इसके बाद राजस्थान में 2000 में राज्य मानव अधिकार आयेग का गठन किया गया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने 1996 की रिपोर्ट में यह सिफारिश की कि रज्य स्तर पर मानव अधिकार आयोगों की स्थापना शीघ्र की जाए।

4.4.7.1. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम का मूल्यांकन

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोगों के साथ-साथ जिलों में भी मानव धिकर न्यायालयों के निर्दिष्ट लक्ष्यों अर्थात मानव अधिकारों के बेहतर संरक्षण के साथ गठन, किए जाने का प्रावधान है, किन्तु राष्ट्रीय आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण के कार्यो में बहुत कम प्रभावी रहा है। इस कमी को दूर करने और मानव अधिकारों के संरक्षण एवं अभिवृद्धि के लिए इसे अधिक प्रभवशाली उपकरण बनाने के संबंध में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने भारत के पूर्व न्यायधीश जस्टिस ए. एम. अहमद की अध्यक्षता में एक परामर्शदात्री समिति का गठन किया और इसे मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 का पुनर्निरीक्षण करने के लिए कहा।

मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए भारत में राष्ट्रीय मानव आयोग की स्थापना की गयी है और इसे व्यापक शक्तियां प्रदान की गयी हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि कुछ जटिल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक कारण बहुत बड़ी सीमा तक मानव अधिकारों के संरक्षण में बाधक बने हुए हैं। मानवाधिकार आयोग चाहे कितना ही प्रभावी क्यों न हो, लाखों अभावग्रस्त लोगों के लिए भोजन, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की सुविधाएं प्रदान नहीं कर सकता। यह सरकार का कर्तव्य है कि वह मानव की गरिमा की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक मूलभूत अधिकारों का प्रबन्ध करे। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मानव अधिकार की संस्कृति का अधिकाधिक विकास करे, ताकि मानव अधिकारों के बारे में लोगों में अधिकाधिक जागृति पैदा हो।

4.4.8. गुट निरपेक्षता का सिद्धान्त

तीसरे विश्व के अधिकतर रज्य गुट-निरपेक्ष हैं। दूसरे विश्व-युद्ध के बाद विश्व दो भागों में विभाजित हो गया था, जिसमें एक गुट का नेतृत्व पूंजीवादी अमेरिका तथा दूसरे गुट का नेतृत्व साम्यवादी सोवियत संघ (रूस) कर रहा था, किन्तु विश्व के कुछ ऐसे राज्य थे, जिन्होंने किसी भी गुट में शामिल न होने का निश्चय किया था। इस प्रकार के राज्यों को गुट-निरपेक्ष राज्य के नाम से जाना गयां गुट-निरपेक्षता की अवधारणा नेहरू, नासिर, टीटी की देन है, किन्तु आज इस अवधारणा में काफी अन्तर आ गया है। वर्तमान समय में तीसरे विश्व के अनेक रज्य गुट-निरपेक्ष आन्दोलन में शामिल हो गए हैं, किन्तु

कुछ राज्य ऐसे भी हैं जिनका इस अवधारणा में अधिक विश्वास नहीं है। तीसरे विश्व के रज्यों के इसमें शामिल होने के कारण वर्तमान समय में गुट-निरपेक्ष राज्यों की संख्या 140 से भी अधिक हो गयी है।

4.4.8.1. अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति का लक्ष्य

दूसरे विश्व-युद्ध में लाखों लोगों को अपने प्राण गंवाने पड़े थे, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्ष की स्थापना करने के लिए संयुक्त राष्ट्र का निर्माण किया गया। तीसरे विश्व के राज्यों का उद्देश्य भी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना करना है। ये राज्य संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र, उद्देश्यों, सिद्धान्तों तथा लक्ष्यों के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हैं। इतना ही नहीं, ये संयुक्त राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए आशा की किरण मानते हैं। ये अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने में विश्वास करते हैं। वास्तव में ये संयुक्त राष्ट्र का शक्तिशाली बनाना चाहते हैं।

4.4.8.2. मानवाधिकारों पर बल

तीसरे विश्व के सभी राज्य मानवाधिकारों पर बल देते हैं। मानवाधिकारों के हनन करने में तीसरे विश्व के राज्य बदनाम रहे हैं। इसलिए ये राज्य मानवाधिकारों की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं। ये सभी राज्य मानवाधिकारों की जोर-शोर से वकालत करते रहे हैं, क्योंकि औपनिवेशक दासता के दौर में यहां जनता के अधिकारों की व्यापक रूप से उल्लंघन किया जाता था।

4.4.8.3. भारत का सुरक्षा परिषद् की दावेदारी का समर्थन

तीसरे विश्व के राज्य भारत जैसे राज्य की सुरक्षा परिषद् स्थायी सदस्यता का समर्थन करते हैं। इन सभी राज्यों का मत है कि अब समय आ गया है कि भारत जैसे विकासशील देश की सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता दी जाए। ये राज्य संयुक्त राष्ट्र की महा सभा में भारत की सुरक्षा परिषद की दावेदारी का समर्थन करते हैं। इन राज्यों का यह मत है कि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राज्य है, इसलिए भारत को सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता मिलनी चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र में तीसरे विश्व के राज्यों की सहभागिता का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समय में ये राज्य संयुक्त राष्ट्र में अहम भूमिका निभा रहे हैं।

1. महासभा की बढ़ती प्रतिष्ठा का एक महत्वपूर्ण कारण यह रहा है कि इसकी सदस्य संख्या में बड़ी तेजी से वृद्धि हुई है। प्रारंभ में जहाँ सन् 1945 से 51 सदस्य थे, आज बढ़कर 184 हो गये है। संसार के इने गिने कुछ राष्ट्र ही इसकी सदस्यता से अब वंचित रह गये है। इनकी तुलना में सुरक्षा परिषद् में केवल 15 सदस्य है। इस दृष्टिकोण से वह सच्च अर्थ में विश्व की प्रतिनिधि संस्था नहीं कही जा सकती। वास्तव में महासभा ने अब मानव-जाति की संसद का रूप धारण कर लिया है जिसमें सदस्य-राज्य शांतिपूर्ण परिवर्तन की अनेक समस्याओं पर विचार करने का साधन ढूँढते हैं और यह भी कानूनत: संसदीय प्रक्रिया के ढाँचे में सितम्बर के तीसरे सप्ताह में जब महासभा का वार्षिक अधिवेशन शुरू होता है तो उसमें भाग लेने के लिए विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञ न्यूयार्क में एकत्र होते है। यहाँ के स्वतंत्र रूप से अपनी शिकायतें, प्रस्ताव और सुझाव आदि प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार एक ऐसे मंच

के रूप में काम करती है जहाँ संसार की सभी समस्याओं-राजनीतिक और गैर-राजनीतिक पर विचार किया जाता है। इससे भी महासभा की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है।

2. महासभा की प्रतिष्ठा की वृद्धि में अफ्रीकी-एशियाई देशों का भी सक्रिय योगदान है। आज संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों का सबसे बड़ा समूह अफ्रीकी एशियाई समूह है जिसके सदस्यों की संख्या आधी शर्तो से भी अधिक बढ़ गयी है। इसमें से केवल ग्यारह संयुक्त राष्ट्रसंघ के संस्थापक सदस्य है। ये नवोदित तथा विकासशील देश महासभा के सदस्य होने के नाते इसकी और अधिक भरोसे के साथ देखते हैं। उनके लिए महासभा ही संघ का एक ऐसा अंग है जहाँ वे अपनी संख्या के बहुमत कों बल पर अपने पक्ष को बड़ी शक्तियों के विरुद्ध दृढ़ता के साथ प्रस्तुत कर सकते है तथा निर्णय ले सकते हैं। अतः संयुक्त राष्ट्रसंघ में महासभा को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उचित भूमिका दिलाने के लिए वे प्रयत्नशील रह हैं।

3. एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण है-स्थायी सदस्यों में मतभेद और उनके निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् की क्षमता में निंरतर कमी। निषेधाधिकार के अनुचित और अधिक प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् अधिक लाभकारी नहीं रही है। यह कोई भी निर्णय नहीं ले पाती और न किसी झगड़े को सुलझा पाती है। अतः संकटकालीन स्थिति में सदस्य राज्य इस पर पूरा भरोसा नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में उनके लिए यह आवश्यक था ि कवे संघ के किसी अंग को शक्तिशाली बनावें जिससे ि कवह सुरक्षा-परिषद् में निषेधाधिकार के कारण गतिरोध पैदा हो जाने पर उस रिक्तता को पूरा कर सके। इसी स्थिति में 3 नवम्बर 1950 को शांति के लिए एकता प्रस्ताव को जन्म दिया। इस प्रस्ताव ने महासभा की शक्तियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला दिया। इसके अनुसार यदि सुरक्षा परिषद् आपसी मतभेदों के कारण शांति भग की अथवा आक्रमण की आशंका या आक्रमण को रोकने में अपने कर्त्तव्य का पालन नही करती तो सुरक्षा परिषद् के निषेधाधिकार विहीन कोई सदस्य अथवा संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों के बहुमत से 24 घंटे के सूचना पर महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकता है। महासभा ऐसे विषय पर तुरंत विचार कर सामूहिक कार्रवाई का भी निर्देश कर सकती है। प्रस्तुत इस प्रस्ताव ने संयुक्त राष्ट्र के विधान में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। न केवल इसने सुरक्षा गतिरोध को दूर करने का हल निकाल लिया। इसने सभा को सुरक्षा परिषद् की तुलना में महासभा का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ा है। यही कारण है कि निरस्त्रीकरण, राजनीतिक विवादो का निबटारा और सामूहिक सुरक्षा सम्बन्धी विषयों पर जहाँ सुरक्षा परिषद् को प्रमुख भूमिका निभानी थी, वहाँ महासभा को महत्त्वपूर्ण कार्य करने व निर्णय लेने पड़े हैं। नवम्बर 1956 में मिस्त्र पर इजरायल, इंगलैंड, और फ्रांस द्वारा आक्रमणात्मक कार्रवाई करने पर महासभा के विशेष अधिवेशन ने इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करते हुए सफलतापूर्वक शांति स्थापित करने पर महासभा के विशेष अधिवेशन ने इस प्रस्ताव के अनुसार कार्य करते हुए सफलतापूर्वक शांति स्थापित की थी। इस प्रकार हम देखते है कि बड़े राष्ट्रों के मतभेद के कारण वहाँ सुरक्षा परिषद् की क्षमता घटती गयी वहाँ महासभा की शक्ति बढ़ती गयी। जैसा कि पामर और परकिन्स ने कहा है अपनी

असमर्थता के कारण सुरक्षा परिषद् अपना कार्य सुचारू रूप से करने में सफल नही हो सकती है। इस कारण सभा की शक्ति मतभेद से उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के वातावरण में यह स्वाभाविक ही था कि महासभा एक ऐसे अंग के रूप में कार्य करना शुरू करे जहाँ अधिक से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार किया जा सके।[143] एल एम. गुडरीव ने भी उक्त मत का समर्थन किया है। उसके अनुसार शीतयुद्ध से ग्रस्त सुरक्षा परिषद् की अकर्मण्यता की स्थिति में सभा को एक मनोरम प्लेटफार्म होना स्वाभाविक ही कहा जायेगा।[144]

4. संयुक्त राष्ट्रसंघ में छोटे राज्यों की बहुलता ने भी महासभा को एक शक्तिशाली संस्था बनाने में योगदान किया है। इन राज्यों के पास सैन्य या आर्थिक शक्ति अधिक नहीं है। उनकी अर्थव्यवस्था में अधिकांश का अधिकार मात्र जीवन यापन करने योग्य खेती है। उनका निर्यात व्यापार कभी-कभी एक ही वस्तु तक सीमित होता है। शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाएँ अपर्याप्त है। इन देशों के लिए जो अपनी भौतिक दुर्बलता के प्रति सचेत है, महासभा एक ऐसा मंच है, जहाँ दुर्बलता से कोई विशेष हानि नहीं होती। महासभा ही एक ऐसा अंग है जहाँ वे अपनी बहुमत के आधार पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यान्वयन को प्रभावित कर सकते है और अपने हित में निर्णय कराने में सफल हो सकते है। यही कारण है कि महासभा ऐसे राज्यों में अधिक लोकप्रिय है। उन्होंने सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में ही महासभा को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया था। परन्तु वहाँ सफल नही हो सके। बाद की घटनाओं ने उनका साथ दिया। महाशक्तियों के मतभेद तथा निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् बिल्कुल नाकामयाब साबित हुई। छोटे राज्यों ने परिषद् की कमजोरियों से लाभ उठाया और महासभा के प्रभाव में वृद्धि के लिए निंरतर दबाव डालना शुरू किया। यही संस्था उनकी बड़ी उम्मीदों के अवशेष के रूप में है। उनके प्रयास से शक्ति का हस्तान्तरण परिषद् से सभा के हाथों में हुआ। गुड्सपीड का विचार है कि यदि शीतयुद्ध की स्थिति न भी रहती तब भी ये छोटे राज्य महासभा को ऊँचे पद पर लाने का अवश्य ही प्रयास करते।[145] वे ऐसे किसी भी उपाय का सहारा लेने से नहीं चूकते जिससे महासभा की रीढ़ मजबूत होती।

उपर्युक्त कारणों के चलते अपने संस्थापकों की इच्छा के विपरीत महासभा एक बड़ा अंग बन गयी, और इसकी कोई संभावना नहीं कि उसकी यह स्थिति कभी बदल भी पायेगी। व्यवहार में भी महासभा ने केवल विश्व मंच के रूप में कार्य नहीं किया है, वरन् महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर रविचार कर निर्णय भी लिया है इसने नकारात्मक और सकारात्मक दोनों दिशाओं में कार्य किया है। नाकारात्मक कार्य के द्वारा इसने राजनीतिक आग बुझाने में मदद की है तथा सकारात्मक कार्यो के द्वारा इससे आग लगने की गुंजाइश कम की है। कुछ इने गिन यूरोपीय राज्यों से शुरू होने वाली यह संस्था आज विश्वजनीन

---

[143] Palmer and Perkins : op.cit. , p. 1167

[144] With the climate of international relations characterized by tension and COnflict between the major powers, it is perhaps inevitable that the Asembly should become the organ called upon to consider an increasing number of political questions.

[145] It is entirely possible that this preponderant group of states would have worked toward an increasing important role for the General Assembly even it the disunity of the Great powers had not materialized.

कहलाने का दावा करने लगी है। यहाँ अणुबम से लेकर मानवीय कल्याण भोजन, कपड़ो, आवास तक की सभी समस्याओं पर विचार होता है, अतः इसे विश्व का उन्मुक्त अन्तःकरण ठीक ही कहा जाता है।

फिर भी यह याद रखना होगा कि अपनी कुछ अन्तर्निहित कमजोरियों के कारण महासभा की भूमिका काफी उत्साहवर्द्धक नहीं रही है। निकोलास का कथन है कि इसकी मंथर गति एवं प्रक्रिया के निर्वाह एवं उद्देश्यों की एकता का अभाव आदि बातें सचमुच हतात्साहित करने वाली है।[146] आकार और संगठन की दृष्टि में महासभा एक विशाल संस्था है जिसमें विभिन्न स्वरूप एवं स्वभाव वाले राष्ट्र रहते है। वे इ समंच को सार्वजनिक प्रदर्शन के रूप में प्रयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। परिणामस्वरूप महासभा का सम्मिलित एवं समन्वयकारी प्रभाव नहीं पड़ता।[147] प्रक्रिया-सम्बन्धी दुरुहता तथा समय की कमी इसकी अन्य बाधाएँ है जिनके कारण इसके अनेक सत्र केवल अनुत्पादक सत्र (Unproductive Session) बनकर रह जाते है। साथ ही महासभा के कार्य इतने अधिक बढ़ गये है कि अब उन्हें सम्भाल पाना मुश्किल हो गया है। क्लॉड ने महासभा की इस स्थिति की तुलना उस बच्चे से की है जिसने अधिक खना खाकर अपनी पाचन शक्ति खराब कर ली है।[148]

राजनीतिक मामलों में महासभा के अधिकारों का उल्लेख चार्टर की धारा 11 में किया गया है। इसमें कहा गया है कि महासभा शांति और सुरक्षा कायम रखने में सहयोग के आम सिंद्धातो पर विचार कर सकती है। यह निरस्त्रीकरण और शास्त्रों के नियंत्रण पर भी विचार कर सकती है। इन सिंद्धातों के विषय में संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों व सुरक्षा परिषद् या दोनों से सिफारिश कर सकती है यहाँ भी कहा गया है कि विश्व-सुरक्षा और शांत सम्बन्धी कोई भी प्रश्न विचारार्थ महासभा के समक्ष रखा जा सकता है। परन्तु सुरक्षा-सम्बन्धी विषय जिन पर कुछ कार्रवाई करना आवश्यक है उसे विचार-विमर्श के पहले या बाद में सुरक्षा मे भेजना जरूरी है। राष्ट्रसंघ के विधान की धारा 3 से तुलना करने पर दोनों संस्थाओं की स्थित स्पष्ट हो जाती है। धारा 3 में कहा गया है कि असेम्बली अपनी बैठकों में वैसे किसी भी विषय पर विचार कर सकती है जो संघ के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत है अथवा जो विश्व शांति को प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में दुनिया की शांति को प्रभावित करने वाले किसी भी विषय को अपने हाथ में ले सकती है। धारा 11 यह उपलब्धित करती है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति से सम्बन्धित किसी भी विवाद या समस्या की ओर असेम्बली अथवा कौसिल का ध्यान आकृष्ट करना प्रत्येक सदस्य राज्य का मैत्रीपूर्ण कर्त्तव्य होगा।'' चार्टर तथा राष्ट्रसंघ के विधान की उपर्युक्त धाराओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि असेम्बली को राजनीतिक क्षेत्र में महासभा की अपेक्षा अधिक प्रभावी अधिकार प्राप्त थे। परन्तु धारा 13, 15 और 16 अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में सम्बद्ध थी, निर्णय लेने का अधिकार केवल कौसिल को प्रदान करती है। फलस्वरूप व्यवहार में असेम्बली की स्थिति महासभा से भिन्न नहीं मालूम पड़ती।

---

[146] H.G. Nlcholas: Op, cit., p.97
[147] S.D Balley: Op cit., p. 18
[148] Inls L. Claude: Op. cit. P. 166

4.4.9. मूंल्याकन

जहाँ तक गैर-राजनीतिक कार्यो का सम्बन्ध है राष्ट्रसंघ की असेम्बली और संयुक्त राष्ट्र की महासभा में पर्याप्त अन्तर मालूम पड़ता है। चार्टर के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्रसंघ को गैर राजनीतिक क्षेत्र यानी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानव-अधिकारों के क्षेत्र में काफी व्यापक कार्य सौंपे गये हैं और इन दायित्वों का संपादन करने का भार महासभा तथा उसके सहायतार्थ आर्थिक और सामाजिक परिषद् पर सौंपा गया है। इस प्रकार इस क्षेत्र में महासभा के अधिकार तथा दायित्व सर्वोपरि है। राष्ट्रसंघ की कौंसिल की जो दायित्व दिये गये थे, वे संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा को प्रदान किये गये है।

राष्ट्रसंघ के विधान के अन्तर्गत निरशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में कार्रवाई करने का अधिकार असेम्बली को नहीं प्रदान किया गया था। धारा 8 के अर्न्तगत कौंसिल को इसके सम्बन्ध में कार्यक्रम तथा व्यावहारिक योजना बनाने का भार दिया गया था। कौंसिल का यह काम पूरा हो जाने के बाद असेम्बली ने इस समस्या में काफी दिलचस्पी दिखलाई। लगभग एक दशक तक असेम्बली की प्रत्येक वार्षिक बैठक में इस प्रश्न पर वाद विवाद किया जाता था तथा कौंसिल के कार्यो की आलोचना भी की जाती। संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा में इस समस्या पर इतना अधिक ध्यान नही दिया गया है।

मैडेट प्रदेशो के सम्बन्ध में दोनों संस्थाओं के अधिकारों में अंतर है। राष्ट्रसंघ की मैंडेट व्यवस्था के अधीक्षण का अधिकार कौंसिल को प्राप्त था। वही मैंडट प्रदेशों की देखभाल करने के लिए स्थायी मैंडेट आयोग का गठन करती थी। असेम्बली अधिक से अधिक इस सम्बन्ध के कार्यों की आलोचना कर सकती थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ में इस संदर्भ में महासभा को ही अधिकार प्रदान किया गया है। सामरिक क्षेत्रों को छोड़कर सामान्य न्यास प्रदेशों के सम्बन्ध में महासभा तथा सके सहायतार्थ न्यास परिषद् पर सारे दायित्व सौंपे गये है। महासभा न्यास समझौते को स्वीकार करती है, प्रतिवेदन पर विचार करती है, याचिकाएँ स्वीकार करती है तथा निरीक्षण के लिए शिष्ट मंडल भेजती है। इस प्रकार जहाँ राष्ट्रसंघ में महासभा को काफी व्यापक दायित्व प्रदान किये गये है।

परन्तु संघ के नये सदस्यों के प्रवेश के संबंध में असेम्बली को महासभा की तुलना में अधिक व्यापक अधिकार प्राप्त थे। राष्ट्रसंघ के विधान की धारा 1 (2) में असेम्बली के सदस्य सम्बन्धी अधिकार का उल्लेख है। इसके अनुसार असेम्बली अपने दो तिहाई बहुमत से सदस्यता के लिए प्रार्थी देश को संघ का सदस्य बना सकती थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा को इस सम्बन्ध में बहुत सीमित शक्ति प्राप्त है। चार्टर की धारा 4 (1) में यह व्यवस्था है कि महासभा सुरक्षा परिषद् की अनुशंसा पर ही किसी देश को सदस्य बना सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि नये सदस्यों के प्रवेश के सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति सुरक्षा परिषद् की है न कि महासभा की। इस प्रकार हम देखते है कि इस मामले में असेम्बली के अधिकार कौंसिल से अधिक व्यापक तथा निर्णायक थे।

राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत जो अधिकार असेम्बली को प्रदान किये गये थे, वे कौंसिल के अधिकार से कम थे। वास्तव में संघ के विधान निर्माताओं का विचार था कि वास्तविक कार्य परिषद् मे होने के कारण असेम्बली का विशेष महत्व नही होगा तथापि धीरे-धीरे इसका महत्त्व और सम्मान परिषद् से अधिक बढ़ता गया।[149] संयुक्त राष्ट्र के

149

विधान के अन्तर्गत भी अधिकार की दृष्टि से महासभा का दूसरा नम्बर है। विधान द्वारा सुरक्षा परिषद् संघ का कार्यकारी अंग हो और महासभा एक वाद-विवाद के मंच के रूप में कार्य करे। इसी कारण चार्टर द्वारा जहाँ सुरक्षा परिषद् को बाध्यकारी शक्ति प्रदान की गयी वहाँ महासभा को केवल सिफारिश करने का अधिकार दिया गया। लेकिन कालान्तर में परिस्थितियों के चलते यह स्थिति बदल गयी और महासभा का महत्त्व निरंतर बढ़ता गया। इस प्रकार यह विश्व की उन्मुक्त अन्तरात्मा'' बन गयी है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रसंघ के संगठन अधिकार और कार्य महासभा के संगठन, अधिकार और कार्य से कई बातों से मिलते जुलते थे। परन्तु कई बातों में वे मूलतः भिन्न थे। दोनों से भिन्नता का मूल कारण वह अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य था जिसमें उनका जन्म हुआ था। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि महासभा राष्ट्रसंघ की असैम्बली का विकसित रूप है।

4.4.10. पाठ सार/सारांश

नि:सन्देह मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा एक कानूनी प्रलेख नहीं है। विश्व में ऐसी सर्वमान्य न्यायपालिका भी नही है, जो मानवाधिकारों की रक्षा कर सके। इनकी रक्षा का प्रश्न और भी अधिक जटिल हो जाता है, जब इन अधिकारों का हनन सम्प्रभुता- सम्पन्न राज्यों द्वारा किया जाता है। फिर भी, मानव अधिकारों की घोषणा करके संयुक्त राष्ट्र ने सराहनीय कार्य किया है, क्योंकि इसने इन अधिकारों को एक आंदोलन के रूप में स्थापित किया है तथा विश्व जनमत को इन अधिकारों के प्रति जागृत किया है। यदि आज विश्व के किसी भी कोने में मानवाधिकारों का हनन होता है, तो संपूर्ण विश्व में उसके विरोध का स्वर सुनायी देने लगता है।

देश में मानव अधिकारों को लागू करने के लिए किसी राष्ट्रीय संस्था की स्थापना आवश्यक है। इसी प्रकार की संस्था शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान के माध्यम से मानव अधिकारों के प्रति जानकारी पैदा करने में सहायक होती है और मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों में निष्पक्ष जांच-पड़ताल करती है। मानव अधिकारों की रक्षा के लिए राष्ट्रीय संस्था अथवा आयोग की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए 1993 में विश्व मानव अधिकार सम्मेलन में कहा गया कि- ''विश्व मानव अधिकार सम्मेलन सरकारों से ऐसी राष्ट्रीय संरचनाओं और संस्थाओं को और भी शक्तिशाली बनाने का अनुरोध करता है, जो मानव अधिकारों में बढ़ोत्तरी एवं संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हों।'' इसी प्रकार वियना घोषणा और कार्रवाई कार्यक्रम के लागू करने पर संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार उच्चायुक्त की 12 सितम्बर, 1998 की रिपोर्ट में कहा गया कि राज्यों को राष्ट्रीय मानव अधिकार संरचना और संस्थाओं की स्थापना की ओर मजबूत बनाने पर विचार करना चाहिए।

भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र महा सभा की तीसरी समिति के समक्ष मानव अधिकारों की वृद्धि तथा रक्षा के लिए एक राष्ट्रीय संस्था को स्थापित करने एवं मजबूत करने के संबंध में उत्सुकतापूर्ण रूचि दर्शायी गयी थी। इसने एक प्रारूप संकल्पित किया था, जिसमें इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाओं की स्वतंत्रता तथा निष्ठा के महत्व पर जोर दिया गया था। प्रारूप संकल्प में भारत ने संयुक्त राष्ट्र के महा सचिव से मानव अधिकार के दस्तावेजों को लागू करने के प्रति उनके योगदान के संबंध में दो वर्षों में कहा सभा को

प्रतिवेदन प्रस्तुत करने को कहा। मानव अधिकारों की रक्षा एवं अभिवृद्धि के लिए राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के संबंध में भारत द्वारा दिखायी गय रूची की प्रशंसा की गयी। अन्तर्राष्ट्रीय फोरम में दिखायी गयी इस रूचि से सिद्ध होता है कि भारत इस प्रकार की संस्था की स्थापना करने के पक्ष में था। फिर भी, उस समय इस प्रकार किसी संस्था की स्थापना नहीं की गयी थी।

4.4.11. अभ्यास बोद्ध प्रश्न

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1 मानवाधिकार परिषद के सदस्य के चुनाव की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ?

2 संयुक्त राष्ट्र में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को बनाए रखने में मानवधिकारों की आवश्यकता क्यों है ?

3 मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम के बारे विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ?

4 अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति का लक्ष्य का उल्लेख किजिए?

5 अल्पसंख्यकों के अधिकारों की अवहेलना के बारे में बताइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1 मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम का मूल्यांकन कीजिए ?

2 मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ?

3 गुट निरपेक्षता का सिद्धान्त का उल्लेख किजिए?

4 राज्य मानव अधिकार आयोग का मूल्यांकन कीजिए ?

5 भारत का सुरक्षा परिषद् की दावेदारी का समर्थन की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए ?

बहुवैकिल्पिक

प्र. 1) एशिया प्रान्त क्षेत्र से मानवाधिकार परिषद में कुल सीटे हैं।

1) 10 2) 5 3) 15 4) 20

प्र. 2) भारत को मानवाधिकार परिषद का सदस्य कितने समय के लिए चुना गया है।

1) 3 2) 5 3) 7 4) 9

प्र. 3) मानवाधिकार परिषद में चुने जाने के लिए कम-से-कम कितनी वोटों की आवश्यकता होती है।

1) 88 2) 97 3) 89 4) 103

प्र. 4) भारत को मानवाधिकार परिषद के सदस्य के चुनाव में कितनी वोट प्राप्त हुई।

1) 199 2) 188 3) 177 4) 166

प्र. 5) क्या अब से पहले भारत मानवाधिकार परिषद का सदस्य रह चुका है।

1) हाँ 2) नही 3) 1 और 2 दोनों 4) इनमें से कोई नही।

4.4.12. संदर्भ सूची

1. लिनोर्ड.एल.लर. इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन न्यूयार्क मैक ग्रोव हिल 1951
2. ली ट्रयगव इन दा कोप ऑफ पीस, न्यूयार्क, मैकमिलन 1951
3. मैन्डर लीनडन ए. फाउन्डेशन ऑफ मोडर्स वर्ल्ड सोसायटी कैलिफोर्निया, स्टैण्डफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस 1948
4. मार्टिन ए कोलेक्टिव सिक्योरिटी, ए प्रोग्रेस, रिपोर्ट, पेरिस यूनेस्को 1952
5. मिलर डेविड एच.दी ड्राफटिंग ऑफ दी कोवनअन्ट 'न्यूयार्क पी.पी. पूतनाम 1928
6. हाल.डी.मैन्डटेस, डीपैन्डन्सीज एण्ड, ट्रस्टीशिप, वॉशिगंटन
7. डी.सी. करनेगलः अण्डोमैन्ट, फोर इंटरनेशनल पीस 1948
8. जम्स अलानः दा पोलिटिस, ऑफ पीस किपिंग, लोनडोग चार्टो एण्ड वीन्डस 1969.
9. खान. रहामथुल्लाः कश्मीर एण्ड दा यूनाइटेड नेशनल -न्यू डेली विकास 1969.
10. लाल अर्थुर- मोडर्न इंटरनेशनल नीगोरिटेशन न्यूयार्क कोलूबिमा यूनिवर्सिटी प्रैस 1966.

खण्ड-4: संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना, उद्देश्य एवं सिद्धान्त

इकाई-1: संयुक्त राष्ट्र: वित्तिय प्रावधान एवं चार्टर में संशोधन की समस्या एवं समाधान

इकाई की रूपरेखा:

4.1.1. उद्देश्य कथन

4.1.2. प्रस्तावना

4.1.3. औपचारिक संशोधन प्रक्रिया

4.1.4. चार्टर में संशोधन

4.1.5. चार्टर में संशोधन के सुझाव

- **4.1.5.1. सदस्यता की शर्त में संशोधन**
- **4.1.5.2. भारित मतदान की व्यवस्था**
- **4.1.5.3. सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्य-संख्या में वृद्धि**
- **4.1.5.4. घरेलू क्षेत्राधिकार की व्याख्या**
- **4.1.5.5. सुरक्षा परिषद की नियतकालीन बैठके**
- **4.1.5.6. सुरक्षा परिषद को आर्थिक-सामाजिक कार्य सौदके का सुझाव**
- **4.1.5.7. विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों का शिखर**
- **4.1.5.8. क्षेत्रीय संगठन सम्बन्धी सुधार**
- **4.1.5.9. निरस्त्रीकरण के लिए अनिवार्य व्यवस्था।**
- **4.1.5.10.न्यायालय का अनिवार्य क्षेत्राधिकार**
- **4.1.5.11.सुरक्षा परिषद् की मतदान-प्रणाली में सुधार**
- **4.1.5.12.अस्वशासित देशों की समस्याओं पर अधिक ध्यान**
- **4.1.5.13.अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य बल की स्थापना**
- **4.1.5.14.वित्तिय साधन की स्वतन्त्र व्यवस्था**
- **4.1.5.15.विश्व सरकार, विश्व संघ तथा विश्व व्यवस्था की स्थापना**

4.1.6. संयुक्त राष्ट्र संघ की संरचना एवं कार्यों में व्यापक सुधार के प्रस्ताव

4.1.7. नवीन विश्व व्यवस्था के निर्माण के लिए सुझाव

4.1.8. न्यूयार्क शिखर बैठक

4.1.9. मूल्यांकन

4.1.10. पाठ सार/सारांश

4.1.11. अभ्यास बौद्ध प्रश्न

4.1.12. सन्दर्भ ग्रंथ सूची

4.1.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में वित्तिय प्रावधानों की जानकारी प्राप्त करोगे।
- चार्टर के औपचारिक सशोंधन प्रक्रियाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- चार्टर में संशोधन की प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.1.2. प्रस्तावना

मानव-समाज में निरन्तर परिवर्तन आता रहता है। उसके विचार, आवश्यकताएँ आदि सदा एक समान नही रहती। मनुष्य जिन विचारों को आज ठीक समझता है, कल वे पुराने पड़ जाते हैं और मनुष्य नये विचारों के अनुसार अपने सामाजिक और आर्थिक संगठन मं परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव करता है। शासन-व्यवस्था सम्बन्धी विचारो में भी निरन्तर प्रगति होती रहती है। अतः किसी भी संगठन के संविधान में संशोधन की व्यवस्था करना आवश्यक माना गया है। इसके अभाव में कोई भी संगठन नवीन परिस्थितियों के अनुकूल अपने को नही डाल सकता। जैसा कि वेन्डेनब्रोश एवं होगन ने कहा है यह आधिकारिक तौर पर स्वीकार कर लिया गया है कि प्रत्येक सांविधानिक दस्तावेज में उसके संशोधन का विधान भी अवश्य रहना चाहिए। समय तथा नवीन परिस्थितियाँ आवश्यकतानुसार परिवर्तन की अपेक्षा करती है। अतः इस गतिशील युग में राजनीति संस्थाएँ मेडीज एवं पर्सियन के विधानो की भाँति कठोर एवं अपरिवर्तनशील नहीं रह सकती।''[150]सुधरा जा सकता है।'' अमरीकी सचिव हल ने कहा था कि चार्टर के अन्तर्गत नमनीयता का परिवर्तित परिस्थितियाँ में फिट होने का बीज मौजूद है।

4.1.3. औपचारिक संशोधन-प्रक्रिया (Formal Amendment Procedure)

संयुक्त राष्ट्रसंघ के ढाँचे तथा कार्य-पद्धति में परिवर्तन के लिए उसके संविधान (चार्टर) में संशोधन की व्यवस्था है। संशोधन-प्रक्रिया के 18वें अध्याय में दी गई है। इस अध्याय में दो अनुच्छेद है-अनुच्छेद 108 और अनुच्छेद 109

अनुच्छेद 108 इस प्रकार है वर्तमान चार्टर में संशोधन तभी लागू होंगे जब महासभा द्वारा दो-तिहाई बहुमत से पारित होंगे तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के दो-तिहाई सदस्य-राज्य जिनमें सुरक्षा परिषद् के सभी सदस्य राज्य होगें, उन्हें संपुष्ट कर देंगे। इस प्रकार पारित तथा संपुष्ट होने पर संशोधन सभी सदस्य राज्यों पर लागू होंगे।'' इस प्रकार चार्टर का अनुच्छेद 108 संशोधन-सम्बन्धी दो बातों का उल्लेख करता है। प्रथमतः संशोधन-प्रस्ताव महासभा के दो-तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकृत होना चाहिए। द्वितीयत संयुक्त राष्ट्रसंघ के दो-तिहाई सदस्यों, जिनमें सुरक्षा परिषद् के पाँच स्थायी सदस्य भी शामिल हो, द्वारा इसकी संपुष्टि होनी चाहिए। संशोधन की यह प्रणाली अत्यन्त दुष्कर है। सुरक्षा परिषद् को केवल संशोधन के आरम्भण का अधिकार नही दिया गया संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के संशोधन की समस्या है। संशोधन महासभा में ही उपस्थित किया जा सकता है अर्थात् आरम्भण की अवस्था में निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता। संशोधन की स्वीकृति महासभा के कुल सदस्य-राज्यों के दो-तिहाई बहुमत से आवश्यक है। कुल सदस्य राज्यों का अर्थ उपस्थित और मतदान करने वाले राज्य से नही है बल्कि कुल का अर्थ है समस्त सदस्य राज्य। यदि आरम्भ में ही दो तिहाई मत नहीं प्राप्त होता तो संशोधन असफल हो जाता है।

आरम्भण की प्रथा समाप्त होते ही निषेधाधिकार का खेल प्रारम्भ हो जाता है। महासभा के दो-तिहाई सदस्य-राज्यों की स्वीकृति के पश्चात् यह आवश्यक हे कि वह

[150] It is axiomatic that every Constitutional document should include provisions for its own amendment. The passage of rime and the rise of unforeseen situations require adaptaptation. In a dynamic ear political institutions can not be a rigid and unalterable as the laws of Meds and Persians were said to be

संशोधन सदस्य राज्यों के दो–तिहाई द्वारा अपने–अपने सांविधानिक ढंग से अनुसमर्थित हो । किन्तु उनमें सुरक्षा परिष्क्षद के पांच स्थायी राज्यों का अनुसमर्थन आवश्क है। इस प्रकार यदि दो–तिहाई राज्य अनुसमर्थन भी कर देते है और पाँच स्थायी राज्यों में यदि एक भी अनुसमर्थन नहीं करे तो संशोधन असफल हो जाएगा। जैसा कि उपर्युक्त प्रक्रिया से स्पष्ट है, चार्टर में तब तक कोई संशोधन नहीं हो सकता जब तक पाँचों महाशक्तियाँ उसे स्वीकार न कर लें। इस सम्बन्ध में एक दूसरी बात यह ठै कि यह निश्चित नहीं किया गया है कि कितने दिनों के भीतर राज्यों को अपवना अनुसमर्थन दे देना है। इस रिक्तता को स्थायी राज्यों का 'पॉकेट वीटो' कहते है। इस प्रकार वीटो की व्यवस्था के कारण सुरक्षा परिषद् के बड़े राष्ट्रों का आधिपत्य जम गया है और बहुमत का कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

मध्यवर्ती एवं छोटे राज्यों को प्रारम्भ से ही यह भय था कि निषेधाधिकार के कारण संशोधन संभव नहीं हो सकेगा। वे अनुच्छेद 108 में दी गयी प्रक्रिया को शंका की नजर से देख रहे थे। वे चार्टर में संशोधन के लिए कोई वैकल्पिक व्यवस्था का विधान भी चाहते थे। उनकी आशंका एवं भय को दूर करने के लिए अनुच्छेद 109 का समावेश किया गया। अनुच्छेद 109 की व्यवस्था इस प्रकार है:

1. वर्तमान चार्टर का पुनः निरक्षण करने के लिए एक आम सम्मेलन बुलाया जा सकता है। इसके लिए समय तथा स्थान महासभा के दो–तिहाई बहुमत और सुरक्षा परिषद् के किन्हीं सात (अब नौ) सदस्यों के स्वीकारात्मक मत से निर्धारित होंगे। सम्मेलन में संघ के प्रत्येक सदस्य–राज्य का एक ही मत होगा।
2. चार्टर में कोई भी संशोधन अथवा परिवर्तन, जिसके लिए सम्मेलन के दो–तिहाई मत ने सिफारिश की हो, उसी समय से लागू हो सकेगा, जब संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों में से दो–तिहाई अपनी–अपनी वैधनिक प्रक्रियाओं के अनुसार उनका अनुसमर्थन करेंगे, जिनमें सुरक्षा परिषद् के सभी स्थायी सदस्य भी शामिल होंगे।
3. यदि इस प्रकार का सम्मेलन, वर्तमान चार्टर के लागू होने के उपरान्त, महासभा के 10वें अधिवेशन से पूर्व नहीं हो पायी है तो इस प्रकार के सम्मेलन को बुलाने के प्रस्ताव का सभा के उसी अधिवेशन की कार्यावली में रखा जायेगा, तथा यदि महासभा के सामान्य बहुमत एवं सुरक्षा परिषद के सात (अब 9) सदस्यों के बहुमत से सम्मेलन बुलाने का प्रस्ताव स्वीकृत होगा, तद्नुसार सम्मेलन बुलाया जाएगा।

अनुच्छेद 109 में दिये गये उपबन्धों के आरंभण का अधिकार सामान्य सम्मेलन को नहीं है परन्तु संशोधन की आवश्यकता पर विचार करने के लिए एक सामान्य सम्मेलन आहूत करने की व्यवस्था है। यह सामान्य सम्मेलन संविधान निर्मात्री सभा के समान होगा जो सेन फ्रांसिस्कों सम्मेलन का कार्य जारी रखेगा। परन्तु ऐसा सम्मेलन किस निश्चित तिथि को आहूत किया जाएगा, अनुच्छेद 109 इसकी गारंटी नहीं प्रदान करता। इसके अनुसार यदि चार्टर लागू होने के दसवें वर्ष के पूर्व तक उसके पुनरीक्षण के लिए उपयुक्त कार्रवाइयाँ नहीं की गयी तो महासभा स्वयं दसवें सत्र में संघ के सदस्यों के सम्मुख यह विषय प्रस्तुत करेगी। यदि सामान्य सम्मेलन आहूत करने का प्रस्ताव महासभा के समक्ष रखा जाएगा तो इसका महासभा के बहुमत तथा सुरक्षा परिषद् के किन्हीं सात (अब नौ) सदस्यों के मत से स्वीकृत होना आवश्यक है। इनकी स्वीकृति के पश्चात् सामान्य सम्मेलन

आमंत्रित की जाएगी। यदि संशोधन का प्रस्ताव सामान्य सम्मेलन के कुल सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से तथा सुरक्षा परिषद के किन्हीं सात सदस्यों (अब नौ) द्वारा स्वीकृत हो जाय तो उसे सदस्य-राज्यों के पास अनुसमर्थन के लिए भेजा जाएगा। जब उक्त संशोधन कुल सदस्य-राज्यों के बहुमत द्वारा तथा सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों द्वारा अनुसमर्थित कर दिया जायेगा तब वह लागू हो जाएगा। इस प्रकार अनुच्छेद 109 में आरम्भण में तो नहीं परन्तु अनुसमर्थन की अवस्था में निषेधाधिकार का प्रयोग आता है। अतः यदि कभी पुनरीक्षण सम्मेलन होता भी है तथा किसी संशोधन की अनुशंसा की जाती है, तब भी इस जटिल प्रक्रिया से उसका पारित होकर लागू होना अत्यन्त कठिन होगा। कारण यह कि चार्टर में कोई संशोधन तभी कार्यान्वित हो सकता है जब संयुक्त राष्ट्रसंघ के दो-तिहाई सदस्यों का बहुमत तथा सुरक्षा परिषद के पाँचों सदस्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, चीन तथा सोवित संघ चाहते हो। किन्तु पहली चार शक्तियाँ जो परिवर्तन करना चाहेंगी, उन्हें सोवियत संघ स्वीकार नहीं करता और सोवियत संघ का उपयुक्त प्रस्ताव अन्य शक्तियों को मान्य नहीं होता । इस प्रकार व्यावहारिक दृष्टिकोण से अनुच्छेद 108 और 109 में कोई अन्तर नहीं है। वस्तुतः दोनों में संशोधन तभी लागू हो सकता है जब उस संशोधन में पाँचस्थायी राज्य एकमत हो। आलोचकों का कहना कि अनुच्छेद 109 की कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं है। छोटै तथा मध्यवर्ती राज्यों की केवल आत्मसंतुष्टि के लिए इस प्रकार का उपबन्ध रखा गया। **गुडरीच** तथा **हैम्ब्रो** ने ठीक ही लिखा है: ''सामान्य सम्मेलन की रीति का प्रभाव से अधिक मनोवैज्ञानिक महत्त्व है।''

इस कठिनाई के बावजूद चार्टर में संशोधन की माँग होती रही। यह स्वाभाविक भी था क्योंकि कोई भी जीवित संस्था पिछले अनुभवों के संदर्भ में तथा समय की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन की अपेक्षा रखती है। वस्तुतः यह परिवर्तनशीलता ही उसकी प्राणवत्ता की निशानी होती है। महासभा के प्रथम अधिवेशन में ही क्यूबा ने यह माँग की थी कि चार्टर में 109वें अनुच्छेद के अन्तर्गत चार्टर के संशोधन के लिए एक सम्मेलन बुलाया जाना चाहिए। महासभा के दूसरे अधिवेशन में अर्जेन्टाइना ने महाशक्तियों के निषेधाधिकार में संशोधन लाने का प्रस्ताव रखा। प्रारंभ में महासभा की अन्तरिम समिति में इस प्रस्ताव को भेजा गया और तदन्तर उसकी उपसमितियों द्वारा यह प्रस्ताव पारित हो गया। परन्तु सन् 1948 में यह महसूस करते हुए कि महासभा में इस प्रस्ताव पर दो-तिहाई बहुमत प्राप्त होना मुश्किल है, अर्जेन्टाइना ने यह प्रस्ताव वापिस ले लिया। 1953 में महासभा के आठवें अधिकवेशन में अर्जेन्टाइना, नीदरलैंड्स तथा मिस्र में संविधान के संशोधन के सम्बन्ध में तीन प्रस्ताव रखे परन्तु महासभा के दसवें वार्षिक अधिवेशन से पहले तक संयुक्त राष्ट्रसंघ चार्टर में सशोधन या पुनरीक्षण करने के लिए इस प्रकार का सम्मेलन नहीं बुलाया गया। इसलिए इस सम्मेलन को बुलाने का प्रश्न महासभा के दसवें वार्षिक अधिवेशन की कार्यावली में अपेन-आप रख दिया गया। परन्तु इस विषय पर चिंतन दो वर्ष पूर्व से ही आरंभ हो गया था। काफी वाद-विवाद के बाद सम्मेलन की सफलता के सम्बन्ध में अनेक आशंकाएँ प्रकट की गयीं। यह कहा गया कि सम्मेलन पश्चिमी राष्ट्रों एवं समाजवादी देशों के बीच चल रहे शीतयुद्ध का एक आखाड़ा बन जाएगा। यह अपने पक्ष-विपक्ष में प्रचार का मंच बन जाएगा। सम्मेलन में भारी गतिरोध उत्पन्न हो जाने की भी संभावना व्यक्त की गयी। **वी० के० कृष्णमेनन** ने भारतीय

दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा: ''स्थायी सदस्यों के मतैक्य के बिना चार्टर में संशोधन संभव है और यदि स्थायी सदस्य एकमत हैं, तो संशोधन की आवश्यकता नहीं है। भारतीय दृष्टिकोण यह है कि अभी चार्टर में संशोधन करेन का उपयुक्त अवसर नहीं है। चार्टर संशोधन की अपेक्षा अन्य जटिल समस्याएँ हम लोगों के सामने है। चार्टर में कमी नहीं है वरन् हम लोगों में कमी है।''

इन आशंकाओं के समझ तत्कालीन महासचिव डाग हैमरशोल्ड ने अपनी रिपोर्ट में यह विचार व्यक्त किया कि महासभा के दसवें अधिवेशन में पुनरीक्षण सम्मेलन बुलाने के पक्ष में युक्तिसंगत तर्क हो सकते हैं, परनतु सम्मेलन कब बुलाया जाए, इसे भविष्य के लिए छोड़ दिया जा सकता है। फिर भी नवम्बर, 1955 में महासभा में यह निश्चय किया कि चार्टर के पुनरीक्षण के लिए उचित समय पर सयुक्त राष्ट्रसंघ के सब सदस्यों की एक समिति गठित की गयी जो महासचिव से परामर्श करके इस सम्मेलन का समय और स्थान निश्चित करेगी। दिसम्बर, 1955 में सुरक्षा परिषद् ने महासभा के इस निश्चय को स्वीकार कर लिया। महासभा द्वारा बनायी गयी समिति की बैठक 3 जून, 1957 को हुई । समिति ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें यह कहा गया कि विश्व-स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए चार्टर के संशोधन के लिएए प्रस्तावित सम्मेलन के लिए प्रस्तावित सम्मेलन को सितम्बर, 1959 के लिए स्थगित कर दिया जाये। परन्तु 1959 मेंसम्मेलन का बुलाया जाना पुन: स्थगित कर दिया गया और अभी तक संशोधन सम्मेलन नहीं बुलाया जा सका है। फिर भी 18 दिसम्बर, 1974 को महासभा ने संघ के निर्माता बड़े स्थायी राज्यों के विरोध के बावजूद 15 मतों के विरूद्ध 82 मतों से एक प्रस्ताव पारित किया कि विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों के संदर्भ में चार्टर का पुनरीक्षण करने के लिए 32 राष्ट्रो का एक वर्किंग ग्रुप गठित किया जाय। चीन ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया लेकिन संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस तथा अन्य कई राज्यों ने इसका विरोध किया। इस प्रकार संशोधन की बात वहीं तक रह गयी।

4.1.4. चार्टर में संशोधन (Amendment in the U.N.O. Charter)

चार्टर में संशोधन के लिए अभी तक एक भी सम्मेलन नहीं बुलाया गया है पर इसका यह अर्थ नहीं है कि चाट्रर में किसी प्रकार के परिवर्तन अभी तक नहीं हुए है। औपचारिक रूप से भी चार्टर में एक संशोधन किया जा चुका है। वह संशोधन सुरक्षा परिषद् तथा आर्थिक-सामाजिक परिषद् की सदस्यता से सम्बन्धित है। जिस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी, उस समय इसके सदस्यों की संख्या 51 थी। उनमें भी एशिया और अफ्रिका के देशों की संख्या बहुत कम थी। इसके बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्य संख्या निरन्तर बढ़ती रही और एशिया और अफ्रिका के देशों की संख्या काफी बढ़ गयी। ऐसी स्थिति में संघ के विभिन्न अंगों की सदस्य-संख्या में वृद्धि की माँग की जाने लगी। अक्टूबर 1959 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की राजनीतिक समिति में सुरक्षा परिषद्, आर्थिक-सामाजिक परिषद् तथा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि करने के प्रश्न पर विचार किया गया। यह कहा गया कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्य-संख्या निरन्तर बढ़ रही है, लेकिन उसके प्रमुख अंगों के संगठन में कोई विकास नहीं हुआ है। अत: इस त्रुटि को दूर करना आवश्यक है।

अतएव, 1963 में महासभा ने दो प्रस्ताव पारित कर निम्नलिखित संशोधनों को प्रस्तावित किया:-

(1) सुरक्षा परिषद् में अस्थायी सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 10 कर दी जाये तथा प्रस्तावों को पास करने के लिए 9 सदस्यों के स्वीकारात्मक मत आवश्यक हों।

(2) आर्थिक-सामाजिक परिषद् की सदस्य-संख्या 18 से बढ़ाकर 27 कर दी जाये।

महासभा ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों से 1 सितम्बर, 1965 तक इन प्रस्तावों का अनुसमर्थन करने का अनुरोध किया। 31 अगस्त, 1965 तक संघ के सदस्यों ने इस संशोधन का अनुमोदन कर दिया और इस प्रकार चार्टर में पहला संशोधन कार्यान्वित हुआ। 1 जनवरी 1966 को नये सदस्य अपनी जगह पर आ गये। महासभा के प्रस्ताव में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि सुरक्षा परिषद् के 10 अस्थायी सीटों मे 5 सीटें एशिया और अफ्रिका के देशों को मिलेंगी। उसी तरह का बँटवारा आर्थिक-सामाजिक परिषद् के सम्बन्ध में भी किया गया।

पुन: महासभा के 1971 के प्रस्ताव के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की धारा 61 को संशोधित कर आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् की सदस्य-संख्या बढ़ाकर 54 कर दी गयी है।

उपर्युक्त संशोधन के अलावा कोई और विधिवत या औपचारिक संशोधन नहीं हो पाया है। किन्तु, कोई भी सजीव संस्था हमेशा के लिए अपरिवर्तनशील बनकर उपयोगी नहीं रह सकती। संयुक्त राष्ट्रसंघ में परिवर्तन की कई प्रक्रियाएँ क्रियाशील रही हैं- (1) चार्टर की कुछ व्यवस्थाओं का उपयोग कम करके अथवा लागू नहीं करके, (2) नई एजेंसियाँ स्थापित करके, (3) चार्अर की धाराओं की व्याख्या करके तथा (4) पूरक समझौते या संधियाँ करके। इन प्रक्रियाओं द्वारा चार्टर में कई अनौपचारिक संशोधन हो चुके हैं। चार्टर में यह व्यवस्था है कि सुरक्षा परिषद् में यदि किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेना है तो उसके पक्ष में 9 मत होने चाहिए जिसमें पाँचों स्थायी सदस्यों का मत पक्ष में होना चाहिए। यह बात स्पष्ट नहीं थी कि यदि सुरक्षा की बैठक में कोई स्थायी सदस्य अनुपस्थित रहे अथवा उपस्थित रहकर भी मतदान में कोई भाग नहीं ले तो उसे निषेधाधिकार का प्रयोग माना जाएगा अथवा नहीं। शुरू में इस सम्बन्ध में यह धाराणा थी कि इसे 'वीटो' का प्रयोग ही मानना चाहिए, लेकिन 1950 के कोरिया युद्ध के समय इस प्रश्न का हल निकाल दिया गया। उस समय सोवियत संघ सुरक्षा परिषद् का बहिष्कार किये हुए था। उसकी अनुपस्थिति में परिषद् ने कई प्रस्ताव पास किये। बाद में जब सोवियत संघ परिषद् की कार्रवाई में भाग लेने लगा तो उसने यह कहा कि अनुपस्थिति में जो प्रस्ताव पास हुए हैं वे सब अवैध हैं क्योंकि उन पर परिषद् के एक स्थायी सदस्य सोवियत रूस का समर्थन नहीं मिला है। सुरक्षा परिषद् ने यह निश्चय किया कि स्थायी सदस्यों की अनुपस्थिति अथवा मतदान में भाग नहीं लेना वीटों का प्रयोग नहीं माना जाएगा। इस प्रकार व्यवहार में यह स्थापित हो गया कि यदि किसी प्रश्न पर विचार करते समय एक स्थायी सदस्य अनुपस्थित है या मत न दे तो इसे निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं कहते तथा ऐसा करने से अमुक प्रस्ताव रद्द नहीं होता। चार्टर के स्वरूप में दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सुरक्षा परिषद् तथा महासभा की भूमिका से सम्बद्ध है। चार्टर के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् को सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था बनाया गया था और महासभा को

केवल सिफारिश करने का अधिकार दिया गया था। परन्तु कालान्तर में परिस्थितियों के चलते यह स्थिति बदल गयी और महासभा का महत्त्व निरन्तर बढ़ता गया। अन्तरिम समिति या छोटी असेम्बली, पीस आबजर्वेशन आयोग और सामूहिक उपाय समिति की स्थापना द्वारा महासभा ने सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था को निषेधाधिकार के दुष्प्रभाव से मुक्त करने की चेष्टा की है। इसने अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा-सम्बन्धी सम्बन्धी प्रश्नों के समाधान के प्रमुख भाग लिया है। 3 नवम्बर 1950 के शांति के लिए एकता प्रस्ताव ने निषेधाधिकार को लगभग प्रभावहीन कर दिया है और महासभा को सुरक्षा परिषद् से अधिक महत्त्वपूर्ण बना दिया है। इसके विपरीत सुरक्षा परिषद् का प्रभाव घटा है। इस तरह केवल व्याख्या के आधार पर ही चार्टर में दो परिवर्तन हो चुके हैं। चार्टर में तीसरा परिवर्तन संरक्षण सम्बन्धी समझौतों के विषय में है। चार्टर के 79 अनुच्छेद में यह दिया हुआ है कि संरक्षण सम्बन्धी समझौते की शर्ते सम्बन्धित राज्यों के द्वारा निश्चित की जानी चाहिए फिर उस पर महासभा की अनुमति मिलनी आवश्यक है। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ है। पुनरीक्षण समझौतों की शर्तो को तैयार करने में प्रशासकीय राज्यों ने प्रारंभिक पग उठाया और इसके बाद उन समझौतों को महासभा के पास उसकी अनुमति के लिए भेजा। रूस ने प्रारंभिक पग उठाया और इसके बाद उन समझौतों को महासभा के पास उसकी अनुमति के लिए भेजा। रूस ने इस प्रक्रिया का विरोध किया लेकिन जब सुरक्षा परिषद् के समझ प्रशान्त संरक्षित भू-भाग सम्बन्धी समझौते का प्रश्न आया तो उसने कुछ नहीं कहा और इसे स्वीकार कर लिया। अनुच्छेद 73(ई) के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के वे सदस्य जिन पर क्षेत्रों का शासन-भार सम्भालने का उत्तरदायित्व है जहाँ के लोगों ने पूर्ण रूप से स्वतंत्रता नहीं पायी है, यह स्वीकार करते हैं कि सुरक्षा एवं सांविधानिक बातों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए नियमित रूप से महासचिव के सूचनार्थ आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक अवस्थाओं से सम्बन्धित तकनीकी ढंग से सूचनाएँ देंगे जिनके लिए वे उत्तरदायी हैं। परन्तु व्यवहार में औपनिवेशिक देशों से उनके अधीन क्षेत्रों के सम्बन्ध में अन्य विषयों पर भी सूचनाएँ माँगी गयी हैं और कुछ औपनिवेशिक राज्यों ने उन्हें सूचनाएँ दे भी दी हैं। इस प्रकार की सूचनाओं की छानबीन करने के लिए ही उपर्युक्त अनुच्छेद में कोई विशेष समिति की स्थापना का विधान नहीं किया गया था। परन्तु महासभो ने इस प्रकार की समिति स्थापित की और यह लगभग एक स्थायी समिति बन गयी। इस समिति की बैठक वर्ष में एक बार होती है और यह औपनिवेशिक राज्यों के कार्यो की छानबीन करती है तथा उनकी आलोचना भी करती है। बहुत-सी राज्य समितियाँ इसे गैर-सांविधानिक विकास मानती हैं क्योंकि अनुच्छेद 73(ई) का कभी यह अभिप्राय नहीं था। चार्टर में व्यवहार में हुए कुछ अन्य संशोधन इस प्रकार हैं। चार्टर के कुछ ऐसे उपबन्ध जिन्हें उसके रचयिताओं ने संयुक्त राष्ट्रसंघ को शांति का प्रभावशाली साधन बनाने के लिए आवश्यक माना था, व्यवहार में प्रयोग में नहीं लाये गये हैं। उदाहरणार्थ, चार्टर में एक सैनिक स्टाफ समिति की व्यवस्था है परन्तु अभी तक इसमें अपना कार्य प्रारंभ नहीं किया है। इसी तरह अनुच्छेद 44 से 48 तक की व्यवस्थाएँ अभी तक लागू नहीं की गयी हैं। ये सभी अनुच्छेद संयुक्त राष्ट्रसंघ की सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था के प्राण हैं। इस व्यवस्था की पहली परीक्षा सन् 1950 के कोरिया-युद्ध में की गयी लेकिन वह असफल साबित हुई। परिणास्वरूप संयुक्त राष्ट्रसंघीय व्यवस्था में शांति

रक्षण की एक नयी प्रणाली का विकास हुआ है जिसे 'अवरोध्यक कूटनीति' (Preventive Diplomacy) कहते है। इसका उद्देश्य विवाद में तनाव को कम करना तथा स्थिति को बिगड़ने से बचाना होता है। चार्टर के विधान के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के लिए यह संभव था कि वह विवादास्पद मामला में चार्टर की व्याख्या करता परन्तु अभी तक ऐसा नहीं हो पाया है। दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका के सम्बन्ध में न्यायालय ने जो सलाह दी उसको दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका ने मानने से इनकार कर दिया। चार्टर की व्यवस्था के अनुसार महासचिव की नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए होती है। सुरक्षा परषिद् की सिफारिश पर महासभा ने श्री ट्रिग्वे ली को पाँच वर्ष के लिए होती है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर महासभा ने श्री ट्रिग्वे ली को पाँच वर्ष के लिए संघ का प्रथम महासचित नियुक्त किया। अवधि की समाप्ति के बाद उसके उत्तराधिकारी के चयन के प्रश्न पर सर्वसम्मति के अभाव के कारण यह निश्चय किया कि ट्रिग्वे ली की अवधि तीन वर्ष के लिए बढ़ा दी जानी चाहिए। चार्टर में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं थी।

1967 में अरब-इजरायल युद्ध के संदर्भ में चार्टर का एक महत्त्वपूर्ण अनौपचारिक संशोधन उल्लेखनीय है। अरब-इजरायल युद्ध छिड़ते ही सुरक्षा परिषद् ने इस पर विचार करना शुरू किया और उसने कई प्रस्ताव भी स्वीकार किये, लेकिन सोवियत संघ उसकी कार्रवाइयों से संतुष्ट नहीं था। अतः 'शांति के लिए एकता' के प्रस्ताव के अन्तर्गत उसने महासभा की बैठक की माँग की। चार्टर में यह व्यवस्था है कि यदि कोई समस्या सुरक्षा परिषद् में प्रस्तुत है तो परिषद् की राय के बिना महासभा में उस पर बहस नहीं हो सकती। जब वीटो के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद् कुछ करने में असमर्थ हो जाये तो शांति के लिए एकता प्रस्ताव के अन्तर्गत वह प्रश्न महासभा में जा सकता है। अरब-इजरायल युद्ध के समय न तो सुरक्षा परिषद् में कोई गतिरोध ही उत्पन्न हुआ और न कभी वीटों को प्रयोग ही किया गया। अतः चार्टर की व्यवस्था के अनुसार सोवियत संघ की माँग पर महासभा की बैठक नहीं होनी चाहिए थी, लेकिन अमरीका द्वारा विरोध न किये जाने से 18 जून, 1967 को महासभा का अधिवेशन बुलाकर एक नयी परम्परा कायम कर दी गयी। इस परम्परा के आधार पर ऐसी परिस्थिति में महासभा की बैठक भविष्य में बुलायी जा सकती है।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चार्टर पुनरीक्षण सम्मेलन के नहीं बुलाये जाने तथा किसी औपचारिक सम्मेलन के न होने पर भी पिछले अनुभवों के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्रसंघ में कई परिवर्तन किये जा चुके हैं। यह परिवर्तन अनौपचारिक रूप से हुए हैं। इसलिए **पामर** एवं **परकिन्स** ने इसे अनौपचारिक संशोधन की प्रक्रिया (Informal Process of Amendment) कहा है। इन तरीकों से जो परिवर्तन किये गये हैं उनके चलते संयुक्त राष्ट्रसंघ का स्वरूप बहुत-कुछ बदल दिया है। निश्चय ही आज का संयुक्त राष्ट्रसंघ ठीक वही नहीं है जो सन् 1945 में था। परन्तु व्यावहारिक रूप में जो परिवर्तन किये गये हैं, कुछ लेखकों ने उनकी आलोचना भी की है। साम्यवादी राष्ट्रों ने महासभा की बढ़ती हुई शक्ति की आलोचना की है। वे कहते हैं कि विश्व शांति और सुरक्षा का मुख्य उत्तरदायित्व सुरक्षा परिषद् पर है। इस कार्य को महासभा द्वारा करना उचित नहीं है महासचिव ट्रिग्वे ली के कार्य-काल को बढ़ाने और अन्तरिम समिति को स्थापित करने की भी आलोचना की गयी है। शांति के लिए एकता प्रस्ताव की आलोचना

करते हुए रूसी प्रतिनिधि विशिंस्की ने कहा था कि इस प्रस्ताव का ध्येय चार्टर को तोड़ना व सुरक्षा परिषद् को पीछे फेंकना है। उसी प्रकार संयुक्त राज्य और उसके कुछ मित्र राज्यों ने भी सन् 1947 में महासभा द्वारा लिए गये निर्णयों पर काफी रोष प्रकट किया। अमरीकी प्रतिनिधि ने महासभा की कार्रवाई को साम्यवादी, अफ्रीका, अरब तथा गुटनिरपेक्ष राज्यों, जिनका महासभा में भारी बहुमत है, का घातक षड्यंत्र है।[151] परन्तु ये आलोचनाएँ पक्षपात और गलत धारणा पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्रसंघ मानव-जाति की संस्था है और चार्टर भी मनुष्यों ने बनाया है। अत: इसमें हमेशा यथास्थिति बनाये रखने का आग्रह जीवित तथा स्वास्थ्य अस्तित्व का परिचायक नहीं हो सकता। यह स्वभाविक ही है कि एक जीवित संस्था कि भाँति पिछले अनुभवों के संदर्भ में तथा समय की आवश्यकता के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी परिवर्तन हो। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि निर्माताओं की इच्छा के विपरीत वास्तविक प्रयोग करते समय राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों में परिवर्तन हो जाता है। यदि कानूनों में संशोधन करना संभव न हो तो कानून में समय के परिवर्तन के साथ-साथ कुछ परिवर्तन होता रहता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में भी कुछ इसी प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं।[152] यदि हम चार्टर के कठोर निर्वचन पर कार्य करें तो संयुक्त राष्ट्रसंघ का कार्य चलाना मुश्किल है। **क्लाइड ईगल्टन** आदि विचारकों ने चार्टर के अनौपचारिक संशोधनों का समर्थन किया है। उनके अनुसार बहुत-सी बातें जिन पर सम्मेलन में विचार करने की बात कही जाती है उनको सामान्य स्वीकृति द्वारा वैसे ही पूरा किया जा सकता है किन्तु यह तभी संभव है जब इस प्रकार की स्वीकृति पहले से प्राप्त की जा सके। चार्टर में संशोधनार्थ सम्मेलन नहीं बुलाए जाने पर कुछ लोगों को असन्तोंष हो सकता है किन्तु असन्तोष तब और अधिक बढ़ जाएगा जब ऐसा सम्मेलन बुलाए जाने के बाद भी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पायें।

4.1.5. चार्टर में संशोधन के सुझाव (Suggestions for Revision of Charter)

संयुक्त राष्टसंघ की स्थापना के लगभग-पचास वर्ष हो चुके हैं। इस अवधि में विश्व संस्था की संरचना तथा कार्यविधि में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया है। यह इसलिए नहीं कि इसकी आवश्यकता अनुभूत नहीं हुई है, वरन् इसलिए कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की दुनिया की जलवायु उसके लिए अनुकूल नहीं। वैसे विश्व संस्था के गठन एवं कार्यविधि में अनेक मुद्दों पर परिवर्तन की आवश्यकता किसी न किसी को महसूस होती रही है। यह कहा जाता रहा है कि यदि चार्टर को एक जीवित संस्था बनाना है तो यह आवश्यकता है कि हम एक जानदार संस्था हों, आज की परिस्थितियों का परीक्षण कर सके तथा आज की समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हो सके। अत: यह आवश्यक हो गया है कि परिवर्तित परिस्थितियों में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में आवश्यक संशोधन किया जाये और इस प्रकार के विभिन्न उपाय अपनाए जाएँ जिससे यह विश्व संस्था अधिक शक्तिशाली बन सके। इस उद्देश्य हेतु समय-समय पर बहुत-से सुझाव दिये जाते हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:

---
[151]Krishan Bhatia : " Changing United Nations", The Hindustan Times , New Delhi, December 6, 1974.
[152] Hans Kelson : op . clt., : p.911.

4.1.5.1. सदस्यता की शर्त में संशोधन:

यदि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता विश्व के सभी देशों के लिए खुली हुई न हो तो संगठन विश्वव्यापी नहीं हो सकेगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की चौथी धारा में सदस्यता के लिए दो शर्ते रख गयी हैं। **पहली** शर्त यह है कि सदस्यता के इच्छुक आवेदक राज्य शांति-प्रेमी हों तथा चार्टर में दिये गये दायित्वों को पूरा करने की इच्छा और योग्यता रखते हों। अब यह निर्णय करना कठिन है कि कौन-सा देश शांति-प्रेमी है और कौन-सा जंगखोर। यह एक वैयक्तिक कसौटी है जिसका दुरुपयोग स्वाभाविक है। इसकी **दूसरी** शर्त सुरक्षा परिषद् द्वारा सिफारिश तथा साधारण सभा का निर्णय है। इस शर्त के कारण सदस्यता के प्रश्न को लेकर संघ में अनेक विवाद उठ खड़े हुए हैं। सुरक्षा परिषद् में सोवियत रूस तथा पश्चिमी राज्य अपनी स्थिति सुदृढ़ करके अपने विरोधी राज्यों के प्रवेश का विरोध करते रहे और इस पर कई बार वीटो का प्रयोग किया गया। संयुक्त राष्ट्रसंघ का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि सदस्यता की इन शर्तो का दुरुपयोग हुआ है। संयुक्त राष्ट्रसंघ एक विश्वव्यापी संगठन है और इसकी सदस्यता की शर्त इतनी कठोर होनी चाहिए। जितने अधिक राज्य इसके सदस्य होंगे उतना ही हितकर होगा। विभिन्न अवसरों पर अपने भाषण में **सर एस० राधाकृष्णन** ने इस बात पर जोर दिया कि सब राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्राप्त होनी चाहिए। 11 जनवरी, 1957 को मद्रास में एक पत्रकार सम्मेलन में बोलते हुए विश्वविख्यात इतिहासकार **आर्नल्ड टॉयनबी** ने कहा था: ‘‘मुझे खेद है कि अमरीका निवासी साम्यवादी चीन की सदस्यता के विरूद्ध हैं। मेरे विचार से सब राष्ट्रों को संघ की सदस्यता मिलनी चाहिए, चाहे उनकी आन्तरिक नीतियाँ कैसी ही क्यों न हों।[153] इसके लिए चार्टर में संशोधन की आवश्यकता है। कम-से-कम सदस्यता के लिए सुरक्षा परिषद् की शर्त को ही हटा देना चाहिए।

4.1.5.2. भारित मतदान की व्यवस्था (Provision for weighted voting):

ऐलन डी रसेट (Alan De Russet) का विचार है कि महासभा में भारित मतदान की प्रणाली अपनायी जानी चाहिए। अर्थात् छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों को समान मताधिकार नहीं प्राप्त होना चाहिए, वरन् बड़े राष्ट्रों को छोटे राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक मत शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। यह कहा जाता है कि जिन राज्यों के कन्धों पर विश्व शांति स्थापित करने का उत्तरदायित्व है, निश्चय करते समय उन्हें एक से अधिक मत देने का अधिकार होना ही चाहिए। कहा जाता है कि अमरीका और ब्रिटेन की सरकारें इस सुझाव का समर्थक हैं। प्रश्न यह है कि क्या इस सिद्धान्त को अपनाया जा सकता है? यदि महासभा में मतदान की समानता न हो तो छोटे राष्ट्र विश्व संस्था में सम्मिलित होने में आना-कानी करेंगे। असमान मतदान के कारण राष्ट्रों में झगड़े, असन्तोष और अशांति उत्पन्न हो जाएगी तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सुचारु रूप से नहीं चल सकेगा।

4.1.5.3. सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्य-संख्या में वृद्धि :

सुरक्षा परिषद् में दो तरह के सदस्य हैं स्थायी तथा अस्थायी। स्थायी सदस्यों की संख्या पाँच है और चार्टर में उनके नामों का उल्लेख कर दिया गया है। परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं है कि जो आज बड़े राज्य बने रहेंगे। अत: **विलकॉक्स** तथा **मर्सी** का

[153] The Hindustan Times, 14 January , 1957.

प्रस्ताव है कि 'प्रत्येक दस वर्ष पर यह विचार करना चाहिए कि स्थायी सदस्यों की कोटि में किन राज्यों को रखा जाए।' भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि अमरीका, रूस तथा साम्यवादी चीन के बाद चौथा नम्बर हिन्दुस्तान का है। अत: उनका सुझाव था कि क्षेत्र एवं जनसंख्या के आधार पर हिन्दुस्तान को सुरक्षा परिषद् में स्थायी स्थान मिलना चाहिए। महासचिव **ट्रिग्वे ली** ने प्रस्तावित किया था कि स्थायी सदस्यों की संख्या छ: तथा अस्थायी सदस्यों की संख्या सात कर देनी चाहिए। यदि ऐसा होता है तो हिन्दुस्तान को स्थायी सदस्यता प्रदान करने के प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए। गिनी के विदेश मंत्री **बी० एल० लंसाना** ने महासभा के 18वें अधिवेशन में बोलते हुए कहा कि चार्टर में संशोधन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अफ्रीका को सुरक्षा परिषद् में एक स्थायी स्थान दिया जाए।[154]

4.1.5.4. 'घरेलू क्षेत्राधिकार' की व्याख्या :

चार्टर की धारा में यह व्यवस्था है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ किसी भी सार्वभौम राष्ट्र के घरेलू क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इस विधान ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की कार्रवाइयों को सीमित कर दिया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं रखी गयी है जिससे इसके किसी भी अंग को निर्णय करने का अधिकार हो कि कौन-सा मामला किसी राज्य का घरेलू मामला है। इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि राष्ट्रों को स्वयं यह निर्णय करने का अधिकार है कि कौन-सा मामला घरेलू मामला है और इस तरह वे चार्टर की व्यवस्था की व्याख्या करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस कमी को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया गया है कि चार्टर के दूसरे अनुच्छेद में उल्लिखित 'घरेलू क्षेत्राधिकार' की व्याख्या का अधिकार महासभा अथवा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को होना चाहिए।

4.1.5.4. सुरक्षा परिषद् की नियतकालीन बैठकें:

यह भी सुझाव दिया गया है कि सुरक्षा परिषद् की बैठकें हमेशा न होकर कुछ निश्चित अवधियों में हों जिससे सम्बन्धित देशों के प्रधानमंत्री उसमें भाग ले सकें। सर अलेक्जेंडर कैडोगन' इस सुझाव के पक्ष में हैं। परन्तु यह सुझाव लाभप्रद नहीं है। सुरक्षा परिषद् के सदैव क्रियाशील रहने से आक्रमणकारियों को यह डर रहता है कि वह आक्रमण होते ही कुछ-न-कुछ ठोस कदम उठा सकती है। इसके अलावा सुरक्षा परिषद् यदि सतत कार्यशील अंग नहीं रहा तो शांति एवं सुरक्षा पर खतरा उत्पन्न होने पर अथवा अन्य किसी महत्त्वपूर्ण मामले में तुरन्त कार्रवाई करने की जो क्षमता है उसे आघात पहुँचेगा।

4.1.5.5. सुरक्षा परिषद् को आर्थिक-सामाजिक कार्य सौंपने का सुझाव:

सर अलेक्जेंडर कैडोगर[155] का एक अन्य सुझाव यह है कि सुरक्षा परिषद् को कुछ आर्थिक और सामाजिक कार्य भी सौंपे जाने चाहिए। वे सोचते हैं कि सुरक्षा परिषद् में झगड़े इसलिए अधिक होते हैं क्योंकि वह केवल राजनीतिक प्रश्नों को ही सुलझाती हैं। यदि सामाजिक और आर्थिक कार्य भी उसे सौंप दिये जाये तो झगड़े होने की कम संभावना है। परन्तु उनकी यह धारणा गलत है। यदि सुरक्षा परिषद् आर्थिक और सामाजिक कार्यों को करने लगे तो बड़ी शक्तियाँ उन कार्यों पर अपना निषेधाधिकार का प्रयोग करने

[154] Unlted Nations Review, Nov. 1963, p.18.
[155] Ibid., pp.3-4.

लगेंगी। अतः इस सुझाव के विरोध में यह कहा जाता है कि आर्थिक और सामाजिक गतिविधियाँ आर्थिक और सामाजिक परिषद् का उचित कार्य-क्षेत्र है।

4.1.5.7. संयुक्त राष्ट्रसंघ विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों का शिखर:

ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री चर्चिल ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन के विषय में एक अन्य सुझाव रखा था। उनका कहना था कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों की व्यवस्था के शीर्ष पर स्थित एक उच्चतर संगठन होना चाहिए। उनके अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण क्षेत्रीय संगठन के आधार पर होना चाहिए जिससे कि विश्व के बड़े-बड़े राष्ट्रों के गुटों के प्रतिभाशाली मनुष्य उसमें शामिल हो सकें। इन मनुष्यों की बनी हुई संस्था एक शिखर सभा होगी।[156] परन्तु यह सुझाव लाभदायक प्रतीत नहीं होता। यदि यह सुझाव मान लिया जाय तो विश्व कुछ प्रादेशिक क्षेत्रों में विभक्त हो जाएगा और संयुक्त राष्ट्रसंघ की आंगिक एकता नष्ट हो जाएगी।

4.1.5.8. क्षेत्रीय संगठन सम्बन्धी सुधार:

चार्टर के अनुच्छेद 51-52 द्वारा क्षेत्रीय संगठनों को बनाने की अनुमति दिये जाने के फलस्वरूप नाटो, सीटो जैसे सैनिक संगठनों की स्थापना हुई है। किन्तु इन संगठनों से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बढ़ता है और शीतयुद्ध को प्रश्रय मिलता है। अतः सरदार **के० एम० पनिक्कर** ने सुझाव दिया कि क्षेत्रीय संगठनों के क्षेत्र और विस्तार की सीमाओं की व्याख्या कर दी जानी चाहिए, ताकि वे संयुक्त राष्ट्रसंघ की वैकल्पिक संस्थाएँ न बन सकें। उनके शब्दों में, ''क्षेत्रीय परिषदें उपयोगी कार्य कर सकती हैं, परन्तु उनकी उपयोगिता उनके क्षेत्र और कार्यो की एक स्पष्ट परिभाषा पर निर्भर करेगी।''

4.1.5.9. निरस्त्रीकरण के लिए अनिवार्य व्यवस्था:

26 अगस्त, 1953 को बोस्टन में अमरीकी वकील संघ्ज्ञ के सम्मुख भाषण करते हुए अमरीका के भूतपूर्व विदेश सचिव **जान फास्टर डलेस** ने कहा था कि चार्टर का निर्माण करते समय किसी को स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं था कि भविष्य में शीघ्र ही परमाणु युग आनेवाला है। अतः यह चार्टर बनते ही समय से पीछे पड़ गया। अतः डलेस का सुझाव था कि यदि संसार में स्थायी शांति की व्यवस्था करनी है तो चार्टर में शस्त्रों की संख्या निश्चित कर देनी चाहिए और निरस्त्रीकरण की पूर्ण रूपरेखा बनाकर सब देशों को उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए।

4.1.5.10. न्यायालय का अनिवार्य क्षेत्राधिकार:

बहुत-से विधिशास्त्रियों ने यह सुझाव दिया है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार अनिवार्य होना चाहिए। परन्तु कठिनाई यह कि आधुनिक राज्य इस सुझाव को मानने के लिए तैयार नहीं होंगे। अतः अधिक-से-अधिक केवल यही किया जा सकता है कि कम महत्त्व के विषयों को न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रख देना चाहिए।

4.1.5.11. सुरक्षा परिषद् की मतदान-प्रणाली में सुधार:

चार्टर की सत्ताईसवीं धारा में सुरक्षा परिषद् में मतदान की व्यवस्था में 'प्रक्रिया-सम्बन्धी' और 'अन्य सभी विषय' के स्वीकृत होने के लिए 9 मत आने चाहिए, जिसमें पाँच स्थायी सदस्यों का समर्थन अपरिहार्य है। इस प्रकार एक भी स्थायी सदस्य के

[156] Ibid.,pp.3-4.

प्रतिकूल मत देने से सुरक्षा परिषद् निर्णय नहीं ले सकती। इसके अलावा कौन-से मामले प्रक्रिया-सम्बन्धी माने जायें और कौन से नहीं, किन मामलों में स्थायी राष्ट्रों द्वारा निषेधाधिकार प्रयोग करने का अधिकार हो और किन मामलों में नहीं, इसका निर्णय भी सुरक्षा परिषद् करती है और इन निर्णयों के लिए पाँचों बड़े राष्ट्रों की सहमति आवश्यक होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कोई महान् राष्ट्र सुरक्षा परिषद को किसी मामले में फैसला कराने से रोकना चाहता है तो पहले अपने निषेधाधिकार द्वारा उसे गैर-प्रक्रिया सम्बन्धी घोषित करा सकता है और उसे निषेधाधिकार का दुबारा प्रयोग करके निर्णय तथा कार्रवाई को रोक सकता है। इस प्रकार चार्टर की अस्पष्टता के चलते वीटो का बहुत प्रयोग हुआ है। अतः वीटो का प्रयोग कम करने के लिए इस व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करके उसे अधिक स्पष्ट बनाना चाहिए। **हैन्सजारगन सचलोचर** ने एक लेख में निषेधाधिकार के प्रयोग पर नियंत्रण रखने के सुझाव दिये हैं।[157] जब कोई स्थायी सदस्य निषेधाधिकार का प्रयोग के तो उसे उसके प्रयोग के कारण लिखित देने चाहिए। दोहरे निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं होना चाहिए। यदि स्थायी सदस्य इस पर जोर दें तो उनके पक्ष में जब 9 मत होंगे तभी दोहरा निषेधाधिकार प्रयोग में लाया जा सकता है। सचलोचर आगे कहते हैं कि सदस्यता सम्बन्धी प्रश्न, महासचिव की नियुक्ति और झगड़ों के शांतिपूर्ण निबटारे साधारण बहुमत से निश्चित किये जाने चाहिए।

4.1.5.12. अस्वशासित देशों की समस्याओं पर अधिक ध्यान:

उपनिवेशवाद की समस्या का सामना करने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ्ज्ञ में संरक्षण-व्यवस्था कायम की गयी है। परन्तु इससे सम्बन्धित धारा 76(ख) बड़ी अस्पष्ट है। इसमें पराधीन देशों को स्वतंत्र करने की बात कही गयी है, लेकिन इसके लिए कोर्ठ अवधि निश्चित नहीं की गई है। यह गलत है। विभिन्न पराधीन प्रदेशों के विकास का स्तर देखते हुए उनको कितने वर्ष में स्वाधीनता दी जाय, इसका उल्लेख चार्टर में अवश्य होना चाहिए। इसके अलावा संरक्षण व्यवस्था सम्बन्धी धारा 77 (क) का संशोधन इस प्रकार होना चाहिए कि पुराने राष्ट्रसंघ के सभी संरक्षित प्रदेश संयुक्त राष्ट्रसंघ संरक्षण परिषद् का अंग समझे जाये। सर मोहम्मद जफर उल्ला का मत है कि औपनिवेशिक क्षेत्रों की जनता की भावनाओं पर अधिक ध्यान देने के लिए चार्टर में उचित संशोधन अनिवार्य है।

4.1.5.13. अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य बल की स्थापना:

संयुक्त राष्ट्रसंघ को शांति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए बहुत व्यापक दायित्व सौंपे गये। इसलिए उसके तत्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय सेना की व्यवस्था अनिवार्य है। इसी के अभाव में राष्ट्रसंघ असफल हो गया था। अतः यह सुझाव दिया गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को प्रभावशाली कार्रवाई के योग्य बनाने के लिए एक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य बल स्थापित किया जाए।

[157] Indai Quarterly, January-March, 1956, p.72

4.1.5.14. वित्तीय साधन की स्वतंत्र व्यवस्था:

संयुक्त राष्ट्रसंघ एक विश्व संस्था है। इसके कार्य-क्षेत्र और कार्य-सूची के विस्तार को देखकर स्तंभित होना पड़ता है। स्वाभाविक है कि इस विस्तृत संस्था के लिए बहुत बड़े पैमाने पर वित्तीय व्यवस्था अपरिहार्य है। घोषणा-पत्र की धारा 17 के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ संगठन का व्यय महासभा द्वारा निर्धारित अनुपात में उसके सदस्य-राज्यों द्वारा वहन किया जाता है। इस प्रकार राष्ट्रों के अनुदान आर्थिक सहयोग पर आश्रित रहकर संघ की कार्य-क्षमता पर विपरीत पड़ा है। अत: यह सुझाव दिया गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की आय का कोई स्वतंत्र स्रोत रहना चाहिए। संघ को चाहिए कि वह विकास कर, सेवा कर, यात्री कर आदि लगाए और विश्व बैंक की आय तथा बाह्य अन्तरिक्ष फीस आदि द्वारा अपनी आय में वृद्धि करे।

4.1.5.15. विश्व सरकार, विश्व संघ तथा विश्व व्यवस्था की स्थापना के सुझाव:

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में जो प्रमुख प्रश्न उभरे हैं उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण विश्व सरकार की समस्या है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की दुर्बलताओं और अणु व उद्जन बम जैसे महाविनाशकारी व संहारक शस्त्रों के आविष्कार ने अनेक शांतिवादी राजनीतिज्ञों को सोचने के लिए विवश कर दिया है कि यदि मानव-जाति को तृतीय महायुद्ध से बचाना है तो विश्व के सभी राष्ट्रों को मिलाकर एक ऐसे विश्व संघ का निर्माण करना होगा, जिसमें शांति और सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व विश्व-सरकार का हो। इस तरह के कई प्रस्ताव समय-समय पर प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। एक प्रस्ताव विश्वसंघ की स्थापना का है। इस प्रस्ताव के प्रतिपादकों का कहना है कि विश्व के पृथक-पृथक भाषा, संस्कृति, इतिहास, राज्य निष्ठा तथा नीतियों वाले संप्रभु राष्ट्र-राज्यों का एक विश्वसंघ के रूप में एकीकृत कर दिया जाये अर्थात् राज्यों को मिलाकर उन्हें संघात्मक व्यवस्था में बदल दिया जाये। सभी लोग कुछ मामलों में विश्व संघ के कानूनों का पालन करेंगें और शेष मामलों में अपने-अपने राज्यों का। इसके लिए वे स्विट्जरलैंड और अमरीका का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। विश्व संघ की रूपरेखा का चित्रण **बर्ट्रेण्ड रसेल** ने अपनी पुस्तक 'Has Man a Future' में इस प्रकार किया है: ‘‘विश्व संघ की एक व्यवस्थापिका और कार्यपालिका होगी। व्यवस्थापिका का स्वरूप संघात्मक होगा। उन सब बातों के अतिरिक्त जो युद्ध और शांति से सम्बन्धित हैं, अन्य सभी प्रश्नों पर राष्ट्रों को स्वतंत्रता होगी। संघ की कार्यपालिका का अधिकार विश्व की सुरक्षा-व्यवस्था का निर्धारण करना होगा। आवश्यकता पड़ने पर वह अपराधी देशों को दंडित भी कर सकेगी। संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी होगी।’’ रसेल ने विश्व न्यायपालिका का कोई उल्लेख नहीं किया। इसी प्रकार **क्लरेंस ए० स्ट्रीट** और **लियोनल कर्टिस** आदि विचारकों के द्वारा भी विश्व संघ की रूपरेखा का चित्रण किया गया है। यद्यपि विश्व सरकार और विश्व संघ के विचार अच्छे और आकर्षक हैं परन्तु वर्तमान राज्य-व्यवस्था के संदर्भ में इनकी स्थापना की संभावना बहुत कम है। मानव समाज को अभी इस दिशा में बहुत लंबी यात्रा तय करनी है। जैसा कि **आर्गेनस्की** ने कहा है: ‘‘विश्व सरकार दुष्कर है कि हम स्पष्टत: कह सकते हैं कि यह कभी नहीं होगा।’’[158]

[158] Organski : World Politics p. 444

4.1.6. संयुक्त राष्ट्र संघ की सरंचना एवं कार्यों में व्यापक सुधार के प्रस्ताव अक्टूबर 1987

अक्टूबर 1987 में एक अध्ययन-दल, जिसमें अमेरिका के भूतपूर्व एटार्नी जनरल ईलियट रिचर्डसन, ऊरूग्ये के विदेश मंत्री एनरिक इगलेसियस, पश्चिम जर्मनी के भूतपूर्व चांसलर हेलमर शिंडर, तंजानिया के उप-प्रधानमंत्री संलीम अहमत सलीम, विश्व बैंक के भूतपूर्व अध्यक्ष रॉबर्ट मेकनामारा आदि जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त राजनीतिज्ञ तथा विधिवेत्ता शामिल थे, ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की संरचना एवं कार्यो में व्यापक सुधार के लिए प्रस्ताव रखा है। उसने सूझाव दिया है कि मानवीय, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र संयुक्त राष्ट्र के कार्यो में समन्वय स्थापित करने के लिए एक छोटा मंत्रिस्तरीय बोर्ड का निर्माण किया जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था को प्रभावी ढंग से स्थापित करने के लिए बहुर्राष्ट्रीय निरीक्षण के लिए कोई प्रावधान नं हो। संयुक्त राष्ट्रसंघ में अनेक विकास संगठनों के बजाय एक समेकित विकास बोर्ड बनाने का सुझाव दिया गया। आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में व्यापक एवं प्रभावकारी कार्यवाही के लिए आर्थिक और सामाजिक परिषद् को मंत्रिस्तरीय संस्था का स्वरूप प्रदान करने का आग्रह किया गया। इस अध्ययन दल की नियुक्ति का कारण यह था कि संयुक्त राज्य अमरीका ने संयुक्त राष्ट्रसंघ को अमरीका विरोध संस्था मानकर उसको दिए जाने वाले अंशदान में कमी की घोषणा कर दी थी।

4.1.7. संयुक्त राष्ट्रसंघ को पुनर्गठित करके नवीन विश्व व्यवस्था के निर्माण के लिए सुझावः मई 1991

स्वीडन के प्रधानमंत्री इंगवर कार्लसन, तंजानिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति जुलियस न्येरेर तथा पश्चिमी जर्मनीके भूतपूर्व चांसलर विली ब्राण्ड्ट ने, आज के परिवर्तित परिवेश में जबकि शीतयुद्ध समाप्त हो चुका हैं, संयुक्त राष्ट्र को पुनर्गठित करने की आवश्यकता पर जोर दिया है और इस हेतु कुछ सुधार प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा हे कि विश्व नेताओं को आज शांति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए एक नवीन व्यवस्था के निर्माण है कि विश्व नेताओं को आज शांति और सुरक्षा स्थापित करने के लिए एक नवीन व्यवस्था के निर्माण हेतु कार्य करना चाहिए अन्यथा 1990 का दशक खतरनाक अस्थायित्व का दशक साबित होगा। यह ठीक हे कि शीतयुद्ध की सीमाओं से मुक्त हो जाने के बाद इराकी आक्रमण के समय निर्णय लेने में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अभूतपूर्व तेजी से काम किया, फिर भी यह स्पष्ट हो गया कि संघ शांतिपूर्ण समाधान द्वारा खाड़ी संकट के परिवर्तन का प्रश्न, पश्चिम एशिया में शांति स्थापना का प्रश्न हो अथवा अफ्रीका में बार-बार होने वाले अकाल व गृहयुद्ध का प्रश्न हो, शीतयुद्धोत्तर काल में अब स्पष्ट हो गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को नयी चुनौतियों का सामना करने के लिए मजबूत बनाने की आवश्यकता है। इस हेतु उन्होंने कुछ सुझाव दिया है। सर्वप्रथम सुरक्षा परिषद् का संगठन और बड़ी शक्तियों का वीटो अधिकार द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के समय उपलब्ध हे कि सुरक्षा परिषद् के संगठन एवं वीटो शक्ति में परिवर्तन लाया जाये। **द्वितीयतः** महासचिव के चयन के तरीकों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। उसकी स्थिति को अधिक शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है ताकि आवश्यकता के समय जब अन्तर्राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हो जाये तो वह सुरक्षा परिषद की पूर्व सहमति के बिना शीघ्र कार्रवाई कर

सके। **तृतीयक:** संघर्षो को रोकने के तथा उनके सम्बन्ध में पुर्वानुमान के लिए संयुक्त राष्ट्र के पास उन्नत क्षमता होनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि महासचित को संघर्ष के उत्पन्न होने की पूर्व सूचना मिल जाए ताकि वह उसे रोकने के लिए आवश्यक कदम उठा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विश्व के मुख्य क्षेत्रों में राजनीतिक कार्यालयों, सैनिक पर्यवेक्षक दलों, तथ्य-खोजी मिशनों की व्यवस्था की जानी चाहिए। **चतुर्थ:** संयुक्त राष्ट्रसंघ के लिए विश्वव्यापी विधि क्रियान्वित करने वाली भूमिका की विस्तृत व्यवस्था होनी चाहिए। सुरक्षा परिषद् की सैनिक स्टाफ समिति, जो शीतयुद्ध काल में बिल्कुल मृतप्राय पड़ी हुई थी, को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। 'यू० एन० पीस कीपिंगफोर्स' की भूमिका को और व्यापक बनाने की आवश्यकता है। **पंचम:** वितीय संकट ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के मनोबल को तोड़न का काम किया है। कुछ राष्ट्र अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ को अपना अंशदान रोक देते हैं या रोकने की धमकी देते हैं। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुरूप जो राष्ट्रसंघ के वित्तीय नियमों का पालन नहीं करना चाहते हैं, उन्हें मतदान के अधिकार से वंचित कर देना चाहिए। इन सुझावों पर विचार करने तथा संरचना में सुधार लाने के लिए सान फ्रांसिस्को सम्मेलन की तरह का एक सम्मेलन बुलाने का सुझाव देते है।

4.1.8. न्यूयार्क शिखर बैठक (जनवरी 1991) और महासचिव घाली के प्रस्ताव

द्वि-ध्रुवीय व्यवस्था की समाप्ति और सोवियत संघ के विघटन के परिणामस्वरूप व्यापक बदलाव आया है। अब प्रश्न है कि इस बदले हुए परिवेश में संयुक्त राष्ट्र में सुधार कर इसे कैसे शक्तिशाली और उपयोगी बनाया जाए। इसी प्रश्न पर विचार करने के लिए जनवरी 1992 में सुरक्षा परिषद् की प्रथम शिखर बैठक आयोजित की गयी। बैठक में महासचिव श्री बुतरस घाली को सुधार के लिए सिफारिशें प्रस्तुत करने के लिए कहा गया ताकि संगठन को प्रतिबन्धक कूटनीति (Preventive Diplomacy), शांति-रचना (Peace Making) तथा शान्ति बनाए रखने (Peace-Keeping) के उद्देश्य हेतु सशक्त बनाया जा सके।

संयुक्त राष्ट्र महासचिव घाली ने जापान, जर्मनी, ब्राजिल, नाइजीरिया, तथा भारत को सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता प्रदान करने की सिफारिश की। इस प्रकार उन्होंने संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था में सुधार एवं लोकतांत्रिकरण की तीव्र होती हुई आकांक्षा को स्वर देने की कोशिश की। बाद में गुट निरपेक्ष राष्ट्र के पुनर्गठन का प्रश्न विवाद का कोई नया विषय नहीं है, परन्तु इससे सम्बन्धित महासचिव के विचारों ने विवाद को नया आयाम दे दिया है।

इस संदर्भ में यह उल्लेख्य है कि सुरक्षा परिषद् का गठन अब अन्तर्राष्ट्रीय यथार्थ को प्रतिबिम्बित नहीं करता। स्थापना के समय सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य वे राष्ट्र थे जिन्हें तत्कालीन अमरीकी रूजवेल्ट और उनके सहयोगियों ने महत्त्वपूर्ण माना था। आज द्वितीय महायुद्ध में शिकस्त पाने वाले दो राष्ट्र-जापान और जर्मनी दुनिया के तीन सर्वाधिक शक्तिशाली आर्थिक शक्तियों में हैं। संयुक्त राष्ट्र के कुल बजट का 12.5 प्रतिशत जापान अकेले वहन करता है। जो अमरीकी योगदान का आधा और ब्रिटेन तथा फ्रांस के सम्मिलित योगदान से ज्यादा है। दूसरी ओर, भारत और ब्राजिल जैसे विकासशील राष्ट्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक मंच पर एक महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल कर लिया है। सुरक्षा परिषद्

में इन देशों की स्थायी सदस्य के रूप में अनुपस्थिति दुर्भाग्यपूर्ण कही जाएगी, विशेषकर तब जब संयुक्त राष्ट्र नयी उभरती विश्व व्यवस्था में अपनी भूमिका में अभिवृद्धि चाहता है।

आज के परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय महौल में संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् में 'वीटों' व्यवस्था जिसे तत्कालीन तीन बड़ी शक्तियों के बीच याल्टा समझौते के तहत शामिल किया गया था, आज अप्रासंगिक हो चला है। खाड़ी युद्ध के दिनों से संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियाँ पाश्चात्य देशों के हितों को ध्यान में रखकर ही होती रही हैं। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद उदीयमान नई विश्व व्यवस्था में अमरीकी दादागिरी एवं धौंस का खतरा बढ़ा है। सोवियत सत्ता के अवसान के बाद अमरीका और अन्य पश्चिमी शक्तियों के लिए शीतयुद्ध भले ही समाप्त हो गया हो लेकिन तीसरी दुनिया के देशों के साथ शीतयुद्ध और तेज हो गया है। अत: यह आशंका कि सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य कहीं विश्व संगठन का उपयोग अपने हितों की अभिवृद्धि के लिए न करने लगें, स्वाभाविक है। यदि संयुक्त राष्ट्र को आज की अन्तर्राष्ट्रीय वास्तविकताओं का प्रतिबिम्ब बनाना है तो सुरक्षा परिषद् की शक्तियों में कमी तथा महासभा को अर्थपूर्ण बनाना आवश्यक होगा। फिर संयुक्त राष्ट्र चार्टर में निर्धारित भूमिका के निर्वाह में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सक्षम बनाना भी समान रूप से आवश्यक होगा। इस हेतु सन् 2000 ई० में समाप्त होने वाले संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय विधि दशक के पहले ही सभी सदस्य राज्यों की न्यायालय की संविधि के अनुच्छेद 36 के तहत उसकी सामान्य क्षेत्राधिकार को स्वीकार कर लेना चाहिए।

इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इन प्रस्तावों को सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों के सर्वसम्मत वोट के बिना अमली रूप नहीं दिया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र में ब्रिटिश और अमरीकी राजदूतों ने इन प्रस्तावों के लागू होने के संबंध में गंभीर संदेह व्यक्त किया है। अत: यह विश्वास करना कठिन है कि इन प्रस्तावों को निकट भविष्य में अमली रूप दिया जा सकेगा। फिर भी अब जबकि संयुक्त राष्ट्र में सुधार को स्वयं उसके महासचिव ने स्वर दिया है, आवश्यकता इस बात की है कि भारत, ब्राजिल, नाइजीरिया जैसे विकासशील देश इस दिशा में किए गए पहल को पुर्णाहुति तक ले जायँ।

4.1.9. मूल्यांकन

ऊपर हमने उन सुझावों का उल्लेख किया है जो संयुक्त राष्ट्रसंघ को अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली बनाने के लिए समय-समय पर दिये जाते रहे हैं। इन सुझावों को कार्यान्वित करने के लिए संघ के घोषणा-पत्र में व्यापक संशोधन की आवश्यकता हेगी जो वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में ''असंभव तथा अव्यवहारिक'' दीख पड़ता है। परन्तु इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है। संघ्ज्ञ की बहुत-सी समस्याओं एवं त्रुटियों का निराकरण अपने-आप ही हो सकता है यदि सदस्य-राज्य पारस्परिक सहयोग और सामंजस्य की भावना को अपना लें। वास्तव में संयुक्त राष्ट्रसंघ की प्रभावशीलता उसके सदस्य-राज्यों की निष्ठा एवं सहयोग पर निर्भर है। यदि सदस्य-राज्य अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को पारस्परिक सहायता एवं सहयोग से सुलझाने लगें तो चार्टर में ऊपर सुझाये गये संशोधनों की भी आवश्यकता नहीं होगी। उदाहरणार्थ, यदि विश्व के सभी राष्ट्र स्वेच्छा से अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णयों को लागू करने लगें

तो अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णयों को बाध्यकारी बनाने के लिए चार्टर में संशोधन की आवश्यकता नहीं होगी। उसी प्रकार यदि महाशक्तियाँ सदस्यता के प्रश्न को गुटबन्दी की निगाहों से न देखें तो सदस्यता के प्रश्न पर चार्टर में संशोधन की आवश्यकता नहीं होगी। अभिप्राय यह कि सदस्य-राज्यों के पारस्परिक सहयोग तथा मित्र भावना के फलस्वरूप संघ की कार्य-प्रणाली में कुछ स्वस्थ परम्पराओं को विकसित करके चार्टर में संशोधन किये बिना सांविधानिक सीमा के अन्तर्गत संघ की कार्य-प्रणाली को अधिक सरल, व्यावहारिक एवं उपयोगी बनाया जा सकता है। घोषणा-पत्र में संशोधन के प्रश्न के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए भारतीय प्रतिनिधि **रिंखि जयपाल** ने कहा था : ''आज घोषणा-पत्र में सामान्य पुनर्विलोकन की आवश्यकता नहीं है वरन् बिना अपवाद के सभी सदस्यों द्वारा उसकी व्यवस्थाओं का निष्ठापूर्वक पालन करने की आवश्यकता है।''[159] उनके अनुसार घोषणा-पत्र कतिपय सिद्धान्तों तथा अधिकारों पर आधारित है। यदि ईमानदारी से उन सिद्धान्तों एवं अधिकारों को लागू किया गया तो बिना संशोधन के भी संयुक्त राष्ट्रसंघ प्रभावशाली हो सकता है। थोड़े में, संयुक्त राष्ट्रसंघ को शक्तिशाली एवं प्रभावशाली बनाने के लिए चार्टर का पूर्ण संशोधन न तो संभव है और न वांछनीय ही। **मिस्र गुटरिज** ने ठीक ही लिखा है : ''संयुक्त राष्ट्रसंध के विधान का विकास उसके घोषणा-पत्र में संशोधन किये बिना भी किया जा सकता है।''[160] परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि सदस्य-राज्य आपसी भेदभाव को भुलाकर पारस्परिक सहयोग तथा सद्भाव के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चार्टर की व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य करें। जैसा कि क्लीवलैंड का कहना है: ''संयुक्त राष्ट्रसंघ में मानव-जाति की सेवा करने की क्षमता है परन्तु यह बहुत कुछ उसके सदस्य-राज्यों की क्षमता पर निर्भर है।''[161]

4.1.10. पाठ सार/सारांश

ग्रेनविल क्लार्क और **लुईस सोन** ने 'विश्व कानून द्वारा विश्व शांति के लिए एक योजना प्रस्तुत की है। उनका मत है कि नयी विश्व सत्ता का निर्माण कर पूर्ण निरस्त्रीकरण की प्राप्ति और आवश्यक नयी विश्व संस्थाओं की रचना करने की अपेक्षा यह अधिक सामान्य सुविधाजनक और विवेकपूर्ण लगता है कि वर्तमान संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल संशोधन कर दिये जाएँ। यह योजना यह अपेक्षा कतरी है कि इसके पूर्व के चार्टर का संशोधित स्वरूप व्यवहार में आये, विश्व के सभी देश संघ्ज्ञ के सदस्य बन जाये। इस योजना के अनुसार संघ का संगठन इस प्रकार होगा- महासभा के संगठन, शक्तियों एवं कार्यो में एक क्रान्तिकारी संशोधन किया जाएगा। इसका रूप विश्व-व्यवस्थापिका का होगा। सुरक्षा परिषद् की जगह कार्यकारी परिषद् की स्थापना की जाएगी। जिसमें महासभा द्वारा चार वर्ष के लिए निर्वाचित 17 सदस्य होंगे। परिषद् महासभा के एजेंट के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना के लिए कार्य करेगी। निर्णय के लिए इसमें निषेधाधिकार की व्यवस्था नहीं होगी। परिषद् अपने कार्यो के लिए महासभा के प्रति उत्तरदायी होगी। महासभा को उसे हटाने का अधिकार होगा। इसे विश्व निरीक्षण सेवाओं तथा विश्व सुरक्षा बलों को निर्देशित तथा नियंत्रित करने का

[159] National Herald, 7 December, 1974.
[160] J.A.C. Gutteridge : The United Nations in a Changing World, p.3.
[161] Harlan Cleaveland : "The Evolution of Rising Rising Responsibility '. International Organisation, Vol. XIX, No. 3, (1965), p. 828.

अधिकार होगा। आर्थिक-सामाजिक परिषद् तथा न्यास परिषद् यथावत रहेंगी, लेकिन उनके संगठन में परिवर्तन करके राष्ट्रों को अधिक संतुलित ओर व्यापक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की चेष्टा की जाएगी। राष्ट्रों के पूर्ण निरस्त्रीकरण के बाद 'विश्व आरक्षक दल' का गठन किया जाएगा। इस दल की दो शाखाएँ होगी-स्थायी संगठन और रिजर्व पीस फोर्स। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए इस योजना में न्याय और सौमनस्य की एक विश्व-व्यवस्था का प्रावधान किया गया है। क्लार्क-सोन की योजना में विश्व कानून को लागू करने के लिए अनेक दंड और निष्पादन की व्यवस्थाएँ की गयी हैं। यह एक विश्व विकास सत्ता की स्थापना की व्यवस्था करती है जिसका कार्य विश्व के अर्द्धविकसित क्षेत्रों के आर्थिक और सामाजिक विकास में सहायता प्रदान करना होगा। संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों की सफलता के लिए उसे राजस्व की कोई स्थायी और संतोषजनक व्यवस्था होगी। इस प्रकार क्लार्क-सोन ने एक ऐसी विश्व-व्यवस्था के निर्माण का आधार प्रस्तुत किया है, जिसे या तो नये सिरे से बनाया जा सकता है अथवा संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में परिवर्तन करके उसे ही शांति-स्थापना का एक प्रभावशाली साधन बनाया जा सकता है।

4.1.11. अभ्यास बौद्ध प्रश्न

अति लघुतरात्मक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में वित्तिय प्रावधानों की विवेचना करे।

प्र. 2) सुरक्षा परिषद की नियतकालीन बैठकों में सुरक्षा परिषद की भूमिका की व्याख्या करें।

प्र. 3) विभिन्न क्षेत्रीय सगठनों की भूमिका की व्याख्या करोगें।

प्र. 4) वित्तिय प्रावधानों के लिए विभिन्न शिखर सम्मेलनों में सुरक्षा परिषद को शक्तियां प्रदान करने की व्याख्या करें।

प्र. 5) चार्टर में संशोधन के सुझाव की व्याख्या करें।

लघुतरात्मक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ औपचारिक संशोधन प्रक्रिया वर्णन कीजिए।

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र संघ की संरचना एवं कार्यो में व्यापक सुधार के प्रस्ताव पर प्रकाश डालें।

प्र. 3) संयुक्त राष्ट्र संघ नवीन विश्व व्यवस्था के निर्माण के लिए सुझाव से आप क्या समझते हैं।

प्र. 4) न्यूयार्क शिखर बैठक पर प्रकाश डालें।

प्र. 5) विश्व सरकार, विश्व संघ तथा विश्व व्यवस्था की स्थापना से क्या अभिप्राया है।

बहु वैकाल्पिक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ ने लोकतांत्रिकरण किस उद्देश्य से किया।

1) मानव अधिकार को बचाने के लिए
2) मौलिक स्वतन्त्रता को बचाने के लिए
3) सम्मान से जीने के लिए
4) उपरोक्त सभी

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र संघ में लोकतांत्रिकरण के तत्व है।

1) विचार रखने की स्वतन्त्रता
2) शक्तियों का विमापन
3) स्वतंत्र न्यायपालिक
4) उपरोक्त सभी।

प्र. 3) संयुक्त राष्ट्र संघ ने उपनिवेशवाद को पूर्ण से समाप्त करने की घोषण कब की?

1) 1950 2) 1980 3) 1960 4) 1970

प्र. 4) औपचारिक संगठन का उदाहरण नही है?

1) विद्यालय 2) हॉस्पिटल 3) दबाव समूह 4) पुलिस

प्र. 5) लोक निगम की विशेषताएँ नही हैं?

1) स्वायतता 2) संवैधानिकता 3) अतिरिक्त दबाव 4) सरकार के प्रति जवाबदेही

4.1.12. सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अल्कार एच. आर एण्ड रस्सअट, एम. बी. वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्म्बली न्यू हैवन, येल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965
2. असहर : रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन 1957
3. अल्कर. एच. आर. एण्ड रस्सअट, एम. बी., वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू. हैवन, मेल यूनीवर्सिटी प्रैस. 1965
4. असंहर रोबर्ट : दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर, वाशिंगटन, दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1957
5. अकिन बेन्पेमीन न्यू स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओर्गेनाइजेशन पेरिस यूनेस्को, 1955
6. बैअली सयूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र, 1961
7. असहर : रोबर्ट दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर वाशिंगटन दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1951
8. अकिन वेन्मीन- न्यू-स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओंर्गेनाइजेशन पेरिस 1955
9. बैऊली सपूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र 1961
10. अल्कर एच. आर. एण्ड रस्सअर एम. बी. बलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू हैवन थेल यूनीवर्सिटी प्रेस 1965

इकाई–2: शक्ति संघर्ष एवं राजनीति और विवादों का शांतिपूर्ण समाधान

इकाई की रूपरेखा:

4.2.1. उद्देश्य कथन
4.2.2. प्रस्तावना
4.2.3. परम्परावादी दृष्टिकोण
4.2.4. वैज्ञानिक दृष्टिकोण
4.2.5. परम्परावादीयों एवं वैज्ञानिकों के मध्य वाद विवाद
4.2.5.1. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग नही हो सकता
4.2.5.2. वैज्ञानिक तथ्यों के प्रति ग्रस्त रहना
4.2.5.3. वैज्ञानिक शोध वस्तुनिष्ठता बनाए रखने में असफल
4.2.5.4. वैज्ञानिक बहुत छोटे–छोटे विषयों में उलझे रहते हैं
4.2.5.5. मॉडल–निर्माण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सफल नही हो सकता
4.2.5.6. वैज्ञानिक का स्पष्ट मत अधूरा व अस्वीकार्य है
4.2.5.7. इतिहास और दर्शनशास्त्र को अलग करना हानिकारक है
4.2.6. परमपरावादियों के विरुद्ध वैज्ञानिकों के तर्क
4.2.7. संयुक्त राष्ट्र की अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निपटाने की प्रक्रिया
4.2.7.1. तथ्यमूलक विवाद
4.2.7.2. न्याय अथवा कानून संबंधी विवाद
4.2.7.3. नीति–संबंधी विवाद
4.2.7.3.1. वार्ता
4.2.7.3.2. सत्सेवा तथा मध्यस्थता
4.2.7.3.3. संराघन
4.2.7.3.4. पंच–निर्णय
4.2.7.3.5. विचार–विमर्श
4.2.7.3.6. जाँच आयोग
4.2.7.3.7. संयुक्त राष्ट्र द्वारा
4.2.7.3.8. न्यायिक समाधान
4.2.7.3.9. अवरोधक कूटनीति
4.2.8. मूल्यांकन
4.2.9. पाठ सार/सारांश
4.2.10. अभ्यास बौद्ध/प्रश्न
4.2.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.2.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- संयुक्त राष्ट्र की स्थापना में शक्ति संघर्ष की जानकारी प्राप्त करोगे।
- संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न परम्परावादी विचारधाराओं की जानकारी लेंगे।

- संयुक्त राष्ट्र के परम्परांवादीयों एवं वैज्ञानिकों के मध्य वाद-विवाद की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- संयुक्त राष्ट्र में वर्णित दमन विधियों की समीक्षा करेगें।

4.2.2. प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के प्रति मुख्यत: दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं- (1) परंपरागत दृष्टिकोण, (20) वैज्ञानिक दृष्टिकोण। छठे दशक के मध्य से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के लिए इन दोनों दृष्टिकोणों की उपयोगिता के संबंध में निरंतर वाद-विवाद चलता रहा है। इस वाद-विवाद के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इन दोनों दृष्टिकोणों के अर्थ व प्रकृति को समझें तथा इसके बाद इसके संबंध में प्रस्तुत परस्पर-विरोधी तर्को की जांच-पड़ताल करें।

4.2.3. परंपरावादी दृष्टिकोण

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति संबंधों के अध्ययन का प्रथम दृष्टिकोण परंपरवादी दृष्टिकोण कहलाता हैं इस दृष्टिकोण के समर्थकों को परंपरावादी का पुरातनवादी कहा जाता है। वास्तव में यह दृष्टिकोण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पहले प्रचलित था। यह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का वह दृष्टिकोण है, जो दर्शन शास्त्र, इतिहास एवं कानून से शक्ति प्राप्त करता है। यह दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को, प्रभुसत्ता-संपन्न राज्यों, जिनका प्रतिनिधित्व शासक करते हैं, के मध्य क्रियाओं एवं अन्त:क्रियाओं के ढांचे का अध्ययन मानता हैं इस प्रकार के अध्ययन में उन सैनिकों तथा कूअनीतिज्ञों के कार्यो की जांच-पड़ताल की जाती है, जो अपनी-अपनी सरकारों की विदेश नीतियों का निर्माण एवं इन्हें लागू करते हैं। यह मुख्यत: शांति एवं युद्ध का अययन करता है।

कोलम्बस एवं बुल्फ के अनुसार, ‘‘परंपरावादी यह मानकर चलते हैं कि राजनीति का संचालन करने वालों के रूप सैनिकों एवं कूटनीतिज्ञों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। वास्तव में ये तत्व किसी राज्य की जलवायु संबंधी स्थितियों, भौगोलिक स्थिति तथा जनसंख्या के घनत्व से लेकर, इसकी शिक्षा दर, दूसरे राज्यों की लोकप्रिय सोच-विचार इसके साथ-साथ व्यावसायिक हितों, धर्म तथा आदर्शवाद, सूक्तियों तथा ऐतिहासिक पुराण कथाओं तथा इसके साथ-साथ इसके राष्ट्रीय नेताओं के व्यवहार तथा उन्हें समर्थन देने वाले श्रेष्ठ पुरूषों तक फैले हुए हैं।’’

ऐतिहासिक अनुभववाद तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के परंपरागत सामान्य प्रस्तावों का निर्माण-पुरातन दृष्टिकोण के दो प्रमाण चिन्ह् हैं। परंपरावाद के प्रमुख सकर्थक हंस जे. मार्गेन्थों, रेमण्ड एरन, स्टेनले हाफमैन, रेन्होल्ड नेबर, निकोलस स्पाईकमैन, ई. एव. कार, हैडले बुल, मार्टिन व्हाईट आदि हैं।

4.2.4. वैज्ञानिक दृष्टिकोण

1945 के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता गया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही दूसरा नाम व्यवहारवादी दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों को वैज्ञानिक कहा जाता है। वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसरणकर्ता परंपरावादी दृष्टिकोण तथा इसके पक्ष में प्रस्तुत तर्को का जोरदार खण्डन करते हैं। इनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संबोंा का क्षेत्र इतना विस्तृत एवं जटिल है कि इसे

राजनीति शास्त्र, इतिहास, दर्शन शास्त्र या किसी अन्य विषय के दायरे में सीमित नहीं किया जा सकता।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों के मतानुसार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति एक अनर्विषयी विषय है। ये लोग अंतर्राष्ट्रीय धारणा तथा समस्या के विश्लेषण में राजनीति शास्त्र या इतिहास को नहीं, बल्कि प्रयोगात्मक विज्ञानों को महत्व देते हैं। ये परंपरावादियों की अस्पष्टता तथा आदर्श राज्य की सर्वव्यापकता का विरोध करते हैं। इतना ही नहीं, वज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थिक अनुीववाद आगमनात्मक तर्क, परिकल्पनाओं के विस्तृत परीक्षण तथा सुनिर्धारित नियमों या सिद्धान्तों की लगातार परीक्षण के आधार पर पुष्टि किए जाने में पूर्ण विश्वास रखते हैं। साथ ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थिक बुद्धिमत्ता, अन्तर्ज्ञान तथा विवेकपूर्ण दृष्टिकोणों को अस्वीकार करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मुख्य सकर्थक जॉन बर्टन, कार्ल डब्ल्यू ड्यूश, अर्नस्ट बी. हास, मार्टन ए. कैंपलान, चार्ल्स ए. मैक्कलीलैंड, रिचर्ड सी. सनाइडर, एचत्र डब्ल्यू. ब्रूच, बर्टन तथा सेपिन हैं। **हैडले बुल के शब्दों में, ''ये लोग एक ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धान्त का विकास करना चाहते हैं, जिसमें धारणाएं अनुभववादी पड़ताल के दृष्टिकोणों पर आधारित हों।''**

4.2.5. परंपरावादियों एवं वैज्ञानिकों के मध्य वाद-विवाद (Debate between Traditionlists and Scientists)

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में परंपरावादियों तथा वैज्ञानिकों के मध्य वैचारिक विरोध कुछ ही वर्षो से विवाद का विषय बना हुआ है। इसने राजनतिक विद्वानों का काफी समय तक ध्यान आकर्षित किया है। दोनों प्रकार के विद्वानल एक-दूसरे के विरुद्ध अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। यहां इन दोनों प्रकार के विद्वानों के तर्को का वर्णन प्रस्तुत है-

वैज्ञानिकों के विरुद्ध परंपरावादियों के तर्क- हैडले बुल ने 1960 में प्रकाशित अपने लेख में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थकों का जमकर विरोा किया। इतना ही नहीं, उसका विरोध वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए एक चुनौती था। हैडले बुल ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध निम्नलिखित आपत्तियाँ उठायी हैं-

4.2.5.1. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग नही हो सकता:- हैडले बुल की सबसे पहले आपत्ति यह है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का स्वरूप कुछ ऐसा है कि इसका विश्लेषण या परीक्षण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के मूल विषय नैतिक विषय हैं, जिनमें संगठन संबंधी विवाद, प्रभुसत्ता-संपन्न राज्यों की संरचनाएँ एवं उद्देश्य, युद्ध तथा शांति का महत्व, शक्ति प्रयोग के औचित्य आदि विषय शामिल हैं। इन सभी प्रश्नों का हल वैज्ञानिक तरकों द्वारा नहीं हो सकता। बुल यह भी विश्वास व्यक्त करता है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के लिए उचित नहीं है, क्योंकि ये संबंध मूलत: नैतिक सिद्धान्तों से संबंधित होते हैं।

4.2.5.2. वैज्ञानिक तथ्यों के प्रति ग्रस्त रहना:- हैडल बुल की दूसरी आपत्ति यह है कि वैज्ञानिकों का यह कहना कि ''उनका आर्य अभी प्रारंभिक ही है तथा यमय के साथ वह परिपक्व हो जाएगा'' ठीक नहीं है। वह कहता है कि

वैज्ञानिक अपने अध्ययन करने के लिए आंकड़ों पर बहुत अधिक निर्भर रहते हैं, किन्तु आंकड़े इतने जटिल तथा विस्तृत होते हैं कि इनकी सहायता से राज्यों के व्यवहार-संबंधी सामान्यीकरण तक नहीं पहुंचा जा सकता है। वैज्ञानिक के तथ्यों से ग्रसित होने के कारण इनकी दृष्टि से व्यवहारिक उपयोगिता ओझल हो गयी है। वैज्ञानिकों की तथ्यों के प्रति ग्रसित होने की प्रवृत्ति वैज्ञानिक दृष्टिकोण में बाधा बन जाती है।

4.2.5.3. **वैज्ञानिक शोध वस्तुनिष्ठता बनाए रखने में असफलः-** वैज्ञानिक शोध के विरुद्ध उठाए गयी हैडले बुल की तीसरी महत्वपूर्ण आपत्तिा यह है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस तरह से जुड़े हैं कि वे वस्तुनिष्ठता के उद्देश्य से बहुत अधिक दूर चले गए हैं, जिसके कारण सुस्पष्टता तथा परिणामों की भावना उनके मन से विभिन्न समाजों के बच विद्यमान अंतरों को भुला देती है।

4.2.5.4. **वैज्ञानिक बहुत छोटे-छोटे विषयों में उलझे रहते हैं:-** हेडले बुल का यह भी विचार है कि वैज्ञानिक छोटी-छोटी बातों का विश्लेषण करने में इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि ये अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के विशिष्ट प्रश्नों को भूल जाते हैं। बुल के शब्दों में, **''अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धान्त के निर्माण में उनकी देन बहुत अधिक नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि, वह थोड़ी-सी देन पुरातन तरकों के ग्रहण करने के कारण ही है अर्थात उनके द्वारा दिए गए निर्णयों को भी वैज्ञानिक, गणितीय या सांख्यकीय तकनीकों के सहयोग की आवश्यकता नहीं है।''**

4.2.5.5. **मॉडल-निर्माण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सफल नही हो सकताः-** हेडले बुल की चौथी आलोचना यह है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में मॉडल-निर्माण का कार्य संभव नहीं है। वह इस बात पर जोर देता है कि मॉडल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की दशा तथा दिशा को समझने में न तो हमारी सहायता करते हैं, औन नही कर सकते हैं, क्योंकि ये सामामन्य से सामान्य व साधारण से साधारण मामलों को भी जटिल बना देते हैं। यहां तक कि ये शोधार्थियों को सत्य के मार्ग से भ्रमित कर देते हैं। हैडले बुल के शब्दों में, **''मॉडल-निर्माण की प्रक्रिया तथा तर्क, राज्यों के व्यवहार की सत्यता से प्रायः इतनी अधिक दूर होते हैं कि वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की सत्यता को समझने के लिए इन मॉडलों पर निर्भर करना असंभव है।''**

4.2.5.6. **वैज्ञानिक का स्पष्ट मत अधूरा व अस्वीकार्य है:-** हैडले बुल अंतर्राष्ट्रीय संबांों में स्पष्टता को बहुत आवश्यक मानते हैं, किन्तु इसके साथ-साथ उनका यह भी विचार है कि वैज्ञानिकों में स्पष्टता का विचार, सिद्धान्त में सुस्पष्टता के वास्तविक अर्थ से अलग है। वास्तव में विभिन्न वैज्ञानिक सुस्पष्टता का बड़ा संकीर्ण अर्थ लेते हैं। इतना ही नहीं, ये इसका आंकड़ों तथा तथ्यों के संदर्भ में ही प्रयोग करते हैं। हैडले बुल द्वारा इस बात का समर्थन किया गया

कि स्पष्टता के अध्ययन क्षेत्र में संपूर्ण विषय-वस्तु आ जानी चाहिए: न कि अध्ययन क्षेत्र का केवल भाग।

4.2.5.7. इतिहास और दर्शनशास्त्र को अलग करना हानिकारक है:- हैडले बुल की वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध अंतिम आलोचना यह है कि वैज्ञानिकों ने अपने आप को इतिहास तथा दर्शनशास्त्र से पूर्णतया अलग कर लिया है। इतना ही नहीं, वैज्ञानिक सिद्धांत का निर्माण करने वाले चिंतक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के इतिहास को समझने का प्रयास नहं करते। ये पूर्ण धारणाओं के प्रति आवश्यक आलोचनातमक रवैया अपनानो में असफल रहे हैं वस्तुत: यह दोष वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्वभाव से अवैज्ञानिक बना देता है।

स्पष्ट है हैडले बुल वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन करने के दृष्टिकोण के रूप में पूरी तरु आपत्तिजनक समझते हैं। अन्य शब्दों में, हैडले बुल परंपरावादी दृष्टिकोण के पक्ष में हैं। हैडले के अनुसार, **''विज्ञान के समर्थक अपने आपको वहीं तक सीमित रखते हैं, जहाँ तक कठोर कार्यविधि से पड़ताल हो सकती है और अपने आपको अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सार की पकड़ के लिए मात्र प्राप्त उपकराणों से अलग रखते हैं। अपने अन्तर्ज्ञानी अनुभव की शपथपूर्वक अस्वीकृति से वे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के तत्व से उतने ही दूर हैं, जितने विक्टोरियन मठ के निवासी काम के अध्ययन से दूर थे।''** परंपरावादी दृष्टिकोण के अन्य समर्थक भी हैडले बुल की तरह वैज्ञानिक दृष्टिकोण की उपयोगिता तथा व्यावहारिकता को चुनौती देते हैं।

4.2.6. परमपरावादियों के विरुद्ध वैज्ञानिकों के तर्क

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विभिन्न समर्थक हैडले बुल तथा अन्य परंपरावादियों द्वारा प्रस्तुत तर्कों का पूरी तरह खंडन करते हैं। उनके अनुसार परंपरावादी विचारक वैज्ञानिक तकनीकों एवं वैज्ञानिक दावों को समझ नहीं पाए, इसलिए परंपरावाद चिंतकों का विज्ञान की निन्दा करना दर्शनशास्त्र, इतिहास तथा कानून पर उनकी कट्टर धर्मान्धता के कारण है। राबर्ट जे. लीबर के शब्दों में, **''वैज्ञानिक यह कहते हैं कि परंपरावादी पद्धतियों के प्रश्न को उलझा देते हैं तथा वैज्ञानिकों को निर्धारित मॉडल प्रयोग करने का दोषी मानते हैं। वे मॉडलों के प्रयोग किए गए कथनों को वास्तविक विश्व के लिए प्रयोग किए गए कथन समझते हैं। वे लापरवाही से वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को इकट्ठा करके, जिनमें समानता बहुत कम होती है, ऐतिहासिक शोध के लिए कहते हैं, यह अनुभव किए बिना कि वे अपनी पुकार सुनने में असफल हैं। वे तो केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण समर्थकों के शब्दों को दोहराना चाहते हैं।''** इस प्रकार वैज्ञानिक लोग परंपरावादियों द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर लगाए गए आरोपों को गंभीर गलती तथा दोषपूर्ण सूचना कहकर स्वीकार नहीं करते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध हैडले बुल द्वारा लगाए गए आरोपों में मार्टिन कैपलान ने अनेक तर्क प्रस्तुत किए हैं। उसने अपने निबन्ध 'नवीन महान वाद-विवाद' में परंपरावादियों के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं:-

1. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग मानवीय उद्देश्यों के अध्ययन के लिए भी किया जा सकता है:-** सबसे पेले मार्टन कैपलान इस विचार का जोरदार खण्डन

करते हैं कि मानवीय उद्देश्य विज्ञान के द्वारा नहीं, बल्कि दूसरे तरीकों से समझे जा सकते हैं। वह कहता है कि इस तरह का विचार गलत पूर्वानुमानों पर आधारित है कि मानवीय उद्देश्यों का संबंध जांच-पड़ताल की अपेक्षा प्रेरणा से है तथा प्रेरणा का विश्लेषण अंतर्ज्ञान, आत्म विश्लेष्ण तथा आत्मालोचना द्वारा ही संभव है। मानवीय उद्देश्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण हो सकता है, जिसमें मानवीय व्यवहार का ध्यानपूर्वक अवलोकन शामिल हैं वह यह विश्वास करता है कि सुस्पष्टता तथा परिमापन वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा सफलतापूर्वक प्राप्त किए जा सकते हैं। इतना ही नहीं कैपलान वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कहते हैं, कि एक सिद्धान्त विषय की स्थिति एवं विषय-वस्तु के स्वरूप दोनों पर निर्भर करता है।

2. **अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग हो सकता है:-** मार्टन कैपलान ने परंपरावादियों के इस विचार का भी खण्डन किया है कि वैज्ञानिक पद्धति अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन पर लागू नहीं हो सकती। उसके अनुसार परंपरवादियों का यह तर्क गलत है। उसके शब्दों में, **''17वीं शताब्दी के ये विचार 20वी शताब्दी में अच्छे नहीं लगते।''** वह कहता है कि नई धारणाओं, दृष्टिकोणों एवं विधियों के विकास ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन संभव बना दिया है।
3. **वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र और इतिहास के महत्व को स्वीकार करते हैं:-** मार्टन कैपलान परंपरावादियों के इस दोष को भी स्वीकार करते हैं कि वैज्ञानिक सिद्धान्तवादी दर्शनशास्त्र एवं इतिहास के मूल्यों को नहीं मानते। वह परंपरावादियों के विरुद्ध दोषारोपण करते हुए कहता है कि रेमण्ड ऐरन के अतिरिक्त किसी भी परंपरावादी विचारक ने दर्शनशास्त्र के अनुशासित ज्ञान का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने दर्शन के पर्दे में अनुशासहीन सट्टेबाजी का प्रयोग किया है। दूसरी ओर वैज्ञानिकों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में दार्शनिक नियमों को बड़ी गंभीरता से माना हैं तथा उनका उचित प्रकार से प्रयोग किया है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मुख्य विचार यह है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति मानव के अन्य सामाजिक कार्यकलापों से संबंधित है तथा इसका अध्ययन मानवीय व्यवहार का ही एक पहलू है। 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' या 'व्यवहारवादी दृष्टिकोण' मानवीय व्यवहार के इस पहलू के अनुसंान के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों को लागू करने का समर्थन करता है। साथ ही यह अन्त:विषयक दृष्टिकोण के महत्व को मानता है तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सही तथा परीक्षित सामान्यीकरण के लिए गणितीय तकनीकों तथा सांख्यकीय व विभिन्न प्रकार के आंकड़ों के परिमापन के प्रयोग को स्वीकार करता है। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सिद्धान्त-निर्माण के लिण यह बहुत आवश्यक है। लीबर के शब्दों में, **''सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक ढंग संभव है तथा वैज्ञानिक झुकाव के प्रति वचनबद्धता व्यवहारवादी दृष्टिकोण का तार्किक अंतर्राष्ट्रीय आधार है।''**

4. **अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में मॉडल-निर्माण का प्रयोग फलदायक हो सकता है:-** मार्टन कैपलान ने परंपरवादियों की आलोचना इस आधार पर भी की है कि उनके

अनुसार मॉडल-निर्माण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में न तो वांछित है औन न ही संभव। मार्टन कैपलान के विचार में परंपरावाद विचारक अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में वास्तविकता तथा यथासिीति को समझने तथा स्वीकार करने का प्रयास नहीं करते। ये वैज्ञानिक लोग नहीं है, जो मॉडल-निर्माण की वास्तविकता तथा उपयोग को समझने में असफल रहे हैं, बल्कि, ये स्वयं परंपरावादी ही हैं, जो मॉडल और वास्तविकता को एक समझने के दोषी हैं। अनेक मनोवैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों तथा मानव विज्ञानियों ने यह गलती की है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में परंपरावादियों के काम का सर्वेक्षण करने से पता चलता है कि वे स्वयं भी अनत:संबंधों तथा मानवीय प्रेरणाओं-संबंधी अस्पष्टता तथा अप्रभावित पूर्वकल्पनाओं को अपनाने के दोषी रहे हैं। इसके विपरीत, वैज्ञानिक अपनी पूर्व-कल्पनाओं की उचित तथ्यों तथा आंकड़ों द्वारा पुष्टि करते हैं। इसलिए कैपलान परंपरावादियों को जान-बूझकर उन प्रमाणों के महत्व की उपेक्षा करने का दोष मानता है, जिनकी वैधता को वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है तथा उनकी पुष्टि भी की है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मुख्य तर्क यह है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध मानव के शेष सामाजिक कार्यकलापों की तरह मानव से संबंधित हैं तथा इनका अध्ययन मानवीय व्यवहार के अध्यय के द्वारा ही अधिक प्रभावशाली हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधें का क्षेत्र मूल रूप से मानवीय व्यवहार का ही एक पहलू है। वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टिकोण या व्यवहारवादी दृष्टिकोण मानवीय व्यवहार के इस पहलू के अनुसंधान के लिए वैज्ञानिक विधियों को लागू करने का सर्मीन करता ह। यह अन्त:विषयक दृष्टिकोण के महत्व को मानता है तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सही तथा परीक्षित सामान्यीकरण के लिए सांख्यिकीय व गणितीय तकनीकों तथा आंकड़ों के परिमापन के प्रयोग को स्वीकार करता है। साथ ही यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सिद्धान्त-निर्माण के लिए इसे जरूरी मानता है। लीबर ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सार प्रस्तुत करते हुए लिखा है, **''सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक ढंग संभव है तथा वैज्ञानिक झुकाव के प्रति वचनबद्धता व्यवहारवादी दृष्टिकोण का तार्किक आधार है।''**

दोनों मतों में सच्चाई: परंपरावाद तथा वैज्ञानिकवाद न कि परंपरावाद बनाम वैज्ञानिकवाद:- वास्तव में वैज्ञानिक तथा परंपरावादी दृष्टिकोणों द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध दिए गए मुख्य तर्को का परीक्षण करने के बाद यह मानना आसान हो जाता है कि दोनों का अपना-अपना महत्व तथा अपने-अपने गुण हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंध एक सामाजिक विज्ञान होने के नाते, पूरी तरह से वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर निर्भर नहीं हो सकता, किन्तु अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के समस्त तत्वों की आवश्यकता के कारण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सिद्धान्त-निर्माण के लिए केवल इतिहास, दर्शनशास्त्र तथा कानून पर निर्भर रहना कठिन है। इसलिए दोनों दृष्टिकोणों में तालमेल ही उत्तम रास्ता है।

कुछ विद्वान तो ऐसा करने में सफल भी हुए हैं। तकनीक की अपेक्षा विषय-वस्तु पर बहुत अधिक ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता ने इस महान विवाद को सीमित कर दिया है, जैसा कि लीबर ने कहा है कि यह विवाद अब धीरे-धीरे खत्म हो रहा है। समन्वयवादी दृष्टिकोण एक सन्तुलनवादी दृष्टिकोण है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि विश्लेषणात्मक तकनीकों तथा वैज्ञानिक कठोरता ने आज तक बहुत झूठे सपने दिखाए हैं,

किन्तु काम बहुत कम किया है। परंपरावादी दृष्टिकोण भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की निरंतर बढ़ती तथा जटिल विषय-वस्तु को संभालने में सक्षम सिद्ध नहीं हुआ है। इसलिए हमारा उद्देश्य परंपरा बनाम विज्ञान न होकर परंपरा और विज्ञान होना चाहिए।

परंपरावादी तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में वैज्ञानिक तथा परंपरागत दोनों दृष्टिकोण होने चाहिए। स्टेनले हाफमैन ने अपनी पुस्तक 'अंतर्राष्ट्रीय संबंध: सिद्धांत का लम्बा रास्ता' में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के चार तत्व बताए हैं, जो इस प्रकार हैं:-

1. किसी एक समय में विश्व की राजनीतिक संरचना।
2. विभिन्न इकाइयों की विदेश तथा घरेलू नीतियों का आपस में संबंध।
3. वे शक्तियाँ, जो इस संरचना की इकाइयों को दोबारा लागू करने या परिवर्तन के लिए काट रही हैं।
4. पहले तीन महत्वपूर्ण घटकों के बीच संबंधों का ढांचा।

इन चारों तत्वों का एक ही दृष्टिकोण द्वारा अध्ययन संभव नहीं हो सकता, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में बहुत अधिक दृष्टिकोणों के उपयोग की आवश्यकता है। परंपरावादी तथा वैज्ञानिक दोनों दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के स्वरूप को समझने तथा इनका विश्लेषण करने में हमारी सहायता कर सकते हैं।

4.2.7. संयुक्त राष्ट्र की अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निपटाने की प्रक्रिया

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की स्थापना करना है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 2 के अनुसार ''संयुक्त राष्ट्र के सदस्य-राज्य अपने अंतर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से इस प्रकार करेंगे कि अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा भंग न हो।'' संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अध्याय 6 में ऐसे शांतिपूर्ण उपायों का उल्लेख भी किया गया है, जिनका प्रयोग सदस्य-राज्य अपने आपसी विवादों को हल करने के लिए कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में अनुच्छेद 33 से 38 तक अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण हल की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 33 के अनुसार यदि किसी विवाद से विश्व शांति और सुरक्षा को खतरा पैदा हो और संबंधित पक्ष अपना विवाद स्वयं निपटाने में असमर्थ हो, तो सुरक्षा परिषद् विवादित पक्षों से वार्ता, जांच, मध्यस्तता पंच-निर्णय, न्यायिक समझोता क्षेत्रीय अभिकरणों या व्यवस्थाओं द्वारा विवादों का हल करने के लिए कह सकती है। विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के लिए अनुच्छेद 33 में जो उपाय सुझाए गए हैं, वे इस बात की तरफ संकेत करते हैं कि विवादों की प्रकृति एक जैसी नहीं हो सकती तथा न किसी एक उपाय द्वारा समस्त विवादों का हल संभव है। प्राय: सभी विवाद एक-दूसरे से भिन्न या अलग हो सकते हैं।

विगत वर्षों में संयुक्त राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत विवादों को निम्नलिखित तन वर्गों में रखा जा सकता है:-

4.2.7.1. तथ्यमूलक विवाद:- तथ्यमूलक विवाद वे होते हैं, जिनमें प्राय: विवादी पक्ष एक-दूसरे पर अनुचित कार्रवाई करने का दोषारोपण करते हैं। 1960 में सोवियत संघ द्वारा दक्षिणी कोरिया और अमेरिका के आर.बी.-47 विमान को मार गिराना तथ्यमूलक विवाद का उदाहरण है।

4.2.7.2. न्याय अथवा कानून संबंधी विवादः– इस प्रकार के विवाद वे होते हैं, जिनमें वैधानिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रश्न निहित होते हैं, जैसे- ब्रिटेन और आइसलैंड का न्याय संबंधी विवाद का उदाहरण है।

4.2.7.3. नीति–संबंधी विवादः– इस प्रकार के विवादों में वे विवाद शामिल होते हैं, जिनमें विवादित पक्षों की नीतियों में टकराव होता है। बर्लिन की समस्या एक नीति-संबंधी विवाद था, जिसमें सोवियत संघ और मित्र राष्ट्रों की नीतियों में टकराहट थी।

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण हल के निम्नलिखित उपाय हैं:-

4.2.7.3.1. वार्ताः–

अंतर्राष्ट्रीय विवादों का हल करने का एक उपाय वार्ता है। यह विवादित पक्षों के मध्य हर प्रकार के वैचारिक आदान-प्रदान से संबंतधित है। इसमें पत्र-व्यवहार से लेकर प्रत्येक स्तर पर होने वाली बातचीत तक शामिल होती है। वार्ता में विवादित राज्यों के मुखिया (शिखर वार्ता) मंत्री, सचिव, सेना अधिकारी, शिष्टमंडल आदि अपने-अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वार्ता कई चरणों में भी की जा सकती है, जैसे विवादित राज्यों के मुखियों के मिलने से पहले विदेश मंत्री, विदेश सचिव या अन्य अधिकारी प्रारंभिक वार्ता शुरू कर सकते हैं। विचार-विमर्श के दौरान विवादित पक्ष अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करते हैं और मतीदों को समाप्त करने की कोशिश करते हैं। वार्ता में कूटनतिज्ञों के व्यक्तिगत गुण भूमिका निभाते हैं। विवादित पक्ष यदि अपने-अपने रुख में थोड़ा-सा प्रवर्तिन करने के लिए तैयार हो जांए, तो वार्ता में विवाद के हल की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के नाम पर कई बार एक पक्ष अपने दृष्टिकोण में बदलाव करके रियायत देने को तैयार हो जाता है।

वार्ता के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं; जैसे- भारत व पाकिस्तान का जल बंटवारा, भारत व बांग्लादेश के मध्य फरक्का बांध पर समझौता, भारत व चीन के मध्य सीमा सिंबंधी वार्ता। सीमा-विवाद के हल के लिए भारत व चीन के मध्य बातचीत चलती रहती है। विश्व की दोनों महा शक्तियों के मध्य भी इस प्रकार की वार्ताएं होती रही हैं। किसी वार्ता के अचछे परिणाम और विवादों का समााान इस बात पर निर्भर करता है कि वार्ता में दोनों पक्षों अर्थात राज्यों ने विवाद के हल तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति के प्रति कितनी निष्ठा व ईमानदारी निभायी है। कई बार एक पक्ष विश्व जनमत को अपने पक्ष में करने या गुमराह करने या फिर कूटनीतिक लाभ उठाने के लिए बातचीत का ढोंग करता है।

4.2.7.3.2. सत्सेवा तथा मध्यस्थताः–

जब दो राज्यों के बीच बातचीत द्वारा कोई विवाद समाप्त नहीं होता, तो कोई तीसरा रज्य दोनों पक्षों के बीच सत्सेवा के भाव से मध्यस्थता करने के लिए तैयार हो जाता है, ताकि दोनों के मध्य जारी विवाद को समाप्त किया जा सके। कई बार एक से अधिक रज्य विवाद को सुलझाने का प्रयास करते हैं।

सत्सेवा तथा मध्यस्थता के बीच अंतर यह है कि सत्सेवा में तीसरे राज्य की भूमिका केवल विवादित राज्यों को आमने-सामने लाने की होती है अर्थात् आमने-सामने

बैठाने की होती है और तीसरा राज्य समझौता या वार्ता में भाग नहीं लेता है, किन्तु मयस्थता में तीसरा राज्य समझौता वार्ता में भाग लेता है तथा प्रत्येक पक्ष से विचार-विमर्श करता है और अपना पक्ष प्रस्तुत करता है। जैसे- 1965 के भारत-पाक युद्ध के बाद सोवियत संघ ने दोनों राज्यों के मध्य सत्सेवा प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप ताशकंद समझौता हुआ।

मध्यस्थ की भूमिका को एक लंबे समय से अंतर्राष्ट्रीय कानून की मान्यता प्राप्त है। प्राचीन समय में काटिल्य ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में 'मंडल सिद्धान्त' का उल्लेख करते समय 'मध्यस्थता' पर प्रकाश डाला है। समय-समय पर सत्सेवा का सुझाव रखा गया है, जैसें 1899 प्रथम हेग सम्मेलन में विवादों के शांतिपूर्वक हल के उपायों में मध्यसीता व सत्सेवा का सुझावा रखा गया है। इतना ही नहीं, विवादयुक्त राज्यों से यह कहा गया कि हथियार उठाने से पहले मध्यस्थता की सेवाएं प्रयोग करना लाभदायक है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सत्सेवा के काफी उदाहरण देखने को मिलते हैं, जैसे- 1905 में जापान व रूस में युद्ध हुआ, तो अमेरिका ने अपनी सत्सेवा प्रदान करके युद्ध को समाप्त करवाने में सहायता प्रदान की थी। 1951 में भारत व पाक के बीच कश्मीर विवाद पर ऑस्ट्रेलिया के न्यायाधीश डिक्सन ने मध्यस्थता की तथा कुछ सुझाव रखे थे। सोवियत संघ ने भारत व पाकिस्तान के मध्य ताशकंद समझौता कराने में मध्यस्थता की थी।

4.2.7.3.3. संराघन:-

अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए परंपरागत कूअनतिक प्रयासों में संराधन या मेल-मिलाप का भी एक तरीका है। संराधन (मेल-मिलाप) से यह अभिप्राय है कि विवादग्रस्त राज्य या शक्तियां अन्य राज्य की रिष्पक्ष स्थिति के कारण अपनी इच्छा से मध्यस्थ की भूमिका स्वीकार कर सकें। वास्तव में ईमानदार मध्यस्थ तथ्यों की निष्पक्ष जांच करता है और फिर कोई प्रस्ताव या सुझाव प्रस्तुत करता है, किन्तु इन्हें मानना या न मानना विवादग्रस्त पक्षों की इच्छा पर निर्भर करता है। प्रथम हेग सम्मेलन (1899) तथा द्वितीय हेग सम्मेलन (1907) में विवादों के हल के लिए इस साधन का सुझाव दिया गया था।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण हल का विशेष स्थन है। संयुक्त राष्ट्र की सरक्षा परिषद् के द्वारा नियुक्त आयोगों व मध्यस्थ व्यक्तियों द्वारा विभिन्न विवादों में ईमानदान व निष्पक्ष भूमिका निभाते हुए तथ्यों की जांच व प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए हैं। इंडोनेशिया व हॉलैंड विवाद के समय सुरक्षा परिषद ने तीन सदस्यों का एक आयोग नियुक्त किया था, जिसमं एक-एक सदस्य इंडोनेशिया तथा हॉलैंड द्वारा तथा तीसरा सदस्य सुरक्षा परिषद् द्वारा नियुक्त किया गया था। भारत व पकिस्तान के मध्य कश्मीर विवाद में भी संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् ने तीन सदस्यों के एक आयोग का गठन किया था, जिसके तीनों सदस्य सुरक्षा परिषद् द्वारा नियुक्त किए गए थे। इसने तथ्यों की जांच के बाद अपने सुझाव पेश किए थे, किन्तु भारत तथा पाक ने इन सुझावों को नहीं माना था। इस विषय में एम.जी. निकोलस का कहना है, **''सुरक्षा परिषद् जब कभी संराधन का दायित्व संभालती है, तो सदैव अंतिम लक्ष्य केवल विवादयुक्त राज्यों के बीच समझौता मात्र ही नही होता, बल्कि संयुत राष्ट्र के महान सिद्धांत और लक्ष्यों का पालन भी होता है।''** पंच-निर्णय के विषय में ब्रायली

लिखते हैं, **''पंच तथा न्यायाधीशों के लिए कानूनी नियमों के अनुसार निर्णय करना अनिवार्य है। वे कानून के उल्लंघन करने की शक्ति नहीं रखते।''**

4.2.7.3.4. पंच-निर्णय:-

विभिन्न राज्यों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण हल का एक पुराना सर्वमान्य उपाय पंच-निर्णय है। इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक विवादित पक्ष पंचों की नियुक्ति करके अपनी सहमति से इस बात का फैसला करते हैं कि पंच ही उनके मध्य मौजूद विवाद का फैसला करें। किन्तु किसी भी विवादी पक्ष को इस प्रकार के उपाय का सहारा लेने के लिए बाध्य नहीं किया जाता, बल्कि ''विवादी पक्ष पंच-निर्णय से पूर्व ही इस बात के लिए सहमति व्यक्त करते हैं कि वे पंच-निर्णय को मानने के लिए बाध्य होंगे।''

पंच-निर्णयों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन चूनान में पंच-निर्णय के प्रमाण मिलते हैं। मध्य युग में भी इसका प्रचलन था। आधुनिक युग में अमेरिका व इंग्लैंड के मध्य 1794 में जो संधि हुई थी, वह पंच-निर्णय के आधार पर ही हुई थी। इसी प्रकार 1892 में अमेरिका तथा ब्रिटेन के मध्य अलबामा विवद का हल भी पंच-निर्णय द्वारा ही किया गया था। जब 1965 में पाकिस्तान ने कश्मर समस्या पर पंच-निर्णय का आग्रह किया, तो भारत ने इसको स्वीकार नहीं किया। किन्तु 1965 में भारत-पाक के मध्य रन-कच्छ विवाद पर पंच-निर्णय के लिए दोनों राज्य तैयार हो गए, जिसके फलस्वरूप 30, जून 1965 को पंच-निर्णय द्वारा इस विवाद का हल कर दिया गया।

4.2.7.3.5. विचार-विमर्श:-

अंतर्राष्ट्रीय विवादों को सगमता से हल करने का एक अन्य तरीका विचार-विमर्श है। किसी भी विवाद का शांतिपूर्ण हल करने के लिए विवादी पक्षों में खुलकर विचार-विमर्श किया जाता है। विचार-विमर्श के दौरान हर विवादित पक्ष को अपनी बात कहने का पूरा-पूरा मौका दिया जाता है। जब संयुक्त राष्ट्र के मंच पर विश्व समुदाय की उपस्थिति में विचार-विमर्श होता है, तो उसकी प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है, क्योंकि उस विवाद पर विश्व जनमत की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप दोनों संबंधित पक्ष समाधान के लिए सहमत हो जाते हैं। साथ ही, उस विवाद पर द्विपक्षीय संकीर्ण दृष्टिकोण की अपेक्षा अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा जैसे आदर्शों के बारे में विचार किया जाता है। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अभिकरणों-महासभा व सुरक्षा परिषद् द्वारा विचार-विमर्श में विवादित पक्षों को अपना-अपना पक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट करने का मौका प्रदान किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के मंच से अनेक बार इस प्रकार के विवाद हल हुए हैं।

4.2.7.3.6. जाँच आयोग:-

अंतर्राष्ट्रीय विवादों के हल करने का एक अन्य उपाय जांच-पड़ताल है, जिसका उल्लेख संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अध्याय छह के अनुच्छेद 33 में किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा का उत्तरदायित्व संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के कंधों पर है। अत: किसी भी ऐसे विवाद के विषय में, जिसके कारण विश्व शांति व सुरक्षा को खतरा पैदा होने की संभावना हो, संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के लिए क्रियाशील होना आवश्यक हो जाता है। इतना ही नहीं, इस स्थिति में सुरक्षा परिषद् अपना ध्यान इस

प्रकार के विवाद की ओर आकर्षित करती है। इस प्रकार कि स्थिति में सुरक्षा परिषद् के लिए कोई भी सुझाव या प्रस्ताव पारित करने से पहले तथ्यों की सही-सही जानकारी होना आवश्यक हें संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 34 में सुरक्षा परिषद को यह अधिकार दिया गया है कि ''वह किसी विवाद या स्थिति की जांच करवा सकती है।'' संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद 1947 में पाकिस्तान के द्वारा कश्मीर पर आक्रमण के समय तथ्यों की जांच-पड़ताल के लिए एक जांच आयोग का गठन किया गया था।

4.2.7.3.7. संयुक्त राष्ट्र द्वाराः-

राष्ट्र संघ व संयुक्त राष्ट्र दोनों अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के गठन का प्रमुख उद्देश्य आने वाले विश्व-युद्ध को रोकना था। इसके लिए रष्ट्र संघ के प्रसंविदा की धारा 12 में विवादों के शांतिपूर्ण हल के लिए मुख्यतः तीन उपायों का उल्लेख किया गया था। पंचों को विवाद सौंपना, हेग के स्थायी पंच न्यायालय को विवाद सौंपना तथा राष्ट्र संघ की परिषद् द्वारा जांच-पड़ताल करना। साथ ही प्रसंविदा की धारा 16 में शांतिपूर्ण हल का प्रस्ताव स्वीकार न करने वाले राज्यों के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध लगाने की व्यवस्था भी की गयी थी।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय 6 में उन प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है, जिनसे विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से हल किया जा सकता है। वस्तुतः अंतर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने का काम संयुक्त राष्ट्र की महा सभा, सुरक्षा परिषद, अंतर्राष्ट्रीय नयायालय तथा महासचिव करते हैं। चार्टर के अनुच्छेद 33 में उल्लेख किया गया है कि ''राष्ट्र अपने विवादों को वार्ता, जांच, मध्यस्थता, सराधन, न्यायिक समाधान व क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से अपनी इच्छा से अन्य उपायों से सुलझाने का प्रयत्न करेंगे।'' संयुक्त राष्ट्र के अन्य अंगों का कार्य तब शुरू होता है, जब परंपरागत कूअनीतिक प्रयास असफल हो जाएं। एच. जी. निकोलस के शब्दों में, ''सुरक्षा परिषद् की कूअनीति वहां से प्रकट होनी शुरू होती है, जहां परंपरागत कूटनीतिक तरीके अपना लिए गए होते हैं।''

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 34 के अनुसार, ''जिस विवाद या परिस्थिति से अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष की आशंका हो, उस विवाद के शांतिपूर्वक समाधान के लिए कोई उपाय सुझाने से पहले सुरक्षा परिषद यह निश्चित करने के लिए जांच कर सकती है कि क्या अमुक विवाद या परिस्थिति अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए वास्तव में खतरा है।'' संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 36 में इस बात का उल्लेख किया गया है कि सुरक्षा परिषद विवाद पक्षों को विवाद के शांतिपूर्ण हल के लिए किसी भी उपाय का प्रयोग करने के लिए परामर्श दे सकती है। ऐसा करने से पहले सुरक्षा परिषद् उस विवाद को हल करने के लिए विवादित पक्षों द्वारा पहले से किए गए प्रयासों का ध्यान रखेगी। चार्टर के अनुच्छेद 38 के तहत सुरक्षा परिषद् विवादी पक्षों के अनुरोध पर अपने सुझाव दे सकती है, ताकि विवाद का शांतिपूर्ण हल हो सके।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्तूबर, 1945 को की गयी थी। अपने 60 वर्षो से अधिक के कार्यकाल में सुरक्षा परिषद् ने विभिन्न प्रकार के विवादों के शांतिपूर्ण हल के लिए अनेक परंपरागत व गैर-परंपरागत उपायों का प्रयोग किया है। जैसे- जांच, द्विपक्षीय वार्ता, विचार-विमर्श, मध्यस्थता, संराधन, सुझाव तथा अपील अदि। इनमें सुरक्षा

परिषद् ने अलग-अलग विवादों में परिस्थितियों के अनुसार इन उपायों को अलग-अलग या इन उपायों का मिश्रित रूप से प्रयोग के अनेक विवादों को सुलझाया है।

4.2.7.3.8. न्यायिक समाधान:-

न्यायिक समाधान अंतर्राष्ट्रीय विवादों को हल करने का एक प्रमुख साधन है। न्यायिक समाधान से यह अभिप्राय है कि अंतर्राष्ट्रीय विवादों का हल अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा किया जाए। अंतर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान की इस विधि पर विचार प्रथम हेग सम्मेलन (1889) तथा दूसरे हेग सम्मेलन (1907) में किया गया था। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद जब 1919 में राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी थी, तो इसकी संविदा के अनुच्छेद 14 में अंतर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था की गयी थी। सितम्बर, 1921 में हेग में अंतर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय को विधिवत रूप से स्थापित कर दिया गया था। 1922 से 1940 तक इस न्यायालय ने अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान में प्रमुख भूमिका निभायी। 1945 में सेन-फ्रांसिस्को सम्मेलन के बाद संयुक्त राष्ट्र की स्थाना के साथ ही इस न्यायालय का स्थान एक नवीन अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने ले लिया। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्त राष्ट्र के एक अंग के रूप में स्थापित हो गया।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 94 के अनुसार, ''संयुक्त राष्ट्र का प्रत्येक सदस्य यह वचन देता है कि यह किसी भी मामले में विवाद होने पर अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय को मानेगा।'' संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 94 (2) के अनुसार, ''यदि कोई पक्ष न्यायालय के निर्णय के अंतर्गत दायित्वों का पालन नहीं करता, तो दूसरा पक्ष सुरक्षा परिषद् का आश्रय ले सकता है।'' अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में 1946 से आज तक अनेक विवाद न्यायिक समाधान के लिए लाए गए हैं। एक अनुमान के अनुसार 1946 से 1984 तक 50 विवाद अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के सामने विचार के लिए प्रस्तुत किए गए। 1949 का विक्टर रोल हया डि-ला-टोरे विवाद, 1951 का ऐंग्लो नार्वे मछलीगाह विवाद, 1951 का आस्ट्रेलिया-न्यूजिलैंड तथा डेनमार्क व पूर्वी जर्मनी के मध्य विवाद आदि।

4.2.7.3.9. अवरोधक कूटनीति:-

अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण हल का अंतिम उपाय अवरोधक कूटनीति है। संयुक्त राष्ट्र के दूसरे महासचिव डॉग हैमरशोल्ड द्वारा दो महा शक्तियों मध्य शीत-युद्ध की स्थितियों को मर्यादित और शांत रखने के में अवरोधक कूटनीति का प्रयोग किया गया था। यह उपाय अंतर्राष्ट्रीय शांति स्थापित करने में बहुत योगदान देता है, क्योंकि इसका लक्ष्य विवाद को कम करना व तनावपूर्ण स्थिति को सुधारना है। प्लानो व रिग्स ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनायी जाने वाली अवरोधक कूटनीति के उपायों को चार वर्गो में बांआ है।

1. युद्धरत पक्षों के बीच रखी गयी संयुक्त राष्ट्र सेनाएँ।
2. निरीक्षक दल, जो युद्ध-विराम, विसैन्यीकरण क्षेत्र, अस्थायी युद्ध-विराम रेखाओं तथा दो राज्यों या विभिन्न राज्यों की संधि-सीमाओं की जांच-पड़ताल करते हैं।
3. आन्तरिक संघर्ष को समाप्त करने तथा घरेलू व्यवस्थ कायम रखने में भेजे जाने वाली संयुक्त राष्ट्र की सेनाएँ।

4. साम्प्रदायिक समूहों के बीच सशस्त्र संघर्ष को रोकने या सीमित करने में प्रयुक्त राष्ट सेनाएँ।

संयुक्त राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य विभिन्न राज्यों के मध्य विवादों को शांतिपूर्ण तरीकों से हल करना तथा युद्धों को रोकना है। विवादों के शांतिपूण समाधान के संबंध में संयुक्त राष्ट्र इस बात पर बल देता है कि विभिन्न राज्यों को चाहिए कि वे अपने सभी विवादों को समझौता, बातचीत, पंच निर्णय, जांच-पड़ताल, मध्यस्थता आदि उपायों से सुलझाने का प्रयत्न करें। यदि फिर भी किसी कारणवश कोई विवाद हल न हो, तो उसे सुरक्षा परिषद् या महा सभा के सामने प्रस्तुत किया जाए। यदि इसके बाद भी विवाद हल न हो, तो विवाद को सुरक्षा परिषद या महा सभा में प्रस्तुत होने पर विवाद के समस्त पहलुओं पर विचार-विमर्श होता है और विवादी पक्ष स्वतंत्रतापूर्वक अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं। यदि विवादी पक्ष चाहे, तो उसे बहस में भाग लेने के लिए बुलाया जा सकता है, किन्तु वह मतदान नहीं कर सकता।

सुरक्षा परिषद् अपनी बहस में ऐसे राज्य द्वारा भाग लेने के लिए, जो संयुक्त राष्ट्र का सदस्य न हो, न्याय-सम्मत नियम निर्धारित करने का अधिकार रखती है। वस्तुत: विवादों के संबंध में सुरक्षा परिषद् व महा सभा को अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की भांति निर्णय देने का अधिकार नही है अर्थात् ये केवल प्रस्ताव पारित करके संबंधित राज्यों से यह सिफारिश कर सकती है कि वे बातचीत द्वारा विवादों को हल करें। सुरक्षा परिषद और महा सभा को मामले की जांच-पड़ताल के लिए आयोग नियुक्त करने या महा सचिव को भेजने का भी अधिकार है। जब अगस्त, 2006 में अलराइल और लेबनान के मध्य युद्ध शुरू हुआ, तो अगस्त के अंतिम सप्ताह में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव कोफी अन्नान ने दोनों देशों से शांति की अपील की थी।

4.2.8. मूल्यांकन

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय विवादों को हल करने के विभिन्न उपायों का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके निर्माता अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्वक समाधान के महत्व को अच्छी तरह से समझते थे। इस कारण चार्टर के विभिन्न भागों- विशेषकर छठे अध्याय- में विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के विभिन्न उपायों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। इतना ही नहीं, सुरक्षा परिषद् को कूटनीतिक प्रयासों के द्वारा विवादों के शांतिपूर्ण हल का उत्तरदायित्व सौंपा गया है और समस्त राज्यों से संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के फेसलों को मानने का संकल्प लेने का आग्रह किया गया है। किन्तु इतना कुछ होने के बाद भी सुरक्षा परिषद अपने कार्य को संतोषजनक ढंग से नहं कर पाती है, क्योंकि इसकी अपनी मर्यादाएं व सीमाएं हैं, जिनके कारण इसके फैसले सभी सदस्य-राज्यों के लिए बाध्यकारी नहीं, बल्कि सिफारिश मात्र होते हैं। इसके अलावा, विश्व की महा शक्तियों के मध्य चले शील-युद्ध और महा शक्तियों के निषेधाधिकार से पैदा गतिरोधों के कारण सुरक्षा परिषद इस विषय में विशेष भूमिका नहीं निभा पायी है। इसके बावजूद भी संयुक्त राष्ट्र ने अन्तर्राष्ट्रीय विवदों को हल करने के अनेक प्रयास किए हैं।

4.2.9. पाठ सार/सारांश

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अध्याय 7 के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए खतरा पैदा होने या शांति भंग होने या विश्व के किसी भी क्षेत्र में सशस्त्र आक्रमण होने की दशा में संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं व्यवस्था की पुनर्स्थापना के उद्देश्य से यदि आवश्यक समझे, तो बल प्रयोग कर सकता है या इसके साथ प्रतिरोधात्मक उपायों का सहारा ले सकता है। संयुक्त राष्ट्र बल प्रयोग द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विवादों का हल दो प्रकार से करने की चेष्टा करता है:-

1. जब सशस्त्र सेना के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती।
2. जब सशस्त्र सैनिक बल का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

संयुक्त राष्ट्र के अनुच्छेद 39 के अनुसार शांति भंग की धमकी, शांति भंग होने तथा आक्रमण के कार्यों का निर्धारण संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद करती है। एक बार यह फैसला लेने पर कि शांति भंग हुई या आक्रामक कार्य किया गया है, सुरक्षा परिषद यह फैसला ले सकती है कि इन परिस्थितियों में किन उपायों का प्रयोग किया जाए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में कहीं भी 'आक्रमण' या 'शांति भंग' आदि शब्दों की व्याख्या नहीं की गयी है।

जब कभी विश्व के किसी क्षेत्र में झड़पें हुई, गैर-सरकारी संगठनों ने विवादग्रस्त पक्षों को एक-दूसरे के करीब आने का मौका प्रदान किया तथा विवादों को हल करने में इनकी मदद की। कम्बोडिया का शांति समझौता इस बात का प्रमुख उदाहरण है कि गैर-सरकारी संगठन किस प्रकार तथा किस हद तक गतिरोधों को समाप्त करने में सहायता कर सकते हैं। ये संगठन दीर्घकालीन प्रयत्नों द्वारा विश्व शांति स्थापित करने हेतु ध्वस्त अर्थव्यवस्थाओं को पुनर्स्थापित करने तथा लोकतांत्रित संस्थाओं के पुनर्निमाण करने में भूमिका निभाते हैं।

वर्तमान समय में 1300 से भी अधिक गैर-सरकारी संगठन संयुक्त राष्ट्र के जन सूचना विभाग से जुड़े हुए हैं। इन संगठनों द्वारा विभाग के साप्ताहिक विवरण के रूप में पर्यावरण, मानवाधिकारों, महिलाओं की स्थिति सुधारने व महिलाओं की प्रगति के लिए अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान जैसे विषयों पर भी सूचना दी जाती है। साथ ही ये गैर-सरकारी संगठन शिक्षा को बढ़ावा देते हैं। इनमें से कुछ संगठन तो संयुक्त राष्ट्र के लिए शिक्षा सामग्र तैयार करते हैं। इस प्रकार की सामग्री में विभिन्न पुस्तकों से लेकर विडियो आदि तक शामिल है।

ये गैर-सरकारी संगठन अपने प्रचार के लिए भी कार्य करते हैं। इस कार्य के लिए वे संयुक्त राष्ट्र की बैठकों में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों से संपर्क स्थापित करते हैं अर्थात ये विभिन्न देशों के दूतावासों तथा शिष्टमंडलों से संपर्क बनाए रखते हैं। ये संयुक्त राष्ट्र की बैठाकों को प्रभावित करने का भी प्रयत्न करते हैं। इतना ही नहीं, ये सुझावकर्ता की हैसियत से सामाजिक व आर्थिक परिषद के अधिवेशनों में भाग लेते हैं और अधिवेशनों में विभिन्न हितों के मुद्दों पर सलाह-मशविरा देते हैं। सामाजिक व आर्थिक परिषद भी गैर-सरकारी संगठनों को अपनी बेठक में बुलाकर सामान्य हितों के मामलों पर इनसे विचार-विमर्श करती है। संयुक्त राष्ट्र के सचिवालय की अनेक प्रकार

की इकाइयां गैर-सरकारी संगठनों से निरन्तर तालमेल बनाए रखती है। संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक व सामाजिक परिषद की गैर-सरकारी संगइनों से संबंधित इकाई तथा समिति इनके मध्य एक कड़ी का काम करती है।

संयुक्त राष्ट्र का जनसूचना विभाग गैर-सरकारी संगइनों से संबंधित गतिविधियों से इसे अवगत कराता रहता है तथा संयुक्त राष्ट्र के कार्यो से संबंधित समचनाओं के प्रसारण में सहायता करता है। साथ ही यह विभाग इनके वार्षिक सममेलनों व ओरएंटेशन कोर्सो आदि को भी आयोजित करता है। इसके साथ-साथ यह इन्हें समय-समय पर जानकारी भी प्रदान करता है। जब संयुक्त राष्ट्र द्वारा कोई प्रस्ताव पारित कर दिया जाता है, तो गैर-सरकारी संगठन सदस्य-राज्यों द्वारा उसका पालन करवाने में भी भूमिका अदा करते हैं। अनेक गैर-सरकारी संगठन समय-समय पर मानवाधिकारों के उल्लंघन जैसे जनहित के मुद्दों से संबंधित तथ्यों का पता लगाने का कार्य भी करते हैं।

गैर सरकारी संगठनों के कार्यो का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि ये संयुक्त राष्ट्र की व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है तथा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इसके कार्यो को प्रभावित करते हैं। वर्तमान समय में विश्व के लगभग सभी देशों में अनेक प्रकार के गैर-सरकारी संगठनों की स्थापना की गयी है। ये गैर-सरकारी संगठन राज्य सरकारों को विभिन्न क्षेत्रों के लिए विशिष्ट नीतियां अपाने के लिए बाय करते हैं। ये अनाथ बच्चों, विकलांगों तथा अनूसूचित जातियों व जनजातियों की भलाई के लिए अनेक प्रकार के कार्य भी करते हैं। साथ ही, ये अपने देश की सरकारों द्वारा बनायी जाने वाली नीतियों को भी प्रभावित करते हैं। ये पर्यावरण संरक्षण जैसी वैश्विक समस्याओं के समाधान की दिशा में भी उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे हैं।

अत: यह कहना गलत नहीं होगा कि गैर-सरकारी संगठनों ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था को प्रभावित किया है।

4.2.10. अभ्यास बोद्ध प्रश्न

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र में शक्ति संर्घष की स्थापना में विभिन्न विचारों की व्याख्या करे।

प्र. 2) सुरक्षा परिषद की नियतकालीन बैठकों में सुरक्षा परिषद की भूमिका की व्याख्या करें।

प्र. 3) नीति-संबंधी विवाद का उल्लेख किजिए?

प्र. 4) संयुक्त राष्ट्र की अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निपटाने की प्रक्रिया की व्याख्या करे।

प्र. 5) परमपरावादियों के विरुद्ध वैज्ञानिकों के तर्क का उल्लेख किजिए?

लघुतरात्मक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ औपचारिक संशोधन प्रक्रिया वर्णन कीजिए।

प्र. 2) चार्टर में विभिन्न परम्परावादी विचारों का समस्याओं की उजागरता पर टिप्पणी करें।

प्र. 3) चार्टर में विभिन्न देशों की कानूनी प्रक्रिया का उल्लेख करोगें।

प्र. 4) चार्टर में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न मॉडलों की व्याख्या करें।

प्र. 5) संयुक्त राष्ट्र में वर्णित दमन विधियों की समीक्षा करें।

बहु वैकाल्पिक प्रश्न

प्र. 1)अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का वह दृष्टिकोण है, जो दर्शन शास्त्र, इतिहास एवं कानून से शक्ति प्राप्त करता है।

1) परंपरागत दृष्टिकोण
2) वैज्ञानिक दृष्टिकोण
3) इन्में से कोंइ नही
4) उपरोक्त सभी

प्र. 2)वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सकर्थक है।

1) रेमण्ड एरन 2) स्टेनले हाफमैंन 3) रेन्होल्ड नेबर 4) जॉन बर्टन

प्र. 3) किसने महान वाद-विवाद' में परंपरावादियों के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं

1) मार्टिन कैपलान 2) स्टेनले हाफमैंन 3) निकोलस स्पाईकमैन 4) हैडले बुल,

प्र. 4) प्राचीन समय में किसने ने 'मंडल सिद्धान्त' का उल्लेख करते समय 'मध्यस्थता' पर प्रकाश डाला है ?

1) काटिल्य 2) स्टेनले हाफमैन 3) रेन्होल्ड नेबर 4) हैडले बुल,

प्र. 5) भारत-पाक के मध्य रन-कच्छ विवाद को हल करने के लिए कौन सी प्रक्रिया अपनाइ

1) वार्ता 2) सत्सेवा तथा मध्यस्थता 3) अतिरिक्त दबाव 4) पंच-निर्णय

4.2.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लिनोर्ड: एल.लर. इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन. न्यूयार्क मैकग्रेव हिल 1951
2. ली ट्रयगव. इन दा कोष ऑफ पीस, न्यूयार्क, मैकमिलन 1951
3. मैन्डर लीनडन ए. फाउन्डेशन ऑफ मोडर्न वर्ल्ड सोसायटी कैलिफोर्निया: स्टैण्डफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस 1948.
4. मार्टिन ए. कोलेक्टीव सिक्योरिटी, ए प्रोग्रेस, रिपोर्ट, पेरिस यूनेस्को 1952.
5. मिलर डेवि एच. दी ड्राफटिंग ऑफ वी कोबनअन्ट, न्यूयार्क जी.पी. पूतनाम 1928.
6. अल्कर. एच. आर. एण्ड रस्सअट, एम. बी., वलर्ड पोलिटिस इन दा जनरल अस्मबली न्यू. हैवन, मेल यूनीवर्सिटी प्रैस. 1965
7. अकिन बेन्पेमीन न्यू स्टेस्टस एण्ड इंटरनेशन ओर्गेनाइजेशन पेरिस यूनेस्को, 1955
8. बैअली सयूडनी डी. दी जनरल असेम्बली ऑफ दी यू. एन. न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रेग्र, 1961
9. असहर : रोबर्ट दा यूनाईटिड नेशनस एण्ड प्रोमोशन ऑफ दा जनरल वेलफेयर वाशिंगटन दी ब्रेकिंग इंस्टीट्यूशन, 1951

इकाई-3: संयुक्त राष्ट्र: लोकतान्त्रीकरण और भारत की भूमिका

इकाई की रूपरेखा:

4.3.1. उद्देश्य कथन
4.3.2. प्रस्तावना
4.3.3. संयुक्त राष्ट्रसंघ की विफलताएँ
4.3.4. संयुक्त राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण
4.3.5. सांविधानिक तथा संगठनात्मक कारण
4.3.6. राजनीतिक कारण
4.3.7. संयुक्त राष्ट्र की उपलब्धियाँ
4.3.7.1. राजनीतिक विवादों का समाधान
4.3.7.2. साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का उन्मूलन
4.3.7.3. गैर-राजनीतिक क्षेत्रों में सफलता
4.3.7.4. यापक संपर्क एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का निर्माण करने का मंच
4.3.7.5. संयुक्त राष्ट्रसंघ एक नियंत्रक शक्ति के रूप में
4.3.7.6. अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का आदार एवं पंजीकरण
4.3.7.7. संघ के शिक्षावर्द्धक कार्य
4.3.7.8. नैतिक दबाव का साधन
4.3.8. उपसंहार
4.3.9. पाठ का सार/सारांश
4.3.10. अभ्यास/बोध प्रनन
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.3.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बाद आप:

- लोकतान्त्रीकरण और भारत की भूमिका अध्ययन करेंगे।
- संयुक्त राष्ट्रसंघ की विफलताओं के बारे में जातोगे।

4.3.2. प्रस्तावना

पिछले लगभग 150 वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के क्षेत्र में भारी प्रगति हुई है। अनेक असफलताओं के बावजूद इस और क्रमशः विकास होता रहा है। बीसवं सदि में राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ के रूप में तो मानो अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की नींव ही पड़ चुकी है। जहां राष्ट्रसंघ केवल इतिहास का विषय मात्र है वहीं संयुक्त राष्ट्र हमारे सामने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का जीता-जागता रूप विद्यमान है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई तो उस समय एक अत्यन्त सुखद भविष्य की कल्पना की गयी। चार्टर को अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की उन बुराइयों से दूर रखने का प्रयत्न किया गया जिनके कारण पुराना राष्ट्रसंघ असफल हो गया था और नये विश्व-संगठन को पहले की अपेक्षा एक उत्कृष्ट और शक्तिशाली संगठन बनाया गया।

ऐसा लगता था कि संयुक्त राष्ट्र के रूप में एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन मात्र ही नहीं तरन् शांति और सुरक्षा की स्थापना के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की स्थापना भी होने जा रही है। परिणामस्वरूप संसार के लोगों में यह विश्वास होना स्वाभाविक था कि नया विश्व-संगठन संसार में स्थायी शांति और समृद्धि लाने में सफल होगा। परन्तु वर्तमान युग में संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रबलतम समर्थक भी इस बात को स्वीकार करेगा कि संयुक्त राष्ट्र से जो आशाएं की गयी थीं वे पूरी नहीं हो सकी। यह मानवता को 'भय से मुक्ति' नहीं दिला पाया है। महायुद्ध का भय पूर्ववत् बना हुआ है और संघ आधुनिक समस्याओं को सुलझाने में प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर पा रही है।

जैसा कि शूमाँ ने लिखा है, ''एक मध्यस्थ या समझौते की बातचीत के न्यायपीठ के रूप में उनका अभिनय युद्ध में लड़ने वाल सेनाओं के समकक्ष ही है। एक नैतिक अर्थ में भी आक्रमणों से पीड़ित लोगों के रक्षक के रूप में भी संयुक्त राष्ट्र का अभिनय आपत्तिजनक अपयोगिता का ही रहा है। शांति कराने वाले के रूप में उनका अभिनय अदृश्य ही है।''

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के शीघ्र ही बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ 'शीतयुद्ध' के भंवरजाल में फंस गया। यह बड़े राष्ट्रों के बीच विभिन्नता एवं फूट का अखाड़ा बन गया। कहा जाता है कि उसका नाम 'संयुक्त राष्ट्र' एक झूठा दिखावा, एक व्यंग मात्र रह गया। यह संयुक्त राष्ट्रों के बदलें में विभाजि राष्ट्रों का मंच बन गया। बेंटविच और मिर्टन ने लिखा भी है, ''जिस चीज की रचना विश्व शांति के एक यंत्र के रूप में की गयी थी वह विश्व संघर्ष का एक मंच सिद्ध हुई।'' सोवियत रूस और अमेरीका के पारस्परिक संघर्ष के कारण वह निरस्त्रीकरण के क्षेत्र में नितांत असफल रहा। इसी के कारण बहुत दिनों तक वह साम्यवादी चीन को अपना सदस्य नहीं बना सकां वह येकोस्लोवाकिया, अंगरी और तिब्बत पर साम्यवादी आक्रमण को नहीं रोक सका और न कश्मीर के मामले में आक्रान्ता को दंडित ही कर सका। दक्षिण अफ्रीका, वियतनाम और बांग्लादेश के मामले में इसकी भूमिका निंदनीय ही रही है।

इसके रहते हुए भी अनेक अवसरों पर दुर्बल पक्ष को न्याय नहीं मिल पाया है। राष्ट्रपति ट्रमैन ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यकरण पर असन्तोष व्यक्त करते हुए कहा भी था संयुक्त राष्ट्र अस्थायी अन्तर्राष्ट्रीय शांति का आश्वासन नहीं दे सका, जिसके फलस्वरूप ''संयुक्त राष्ट्रों के लोूग अब भी आक्रमण की निरन्तर आशंका से पीड़ित हैं तथा आक्रमण के विरुद्ध तैयारी के व्यय-भार से दबे हुए हैं।'' अब प्रश्न यह उठता है कि जिस यंत्र की रचना काफी शोर-शराबे तथा उत्साह के साथ की गयी थी, इतने छोटे समय में उसकी असुलता की व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है?

शूमाँ के अनुसार ''इसके दो उत्तर प्रतीत होते हैं। इंजन की बनावट दोषपूर्ण है या इंजीनियरों में उसके चलाने की इच्छा व चतुराई की कमी है।'' दोनों ही बातें सत्य हैं।

4.3.3. संयुक्त राष्ट्रसंघ की विफलताएँ

अपने लगभग 50 वर्ष के जीवन में संयुक्त राष्ट्रसंघ को प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनतिक कार्यो में प्राय: विफलता का सामना ही करना पड़ा है। इसकी विफलताओं को हम निम्नलिखित ढंग से निरूपित कर सकते हैं:

1. राष्ट्रों के बीच हथियार बन्दी की होड़ को रोकना संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक उद्देश्य है चार्टर में इसीलिए निरस्त्रीकरण के उपबन्ध रखे गये हैं। परन्तु बहुत से प्रयत्नों के बावजूद इस दिशा में कोई ठोस पग नहीं उठाया जा सका है। संघ अभी तक इस संबंध में विभिन्न देशों के बीच समझौता नहीं करा सका है। 15 जून, 1969 के अपने वार्षिक प्रतिवेदन में संघ के तत्कालीन महासचिव ऊथांट ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यो पर निराशा ही व्यक्त की थी। उसे यह देखकर अशांति का अनुभव हो रहा था कि परमाणु शास्त्रों की समस्या आज भी आर में लटकी हुई है। परमाणु शास्त्रों का परीक्षण होता जा रहा है। विश्व में सेना पर किया जाने वाला व्यय निरंतर रूप में बढ़ता जा रहा है। इनमें से सबसे अणिक भयानक बात परमाणु शस्त्रों की अबाध गति से चलने वाली होड़ है। संयुक्त राष्ट्रसंघ इस होड़ को रोकने में सफल नहीं हुआ। अब सन् 1990 में सोवियत संघ और अमेरीका ने अपने अधिकांश रासायनिक हथियारों को नष्ट करने पर सहमति की घोषणा की है।
2. संयुक्त राष्ट्रसंघ का मूल उद्देश्य अन्तराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाये रखना तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जहां कही भी सशस्त्र आक्रमण हो वहां सुरक्षा के लि सामूहिक एवं प्रभावूर्ण कार्यवाई करना है। परन्तु उस कार्य में संयुक्त राष्ट्रसंघ पूर्णतया असफल रहा है। यह ठीक है कि इसकी स्थापना से लेकर अब तक मानवता को तृतीय महायुद्ध का भीषण रूप देखने को नहीं मिला, परन्तु इसका पूरा श्रेय संयुक्त राष्ट्र को नहीं दिया जा सकता। यह इसलिए सम्भव है कि युद्धों को सीमित करने में महाशक्तियों का सामान्य हित रहा है अथवा उनमें से कोई महायुद्ध का खतरा मोल लेने को तैयार नहीं है। कश्मीर का प्रश्न रहा हो या अरब-इजरायल का, दक्षिण रोडेशिया का प्रश्न रहा हाके या कोरिया का, विगत 50 वर्षो में संयुक्त राष्ट्रसंघ किसी भी बड़ी समस्या का स्थायी हल निकालने में असफल रहा है। प्रत्येक बड़े युद्ध के बाद उसने युद्ध-विराम कराने की भूमिका ही निभायी है। जुड़वां बच्चों की-सी उलझी हुई वियतनाम समस्या में तो यह भूमिका भी नहीं निभा सका। इसके रहते हुए भी अनेक अवसरों पर दुर्बल पक्ष को न्याय नहीं मिल सका हें बांगला देश इसका ज्वलंत प्रमाण है। जर्मनी, कोरिया, वियतनाम जैसे संसार में संकट पैदा करने वाले स्थलों की समस्याओं के समाधान में संयुक्त राष्ट्रसंघ क योगदान उसके बिल्कुल भिन्न रहा है जिसकी संयुक्त राष्ट्रसंघ के विधान-निर्माताओं ने कल्पना की थी। विगत चार दशकों में क्षेत्रीय स्तर पर लगभग 150 छोटे-बड़े सैन्य संघर्ष हुए हैं: जैसे, भारत-चीन युद्ध, भारत-पाक युद्ध (तीन बार), अरब-इजरायल युद्ध (दो बार), इथियोपिया-सोमालिया संघर्ष, वियतनाम-कम्पूचिया संघर्ष, ईरान-इराक युद्ध आदि। इनमें से अधिकांश का निपटारा वस्तुत: संबंद्ध देशों की सीधी वार्ता या दूसरे की मध्यस्थता से हुआ है। उनमें संयुक्त राष्ट्रसंघ की या तो कोई भूमिका नहीं रही है या नगण्य रही है।
3. संयुक्त राष्ट्रसंघ के गत 50 वर्षो के कार्यकाल में अनेक राष्ट्रों के संघ के चार्टर और उद्देश्यों का अतिक्रमण किया है, उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के निर्णय की अवहेलना की है। कुछ उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाएगी। संयुक्त राष्ट्रसंघ के

निर्माता मानव अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रता में अधिक विश्वास रखते थे। इसलिए इनकी रक्षा के लिए घोषणा को स्वीकार किया गया। परन्तु दु:ख की बात यह है कि कुछ राज्यों ने चार्टर और घोषणा के शब्दों और भावनाओं की अवहेलना की। दक्षिण अफ्रका की श्वेत सरकार ने उनका अतिक्रमण किया। वह भरतीय तथा अश्वेत जातियों के साथ प्रजातीय व्यवहार करके संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा उद्घोषित मौलिक मानवीय अधिकारों का उल्लंघन करती रही और संयुक्त राष्ट्रसंघ उसको रोकने में विफल रहा। उसी तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ बलगेरिया, हंगरी, रूमानिया आदि देशों में मूल अधिकारों की अवहेलना को नहीं रोक सका। एच. फील्ट हैवलैंड का कहना है कि संघ की महासभा तो केवल यह मालूम कर लेती है कि कहां-कहा पर मूल अधिकारों की अवहेलना हुई। इससे अधिक व कुछ और नहं कर पाती। कई अन्य राज्यों ने भी संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र के विरुद्ध कार्य किया है।

सन् 1956 में इंग्लैंड और फ्रांस ने स्वेज पर आक्रमण करके संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र की उपेक्षा की थी। रूस ने महासभा के उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था जिसके द्वारा रूस को हंगरी के आन्तरिक विषयों में हस्तक्षेप न करने के लिए कहा गया था। यद्यपि अंगरी, संयुक्त राष्ट्र का सदस्य है फिर भी उसने संयुक्त राष्ट्र के प्रेक्षकों को अपने क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी। कादर सरकार ने अपने देश में महासचिव का स्वागत करने की भी नम्रता नहीं दिखालाई। बिजर्टा संकट के उपरान्त जब महासचिव ने फ्रांसीसी सरकार से बातचीत करने की प्रार्थना की तो उसने महासचिव का पेरिस में स्वागत करने से इन्कार कर दिया। संयुक्त राष्ट्र के आग्रह करने के बाद भी पुर्तगाल ने अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता नहीं दी थी। सन 1967 के अरब-इजरायल संघर्ष में भी संयुक्त राष्ट्र के घोषणा-पत्र का अपमान हुआ। इस अपमान के लिए संयुक्त राष्ट्रसां से भी अधिक संयुक्त राज्य अमेरिका उत्तरदायी था। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ ने बार-बार दक्षिण अफ्रीका की रंग भेद की नीति के विरुद्ध प्रस्ताव पारित किये। किन्तु वहां काले लोगों पर अत्याचार उसी प्रकार होता रहा। उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों के बावजूद उसका विदेशी व्यापार बढ़ता रहा। इस सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि संघ के चार्टर की अवहेलना की गयी है जिसके चलते संघ की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा है तथा वह अपना कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर पा रहा है। यह भी देखा गया है कि विश्व शक्तियों ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिए संघ के बजाय सीधे द्विपक्षीय परामर्श को सहारा लिया है। साल्ट-2 और हिन्द महासागर के विसैन्यीकरण पर अमेरीका और सोवियत संघ सीधी बातचीत करते रहे।

4.3.4. संयुक्त राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण

संयुक्त राष्ट्रसंघ की असफलता के दे प्रकार के कारण बताये जा सकते हैं- सांविधानिक तथा राजनीतिक अथवा मनोवैज्ञानिक।

4.3.5. सांविधानिक तथा संगठनात्मक कारण

संयुक्त राष्ट्रसंघ की असफलता के लिए उसके संविधान और संगठन को भी उत्तरदयी बतलाया जाता है। इसकी प्रमुख वैाानिक दुर्बलताओं का वर्णन नीचे दिया जाता है।

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण संसार के राष्ट्रों की सरकारों ने संसार की जनता के नाम पर किया। वर्तमान प्रजातंत्र के युग की यह विशेषता है कि निर्णय तो कुछ राजनतिज्ञों के द्वारा लिये जाते हैं परन्तु राम जनता का रहता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के विषय में भी यह सत्य है। फलस्वरूप राष्ट्रसंघ की भांति संयुक्त राष्ट्रसंघ भी प्रधानतः सरकारों का ही संगठन है। उसे जनता से सीधा संपर्क स्थापित करने को कोई अधिकार नहीं है।
2. संयुक्त राष्ट्रसंघ का आधार वही है जो पुराने राष्ट्रसंघ का था। यह आधार है राष्ट्रीय 'संप्रभुता' की अक्षुण्णता। इसमें भी राष्ट्रों की संप्रभुता सर्वोपरि है। इस दृष्टि से संयुक्त राष्ट्रसंघ पुराने राष्ट्रसंघ की प्रेतात्मा है। यह उस अनाथ की तरह है जो इधर-उधर से भीख मांगकर अपने को धनपति समझ लेता है। अन्तर्देशीय क्षेत्र में राष्ट्रीय संप्रभुता का अर्थ है विभिन्न देशों की सरकारों की स्वेच्छा। तत्वतः यह विभिन्न देशों की पृथक तथा प्रतिस्पर्धाजनक शक्ति है। अतः राष्ट्रीय संप्रभुत का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का विरोधी है। राष्ट्रीय संप्रभुता के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ केवल, चर्चा, वाद-विवाद तथा विवादों के शांतिपूर्ण हल के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय स्थल-मात्र बना हुआ है। इसके पास स्वयं भी कोई ठोस शक्ति नहीं है, सिवा उन अधिकारों के जो सदस्य-राष्ट्रों ने उसे स्वेच्छा से प्रदान किये हैं।
3. यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन में राष्ट्रों की समानता का सिद्धान्त मान्य है तथापि, व्यवहार में, यह व्यवस्था असमानत पर आधारित है। इसका प्रमाण यह है कि इसमें बड़े राज्यों और छोटे रज्यों का अन्तर माना गया है। बड़े राज्यों को सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता दी गयी है और निषेधाधिकार प्राप्त है। इस प्रकार यथार्थ में महाशक्तियों का ही बोलबाला है। यह बात छोटे राष्ट्रों को बहुत अखरती है। एक और चार्टर में जहां लोकतांत्रिक व्यवस्था की दुहाई दी गयी है वहां दूसरी ओर महाशक्तियों की मनमानी को बनाये रखा गया है। यह संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में विद्यमान एक गंभीर विरोधाभास है।
4. सदस्यता प्रदान करने का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक बहुत बड़ उलझन है। चार्टर के अनुसार संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता उन सभी शांति-प्रेमी रज्यों के लिए खुली है जो चार्टर में दिये गये दायित्वों को पूरा करने की इच्छा और योग्यता रखते हैं। किसी राष्ट्र को गुअबन्दी तथा उनकी राजनीति ने सदस्यता के सवाल को काफी उलण्नपूर्ण बना दिया है। सुरक्षा परिषद में सोवियत संघ तथा पश्चिमी राष्ट्र अपनी स्थिति सुदृढ़ करने हेतु अपने विरोधी राज्यों के प्रवेश का विरोध करते रहे हैं। इस प्रकार विरोधी गुटों की हठधर्मिता के कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ को पूर्णतः प्रतिनिध्यात्मक संगठन बनाने में कठिनाई उत्पन्न होती रही है। जब तक संयुक्त राष्ट्रसंघ की सदस्यता विश्व के सभी देशों के लिए खुली हुई न हो तब तक संगठन विश्वव्यापी नहीं बन सकेगा।
5. संयुक्त राष्ट्रसंघ के कम प्रभावशाली होने का मुख्य कारण इस संगठन में प्रभुसत्ता का अभाव होना है। इसके सदस्य राज्यों में प्रभुसत्ता निहित है, लेकिन इसके पास नहीं है। प्रभुसत्ता के अभाव में संयुक्त राष्ट्रसंघ अपने निर्णयों को लागू नहीं कर

सकता। वह सिर्फ सदस्य-राज्यों को निर्देश भर दे सेता है, जिसे मानना या न मानना सदस्य-राज्यों की इच्छा पर निर्भर करता है। यह बात संघ के दो प्रमुख अंगों की स्थिति से स्पष्ट हो जाएगी। महासभा की शक्तियां अत्यन्त सीमित हैं। उसको केवल सिफारिशें करने का ही अधिकार प्राप्त है, जिन्हें मानना या न मानना सदस्य-राज्यों की इचछा पर निर्भर है। सुरक्षा परिषद भी किसी सदस्य-राज्य को उसकी इच्छा के विरूद्ध सशस्त्र कार्रवाई में योगदान देने के लिए विवश नहीं कर सकती। कोई भी महाशक्ति अपने निषेधाधिकार से उसे पंगु बना सकती है।

6. यद्यपि चार्टर ने एक अन्तर्राष्ट्रीय सेन का उल्लेख किया गया है और कोरिया, मिस्र और कांगों में एक प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय सेनाओं ने कार्य भी किया है, परन्तु फिर भी अभी संयुक्त राष्ट्रसंघ के पास विश्व शांति की रक्षा के लिए प्रभावशाली कार्रवाई करने के लिए अपनी कोई स्वतंत्र सेना नहीं है। अपने आदेशों का पालन कराने के लिए उसे अपने सदस्य-राज्यों की सेना पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वर्तमान परिस्थितियों में यह भी निश्चित है कि किसी बड़ी सैनिक कार्रवाई के लिए सेना बड़े और शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा ही उपलब्ध करायी जा सकती है। ऐसी स्थिति में संघ केवल छोटे राष्ट्रों के विरुद्ध ही सैनिक कार्रवाई कर सकता है और वह भी तब जबकि बड़े राष्ट्र उसके लिए सेनाएँ देने को तत्पर हो। स्वयं बड़े राष्ट्रों अथवा उनका सर्मीन प्राप्त छोटे राष्ट्रों के विरुद्ध तो किसी भी प्रकार की सैनिक कार्रवाई की ही नहीं जा सकती।

7. सुरक्षा परिषद में सभी महत्वपूर्ण निर्णयों के लिए 15 में से 9 मत चाहिए, जिनमें पांच बड़ी शक्तियों मत अवश्य सम्मिलित हों। इसका तात्पर्य यह है कि यदि एक भी शक्ति किसी निर्णय के विरुद्ध हो तो वह निर्णय लागू नहीं हो सकता। व्यवहार में, निषेधाधिकार की शक्ति का बहुत आिक प्रयोग किया गया है और इसके संघ के कार्यो में बहुत अधिक बाधा पहुंची है। इस अधिकार के दुरूपयोग ने संगठन को बदनाम कर दिया हे। बेंटविच और मार्टिन के अनुसार, ‘‘सुरक्षा परिषद की दोषपूर्ण मतदान प्रक्रिया के फलस्वरूप यह संस्था मुख्य झगड़ों को सुलझाने में उपयेगी सिद्ध नही हुई है। चार्टर ने सामूहिक सुरक्षा की अवास्तविक पद्धति स्थापित की है।'' निषेधाधिकार के अधिक प्रयोग ने सुरक्षा परिषद को अधिक प्रभावहीन बना दिया है। लैस्टर बी. पीयर्सन के अनुसार, ‘‘शीतयुद्ध के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सुरक्षा परिषद के प्रत्येक सदस्य के पास यह अधिकार हो।'' जॉन फास्टर डलेस ने इस अधिकार के प्रयोग के संबंध में बड़ी निराशा प्रकट की थी। उनके अनुसार, ‘‘इस अधिकार के दुरुपयोग के कारण संयुक्त राष्ट्र जनता की दृष्टि में गिर गया है। आज कोई भी रज्य अपना विवाद सुरक्षा परिषद में ले जाना नहीं चाहता।''

8. संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की धारा 2 के अन्तर्गत आक्रमण की जो परिभाषा दी गयी है, वह निश्चित नहीं है। जब आक्रमण की परिभाषा ही स्पष्ट नही है, तो उसे रेकने के लि उठा जानेवाले आवश्यक पग वैधानिक दृष्टि से अनिश्चित तथा व्यावहारिक दृष्टि से नि:शक्त होंगे ही। चार्टर के अनुसार ‘शक्ति का अवैधानिक प्रयोग' ही आक्रमण है किन्तु ‘शक्ति का अवैधानिक प्रयोग' क्या है, यह स्पष्ट

नहीं है और यह प्रश्न विवादास्पद बना हुआ है। अनेक आक्रामक रष्ट्र चार्टर की इस अस्पष्टता से लाभ उठाते हैं। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है, जब आत्म-सुरक्षा के नाम पर आक्रमण किया गया। दिसम्बर, 1974 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने सर्वसम्मति से आक्रमण की परिभाषा को पारित कर दिया है। इसके अनुसार एक देश के द्वारा दूसरे देश की प्रभुसत्ता, क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध सशस्त्र सेना का प्रयोग या अन्य किसी तरीके का प्रयोग, जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के अनुरूप नही है, आक्रमण माना जाएगा।

9. संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक अन्य महत्वपूर्ण कमजोरी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को अनिवार्य क्षेत्राधिकार का प्राप्त न होना है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के ढांचे के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना तो की गयी है लेकिन इस न्यायालय को अनिवार्य क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं, जिससे इस न्यायालय की स्थिति बहुत असहाय हो गयी है। जिस प्रकार एक देश के न्यायालयों को अपराधी नागरिकों के विरुद्ध कार्रवाई करने का अनिवार्य अधिकार प्राप्त होता है, लगभग उसी प्रकार का अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को प्राप्त होना चाहिए।

10. महासभा की कार्य-विधि भी दोषपूर्ण है। महासभा की कार्यावली में विषयों की संख्या काफी अधिक रहती है। कभी-कभी तो उसकी संख्या एक सौ के लगभ्लग होती है। उनके इतने विषयों पर एक सत्र में विचार करना संभव नही है। इसका परिणाम यह होता है कि महासभा की कार्यवाई सन्तोषप्रद नहीं होती। महत्त्वपूर्ण विषयों पर गंभीरता से वाद-विवाद नहीं हो पाता। यदि कोई विषय कार्यावली के अन्त में होता है या सत्र के समाप्त होने के समग्र लिया जाता है तो उस पर विचार करने के लिए अधिक समय नहीं मिलता। इसके अलावा सम्पूर्ण बैठकों में औपचारिक भाषणों के कारण अमूल्य समय नष्ट कर दिया जाता है। इस पुनरावृत्ति से लाभ कम होता है, समय की हानि अधिक। प्रक्रिया संबंधी इन त्रुटियों के कारण महासभा के सत्र गंभीरतापूर्वक नहीं हो पाते। इस कमी को दूर करने के लिए श्री डोंगस का सुझाव है, ‘‘मुझे यह आवश्यक दिखाई पड़ता है कि हमें अपनी कार्यावली के साथ कैंची का प्रयोग करना चाहिए तथा उन विषयों को काट देना चाहिए, जिनके रखने से कार्यवली की संख्या बढ़ जाती है और जिनमें किसी प्रकार के सुझाव की आशा नहीं होती।’’

11. चार्टर के दूसरे अनुच्छेद में यह घोषित किया गया है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ किसी राज्य के घरेलू क्षेत्राधिकार में हस्क्षेप नहीं करेगा। सिद्धान्ततः यह ठीक भी है किन्तु त्रुटि यह है कि घरेलू क्षेत्राधिकार को स्पष्ट नहीं किया गया है। इसके अभाव में संबंधित राज्य द्वारा इस अनुच्छेद की मनमानी व्याख्या कर संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य-क्षेत्र को सीमित कर दिया जाता हैं उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका ने रंगभेद की नीति को घरेलू मामला बनाकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्तावों का विरोध किया है। इसी तरह ऐंग्लो-ईरानी तेल-विवाद में, कोरिया-संघर्ष में घरेलू मामले के प्रश्न ने संघ की कार्रवाई में बाधा पहुंचाई थी।

12. संयुक्त राष्ट्रसंघ का उद्देश्य सामूहिक सुरक्षा की स्थापना है। इसका सिद्धान्ततः यह अर्थ है कि संघ के सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए वचनबद्ध है।

अत: जब कभी भी शांति और सुरक्षा पर संकट आएगा तो यह आशा की जाती है कि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य प्राण-पण से उसकी रोकथाम करेंगे। परन्तु इसके साथ ही चार्टर की 51वी और 52वीं धाराओं में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा सदस्य-राज्यों को प्रादेशिक या क्षेत्रीय संगठन बनाने की अनुमति दी गयी है। क्षेत्रीय संगठनों के लिए छूट इसलिए दी गयी ताकि स्थानीय तथा क्षेत्रीय विवादों का निबटारा इन संगठनों के माध्यम से हो सके। संघ का यह प्रावधान स्वयं संघ के अस्तित्व के लिए घातक रहा है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि कितने ही सैनिक गुट, जैसे नाटो, सीटो, सेंटो, वारसा-फैक्ट आदि शांति और सुरक्षा के नाम पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के बाहर स्थापित हो गये। क्षेत्रीय गुटों की प्रतिस्पर्धा विश्व सुरक्षा के लिए एक नयी समस्या बन गयी। इनसे शीतयुद्ध को प्रोत्साहन मिला और शांति की समस्या जटिलतर होती गयी। इस तरह इन सैनिक गुटों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ को निर्बल करने का ही प्रयास किया है। वास्तव में इन क्षेत्रीय सैनिक गुटों का अस्तित्व संयुक्त राष्ट्रसंघ रूपी 'शांति मंदिर' में सशस्त्र डाकुओं की तरह है। क्विंसी राइट ने ठीक ही लिखा है: ''नि:सन्देह यह कहा जा सकता है कि इन क्षेत्रीय सुरक्षा गुटों के अनियंत्रित विकास से संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के मूल उद्देश्यों की पूर्ती नहीं हो सकती।''

13. चार्टर के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शांतिपूर्ण परिवर्तनों के लिए किसी यंत्र की व्यवस्था नहीं की है। अत: संयुक्त राष्ट्रसंघ पुराने राष्ट्रसंघ के समान ही एक 'यथास्थिति' की रक्षा करनेवाली संस्था बन जाती है।

14. संयुक्त राष्ट्रसंघ अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी अपने सदस्य-राष्ट्रों द्वारा दिये गये आर्थिक अनुदान पर ही निर्भर रहता है। सदस्य-राष्ट्रों में यह मनोवृत्ति पायी जाती है कि वे संघ को उसी स्थिति में आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं जबकि वह उनकी आकांक्षाओं और राष्ट्रीय हितों के अनुरूप कार्य करता है। यहां तक कि महाशक्तियां भी जब यह अनुभव करती है कि संघ उनकी आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य नहीं कर रहा है तो वे भी उसकी आर्थिक सहायता पर रोक लगा देती है। इन परिस्थितियों में संयुक्त राष्ट्रसंघ के सम्मुख आर्थिक संकट बना रहता है। एक ओर लगातार संघ के उत्तरदायित्वों में वृद्धि होती जा रही है, परन्तु उसके अनुपात में आर्थिक स्त्रोत उनके पास नहीं है। यह भी एक प्रमुख कारण है कि संघ अपने उद्देश्यों को अर्थाभाव के कारण पूर्ण नहीं कर पाता है। सन 1983 के बार संयुक्त राष्ट्र की वित्तीय निर्बलता और अधिक उभरकर सामने आयी है। पूर्व संयुक्त राष्ट्र महासचिव जेवियर पेरेज कुरियार ने कहा था कि विश्व संस्था लगभग दिवालिया हो चुक है, इसका अतिरिक्त कोष खाली हो चुका है तथा इसके पास अपने कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। सितम्बर 1993 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के 48वें अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए महासचिव डॉ. बुतरस घाली ने स्पष्ट कहा कि संगठन पर गभीर आर्थिक संकट आ गया है और यदि तत्काल उपाय नहीं किया गया तो शीघ्र ही विह दिवालिया हो जाएगा।

15. कुछ आलोचकों ने संयुक्त राष्ट्रसंघीय व्यवस्था की कतिपय अन्य आधारों पर भी निन्दा की है। अमेरीका के भूतपूर्व विदेश सचिव फास्टर डलेस ने संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में तीन महत्वपूर्ण त्रुटियां बतलायी हैं। प्रथमतः सेन फ्रांसिसको सम्मेलन में जब चार्टर का निर्माण हो रहा था उस समय किसी को उस अणु-बम का ज्ञान नहीं था। वास्तव में यह चार्टर उस समय बना जब अणु-बम युग प्रारंभ नहीं हुआ था। अतएव चार्टर प्रयोग आने के पहले ही पुराना हो गया। द्वितीयः हिटलर को परास्त करने वाले तीन विजयी नेताओं- रूजवेल्ट स्टालिन तथा चर्चिल- ने ही इस संस्था की नींव डाली थी। उनका विश्वास था कि उनमें युद्ध के समय जो मेल रहा है वह शांति के समय भी बना रहेगा। परन्तु उनका यह अनुमान गलत साबित हुआ। तृतीयः सदस्य-राज्य विधि, न्याय और नैतिकता की ओर कम ध्यान देते हैं। लीलैण्ड एम. गुडरीच ने भी संयुक्त राष्ट्रसंघ की कुछ त्रुटियों की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक महान त्रुटि शक्ति या प्राधिकार का अभाव है। संयुक्त राष्ट्रसंघ न तो स्वतंत्रापूर्वक कानून बना सकता है, न कर वसूल कर सकता है और न शक्ति द्वारा अपने निर्णयों को कार्यान्वित करा सकता है। संयुक्त राष्ट्र की समित असफलता का दूसरा कारण वह राष्ट्रवाद के विचार को मानता है।

4.3.6. राजनीतिक कारण

संयुक्त राष्ट्रसंघ की असफलता का प्रधान कारण राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक है। कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन उसी समय सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है जबकि उसके सदस्य-राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण विद्यमान हो। किन्तु वास्तव में इस दृष्टिकोण की बहुत कमी है। विश्व के अधिकांश राज्य अब तक अपने राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से ही विचार करते हैं और अपने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए वे अन्य राष्ट्रों के साथ अन्याय करने में भी नहीं चूकते। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को सफल बनाने के लिए अर्न्राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल बनने की चेष्टा की जानी चाहिए। परन्तु दुर्भाग्यवश अपनी स्थापना के बाद से ही संयुक्त राष्ट्रसंघ पूर्व और पश्चिम कें संघर्ष का आखाड़ा बन गया। संघ की स्थापना के तुरन्त बाद ही विश्व की दो बड़ी शक्तियां-संयुक्त राज्य अमेरीका और सोवियत रूस एक-दूसरे की विरोधी हो गयीं और इन दोनों के द्वारा अपने प्रभावक्षेत्र में वृद्धि के प्रयत्न प्रारंभ कर दिये गये। इसके परस्पर विरोधी स्वार्थ के कारण एक ही दशक में संघ के भाग्य का फैसला हो गया। यदि वे दोनों राष्ट्र सहयोग की भावना से प्रेरित होकर कार्य करते तो उन्हें अवश्य सफलता मिलती। उदाहरणार्थ, 1965 में भारत-पाक युद्ध से उत्पन्न स्थिति को संभालने में संयुक्त राष्ट्रसंघ इसलिए सफल हुआ क्योंकि सुरक्षा परिषद के सदस्यों ने एक-दूसरे के साथ सहयोग किया। यह सां के इतिहास में एक असाधारण घटना थी। अभी तक संघ का जो इतिहास रहा है उसको देखकर संयुक्त राष्ट्रसंघ को विभक्त राष्ट्रसंघ ही कहा जा सकता है।

1974-78 के वर्षो में महाशक्ति के बीच तनाव शैथिल्य या 'देतांत' की स्थिति विकसित हो रही थी, इससे ऐसा लगने लगा था कि शीत युद्ध का स्थान तनाव शैथिल्य ले लेगा। इससे यह भी आशा की गयी थी कि महाशक्तियों के सहयोग से यह विश्व संगठन संसार के विभिन्न देशों के बीच शक्ति संबंधों को बनाये रखने का कार्य अधिक

अच्छे प्रकार से कर सकेगा। परन्तु 1980-81 में अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप और अन्य कुछ प्रश्नें को लेकर महाशक्तियों के तनाव की स्थिति पुन: अधिक कटुता तथा तिनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। यह संयुक्त राष्ट्र की प्रभावशीलता पर आघात है।

इस प्रकार महाशक्तियों के पारस्परिक अविश्वास, संघ एवं वैमनस्य के परिप्रेक्ष्य में संयुक्त राष्ट्रसंघ सफल हो भी कैसे सकता है? जैसा कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव ट्रिग्वे ली ने 23 सितम्बर, 1947 को ही कहा था, ''संयुक्त राष्ट्रसंघ किा वास्तविक सुदृढ़ आधार महाशक्तियों का सहयोग तथा समझौता हिल गया है। संसार के लोग तथा इसके साथ-ही-साथ अनेक सरकारें स्तब्ध, भयभीत एवं निरुत्साहित हो रही है। भय से घृणा उत्पन्न होती है तथा घृणा से संकट उत्पन्न होता है।'' 1990 के दशक में शीत युद्ध के समाप्त हो जाने के कारण संघ के प्रभावशाली ढंग से कार्य करने की संभावना बढ़ी है।

4.3.7. संयुक्त राष्ट्र की उपलब्धियाँ

इसमें संदेह नहीं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को शत-प्रतिशत सफलता नहीं मिली है और यह पूरी तरह उन आशाओं को पूरा नहीं कर सका है जिसकी कल्पना संघ के निर्माताओं ने की थी। हमें इस बात को भी स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं करन चाहिए कि प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्रसंघ असफल ही रहा है और युद्ध के कारणों का निवारण, जो उसका प्रधान उद्देश्य है, अभी तक नहीं कर सका है। विश्व में अनेकानेक समस्याएँ बनी हुई हैं जिनको लेकर किसी भी क्षण युद्ध हो सकता है। परन्तु केवल इसी आधार पर यह मान बैठना कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का भविष्य अंधकारमय है और पुराने राष्ट्रसंघ की भांति संयुक्त राष्ट्रसंघ भी विश्व शांति को बनाये रखने में असफल ही रहेगा, उचित नहीं है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ संगठन, कार्य-प्रणाली और प्रभावशलता की दृष्टि से राष्ट्र संघ की तुलना में बहुत अधिक सुधरे हुए रूप में है, यद्यपि इसकी कतिपय असफलताएं भी हैं किन्तु इन कतिपय असफलताओं के साथ-साथ महत्वपूर्ण सफलताएँ भी प्राप्त की गयी हैं। एक व्यक्ति के जीवन में 46 वर्ष की अवधि भले ही बहुत होती है लेकिन सम्पूर्ण मानवता से संबद्ध किसी विश्व संस्था के इतिहास में यह अवधि निश्चित रूप से बहुत छोटी ही है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का उद्देश्य महान है और महान उद्देश्यों की प्राप्ति में अनेक बाधाएँ आती हैं। निरन्तर प्रयत्न करने से ही सफलता मिल सकती है। यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ वह सब कुछ जो हम चाहते थे, नहीं कर सका है, तो इसका एकमात्र कारण यही है कि यह एक मानवीय संगठन है और इस प्रकार के मानवीय संगठन से किसी चमत्कार की आशा नहीं की जा सकती। इन सीमाओं के बावजूद संयुक्त राष्ट्रसंघ को कुछ उल्लेखनीय सफलताएँ भी मिली हैं जिन्हें निम्नांकित क्रम में सूचिबद्ध किया जा सकता है:

4.3.7.1. राजनीतिक विवादों का समाधान:

संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रधान कार्य शांति तथा सुरक्षा है। इस क्षेत्र में यद्यपि इसको पूर्ण सफलता नहीं मिल है परन्तु आंशिक सफलता का श्रेय अवश्य है। सर्वत्र राजनीतिक वातावरण शीतयुद्ध का प्रयत्न एक सीमा तक प्रशंसनीय हे। उदाहरणत: इसने ईरान के मामले को सुलझाने में सफलता हासिल की। 19 जनवरी, 1946 को ईरान ने सुरक्षा परिषद को सूचित किया कि सोवियत रूस की सेनाएं उसके क्षेत्र में घुस आयी हैं। रूस के

विरोध के बावजूद यह प्रश्न सुरक्षा परिषद की कार्यसूची में रखा गया और सुरक्षा परिषद में इस प्रश्न पर विचार से जो प्रबल जनमत जागृत हुआ, उसके कारण सोवियत रूस को ईरान से अपनी सेनाएँ वापस बुलानी पड़ीं।

1947 में इण्डोनेशिया की स्वतन्त्रता के प्रश्न को लेकर इण्डोनेशिया की सरकार और इस क्षेत्र की पुरानी साम्राज्यवादी सरकार नीदरलैंड के बीच युद्ध शुरू हुआ तो युद्ध का अन्त कराने में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने बड़ी सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया और संघ के हस्तक्षेप के कारण युद्ध बन्द हो गया और राजनीतिक वार्ता प्रारंभ हुई। बाद में पश्चिम इरियन को लेकर इन दोनों में पुनः तनाव बढ़ा तो संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव ने अपने प्रयास से इस समस्या के समाधान में सहायता पहुंचाई। यद्यपि संघ कश्मीर की समस्या का समाान नहीं कर सका है लेकिन इस विवाद ने संघ की सफलताओं को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। शुरू में कश्मीर के प्रश्न को लेकर भारत-पाकिस्तान के बीच जो युद्ध हुआ उसको बन्द कराने का श्रेय संयुक्त राष्ट्रसंघ को ही है। इसके बाद लगभग 18 वर्ष तक कश्मीर में युद्ध-विराम रेखा पर पहरा देकर दोनों देशों के बीच युद्ध छिड़ने से रोका हैं अन्त में 1965 में जब दोनों देशों में सशस्त्र युद्ध शुरू हो गया तो उस युद्ध को बंद कराने में संयुक्त राष्ट्रसंघ को बड़ी सफलता मिली। पमर और परकिन्स युद्ध-विराम व्यवस्था को एक सफल प्रयास मानते हैं। पंडित नेहरू ने भी संयुक्त राष्ट्र के कर्मचारी वर्ग की प्रशंसा की थी। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने पैलेस्टाइन में अच्छा कार्य किया।

यह ठीक है कि यह यहूदी अरब समस्या को हल करने में असमर्थी रहा परन्तु फिर भी इसने इजराइल और अरब राष्ट्रों कू बीच युद्ध-विराम कराकर तनाव को कम कराने का प्रयास किया था। महासभा के तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष एच.बी. ईवाट ने कहा था: ‘‘इस विषय के गुण-दोष के संबंध में कुछ भी मतभेद हो, इसमें संदेह नहीं कि फिलीस्तीन के प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र ने एक सच्चा और स्थायी सुझाव रखा था तथा मध्यपूर्व में युद्ध रोका था। संयुक्त राष्ट्रसंघ की अनुपस्थिति में एक साधारण युद्ध छिड़ने की संभावना थी।’’ सन 1960 में संघ ने दक्षिण कोरिया को उत्तरी कोरिया के आक्रमण से बचाया, बर्लिन के घेरे के प्रश्न को सुलझाया, स्वेज के मामले में ब्रिटेन, फ्रांस और इजराइल के आक्रमण से मिस्त्र की रक्षा की तथा युद्ध को रोकने में सफलता हासिल की। इराक, सीरिया तथा लेबनान से विदेशी सेनाएं हटाने में सहायता की एवं साइप्रस को लेकर तुर्की और यूनान के बीच युद्ध छिड़ने से रोका।

बाल्कन प्रदेश के लिए संयुक्त राष्ट्र की विशेष समिति ने यूनान की सहायता करने का प्रयास किया। उसके विरोधी पड़ोसी उसको कष्ट दे रहे थे। इस समिति ने यूनान, लबानिया, बलगेरिया और युगोस्लाविया के बीच वार्तालाप कराया। 1962 में क्यूबा को लेकर सोविय संघ और संयुक्त राज्य अमेरीका में युद्ध छिड़ सकता था। इस संकट को समाप्त करने में भी संघ ने सराहनीय कार्य किया। अफगानिस्तान में सोवियत सैनिकों की वापसी के बारे में जेनेवा समझौता (1988), इरान-ईराक युद्ध-विराम समझौता (अगस्त 1988), नामबिया की स्वतन्त्रता संबंधी समझौता (1988), अंगोला से क्यूबाई सैनिकों की वावसी के लिए पर्यवेक्षकों का दल तैनात करना, इराक के अवैध कब्जे से सैनिक कार्रवाई कराकर कुवैत को मुक्त कराना (फरवरी 1991) आदि हाल में संयुक्त राष्ट्र की महत्वपूण उपलब्धियां कही जा सकती हैं। अप्रैल 1992 के प्रारंभ में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बुतरस

घाली ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की ताजा कार्य-सूची की चर्चा की। उन्होंने यूगोस्लाविया, कम्बोडिया, अल सल्वाडोर, पश्चिमी सहमा, इराक, लीबिया और म्यांमार में शांति स्थापित करने के लिए किए जा रहे संयुक्त राष्ट्र प्रयासों की चर्चा की- ये वे क्षेत्र हैं जहां अशांति या संघर्ष विद्यमान है।

इन उदाहरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र ने कई ऐसे संकटों को रोका है जिसके कारण मनुष्य मात्र को बड़ी हानि होती। यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ नहीं होता तो अनेक राजनीतिक झगड़ों को लेकर युद्ध हो जाता और विश्व शांति खतरे में पड़ जाती। पंडित नेहरू ने लिखा था: ''संयुक्त राष्ट्रसंघ ने कई बार हमारे उत्पन्न होने वाले संकटों को युद्ध में परिणत होने से बचाया है। इसके बिना हम आधुनिक विश्व की कल्पना नहीं कर सकते।'' संयुक्त राष्ट्रसंघ अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षो को रोकने में 'सेफ्टी वाल्व' का काम भी करता है। जब भी कोई संकटकालीन स्थिति संघ के समक्ष आती है उससे सम्बद्ध राष्ट्रसंघ के रंगमंच से बोलकर अपना गुस्सा शान्त कर लेते हैं। संघ भी कोई कामचलाऊ उपाय निकालकर तत्काल के लिए युद्ध की सम्भवना को टाल देता है। जब क बार यह संभावना कम हो जाती है तो बाद में उसके शांतिपूर्ण समाधान के रास्ते खुल जाते हैं। इस तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ का यह साधन अंतर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने और विश्वशांति को प्रोत्साहन देने में अधिक सहायक होता है।

श्रीमति विजयालक्ष्मी पंडित ने ठीक ही कहा था: ''यदि हम समस्याओं का अंतिम हल नहीं निकाल सकते तो हमें इससे हताश नहीं हो जाना चाहिए। इतिहास एक अविराम साधन है। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संयुक्त राष्ट्र के समक्ष सदैव कुछ नयी और पुरानी समस्याएँ रहेंगी। हमें यह विश्वास रखना चाहिए कि समझौता करने का हमेशा एक-न-एक अवसर अवश्य रहता है। आपस में मतभेदों को कम करने का अवसर भी रहता है। यह कार्य विचारविनियम द्वारा ही हो सकता है तथा यह कार्य-विधि अत्यन्त उपयोगी है'' वी.के. कृष्णमेनन ने भी इस बात पर बल दिया था। उनके अनुसार: ''जब हम कठिन-से-कठिन समस्या पर सामूहिक रूप से विचार करते हैं तो उस समस्या के बहुत से नये पहलू हमारे सामने आते हैं।'' इससे समस्या के समाधान में काफी सहायता मिलती है।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ राष्ट्रों को बातचीत में व्यस्त रखकर युद्ध की संभावना को टालने में सहायता प्रदान करता है। अत: हम डॉ. इवाट के शब्दों में कह सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र की सुलता का मूल्यांकन करते समय यह पूछना काफी नहीं है कि इसने क्या कार्य किया है। हमें समझने का यत्न करना चाहिए कि यदि संयुक्त राष्ट्र नहीं होता तो कैसी स्थिति होती।

4.3.7.2. साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का उन्मूलन:

संयुक्त राष्ट्र ने गैर-स्वशासित देश के मनुष्यों की भलाई के लिए भी प्रयत्न किये है। 24 दिसम्बर, 1960 को महासभा ने प्रस्ताव द्वारा उपनिवेशवाद को पूर्ण रूप से समाप्त करने की आवश्यकता की घोषणा की। इसने घोषित किया कि मनुष्यों को दूसरे देशों के अधीन रखना और शोषण करना मानव के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करना है। विश्व-संस्था के रंगमंच से इस तरह की घोष्णा का अपने आप में महत्व है। इस घोषणा को कार्यान्वित करने के लिए औपनिवेशिक राज्यों से अनुरोध किया कि वे अपने अधीन

क्षेत्रों को स्वतन्त्रता दें। संयुक्त राष्ट्र के प्रयत्नों के फलस्वरूप अनेक परतन्त्र राज्य स्वतन्त्र हो चुके हैं इण्डोनेशिया, मोरक्को, ट्यूनिशिया तथा अल्जीरिया को स्वतन्त्र कराने में संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रयास काफी प्रशंसनीय रहे हैं। शुरू में इन देशों की स्वतंत्रता के प्रश्न को टालने का प्रयत्न किया गया, किन्तु अन्त में उपनिवेशवादी राज्य को विवश होना पड़ा और उन्हें स्वतंत्रता देनी पड़ी। विश्व का लोकमत निरन्तर साम्राज्यवादियों का विरोध कर रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ इस प्रकार के कार्यो के लिए अत्यधिक उपयोगी रंगमंच है। संघ की संरक्षण-पद्धति के अन्तर्गत भी लगभग सभी उपनिवेश ब तक स्वतंत्र हो चुके हैं। ये सारी बातें संघ की महत्वपूर्ण सफलताएं मानी जायेंगी।

4.3.7.3. गैर-राजनीतिक क्षेत्रों में सफलता:

राजनीतिक क्षेत्र से संयुक्त राष्ट्रसां की सफलता विवादास्पद हो सकती है, किन्तु इस बात पर दो मत नहीं हो सकते कि गैर-राजनैतिक क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्रसां को बहुत अधिक महत्वपूर्ण सफलताएं प्राप्त हुई हैं। मानवतावादी, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में इसकी उपलब्ध्यिां प्रशंसनीय हैं। इस दृष्टि से इसकी कई विशिष्ट एजेंसियां उल्लेखनीय है। यूनेस्कों ने शिक्षा, विज्ञान तथा साहित्य के विकास में योग दिया है। अज्ञानता को दूर करने के लिए इसने विभिन्न सरकारों को परामर्श दिया है और शिक्षा व विज्ञान-संबंधी सामग्री के आदान-प्रदान में सहायता की है। निरक्षरता उन्मूलन, नवीन ज्ञान के विश्वव्यापी प्रचार तथा सांस्कृतिक कार्यो में इसका योगदान काफी प्रशंसनीय है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा नागरिकों के स्वास्थ्य के स्तर को सुधारने और महामारियों पर नियंत्रण स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसने बड़े पैमाने पर पेंसिलिन, डी. डी. टी. आदि दवाओं के वितरण से बमारियों के प्रतिरोध में बड़ी सहायता पहुंचायी है तथा महामारियों का प्रसार रोका है। इसके खाद्य संगठन ने अन्न का उत्पादन बढ़ाकर दुर्भिक्षों का तथा भुखमरी का निवारण किया है। इसके श्रम संगठन ने श्रमिकों की दशा को बहुत उन्नत किया है। इसी प्रकार बाल कल्याण कोष के द्वारा बच्चों तथा जच्चाओं के स्वास्थ्य के विकास के लिए दवाइयां, खाना, बीमारियों के नियंत्रण तथा प्रसूतिगृहों की स्थापना में सहयोग दिया गया है। यह प्राकृतिक दुर्घटनाओं के समय बच्चों की विशेष रूप से रक्षा करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव-कल्याण के क्षेत्र में निश्चित लाभ भी पहुंचाया है। यह कहना कतई दोषपूर्ण नहीं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का यह काय सामूहिक सुरक्षा प्रणाली से किसी भी अवस्था में कम महत्वपूर्ण नही है।

4.3.7.4. व्यापक संपर्क एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का निर्माण करने का मंच:

संयुक्त राष्ट्रसंघ विचारों के अदान-प्रदान पूर्वाग्रह की गुथियों को सुलझाने, एक-दूसरे के दृष्टिकोण को अच्छी प्रकार समझने तथा विश्व में व्यापक संपर्क एवं शांति की जलवायु का निर्माण करने का मंच है। राष्ट्र चाहे लौह-यवनिका के पीछे हो चाहे ताम्र, रजत या स्वर्ण यवनिका के पीछे-सभी एक सभा मंच पर एकत्रित होते हैं, वार्ताएं करते हैं, एक-दूसरे की समस्याओं को समझने तथा उनके सहानुभूतिपूर्ण हल ढूंढ निकालने का प्रयास करते हैं तथा सहयोग का वातावरण निर्मित करते हैं। इसके द्वारा स्थापित, सक्रिय संपर्क की परिपाटी ने विश्व शांति को बल दिया है। विभाजित विश्व में इस संस्था की महत्ता और बढ़ गयी। आज यह आवश्यक है कि कोई ऐसी संस्था हो जिसमें सोवियत

रूस अमेरीकी विचारधारा से तथा अमेरीका सोवियत विचारधारा से अवगत हो। जब दोनों एक-दूसरे की विचारधाराओं से अवगत होंगे तभी विवादास्पद विषयों का हल ढूंढ जा सकेगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ एक ऐसा ही प्लेटफार्म है जहां महान राष्ट्र बैठकर अपनी समस्याओं पर विचार कर सकेगा।

सर रोजर मैकिन्स ने लिखा है: ''हम संयुक्त राष्ट्र का समर्थन इसलिए नहीं करते कि यह पूर्ण यंत्र है, परन्तु इसलिए करते हैं कि इसने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और झगड़ों को सुलझाने के लिए प्रभावशाली साधन उत्पन्न किये हैं। महान शक्तियों का सहयोग न मिलने के कारण इसके कुछ कार्य विफल रह सकते हैं। परन्तु इसकी उपयोगिता यह है कि यहां पर सदैव पूर्व व पश्चिम के लोग एक साथ बैठकर वाद-विवाद कर सकते हैं। यदि किन्ही अन्य ढंगों द्वारा झगड़ों का शांतिपूर्ण निबटारा न हो सके या विफलता प्राप्त हो तो संयुक्त राष्ट्र की शरण ली जा सकती है।''

4.3.7.5. संयुक्त राष्ट्रसंघ एक नियंत्रक शक्ति के रूप में:

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने एक नियंत्रक शक्ति के रूप में भी कार्य किया है। इसका दृष्टिकोण सदैव शांति की ओर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में इसने एक संतुलन शक्ति का कार्य किया है। जब कभी भी कोई विवाद इसके समक्ष आया है। इसने शांतिपूर्वक सुलझाने का कार्य किया है। इसी के चलते अनेक अवसरों पर स्थिति बिगड़ने नहीं पायी है। इसके अस्तित्व के चलते ही बड़े-बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रो के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं। इस तरह युद्ध का भय कम हुआ है और छोटे राष्ट्रों की शक्ति में वृद्धि हुई है।

इसके अतिरिक्त महासभा को पर्याप्त अधिकार होने के कारण छोटे-छोटे सदस्य राष्ट्रों को अपनी शक्ति का पूर्ण उपयोग करने में अवसर प्राप्त हुए हैं और उन्होंने अपने लाभार्थ इन अवसरों का पूरा उपयोग किया है। यह एक शुभ लक्षण है कि पहली बार छोटे-छोटे राष्ट्रों के प्रयासों को निष्फल कर सकना संभव हो सकता है।

4.3.7.6. अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का आदार एवं पंजीकरण:

अन्तर्राष्ट्रीय आचरण को पुष्ट एवं संयत बनाने में संयुक्त राष्ट्रसंघ का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय विधि को संरक्षण तथा स्पष्टीकरण प्राप्त हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय विधि को पंजीकृत करने का कार्य संघ द्वारा दोशों के मतभेद दूर करते हैं अथवा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना करते समय अन्तर्राष्ट्रीय विधि का हमेशा पालन किया गया है। इसका हर संभव प्रयास यह रहता है कि संसार के विभिन्न राष्ट्रों में इन कानूनों के प्रति आदर-भाव पैदा किया जाए और कहीं भी, किसी भी स्थिति में उनका उल्लंघन न किया जाये। यह सत्य है कि विश्व जीवन के स्तर पर विधि के शासन की कल्पना अभी नहीं हो पायी है परन्तु इस दिशा में निष्क्रिय रहने से तो कच्छप गति से आगे बढ़ना ही अच्छा है।

4.3.7.7. संघ के शिक्षावर्द्धक कार्य:

संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक शिक्षावर्द्धक कार्य यह है कि इसकी अनेक प्रवर समितियां संसार के लोगों के जीवन से संबंधित सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर शोध, अन्वेषण, निरीक्षण आदि कार्य करती है। जब इन विषयों पर

रिपोर्ट प्रकाशित होती है तो उनमें बहुमूल्य सूचनाएँ होती हैं। इस प्रकार सामान्य जनता का अनुभव तथा ज्ञान तो बढ़ता ही है, इसके साथ ही, उसे यह भी विश्वास हो जाता है कि जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आधार को सुदृढ़ करके ही अच्छी मानवता का निर्माण हो सकता है। इस दृष्टि से ये प्रकाशन लाभदायक है।

4.3.7.8. नैतिक दबाव का साधनः

संयुक्त राष्ट्रसंघ यद्यपि सामूहिक सुरक्षा की दृष्टि से एक व्यवस्थित और एकीकृत प्रणाली का उपयुक्त विकास नहीं कर पाया है, किन्तु फिर भी यह लोकमत का रंगमंच और नैतिक दबाव का क शक्तिशाली साधन है। इसके निर्णय विश्व के नैतिक प्रभाव को दर्शाते हैं। इसकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और सदस्य-संख्या के कारण इसके प्रस्तावों और सिफारिशों को बल मिलता है। यदि कोई राष्ट्र इसके निर्णय का ठुकरा देता है तो विश्व के सब राष्ट्रों की नजर मे वह नीचे गिर जाता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ से कम से कम यह तो सिंभव हो सका है कि यहां आक्रामक राष्ट्रों के इरादों का बहुत आसान से भंडाफोड़ हो जाता है और विश्व जनमत उनसे पूर्ण रूप से अवगत हो जाता है। साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी शक्तियों के बर्बर कृत्यों तथा क्रूरतापूर्ण अत्याचारों की चर्चा जब यहां की जाती है तो उसका प्रचार क्षणभर में संपूण संसार में हो जाता है। सभी देशों पर इसका प्रभाव पड़ता है। जनमत के भय से आक्रामक राज्य को विश्व-संस्था के समक्ष अपनी नीतियों की व्याख्या करने तथा उनको सार्थकता प्रमाणित करने का प्रयास करना पड़ता है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्रसंघ आक्रामक राष्ट्रों पर अपना नैतिक प्रभाव व दबाव डालकर उन्हें अच्छे रास्ते पर आने के लिए बाध्य करता है। इस प्रकार का नैतिक दबाव बहुधा सैनिक दबाव से भी अधिक प्रभावशली साबित हुआ हैै। जॉन फॉस्टर डलेस के अनुसार, ‘‘इसका कारण यह है कि कोई भी राष्ट यह नहं चाहता कि महासभा नैतिकता के आधार पर उसके कार्यो की निन्दा करे।’’ संघ के नैतिक दबाव के कारण ही सावियत संघ ने ईरान से सेनाएँ हटायी थीं। तथा ब्रिटेन और फ्रांस ने मिस्र के स्वेज नहर क्षेत्र से अपनी सेनाएं हटा ली थीं। इसी तरह के दबाव के परिणामस्वरूप ही इण्डोनेशिया को स्वतंत्रता मिली।

4.3.8. उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तर्राष्ट्र्य शांति और सुरक्षा के रक्षक तथा सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के अग्रदूत- इन दोनों ही रूपों में संयुक्त राष्ट्रसंघ पुराने राष्ट्रसंघ की अपेक्षा अधिक सफल सिद्ध हुआ है। अपनी दुर्बलताओं और विफलताओं के बावजूद यह मानवीय बुद्धि द्वारा परिकल्पित अब तक का श्रेष्ठतम अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है। इसमें संदेह नहीं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को एक आदर्श संस्था नहीं माना जा सकता। यह न केवल एक विश्व-सरकार के रूप में कार्य करने की स्थिति से बहुत दूर है वरन एक अंतर्राष्ट्रीय पंच और मध्यस्थ के रूप में भी अत्यन्त शक्तिहीन है। इसकी स्थापना के पिछले पांच दशकों में विश्व नंगमंच पर जो कुछ हुआ है उसको देखते हुए अनेक क्षेत्रों में इस संस्था की सार्थकता पर प्रश्न किये जा रहे हैं। कुछ निराशावादियों ने तो यहां तक कह डाला है कि विश्व संस्था यदि मर नहीं चुकी है तो मरणोन्मुख हो रही है।

उनके अनुसार जिन आदर्शो को लेकर तथा जिन आशाओं के साथ इसकी स्थापना की गयी थी उनमें बहुत-कुछ आज धूमिल पड़ चुके हैं तथा कुछ छूट चुके हैं। आज

कोई जबर्दस्त आशावादी भी यह नहीं सोचता कि संयुक्त राष्ट्रसंघ किसी कल्पित विश्व संघ या महासंघ का आदि रूप बन सकता है। परन्तु इसकी कमियां मानव-समाज की कमियां हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि कोई भी संस्था अपने सदस्यों की क्षमता के अनुरूप ही काम कर सकती है। सदस्यों की क्षमता ही उसकी शक्ति और सीमा होती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ भी इसका अपवाद नहीं है। यह कोई रामबाण नहीं है और न कोई जादू की छड़ी। ''यह तो एक मंच है या सांविधानिक ढांचा है जिसमें सरकारों के बीच वार्तालाप होता है।'' यह राजनीतिज्ञों के लिए एक नया शस्त्र है, सरकारों के लिए एक नया साधन है और राजनय की एक नयी प्रविधि है। यह सहयोग का एक साधन या एक अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी समिति के समान है। आधुनिक जगह की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस तरह के साधन अथवा मंच की सार्थकता निर्विवाद है। संप्रभुता के कट्टर समर्थक राज्यों के लिए भी एक विश्व-मंच अनिवार्यतः चाहिए ही। और नहीं तो वहां अपने मन का गुब्बार निकालने का अवसर मिलता है। इससे भ कुछ शांति मिलती है.... समस्या के कुछ सूत्र उलझते हैं तो कुछ सुलझते भी हैं। इस दृष्टि से संयुक्त राष्ट्रसंघ की सार्थकता आज भी बनी हुई है।

4.3.9. पाठ का सार/सारांश

7 जून, 1963 को संघ की बजट समिति में भाषण करते हुए भारतीय प्रतिनिधि बी. एल. चक्रवर्ती ने कहा भी था कि हम संघ से रहित विश्व की कल्पना नही कर सकते। इसके बिना हम संघष, युद्ध और विध्वंस की पुरानी स्थिति में लौट जायेंगे। संघ की उपयोगिता इस बात में निहित है कि सम्मेलन-पटल को युद्धभूमि का स्थनापन्न बनाने की मनुष्य की सर्वाधिक आशा का प्रतिनिधित्व करता है। जैसा क्लॉड ने लिखा है: ''अपनी सभी कमियों एवु त्रुटियों के बावजूद संयुक्त राष्ट्रसंघ प्रथम कोटि की एक महती उपलब्धि है। यह सभ्यता का प्रतीक है। यह ऊँची आशाओं तथा प्रगतिशील आकांक्षाओं का पुंज है।'' वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्रसंघ का स्वरूप बदल रहा है। अब अमेरीका और रूस में शीतयुद्ध समाप्त हो चुका है। दोनों महाशक्तियों में एक नवीन सहयोग देखने को मिलता है। इसके अलावा अब अमेरीका और उसके मित्र देशों का विश्व संस्था में इस प्रकार का अधिपत्य नहीं रहा है, जैसा पूर्व में था। अब विकासशील देश अपनी संख्या का लाभ उठाकर अपनी आवाज बुलंद कर सकते हैं। यहां तक कि विकासशील देश संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्णयों को प्रभावित करने की स्थिति में आ गये हैं। इसके कुछ कारण है, यथा- अरब देशों की तेल शक्ति का उदय, आर्थिक संकट ग्रसित पश्चिमी देशों की आर्थिक सहायता के शिकंजे का कमजोर पड़ना तथा विकासशील देशों पर निर्भरता में कमी आना तथा तीसरी दुनिया का उदय संयुक्त राष्ट्रसंघ में विकासशील देशों का बहुमत स्थापित हो जाने से अब संघ विश्व जनमत का वास्तविक प्रतीक बन गया है।

संघ में शक्ति के विकेन्द्रीकरण के माध्यम से उन परिवर्तनों का समावेश हो रहा है जिसके कारण संघ वास्तविक दृष्टि से एक प्रभावपूर्ण विश्व संस्था का स्वरूप ले सकेगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन वं चरित्र में यह शुभ परिवर्तन है जिसका सभी ओर से स्वागत किया जाना चाहिए। वास्तव में संयुक्त राष्ट्रसंघ एक पद्धति, एक संस्था तथा एक अवसर प्रस्तुत करता है। संघ की सफलता आधुनिक सभ्यता के भविष्य के साथ

जुड़ी हुई है। 'दिनमान' ने संघ की सार्थकता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है: ''निश्चय की संयुक्त राष्ट्रसंघ की अपनी कुछ त्रुटियां हैं, किन्तु क्या विश्व में शांति बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ से कोई अच्छ व्यवस्था हो सकती है? इन परिस्थितियों में हमें देशों के आपसी झगड़े तय करवाने और दुनिया को तसरी बड़ी लड़ाई से बचाने के लिए ही संयुक्त राष्ट्र पर ही भरोसा करना होगा, लेकिन इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र अपने-आपको प्रभावशाली सिद्ध कर सके, इसके लिए उसे और अधिकार देने होंगे तथा उसकी शक्ति बढ़ानी होगी।''

4.3.10. अभ्यास/बोध प्रनन

1. लोकतान्त्रीकरण और भारत क भूमिका जोर दीजिए
2. संयुक्त राष्ट्रसंघ की विफलताआं के बारे में बताए

अति लघुतरात्मक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ की लोकतांत्रिकरण में भूमिका का वर्णन करें।

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र संघ लोकतांत्रिकरण और भारत की भूमिका पर प्रकाश डालें।

प्र. 3) लोकतांत्रिकरण में भारत के योगदान पर टिप्पणी कीजिए।

प्र. 4) संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा लोकतांत्रिकरण पर किये गये प्रयासों का वर्णन कीजिए।

प्र. 5) भारत में लोकतांत्रिकरण में क्या भूमिका निभाई है। टिप्पणी करें।

लघुतरात्मक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ की लोकतांत्रिकरण का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा लोकतांत्रिकरण किये जाने के कारण बताये।

प्र. 3) संयुक्त राष्ट्र संघ लोकतांत्रिकरण से आप क्या समझते हैं।

प्र. 4) लोकतांत्रिकरण में भारत की भूमिका पर प्रकाश डालें।

प्र. 5) संयुक्त राष्ट्र संघ लोकतांत्रिकरण से क्या अभिप्राया है।

बहु वैकाल्पिक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ ने लोकतांत्रिकरण किस उद्देश्य से किया।

1) मानव अधिकार को बचाने के लिए
2) मौलिक स्वतन्त्रता को बचाने के लिए
3) सम्मान से जीने के लिए
4) उपरोक्त सभी

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र संघ में लोकतांत्रिकरण के तत्व है।

1) विचार रखने की स्वतन्त्रता
2) शक्तियों का विमापन
3) स्वतंत्र न्यायपालिक

4) उपरोक्त सभी।

प्र. 3) संयुक्त राष्ट्र संघ ने उपनिवेशवाद को पूर्ण से समाप्त करने की घोषण कब की?

1) 1950 2) 1980 3) 1960 4) 1970

प्र. 4) औपचारिक संगठन का उदाहरण नही है?

1) विद्यालय 2) हॉस्पिटल 3) दबाव समूह 4) पुलिस

प्र. 5) लोक निगम की विशेषताएँ नही हैं?

1) स्वायतता 2) संवैधानिकता 3) अतिरिक्त दबाव 4) सरकार के प्रति जवाबदेही

4.3.11. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी.सी.करनेगल: अण्डोमैन्ट. फॉर इंटरनेशनल पीस 1948
2. जेम्स, अलान: दा पोलिटिस, ऑफ पीस किपिंग, लोनडोंग चारों एण्ड बीन्डस 1969
3. खान रहामधुल्ला: कश्मीर एण्ड दा यूनाइटेड नेशनल न्यू दिल्ली विकास 1969
4. लाल अर्थुर- मार्डन इंटरनेशनल नीगोटिशेशन न्यूयार्क, कालबीमा, यूनिवर्सिटी प्रैस- 1966
5. लिनोर्ड: एल.लर. इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन- न्यूयार्क मैक ग्रैव हिल 1951
6. ली.ट्रयगव इन वा कोप ऑफ पीस न्यूयार्क, मैकमीलन 1951
7. मैन्डर लीनउन ए. फांउडेशन ऑफ मॉडर्न वर्ल्ड सोसयटी कैलिफोर्निया रटैण्डफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस 1948.
8. मार्टिन ए. कोलेक्टीव सिक्योरिटी, ए प्रोग्रेस, रिपोर्ट पेरिस यूनेस्को 1952
9. मिलर डेविड एच.दी ड्राफटिंग ऑफ दी केग्वनअन्ट न्यूयार्क पी.पी. पूतनाम 1928.
10. हाल.डी. मैन्डटेस, डीपैन्डनसिप एण्ड, ट्रस्टीशिप, वॉशिगंटन

इकाई-4: संयुक्त राष्ट्र: उपलब्धियाँ एवं आलोचनातमक मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा:

4.4.1. उद्देश्य कथन
4.4.2. प्रस्तावना
4.4.2.1. सोवियत संघ-ईरान विवाद
4.4.2.2. यूनाना विवाद
4.4.2.3. बर्लिन विवाद
4.4.2.4. कोर्फू चैनल विवाद
4.4.2.5. कोरिया विवाद
4.4.2.6. कश्मीर विवाद
4.4.2.7. फिलीस्तीन समस्या
4.4.2.8. दक्षिण अफ्रीका में रंग-भेद संबंधी समस्या
4.4.2.9. इण्डोनेशिय संकट
4.4.2.10. कांगो विवाद
4.4.2.11. यमन विवाद
4.4.2.12. साइप्रस समस्या
4.4.2.13. स्वेज नहर समस्या
4.4.2.14. चेकोस्लोवाकिया विवाद
4.4.2.15. सोमालिया विवाद
4.4.2.16. कम्बोडिया समस्या
4.4.2.17. अफगानिस्तान समस्या
4.4.2.18. खान्डा समस्या
4.4.3. निष्कर्ष
4.4.4. संयुक्त राष्ट्र की गैर-राजनीतिक उपलब्धियों का उल्लेख
4.4.4.1. श्रमिकों के कल्याण के लिए कार्य
4.4.4.2. विश्व खाद्य कार्यक्रम
4.4.4.3. बाल-कल्याण
4.4.4.4. औद्योगिक व कृषि क्षेत्र में पिछड़े देशों की सहायता
4.4.4.5. निरस्त्रीकरण/शस्त्र नियंत्रण
4.4.4.6. अन्तरिक्ष का मानवता की भलाई के लिए प्रयोग
4.4.4.7. अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास
4.4.4.8. मानव अधिकारों को मान्यता
4.4.4.9. वैज्ञानिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक कार्य
4.4.4.10. साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का विरोध
4.4.4.11. बिमारियों का उन्मुलन
4.4.5. संयुक्त राष्ट्र की कमजोरियों पर प्रकाश डालिये
4.4.5.1. लक्ष्यों में असफल

4.4.5.2. अपने फैसलों को लागू करवाने में असफल

4.4.6. पाठ का सार/सारांश

4.4.7. अभ्यास/बोध प्रश्न

4.4.7.1. संयुक्त राष्ट्र संघ की उपलब्धि पर विस्तृत नोट लिखिए।

4.4.7.2. संयुक्त राष्ट्र संघ की कमजोरियों पर प्रकाश डालिये।

4.4.8. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.4.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने की बा आप:

- संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्घियों के बारे में जानकारी।

4.4.2. प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना 24 अक्तुबर, 1945 में की गयी थी। उसकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की स्थापना करना था। इसी के साथ संयुक्त राष्ट्र का उद्देश्य अन्तर्देशिय युद्धों को रोकना तथा विभिन्न देशों के मध्य मेत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना करना भी है। इतना ही नहीं, इसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ाना भी है। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना से लेकर अब तक इसके सामने अनेक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय विवाद आए हैं, जिनको हल करने में संयुक्त राष्ट्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नि:सन्देह संयुक्त राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में पूरी तरह से सफल नहीं हुआ है, फिर भी संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलताओं की अनदेशी नही की जा सकती। संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धियों को दो भागों में बांटा जा सकता है:

(1) राजनीतिक उपलब्धियां और (2) गैर-राजनीतिक उपलब्धियां।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की राजनीतिक उपलब्धियों के रूप में उन विवादों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनको हल करने का कार्य इसने किया है। ऐसे कुछ विवाद हैं:-

4.4.2.1. **सोवियत संघ-ईरान विवाद:-** संयुक्त राष्ट्र के सामने आने वाला प्रथम विवाद था- रूस-ईरान विवाद। दूसरे विश्व-युद्ध के बार सोवियत संघ ने ईरान के अजरबैजान प्रान्त से अपनी सेना को नहीं हटाया था। 19 जनवरी, 1946 को ईरान ने सुरक्षा परिषद में इसकी शिकायत की। सुरक्षा परिषद में पश्चिमी गुट के रज्यों ने ईरान का समर्थन किया। इसके प्रत्युत्तर में सोवियत प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद से अपील की कि यूनान में उपस्थित ब्रिटिश सैनिकों को निकालने के लिए कार्रवाई की जए। सोवियत संघ ने इस विवाद में अपनी निषेधाधिकार शक्ति का पहली बार प्रयोग किया। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने सोवियत संघ के निर्देश दिया कि वह 6 मई, 1947 तक ईरान से अपनी सेनाएं हटा ले। इसके बाद मामला दोनों देशों की प्रत्यक्ष बातचीत द्वारा हल कर लिया गया। 21 मई, 1946 को दोनों देशों ने घोषणा की कि सोवियत सेनाएं 9 मई को ईरान खाली कर चुकी हैं। ईरान संकट को हल करने में सुरक्षा परिषद में हुई बहस ने सोवियत संघ के विरुद्ध प्रबल जनमत जागृत कर दिया था और उसने अपनी सेनएं ईरान की भूमि से हटा लेना ही उचित समझा।

4.4.2.2. यूनाना विवादः– 3 जनवरी, 1946 को सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद से शिकायत की कि दूसरे विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद भी ब्रिटिश सेनाएं उसकी भूमि पर जमी हुई हैं और उसके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रही हैं। सुरक्षा परिषद में बातचीत के दौरान यूनानी प्रतिनिधि ने कहा कि यूनानी जनता अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सैनिकों की उपस्थिति को अनिवार्य समझती है। दिसम्बर, 1946 में यूनान ने संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद से यह शिकायत की कि पड़ौसी साम्चवादी देश छापामारों को सहायता दे रहे हैं और यूनान में तनाव पैदा कर रहे हैं। सुरक्षा परिषद द्वारा नियुक्त आयोग ने मई, 1947 में इस शिकायत की पुष्टि की। सुरक्षा परिषद ने आगे जांच-पड़ताल करने का प्रयत्न किया, तो सोवियत सां ने निषेधाधिकार का प्रयोग कर दिया। इसके बाद महा सभा ने जांच-पड़ताल के लिए एक आयोग की नियुक्ति की, जिससे अल्बानिया, बुल्गारिया और यूगोस्लोविकिया ने अपनी सीमाओं में प्रवेश की अनुमति नहीं दी। अन्ततः निम्नलिखित तीन कारणों से यूनानी समस्या का समाधान हो गया।

1. महा सभा द्वारा नियुक्त आयोग की उपस्थिति में साम्यवादी राष्ट्र छापामारों को पूरी सहायता नही दे सके।
2. टीटो-स्टालिन विवाद के कारण छापामारों को यूगोस्लोवाकिया से सहायता मिलनी बन्द हो गयी।
3. संयुक्त राष्ट्र के निरीक्षण में अमेरिका द्वारा युनान को आर्थिक एवं सैनिक सहायता दी गयी।

4.4.2.3. बर्लिन विवादः– दूसरे विश्व-युद्ध में जर्मनी के हथियार डाल देने के बाद 1945 में पोट्सडम समझौते के अन्तर्गत बर्लिन नगर को विभाजित करके इसे सोवियत संघ तथा मित्र देशों- अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस में बांट दिया गया था। पीट्सडाम समझौते की एक अन्य शर्त जर्मनी की आर्थिक एकता को बनाए रखना था। इस शर्त का उल्लंघन करते हुए पश्चिमी राज्यों ने जर्मनी में नई मुद्रा प्रचलित कर दी। इससे नाराज होकर सोवियत संघ ने 1 मार्च, 1948 को बर्लिन के जल व थल मार्गो की नाकाबंदी कर दी। अमेरिका, फ्रांस तथा ब्रिटेन द्वारा सुरक्षा परिषद में इस मामले को उठाया गया, किन्तु सोवियत संघ के द्वारा निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा परिषद कोई भी निर्णय नहीं ले पायी। लेकिन इन चारों राज्यों को विचार-विमर्श के लिए सुरक्षा परिषद का मंच मिल गया। इनके प्रतिनिधियों के मध्य जो बातचीत हुई, उससे समस्या का हल हो गया। 4 मई, 1949 को सुरक्षा परिषद को यह सूचना दे दी गयी कि सोवियत संघ, अमेरिका, फ्रांस तथा ब्रिटेन के बच बर्लिन समस्या पर समझौता हो गया है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र ने एक मंच प्रदान करके बर्लिन समस्या के हल में पर्दे के पीछे रहकर भूमिका निभाई।

1. **कोर्फू चैनल विवादः**– ब्रिटेन के दो समुद्री युद्ध पोतों को अल्बानिया द्वारा कोर्फू चैनल में बिछायी गयी बारूद सुरंगों से क्षति हुई। इस पर ब्रिटेन ने यह मामला हर्जाना पाने के लिए सुरक्षा परिषद में उठाया। ब्रिटेन ने अल्बानिया पर

आरोप लगाया कि उसने मित्र देशों द्वारा समुद्री रास्तों को साफ कर देने के बाद यह सुरंग बिछायी है, जब कि अल्बानियाका यह तर्क था कि ब्रिटेन के युद्धपोतों ने अलबानिया की सरकार की स्वीकृति के बिना उसके जल प्रदेश में प्रवेश किया था। सुरक्षा परिषद ने दोनों देशा के तर्को को सुनने के बाद मामला अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंप दिया। सुरक्षा परिषद द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को पहली बार कोई विवाद समाधान के लिए सौंपा गया था। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने दोनों के तर्क सुनने के बाद फैसला दिया कि ब्रिटेन के युद्ध पातों की क्षतिपूर्ति अलबानिया द्वारा की जानी चाहिए। इस न्यायालय ने हर्जाने के रूप में 84.397 पौण्ड की राशि (लगभग 24 लाख डॉलर) निश्चित की। यद्यपि इस फैसले का पालन अलबानिया ने नहीं किया, फिर भी कोर्फू चैनल महत्वपूर्ण विवाद है, क्योंकि यह सुरक्षा परिष्द द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंपा जाने वाला प्रथम विवाद था।

2. **कोरिया विवादः**- कोरिया विवाद संयुक्त राष्ट्र के सामने आने वाला जटिल विवाद था। इस विवाद के हल के लिए संयुक्त राष्ट्र को प्रथम बार सैनिक कार्रवाई का सहारा लेना पड़ा था। जून, 1950 में उत्तरी कोरिया ने दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण कर दिया। सुरक्षा परिषद ने उत्तरी कोरिया को आक्रमणकारी घोषित कर दिया। सुरक्षा परिषद ने जुलाई, 1950 में 16 देशों की संयुक्त सेना एकत्रित करके, उत्तरी कोरिया के विरुद्ध सैनिक कार्यवाई की। उत्तर कोरिया के समर्थन में चीन भी युद्ध में कूद पड़ा। क ओर संयुक्त राष्ट्र की सैनिक कार्यवाई जारी रही और दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र ने शांतिपूण समझौते के प्रयास जारी रखे। अंततः जुलाई 1951 में दोनों पक्षों में समझौता हो गया। संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों से कोरिया युद्ध विश्व-युद्ध बनने से रह गया। वास्तव में अमेरीका की प्रबल सैनिक शक्ति के बल पर ही संयुक्त राष्ट्र कोरिया युद्ध में सफल रहा था।
3. **कश्मीर विवादः**- संयुक्त राष्ट्र के अंतर्गत आने वाला अगला महत्वपूर्ण विवाद कश्मीर विवाद था। 15 अगस्त, 1947 को भारत व पाकिस्तान औपनिवेशिक दासता से मुत हुए। इनको स्वतन्त्र करने पूर्व ब्रिटिश सरकार ने व्यवस्था की देशी रियासतें अपनी इच्छानुसार भारत या पाकिस्तान में शामिल हो सकती हैं या फिर स्वतंत्र बनी रह सकती है। ऐसे में जम्मू-कश्मीर रियासत के शासक राजा हरि सिंह ने स्वतंत्र रहने का फैसला किया, किन्तु पाकिस्तान की इच्छा शुरू से ही इस रियासत को अपने में मिलाने की थी, अतः 22 अक्तूबर, 1947 को उसने उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के कबाइलियों द्वारा कश्मीर पर आक्रमण करवा दिया। इन परिस्थितियों में जम्मू-कश्मीर के राजा हरि सिंह ने इस रियासत के भारत में विलय करने का फैसला लिया। इसलिए भारत की थल सेना व वायु सेना ने जवाबी कार्रवाई करके पाकिस्तान आक्रमणकारियों को खदेड़ना शुरू कर दिया। भारतीय सेनाओं द्वारा जम्मू-कश्मीर का बहुत बड़ा भाग मुक्त करवा लिया। 1 जुलाई, 1948 को भारत ने सुरक्षा परिषद में

शिकायत की कि पाकिस्तान के इस आक्रमण से अन्तर्राष्ट्रीय शांति को संकट पैदा हो गया है।

भारत के प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू मामले को संयुक्त राष्ट्र में ले गये। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद ने दोनों पक्षों के तर्क सुने। 17 फरवरी, 1948 को सुरक्षा परिषद ने इस विवाद के हल के लिए एक तीन-सदस्य आयोग का गठन किया। इस आयोग को मौके पर जाकर स्थिति का अध्ययन करके युद्ध-विराम कराने का दायित्व सौंपा गया। यह आयोग जुलाई, 1949 में कश्मीर आया तथा मध्यस्थता करके युद्ध-विराम करवाने में सफल भी हो गया। किन्तु इस आयोग ने जनमत-संग्रह करवाने के बारे में कोई फैसला नहीं लिया। इसलिए कश्मीर समस्या अधर में लटक गयी। तत्पश्चात दिसंबर, 1949 व फरवरी, 1950 में सुरक्षा परिषद ने कनाडियन जनरल मेकनांटन तथा आस्ट्रेलिया के न्यायाधीश डिक्शन को कश्मीर समाधान का हल करने के लिए नियुक्त किया। मेकनाटन का तर्क था कि जनमत-संग्रह से पूर्व कश्मीर को पूर्णतया सेनाओं से मुक्स किया जाना चाहिए, किन्तु भारत द्वारा इस तर्क को इस आधार पर स्वीकार नहीं किया गया कि इसमें पाकिस्तानी आक्रमण का उल्लेख नहीं है। नयायाधीश डिक्शन का प्रस्ताव था कि कश्मीर घाटी को छोड़कर शेष जगह यथा-स्थिति बनायी रखी जाए अर्थात जिन प्रदेशों पर जिस देश का कब्जा है, उसे वैसे ही रखा जाए तथा कश्मीर घाट का फैसला जनमत-संग्रह से कर लिया जाए, किन्तु इस प्रस्ताव को भारत व पाकिस्तान दोनों ने ठुकरा दिया।

कश्मीर समस्या को लेकर भारत व पाकिस्तान में 1965 व 1971 में दो युद्ध हो चुके हैं। 1971 युद्ध के बाद सम्पन्न शिमला समझौते में यह कहा गया कि कश्मीर समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने की बजाय द्विपक्षीय बातचीत से हल किया जाएगा। भारत शिमला समझोते के तहत कश्मीर समस्या को आपस बातचीत से हल करना चाहता है, लेकिन पाकिस्तान समय-समय पर इस मामले को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाने से नहीं चूकता। 1999 में पकिस्तान के कारगिल क्षेत्र में अपने सैनिक तथा आतंकवादियों की घुसपैठ करवा कर भारतीय क्षेत्रों पर अपना अधिकार करने का असफल प्रयास किया, जिसके कारण दोनों देशों के संबंध अत्यधिक खराब हो गये।

4. **फिलीस्तीन समस्या:**- प्रथम विश्व-युद्ध के बाद अस्तित्व में आए राष्ट्रसंघ द्वारा, शासनादेश पद्धति के, तहत यह क्षेत्र ब्रिटेन को संरक्षित प्रदेश के रूप में दिया गया था। फरवरी, 1947 में ब्रिटेन ने यह समस्या महा सभा के सामने रखी। महा सभा द्वारा नियुक्त विशेष समिति ने अगस्त, 1947 में सिफारिश की कि फिलीस्तीन को दो भागों में बांट दिया जाए और इसके एक भाग में अरब राज्य की तथा दूसरे भाग में यहूदी राज्य की स्थापना की जाए। यद्यपि महा सभा की यह सिफारिश स्वीकार कर ली गयी। लेकिन फिलीस्तीन के विभाजन के प्रश्न पर अरबों और यहूदियों में संघर्ष शुरू हो गया। दोनों पक्षा के मध्य प्रभावी युद्ध-विराम के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा किए गए प्रयास असफल हो गए। इसी बीच 14 मई, 1948 को ब्रिटेन ने फिलीस्तीन से अपना

शासन हटा लिया। ऐसे में यहूदियों ने फिलीस्तीन में इजरायल राज्य की स्थापना की घोषणा कर दी। इस पर इराक, लेबनान, जोर्डन आदि अरब देशों ने फिलस्तीन पर आक्रमण कर दिया, किन्तु अरब राज्य इजराइल के प्रत्याक्रमण को नहीं झेल पए। इसके बाद 11 जून, 1948 को संयुक्त राष्ट्र के प्रतिधि बर्नाडोट के प्रयत्नों से दोनों पक्षों में चार सप्ताह के लिए युद्ध-विराम हो गया। किन्तु तब भी उपद्रव जारी रहे।

17 दिसम्बर 1948 को बर्नाडोट को गोली से उड़ा दिया गया। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद ने डॉ. राल्फ जे. बुंच को कार्यवाहक मध्यस्थ नियुक्त किया। 29 दिसम्बर को पुनः तीसरी बार युद्ध-विराम करवा दिया गया। इसके बाद महा सभा ने संयुक्त राष्ट्र समझौता आयोग नियुक्त किया। इस आयोग द्वारा मामले पर गहन विचार-विमश्र किया गया तथा इसका समाधान भी किया गया जिसके तहत इजरायल व पड़ौसी देशों में सीमा से संबंधित संधियां हुई। 1956 में स्वेज नहर के विवाद पर मिस्त्र और इजरायल में पुनः युद्ध शुरू हो गया, किन्तु शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों से शांति स्थापित हो गयी। 1967 व 1973 में अरब देशों तथा इजरायल के मध्य भीषण युद्ध हुए, किन्तु दोनों बार संयुक्त राष्ट्र के प्रयत्नों से अस्थाय शांति स्थापित की गयी। 1993 में इजरायल और फिलीस्तीन नेता यासर अराफात के बीच संधि सम्पन्न हुई। इस संधि ने इस क्षेत्र में शांति की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया, फिर भी, इजरायल व फिलीस्तीन के मध्य मनमुटाव जारी रहा।

5. **दक्षिण अफ्रीका में रंग-भेद संबंधी समस्याः**- लंबे समय से दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार रंग-भेद की नीति अपनाती हा रही है। वहां सरकार द्वारा काले लोगों के साथ भेदभाव किया जाता था। रंग-भेद की नीति के चलते गोरी सरकार के प्रति काले लोगों का आक्रोश बढ़ता गया। 1946 में भारत ने 17 दिसम्बर 1948 को बर्नाडोट को गोली से उड़ा दिया गया। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद ने डॉ. राल्फ जे. बुंच को कार्यवाहक मध्यस्थ नियुक्त किया। 29 दिसम्बर को पुनः तीसरी बार युद्ध-विराम करवा दिया गया। इसके बाद महा सभा ने संयुक्त राष्ट्र समझौता आयोग नियुक्त किया। इस आयोग द्वारा मामले पर गहन विचार-विमश्र किया गया तथा इसका समाधान भी किया गया जिसके तहत इजरायल व पड़ौसी देशों में सीमा से संबंधित संधियां हुई। 1956 में स्वेज नहर के विवाद पर मिस्त्र और इजरायल में पुनः युद्ध शुरू हो गया, किन्तु शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों से शांति स्थापित हो गयी। 1967 व 1973 में अरब देशों तथा इजरायल के मध्य भीषण युद्ध हुए, किन्तु दोनों बार संयुक्त राष्ट्र के प्रयत्नों से अस्थाय शांति स्थापित की गयी। 1993 में इजरायल और फिलीस्तीन नेता यासर अराफात के बीच संधि सम्पन्न हुई। इस संधि ने इस क्षेत्र में शांति की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया, फिर भी, इजरायल व फिलीस्तीन के मध्य मनमुटाव जारी रहा। महा सभा के सामने यह प्रश्न रखा। इसके तीन वर्ष बाद 1949 में पुनः महा सभा में यह प्रश्न उठाया गया। जैसे-जैसे महा सभा में एशिया व अफ्रीका के

नए स्वतंत्र देशों की संख्या बढ़ने लगी, वैसे-वैसे दक्षिण अफ्रका को संयुक्त राष्ट्र से निकालने की मांग जोर पकड़ने लगी। इस संबंध में सुरक्षा परिषद में आया प्रस्ताव अमेरिका, ब्रिटेन, व फ्रांस द्वारा निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण पारित नहीं हो पाया। दिसम्बर, 1977 में संयुक्त राष्ट्र ने दक्षिण अफ्रीका पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने का फैसला कियां समय व्यतीत होता चला गया, अन्ततः दक्षिण अफ्रीका ने 1991 में संयुक्त राष्ट्र के मंच से रंग-भेद की नीति को समाप्त करने की घोषणा की। दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार के इस फैसले का अनुमोदन जनता ने मार्चा, 1992 में जनमत संग्रह द्वारा किया, इसके बाद दक्षिण अफ्रीका में नए युग का प्रादुर्भाव हुआ और नेलसन मण्डेला के नंतृत्व में सरकार का गठन किया गया। इस प्रकार से दक्षिण अफ्रीका में जारी रंग-ीद की समस्या का हल हो गया, जिसमें संयुक्त राष्ट्र ने सराहनीय भूमिका निभायी।

6. **इण्डोनेशिय संकटः**- दूसरे विश्वयुद्ध से पहले इंडोनिशिया पर हालैण्ड का कब्जा था, किन्तु इस युद्ध के दौरान इंडोनेशिया पर जापान ने अधिकार कर लिया था। दूसरे विश्व-युद्ध में इटली, जर्मनी व जापान की संयुक्त रूप से हार हुई। जापान की हार के बाद इंडोनिशिया के राष्ट्रवादियों ने अपने यहां स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर दी। जिसके कारण हालैण्ड व इंडोनिशिया में युद्ध छिड़ गया। यह मामला सुरक्षा परिषद में ले जाया गया। इस विवाद के समाान के लिए सुरक्षा परिषद द्वारा एक सद्भाव समिति का गठन किया गया। इस समिति के प्रयासों से अगस्त, 1947 में दोनों पक्षों के बीच जारी युद्ध समाप्त हो गया तथा स्थायी संधि के लिए वार्ता शुरू हो गयी, लेकिन दिसम्बर, 1948 में हालैण्ड ने पुनः इंडोनिशिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और इंडोनेशिया के राष्ट्रपति डॉ. सुकर्ण एवं अन्य प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद ने इस कार्रवाई का विरोध करते हुए हालैण्ड से कहा कि इंडोनेशिया में सम्प्रभुता-सम्पन्न संघात्मक गणराज्य की स्थापना की जाए, जिसे डच सरकार 1 जुलाई, 1949 तक सम्प्राुता हस्तान्तरिक कर दे। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सद्भव समिति को इंडोनिशिया आयोग में परिवर्तित कर दिया गया। गहर विचार-विमर्श के बाद हालैण्ड से अपनी सेनाओं को वापस बुला लिया और यह घोषणा की 30 दिसम्बर, 1949 तक इंडोनेशिया गणराज्य को सत्ता हस्तान्तरित कर दी जाएगी। 28 दिसम्बर, 1949 का इंडोनेशिया को एक सम्प्रभु गणराज्य मान लिया गया और इसी दिन उसे संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता भी प्रदान कर दी गयी।

7. **कांगो विवादः**- कांगो विवाद संयुक्त राष्ट्र के सामने एक विकट समस्या के रूप में आया। 1960 में कांगों की सरकार ने संयुक्त राष्ट्र से प्रार्थना की, जिसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र सेना ने कांगो तथा बेल्जियम के मय होने वाले संघर्ष को खत्म कर दिया। इसके बाद भी कांगो में गृह-युद्ध की स्थिति बद से बद्तर होती गयी। संयुक्त राष्ट्र ने एक तरफ सैनिक उपाय द्वारा कांगो के विघटन को रोका और दूसरी तरफ समझौतावादी नाति अपनायी। सितम्बर,

1962 में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव डांग हेमरशोल्ड संघर्षरत नेताओं से बातचीत करने के लिए कांगो पहुंचे, किन्तु रास्ते में वायुयान दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गयी। नव-नियुक्त महासचिव ऊ-थंट ने इस दिशा में प्रयत्न जारी रखे। अन्ततः विरोधी प्रान्त कटंगा ने घुटने टेक दिए और जनवरी, 1963 में कांगो में शांति स्थापित हुई। संयुक्त राष्ट्र का शान्ति स्थापना का कार्य कांगो के एकीकरण के साथ खत्म हो गया। इस प्रका कांगो समस्या का समाधान हो गया।

8. **यमन विवादः**– 19 दिसंबर, 1962 को यमन के तत्कालिक शासक इमाम अहमद की अचानक मृतयु हो गयी, जिसके बाद यमन की क्रांतिकारी परिषद ने राजतंत्र को समाप्त करके वहां गणराज्य की स्थापना कद दी। दूसरी ओर राजतंत्रवादियों को अपने पक्ष में करके शहजादा हसन ने सऊद अरब के जिद्दा नामक स्थान पर यमन की निर्वासित सरकार की स्थापना कर डाली। इसके बाद दोनों सरकारों में संघर्ष छिड़ गया और दोनों सरकारें एक-दूसरे को समाप्त करने के लिए कूटनीतिक और सामरिक नीतियों का प्रयोग करने लगी। अक्तूबर समाप्त होते-होते राजतंत्रवादियों और गणराज्यवादियों के मध्य भीषण संघर्ष शुरू हो गया। सउदी अरब और जोर्डन ने राजतंत्रवादियों की सहायता की, तो मिस्र ने गणतंत्रवादियों कीं इस गृह-युद्ध को समाप्त करने तथा फैलने से रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने हस्तक्षेप किया। 1963 में संयुक्त राष्ट्र की तरफ से राल्फ बुंच ने दोनों पक्षों को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि वे अपने-अपने सैनिकों को बुला लें और इस समस्या का कोई स्थायी तथा शांतिपूर्ण हल खोजें इसके बाद दिन-प्रतिदिन स्थिति बदलती गयी। संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों के फलस्वरूप धीरे-धीरे बाह्य शक्तियों ने यमन से अपनी सेनाओं को हटा लिया। इस प्रकार यमन में शांति स्थापित हो गयी।

9. **साइप्रस समस्याः**– 13 अगस्त, 1960 को भूमध्य सागर स्थित साइप्रस ब्रिटिश चुंगल से मुक्त होकर एक गणराज्य बना। साइप्रस के नव-निर्मित संविधान द्वारा यूनानियों और तुर्कों के मध्य तालमेल एवं शांति कायम रखने की व्यवस्था की गयी। स्वतन्त्रता मिलने के कुछ ही समय बाद साइप्रस के राष्ट्रपति मकारियोस ने संविधान में संशोधन का ऐसा प्रस्ताव रखा, जिससे दोनों जातियों में राजनीतिक संघर्ष और गृह-युद्ध शुरू हो गया। इस समस्या पर यूनान, तुर्की और साइप्रस के मध्य ब्रिटेन में शांति सम्मेलन शुरू हुआ। इसी दौरान ब्रिटेन ने साइप्रस में नाटो सेनाओं को भेजने की सोची। ऐसे में राष्ट्रपति मकारयोस ने दिसम्बर, 1963 में मामला सुरक्षा परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया तथा संयुक्त राष्ट्र से संयुक्त पर्यवेक्षक भेजने और स्थिति को संभालने की मांग की। लंबे विचार-विमर्श के बाद मार्च, 1964 में साइप्रस में शांति स्थापना के लिए संयुक्त राष्ट्र ने शांति सेना भेजने का फेसला किया। जल्दी ही अन्तर्राष्ट्रीय सेना साइप्रस पहुंच गयी। इस सेना ने वहां कानून और व्यवस्था स्थापित रखने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कीं इसके बाद वहां इस सेना क इहरने की

अवधि बढ़ायी जाती रही, जिसके, परिणामस्वरूप साइप्रस में शांति की स्थापना हो गयी।

10. **स्वेज नहर समस्या:–** जुलाई, 1956 को मिस्र द्वारा स्वेज नहर का राष्ट्रीकरण अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए बड़ी चुनौती बन गया। 1888 में हुए स्वेज नहर-संबंी कुस्तुनतुनिया समझौते का उल्लंघन होता देख फ्रांस व ब्रिटेन ने इजरायल के साथ मिलकर 29 अक्तूबर, 1956 को मिस्र पर आक्रमण कर दिया। संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद इस विवाद पर कोई कार्रवाई इसलिए नहीं कर सकती थी, क्योंकि ब्रिटेन व फ्रांस अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकते थे। 1 नवम्बर, 1956 को महा सभा की आपातकालन बैठक बुलायी गयी, जिसमें प्रस्ताव पारित करके आक्रमणकारी सेनाओं से शीघ्र वापस हटने की अपील की गयी। 4 नवम्बर को महा सभा एक अन्य प्रस्ताव पारित करे संयुक्त राष्ट्र के महासचिव से आपातकालीन सेना की योजना प्रस्तुत करने के लिए कहा। अभी युद्ध चल ही रहा था कि 5 नवम्बर, 1956 को अपने तीसरे प्रस्ताव में महा सभा ने आपातकालीन सेना का गठन कर दिया। संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों को छोड़ कर शेष सदस्य-राज्यों के सेनिकों के इसमें शामिल करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। 5 नवंबर को सोवियत संघ ने धमकी दी कि यदि शीघ्र युद्ध बंद नहीं किया गया, तो वह मिस्र की सहायता के लिए इस युद्ध में शामिल हो जाएगा। एक तरफ संयुक्त राष्ट्र का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था और दूसरी तरफ आक्रमणकारियों को मिस्र से अपनी सेनाएं वापस बुलानी पड़ीं।

11. **चेकोस्लोवाकिया विवाद:–** 21 अगस्त, 1968 को सोवियत संघ के नेतृत्व में वारसा पैक्ट के सदस्य साम्यवादी देशों ने चेकोस्लोवाकिया में सेनिक कार्रवाई आरम्भ कर दी। वस्तुत: यह एक सम्प्रभु देश के विरुद्ध आक्रामक कार्रवाई थी। अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी देशों ने इस कार्रवाई की तीव्र आलोचना की और इस विवाद को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भी उठाया गया। सुरक्षा परिषद के सात सदस्यों की तरफ से एक प्रस्ताव रखा गया, जिसमें सोवियत संघ तथा वारसा पैक्ट वाले के देशों की कार्रवाई की आलोचना करते हुए मांग की गयी कि सोवियत संघ तथा वारसा पैक्ट वाले देशों की सेनाएं शीघ्र येकोस्लोवाकिया से हट जाएं। कई कारणों के चलते यह प्रस्ताव व्यर्थ सिद्ध हुआ, क्योंकि खुद यकोस्लोवाकिया की सरकार ने इस प्रस्ताव का सर्मीन न करके, उल्टा विरेध किये इसके बाद सितम्बर में संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में इस विवाद को दुबारा उठाने का प्रयत्न किया गया, लेकिन इस बार भी इसका कोई हल नहीं निकला। इसका कारण यह था कि येकोस्लोवाकिया संकट के संबंध में संयुक्त राष्ट्र ने एक मूकदर्शक की भूमिका अदा करना ही ठीक समझा।

12. **सोमालिया विवाद:–** 1991 में सोमालिया में गृह-युद्ध शुरू हो गया। इसके साथ-साथ वहां अकाल भी पड़ गया, जिसके कारण सोमाजिया समस्या एक बड़ी समस्या बन गयी। संयुक्त राष्ट्र ने अकाल से पीड़ित इस राज्य को

सहायता पहुंचाने के उद्देश्य से 'ऑप्रेशन रेस्टोर होप' शुरू किया और सोमालिया में अपने सैनिकों को भी तैनात किया। अन्ततः न केवल सोमालिया की जनता को अकाल से राहत मिली, बल्कि प्रतिद्वन्द्वी गुटों पर भी अंकुश लगा। धीरे-धीरे हालात सुारने लगे। आज सोमालिया संकट उतना भीषण नही है, जितना पहले था।

13. **कम्बोडिया समस्याः-** कम्बोडिया के राजकुमार नरोत्तम सिंहानुक को सत्ता से हटाने के बाद कम्बोडिया में माहौल इतना खराब हो गया कि वहां गृह-युद्ध जैसी स्थिति पैदा हो गयी। संयुक्त राष्ट्र द्वारा कम्बोडिया में शांति स्थापना करने के उद्देश्य से संघर्षरत सभी गुटों को एक मंच पर लाने की दिशा में अनेक प्रयास किए गए, जिनके कारण 23 अक्तूबर, 1991 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में कम्बोडिया के संघर्षरत गुटों के मध्य शांति स्थापना की दिशा में एक समझौता हुआ। अन्ततः मई, 1993 में कम्बोडिया में संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव हुए और राजकुमार नरोत्तम सिंहानुक दुबारा राज्याध्यक्ष बने। इस प्रकार इस समस्या का भी हल हो गया।
14. **अफगानिस्तान समस्याः-** अुगानिस्तान में लम्बे समय से अशान्ति व अराजकता का वातावरण बना हुआ था। सोवियत संघ की सेनाओं की वापसी के बाद भी वहां शांति की स्थापना नहीं हो सकी, क्योंकि वहा लगातार लड़ाई चल रही थी। तालिबान सेनाओं के काबुल पर कब्जा करने के बाद रब्बानी की सेनाओं तथा तालिबान सेनाओं में भीषण संघर्ष हुआ, जिसने अफगानिस्तान को खण्डहर बना दिया। संयुक्त राष्ट्र ने समस्त पक्षों से संयम से काम लेने की अपील की। तालिबान शासकों ने मार्च, 2001 में अफगानिस्तान स्थित बौद्ध प्रतिमाओं को भी नष्ट कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप धार्मिक उन्माद ने जन्म लिया। 11 सितम्बर, 2001 को न्यूयाकै में हुए आतंकवादी हमले के बाद अमेरिका ने अफगानिस्तान में लगाग दो महीने से अधिक समय तक सैनिक कार्रवाई की, जिसके कारण तालिबान शासन का अन्त हो गया। दिसम्बर, 2001 में अफगानिस्तान में संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में अन्तरिम सरकार के अध्यक्ष के रूप में हामिद करजई ने 22 दिसम्बर, 2001 को सत्ता की बागडोर संभाली। इसके बाद वहां स्थिति सामान्य होने लगी।
15. **खान्डा समस्याः-** अफ्रीकी राज्य खण्डा में गृह-युद्ध चल रहा था। संयुक्त राष्ट्र ने खाण्डा में गृह-युद्ध रोकने के प्रयास किए। 24 जून, 1994 को संयुक्त राष्ट्र ने यहां अपने शांति सैनिकों को भेजा, जिन्होंने दोनों संघर्षरत पक्षों में समझौता कराने की दिशा में कार्य किया। यह उसके प्रयत्नों का ही परिणाम है कि खाण्डा में स्थिति सामान्य हो गयी।

4.4.3. निष्कर्ष

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद अनेक विवाद इसके सामने आए हैं, जिनका इसने समाधान ही नहीं किया, बल्कि अनेक बार युद्धों को भी होने से रोका। इसने यूनान विवाद, कश्मीर विवाद, अरब-इजजायल विवाद व कांगों को हल करने में योगदान दिया है। इसने सीरिया, लेबनान, बर्मा, ईरान आदि से विदेशी सेनाओं को हटवाया। इसने ऐसे

विवादों को भी सुलझाया, जो तीसरे विश्व-युद्ध को जन्म दे सकते थे; जैसे- इराक-ईरान युद्ध, नामीबिया व क्यूबा संकट। संयुक्त राष्ट्र ने अनेक अवसरों पर समझौते भी कराएं नि:सन्देह संयुक्त राष्ट्र ने युद्धों की विभीषिका से मानवता की रक्षा की है। राल्फ बुंच के अनुसार, ''संयुक्त राष्ट्र की विशेषता यह है कि यह राष्ट्रों को बातचीत में व्यस्त रखता है। वे जितन अधिक देर तक बातचत करते रहें, उतना ही अचछा है, क्योंकि अतने समय तक युद्ध टल जाता है। इस दृष्टिकोण से राजनीतिक और कूटनीतिक विवादों को सुलझाने में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।'' यदि यह कुछ विवादों को हल करने में सफल नहीं रहा, तो शक्ति-राजनीति और सदसय-राज्यों द्वारा अपेक्षित सहयोग न दिए जाने के कारण ही ऐसा हुआ।

4.4.4. संयुक्त राष्ट्र की गैर-राजनीतिक उपलब्धियों का उल्लेख

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्तूबर, 1945 को हुई। संयुक्त राष्ट्र के निर्माता इस तथ्य से भलि-भांति परिचित थे कि विश्व में शांति एवं मैत्रीपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के विकास के लिए आर्थिक व सामाजिक न्याय होना आवश्यक है। विश्व के 2/3 लोग एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के अलप विकसित देशों में रहते हैं। यह जनसंख्या भूख, कुपोषण गरीबी व बेराजगरी की शिकार है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद-55(ए) में उल्लेख किया गया है कि यह (संयुक्त राष्ट्र) लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने, पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने तथा आर्थिक व सामाजिक विकास की परिस्थितियां पैदा करने के लिए कार्य करेगी। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्गत अनेक आयोग व अभिकरणों की स्थापना की गयी है, जो आर्थिक व सामाजिक समानता कायम करने के उद्देश्य से अनेक देशों के गरीब लोगों की सहायता कर रहे हैं। इन अभिकरणों में प्रमुख हैं- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ आदि। संयुक्त राष्ट्र द्वारा आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में अनेक कार्य किए गए हैं, जैसे-

4.4.4.1. श्रमिकों के कल्याण के लिए कार्य:- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने श्रमिकों की भलाई के लिए अनेक कार्य किए हैं; जैसे- श्रमिकों के जीवन-स्तर को सुधारना, उनके स्वास्थ्य की रक्षा करना, आर्थिक व सामाजिक सुरक्षा के लिए कदम उठाना, कार्य के घंटे, न्यूनतम वेतन आदि तय करना। इतना ह नहीं, इसने विभिन्न राज्य सरकारों को समय-समय पर अनेक उपयोगी सुझाव ही नहीं दिए, बल्कि उनको लागू करवाने में भी भूमिका निभायी है।

4.4.4.2. विश्व खाद्य कार्यक्रम:- संयुक्त राष्ट्र ने विभिन्न देशों की जनता को भूख व कुपोषण की समस्याओं से मुक्ति दिलाने के लिए अनेक कार्य किए हैं। इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा खाद्य व कृषि संगठन के अन्तर्गत विश्व खाद्य कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के तहत कृषि के अतिरक्त, उत्पादन व अन्य सेवाओं को इकट्ठा करके पिछड़े राज्यों के आर्थिक विकास के लिए उपलबध कराने का कार्य किया गया है। इसी तरह अतिरिक्त खाद्य सामग्री को बाढ़, भूकम्प, सूखा, युद्ध एवं अन्य संकटों के समय परेशान जनता तक पहुंचाय जाता है। विश्व खाद्य कार्यक्रम के अन्तर्गत समय-समय पर अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं; जैसे- 1984 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अफ्रीका

की संकटग्रस्त अर्थव्यवस्था और अकाल की स्थिति पर प्रस्ताव स्वीकार किया गया था। 1993 में विश्व खाद्य संगठन द्वारा 25 हजार टन खाद्य सामग्री सोमालिया में पहुंचायी गयी। इतना ही नहीं, संयुक्त राष्ट्र द्वारा पिछड़े व भूख से पीड़ित देशों को समय-समय पर विश्व खाद्य कार्यक्रम के तहत बाल कल्याण सामग्री पहुंचायी गयी।

4.4.4.3. **बाल-कल्याण:-** संयुक्त राष्ट्र बाल कोष 1946 से बच्चों के कल्याण के लिए निरन्तर कार्य कर रहा हे। इसने बच्चों के लिए जीवन-रक्षक टीके, आहार व शिक्षा आदि उपलब्ध करवाने के अपने दायित्वों को निभाया है। इसने विभिन्न देशों के बच्चों की भलाई के लिए अनेक कार्य किए हैं; जैसे- भारत सहित अफ्रीका व एशिया के देशों के गरीब बच्चों के लिए यूनीसेफ का योगदान सराहनीय रहा है। एक अनुमान के अनुसार यूनिसेफ 558 लाख से भी अधिक बच्चों तथा उनकी माताओं को हर वर्ष सहायता प्रदान कर रहा है। 3 से 10 मई, 2002 को अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर में बच्चों की समस्याओं व उनसे जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र का प्रथम सम्मेलन आयोजित किया गया। नि:सन्देह यूनिसेफ द्वारा बच्चों के कल्याण के लिए अनेक कार्य किए गए हैं।

4.4.4.4. **औद्योगिक व कृषि क्षेत्र में पिछड़े देशों की सहायता:-** संयुक्त राष्ट्र द्वारा औद्योगिक व कृषि के क्षेत्र में पिछड़े विभिनन देशों को निरन्तर तकनीकी सहायता प्रदान की जा रही है। एशिया व अफ्रीका के इन विकसित देशों ने अपने उद्योगों तथा खेती-बाड़ी का विकास करने की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र के तकनीकी विशेषज्ञों से सहायता ली है। संयुक्त राष्ट्र ने 18 सदस्यों की एक कमेटी भी स्थापित की है, जो तकनीकी सहयोग कार्यक्रम की देखभाल का कार्य करती है। नवम्बर, 1965 में संयुक्त राष्ट्र महा सभा ने संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम स्थापित किया था, जो अनेक क्षेत्रों में सहायता करता है। इस कार्यक्रम के तहत बिजली, भवन-निर्माण पशुपालन, वन-विकास तथा कृषि आदि क्षेत्रों में अनेक देशों की सहायता की गयी। 1965 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र प्रशिक्षण व शोध संस्थान ने विकासशील देशों के लिए तकनीकी कम्रचारी वर्ग को प्रशिक्षण दिया है। औद्योगिक व कृषि के क्षेत्र में पिछड़े हुए देशों के लिए बहुत अधिक सहायक रहा है।

4.4.4.5. **निरस्त्रीकरण/शस्त्र नियंत्रण:-** प्रथम व द्वितीय विश्व-युद्धों में घातक हथियारों का प्रयोग किया गया था; जिससे लाखों लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था। इसको ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र ने निरस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण को बढ़ावा दिया है। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 11, 26 व 47 में इस बात का उल्लेख किया गया है कि यदि विश्व में स्थायी शांति स्थापित करनी है, तो इसे विनाशकारी शस्त्रों से मुक्त करवाना होगा।

संयुक्त राष्ट्र ने अपनी स्थापना के तुरंत बाद निरस्त्रीकरण की दिशा में प्रयास शुरू कर दिए थे। संयुक्त राष्ट्र महा सभा के प्रथम अधिवेशन में 1946 में अणु शक्ति आयोग की स्थापना की गयी। इस आयोग का उद्देश्य ऐसे सुझाव

प्रस्तुत करना था, जिससे आणविक व अन्य विनाशकारी हथियारों को समाप्त किया जा सके। महा सभा ने इस आयोग को आणविक शक्ति के शांतिपूर्ण उद्देश्यों के प्रयोग की संभावनाओं का पता लगाने के लिए भी निर्देश दिया था। निरस्त्रीकरण की अवधारणा को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए जनवरी, 1952 में महा सभा द्वारा निरस्त्रीकरण आयोग की स्थापना की गयी थी। इस आयोग को एक संधि का मसौदा तैयार करने के लिए कहा गया। जिससे कि हर प्रकार के शस्त्रों व सेवाओं को सीमित व उनमें सन्तुलित कटौती की जा सके।

1963 में संयुक्त राष्ट्र को आणविक शस्त्रों की दौड़ को रेकने में कुछ सफलता उस समय मिली, जब अमेरिका, सोवियत संघ व ब्रिटेन द्वारा परमाणु परीक्षण निषेद संधि पर हस्ताक्षण कर दिए गए। इस संधि के अंतर्गत संधि पर हस्ताक्षर करने वाले राज्य वायुमण्डल या जल के अन्दर परमाणु परीक्षण नहीं करेंगे। इसी प्रकार परमाणु अस्त्रों के प्रसार को रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र को उस समय सफलता मिली, जब 1968 में महा सभा ने परमाणु अप्रसार संधि को पारित किया। यह संधि हस्ताक्षर करने वाले राज्यों को परमाणु अस्त्रों को प्राप्त करने पर अंकुश लगाती है, किन्तु परमाणु शक्ति के शांतिपूर्ण कार्यों के लिए प्रयोग की अनुमति देती है।

अमेरिका व सोवियत सां के बीच 1945 में शीत-युद्ध शुरू हुआ, जिसके कारण शस्त्रीकरण निरन्तर बढ़ता रहा। 1972 से 1974 के मध्य दो सामरिक परिसीमा संधियों के माध्यम से इन दोनों महा शक्तियों के मध्य जारी शस्त्रीकरण की निरन्तर बढ़ रही दौड़ पर अंकुश लगा। इसके बाद इस दिशा में मध्यम दूरी के परमाणु अस्त्र समझौते पर हस्ताक्षर करके महा शक्तियों ने 500 किलोमीटर की दूरी पर मार करने वाले प्रक्षेप्रास्त्रों को समाप्त करने का निर्णय लिया और 1991 तक इस संधि को लागू कर दिया। विश्व के अनेक देशों द्वारा व्यापक परीक्षण निषेद संधि को स्वीकार किया गया। इस संधि पर विश्व के अधिकांश देशों द्वारा हस्ताक्षर करने से स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र की नि:शस्त्रीकरण की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है।

4.4.4.6. अन्तरिक्ष का मानवता की भलाई के लिए प्रयोग:- संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के तुरन्त बाद अमेरिका व सोवियत संघ के मध्य शीत-युद्ध आरम्भ हो गया थ। सोवियत संघ द्वारा 1957 में प्रथम यान स्पूतनिक को पृथ्वी की कक्षा में उतारने से हथियारों की होड़ ने नवीन रूप ले लिया था। ऐसे में इस बात की आशंका व्यक्त की जाने लगी थी कि अन्तरिक्ष का सैनिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाएगा। इसलिए संयुक्त राष्ट्र ने इस दिशा में पहल की तथा महासभा ने सर्वसमममति से यह प्रस्ताव पारित किया कि बाहरी अन्तरिक्ष का प्रयोग केवल शांतिपूर्ण लक्ष्यों के लिए किया जाए। इसके अलावा, 1960-66 के मध्य महा सभा ने 6 अन्य प्रस्ताव पारित किए, जिनका लक्ष्य अन्तरिक्ष खोज को मानव कल्याण से जोड़ना व समस्त राज्यों को बिना किसी भेदभाव के, अन्तरिक्ष खोज का लाभ दिलाना था। इन प्रस्तावों में यह भी आशा प्रकअ की गयी कि संयुक्त राष्ट्र अन्तरिक्ष खोज केलिए एक केन्द्र का

काम करेगा तथा इस अनुसंधान से अन्तर्राष्ट्रीय तालमेल को बढ़ावा मिलेगा। वस्तुतः यह संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों का ही प्रतिफल था कि 1966 में अमेरिका, सोवियत संघ व ब्रिटेन में महा सभा के प्रस्तावों के आधार पर समझौता हो गया, जिसके अनुसार अंतरिक्ष खोजों का मानव कल्याण के लिए प्रयोग व अंतरिक्ष में हथियारों क मनाही को मान्यता मिली।

4.4.4.7. **अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकासः**- निःसन्देह अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उदय अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से बहुत पहले हो गया था, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कानून का व्यवस्थित रूप में विकास करने में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन-विशेषकर संयुक्त राष्ट्र- ने प्रभावशाली भूमिका निभायी है। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्तुबर, 1945 को हुयी थी। इसकी स्थापनाप के समय से ही अन्तर्राष्ट्रीय जगत एक आचार-संहिता तैयार करने के प्रति जागरूक हो गया था। यह कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के व्यवस्थित संग्रह व स्पष्टकरण से ही संभव हो सकता था। इसलिए संयुक्त राष्ट्र महा सभा ने इस दिशा में प्रथम कदम अन्तर्राष्ट्रीय कानून आयोग की स्थापना करके बढ़ाया। अन्तर्राष्ट्रीय कानून आयोग अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को यथासम्भव सम्मान देकर इसके विकास में योगदान कर रहा है।

4.4.4.8. **मानव अधिकारों को मान्यताः**- संयुक्त राष्ट्र ने मानव अधिकारों के विस्तार में योगदान दिया है। इस संस्था की स्थापना के थोड़ा पश्चात् मानव 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र महा सभा द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गयी। वस्तुतः यह घोषणा मानव अधिकारों का एक विस्तृ प्रलेख है, जिसमें सभी प्रकार के अधिकारों को शामिल किया गया है। इस घोषणा के रूप में, पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, अलग-अलग विचारधाराओं से ऊपर उठकर, मानवाधिकारों की सूची पेश की गयी तथा इनकी व्याख्या की गयी। इतना ही नहीं, प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर को 'मानव अधिकार दिवस' के रूप में मनाया जाता है, जिसके कारण इनकी तरफ विश्व का ध्यान आकर्षित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, एक मानवाधिकार आयोग भ गठित किया गया है। जो राज्य मानवाकािरों का उल्लंघन करते हैं, उनके विरुद्ध कार्रवाई की जाती है; जैसे- दक्षिण अफ्रीका की रंग-भेद की नीति महा सभा के अधिवेशनें में भर्त्सना का विषय रही हे। संयुक्त राष्ट्र द्वारा समय-समय मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कार्रवाइयां की गयी हैं; जैसे- 1977 में महा सभा ने दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगाए। इसके बाद दक्षिण अफ्रीका का राष्ट्रपति चुना गया। इसलिए हम कह सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र ने मानवाधिकरों के प्रति विश्व जनमत को जागृत किया है और इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में स्थापित किया है। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों के विषय में अनेक सराहनीय कदम उठाए गए हैं।

4.4.4.9. **वैज्ञानिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक कार्यः**- संयुक्त राष्ट्र ने वैज्ञानिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक कार्य किए हैं। इन कार्यो के सम्पादन के लिए इसने अनेक अभिकरण स्थापित किए हैं, जिनमें संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, विज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (युनेस्को) प्रमुख है। यूनेस्को का

मूल उद्देश्य शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति के माध्यम से विश्व में सद्भाव को बढ़ावा देना हे। इसके साथ-साथ इस संस्था ने संगीत, नाटक चित्रकला, वास्तुकला, साहित्य आदि के संरक्षण के कार्यो में योगदान दिया है। अनेक प्राचीन कलात्मक तथा ऐतिहासिक अवशेषों का संरक्षण इसके प्रयासों से संभव हो सका है। इसने दार्शनिक तथा रचनात्मक चिन्तन को बढ़ावा देने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए हैं। इसने वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय भूमिका निभायी है। इसने भारत, चीन, मिस्र व उरूग्वे में अपने विज्ञान कार्यालय खोले हैं। इतना ही नहीं, बंजर-भूमि को उर्वर बनाने में भी इस संगठन ने अपना योगदान दिया है।

4.4.4.10. साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का विरोधः- विश्व के अनेक राज्य लंबे समय तक साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद की बेड़ियों में जकड़े रहे। अफ्रीका व एशिया के अनेक राज्य उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक उपनिवेशवाद की जंजीरों में जकड़े हुए थे, किन्तु आज लगभग सभी राज्य स्वतन्त्र हो चुके हैं। उपनिवेशवाद व साम्राजयवाद के उन्मूलन की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद विरोधी प्रक्रिया प्रथम विश्व-युद्ध के बाद ही प्रारम्भ हो गयी थी, किन्तु देसरे विश्व-युद्ध के बाद इसमें बहुत तेजी आयी। यह उसी तेजी का परिणाम है कि आज तीसरी दुनिया के अधिकतर देश स्वतंत्र हो चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के तहत स्थापित न्याय परिषद को शत्रु देशों से छिने प्रदेशों तक सीमित न रखकर समस्त पराधीन स्वतंत्र हो चुके हैं। विश्व के कई देशों को स्वतन्त्र करवाने में संयुक्त राष्ट्र का योगदान रहा है: जैसे- मोरक्को, ट्यूनीशिया, अलजीरिया, इण्डोनेशिया आदि। संयुक्त राष्ट्र ने कांगो व कुवैत की स्वतन्त्रता की रक्षा शस्त्रों द्वारा की है।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में संयुक्त राष्ट्र के मंच का प्रयोग उपनिवेशवाद के विरुद्ध अवाज उठाने के एिल किया गया। विश्वव्यापी संस्था होने के कारण इसके मंच पर पारित प्रस्तावों से विश्व जनमत को उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के विरुद्ध खड़ा करने में बहुत मदद मिली। संयुक्त राष्ट्र महा सभा द्वारा 24 सितम्बर, 1961 को की गयी उपनिवेशवाद को उखाड़ फेंकने की घोषणा का विशेष प्रभाव पड़ा है। आज विश्व उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद को घृणा की दृष्टि से देख रहा है। वस्तुतः संयुक्त राष्ट्र ने उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के उन्मूलन में प्रमुख भूमिका निभायी है।

4.4.4.11. बिमारियों का उन्मुलनः- संयुक्त राष्ट्र ने वैज्ञानिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक कार्य ही नहीं, बल्कि विश्व में फैली अनेक भयानक बीमारियों की रोकथाम के लिए भी कार्य किए हैं। इसने क्षय रोग, मलेरिया, फाइलेरिया आदि के उन्मूलन में सराहनीय कार्य किए हैं। संयुक्त राष्ट्र के विशेष अभिकरण के रूप में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस कार्य कमें सदस्य-राज्यों की बहुत सहायता की है। इस संगठन ने विभिन्न क्षेत्रों में महामारियों को रोकने के लिए भी कदम उठाए। इसने 1949 में मिस्र के तथा अफगानिस्तान में टायफाइड से असंख्य

लोगों की रक्षा की। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अनेक जन कल्याणकारी कार्यो में सहायता प्रदान की है। जैसे इसने मातृ तथा शिशु कल्याण जनस्वास्थ्य प्रशिक्षण, पौष्टिक भोजन, पेय जल की आपूर्ति के साथ-साथ औषधि विज्ञान शोध के लिए सराहनीय कार्य किए हैं। वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न संस्थाओं द्वारा शिशु कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इन संस्थाओं में यूनिसेफ का अग्रणीय योगदान है। विश्व में 50 से भी अधिक कार्यक्रमों द्वारा बच्चों की अशिक्षा, कुपोषण, भूखमरी आदि को दूर करने के प्रयास किए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र और इसके विभिन्न अभिकरणों द्वारा विश्व के लाखों बच्चों को क्षय, कोढ़, मलेरिया व अन्य रोगों से बचाने का प्रयास किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र यूनिसेफ के अनेक कार्यकर्ता स्वास्थ्य केन्द्रों में अपनी सेवाएं दे रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र कोकीन, अफम, ड्रग्स आदि नशीली दवाओं की रोकथाम के लिए भी निरन्तर प्रयास कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र ने नशीले पदार्थो के उत्पादन व व्यापार पर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण की एक पद्धति प्रस्तुत की है। इस नियंत्रण का उद्देश्य यह है कि इस प्रकार के पदार्थो का उपयोग केवल चिकित्सा-संबंधी और वैज्ञानिक उद्देश्यों के लिए किया जाए। संयुक्त राष्ट्र के अधीन एक संस्था इस संबंध में नति निर्धारित करती है, जिसका पालन सभी सदस्य-राज्यों को करना पड़ता है। जुलाई, 2003 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित 'मानव विकास रिपोर्ट' में सुलभ शौचालयों की व्यवस्था करने वाले गैर-सरकारी संगठनों के कार्यो की सराहना की गयी है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा किए जा रहे गैर-राजनीतिक अर्थात सामाजिक एवं आर्थिक कार्यो के वर्णन से स्पष्ट है कि इसके गैर-राजनीतिक कार्यो का क्षेत्र इसके राजनीतिक कार्यो से अधिक विस्तृत है। संयुक्त राष्ट्र सामाजिक-आर्थिक कार्यो के मामले में बहुत सफल रहा है। इस विषय में ई.पी. चेज कहते हैं कि अन्त में संयुक्त राष्ट्र के कार्यो की सफलता का अनुमान इस बात से लगाया जाएगा कि स्वास्थ्य और पोषाहार के स्तर को बढ़ाने में, समुद्रों की यात्रा सुरक्षित बनाने में, मनुष्यों को हानिप्रद औषधियों से बचाने में, अनुभवी सहायता और सूचना के देने में और एक स्वतंत्र सम्पन्न, शिक्षित और अधिक एकीकृत विश्व के लिए योजना बनाने में यह कहां तक सफल हुआ है? यद्यपि संयुक्त राष्ट्र राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने में अधिक सफल नहीं रहा, किन्तु इसने एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों की स्थिति को सुारने का कार्य अवश्य किया है। सी.बी. राव के शब्दों में, ''1945 से लेकर अब तक संयुक्त राष्ट्र की उपलब्धियां काफी महत्वपूर्ण व अद्भुत रही हैं। सचमुच इतिहासकारों को किसी दिन यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संयुक्त राष्ट्र का यह गैर-राजनीतिक कार्य विश्व शांति के लिए सर्वाधिक स्थायी देन है, जब कि इसका प्रचार सबसे कम है। वस्तुत: गैर-राजनीतिक क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र का योगदान स्मरणीय है।''

4.4.5. संयुक्त राष्ट्र की कमजोरियों पर प्रकाश डालिये

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्तूबर, 1945 को हुई थी। अपने जीवन-काल में संयुक्त राष्ट्र संघ को कुछ सफलताएँ अवश्य मिली है, किन्तु इसे अनेक असफलताओं का

सामना भी करना पड़ा है। इस दौरान इसके कुछ दोष भी उभरकर सामने आए, जिसके कारण यह अपने कार्यों का संचालन ठीक ढग से नहीं कर पाया। संयुक्त राष्ट्र स्वयं समय के अनुसार नहीं ढल पाया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मौजूद गुटों ने इसे निष्क्रिय बना दिया और यह महा शक्तियों के हाथों का खिलौना मात्र बनकर रह गया। संयुक्त राष्ट्र की असफलताओं का उल्लेख करते हुए एल. एम. गुडरिच लिखते हैं, ''शक्तियों में संघर्ष, हथियारों की होड़, अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण निबटारा न हो पाना आदि इसकी मुख्य विफलताएं हैं।'' कुछ विद्वानों का मत कि संयुक्त राष्ट्र की महान घोषणाएं दिखावा मात्र थी। संयुक्त राष्ट्र को निम्नलिखित विवादों में असफलता का सामना करना पड़ा।

4.4.5.1. लक्ष्यों में असफलः-

द्वितीय विश्व-युद्ध में लाखों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा था। द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद 24 अक्तूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र की स्थापना की गयी। संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा स्थापित करना तथा राष्ट्रों के मध्य आवसी सद्भाव व भाईचारे को बढ़ावा देना है। किन्तु यह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका, क्योंकि सदस्य-राज्यों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना के स्थान पर अपने राष्ट्रीय हितों को बढ़ावा दिया गया है। अनेक राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र के चार्टर का निरादर करते हैं। कुछ राज्य संयुक्त राष्ट्र के निर्देशों की अवहेलना करते हैं। संयुक्त राष्ट्र विकसित राज्यों द्वारा विकासशील और अविकसित राज्यों की सहायता कराने के अपने मुख्य उद्देश्य में भी असफल रहा है।

4.4.5.2. अपने फैसलों को लागू करवाने में असफलः-

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा की स्थापना करना था। इसके लिए समय-समय पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा अनेक निर्णय लिए गए, किन्तु यह अपने निर्णयों तथा सिफारिशों को लागू कराने में अधिक सफल नहीं रहा। उदाहरण के लिए संयुक्त राष्ट्र महा सभा ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार की रंग-भेद की नीति के विरुद्ध अनेक प्रस्ताव पारित किए, किन्तु यह उन्हें पूरी तरह से लागू नहीं करवा पाया। दूसरा उदाहरण इजरायल है। इस राज्य के विरुद्ध भी अनेक प्रस्ताव पारित किए गए हैं, किन्तु उन्हें लागू नहीं करवाया जा सका। संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपने ही निर्णयों को लागू नहीं करवा पाना इसकी बहुत बड़ी कमजोरी है।

4.4.6. पाठ का सार/सारांश

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अनेक बार संयुक्त राष्ट्र को असफलता का सामना करना पड़ा है, किन्तु तब भी यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि यह एक निरर्थक संगठन है। अपनी असफलताओं के बावजूद भी यह एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी संगठन है। क्यूबा जैसे भंयकर संकट को हल करने का श्रेय संयुक्त राष्ट्र को जाता है। संयुक्त राष्ट्र ने कई बार युद्ध होने से रोका है। यदि कुछ कार्यों में संयुक्त राष्ट्र को सफलता नहीं मिली है, तो इसका कारण यह संस्था नहीं, बल्कि कुछ और ही है।

संयुक्त राष्ट्र ने समय-समय पर मानवता को युद्धों से बचाया है। इसके अलावा, इसके द्वारा सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य भी किए गए हैं। संयुक्त राष्ट्र ही एक ऐसा संगठन है, जो विश्व को एकता के सूत्र में बांधे हुए है तथा

राज्यों की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाए हुए है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र को कुछ क्षेत्रों में या विवादों में असफलता मिली है, लेकिन इसका यह अभिप्राय नही है कि इसका परित्याग कर दिया जाए। इसको सफल बनाने के लिए इसमें संगठनात्मक सुधारों की आवश्यकता है।

4.4.7. अभ्यास/बोध प्रश्न

अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ की विफलताओं पर प्रकाश डालें।

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र की असफलताओं के कारण बताइए।

प्र. 3) संयुक्त राष्ट्र संघ की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

प्र. 4) संयुक्त राष्ट्र संघ की संविधानिक विफलता का वर्णन कीजिए।

प्र. 5) संयुक्त राष्ट्र संघ का आलोचनात्मक वर्ण कीजिए।

लघुतरात्मक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ की विफलता में संगठनात्मक कारणों पर प्रकाश डालें।

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र संघ की विफलता के क्या कारण रहे होंगे, वर्णन करें।

प्र. 3) संयुक्त राष्ट्र संघ की उपलब्धियों पर टिप्पणी कीजिए।

प्र. 4) संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल्यांकन कीजिए।

प्र. 5) संयुक्त राष्ट्र संघ का आलोचनात्मक रूप से संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

बहु वैकल्पिक प्रश्न

प्र. 1) संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य नही था।

1) हथियार बन्दी की होड़ को रोकना।
2) हथियारों को बढ़ावा देना।
3) अन्तर्राष्ट्रीय शांति बनाए रखना।
4) अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा।

प्र. 2) संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता नही है।

1) ईरान, रूस मामला
2) इण्डोनेशिया, नीदरलैण्ड युद्ध
3) अमेरिका, इग्लैण्ड युद्ध
4) भारत-पाकिस्तान युद्ध

प्र. 3) संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता है।

1) साम्राज्यवाद का उन्मूलन
2) राजनीतिक विवादों का सामाधान
3) उपनिवेशवाद को खत्म
4) उपरोक्त सभी

प्र. 4) संयुक्त राष्ट्र संघ ने उपनिवेशवाद को पूर्व से समाप्त करने की घोषणा कब की।

1) 1950 2) 1980 3) 1960 4) 1970

प्र. 5) संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेषता है।

1) नैतिक दबाव का साधन
2) युद्धों को विराम शांति
3) अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का आदर
4) उपरोक्त सभी

4.4.7. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लिनोर्ड: एल.लर. इंटरनेशनल आर्गेनाईजेशन. न्यूयार्क मैकग्रेव हिल 1951
2. ली ट्र्यगव. इन दा कोष ऑफ पीस, न्यूयार्क, मैकमिलन 1951
3. मैन्डर लीनडन ए. फाउन्डेशन ऑफ मोडर्न वर्ल्ड सोसायटी कैलिफोर्निया: स्टैण्डफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस 1948.
4. मार्टिन ए. कोलेक्टीव सिक्योरिटी, ए प्रोग्रेस, रिपोर्ट, पेरिस यूनेस्को 1952.
5. मिलर डेवि एच. दी ड्राफटिंग ऑफ वी कोबनअन्ट, न्यूयार्क जी.पी. पूतनाम 1928.
6. हाल.डी.मैन्डटेस, डीपैन्उन्सीज एण्ड ट्रस्टीशिप, वाशिगंटन.
7. डी.सी. करनेगल: अण्डोमैन्ट, फोर इंटरनेशनल पीस 1948.
8. जम्स अलान: दा पोलिटिस, ऑफ पीस किपिंग लोनडोंग चार्टो एण्ड बीन्डस 1969.
9. खान, रहामबुल्लता: कश्मीर एण्ड दा यूनाईटेड नेशनल डेली विकास 1969.
10. लाल अर्थुर मोडर्न इंटरनेशनल नीगोहिटशेशन न्यूयार्क कोलूबीया।